वैष्णव-संगीतशास्त्र

I

चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी

॥ श्रीः ॥

जड़ावकुँवर राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

२३

मणिपुरी नर्तनालय, कलकत्ता को संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली से प्राप्त आर्थिक सहायता से प्रकाशित।

श्री नरहरि चक्रवर्ती (घनश्यामदास) विरचित

वैष्णव-संगीतशास्त्र

रागरत्नाकर, गीत चन्द्रोदय, (तालार्णव), श्रीश्रीभक्तिरत्नाकर (पञ्चम तरङ्ग का संगीतांश)

सम्पादक

गुरु बिपिन सिंह

अनुवादक

गजानन रानडे शास्त्री : मदनलाल व्यास

प्राक्कथन

डॉ० (कु०) प्रेमलता शर्मा

अध्यक्षा, संगीतशास्त्र विभाग, प्रमुखा, संगीत नाट्य संकाय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक

वाराणसी दिल्ली

प्रकाशक

चौखम्भा ओरियन्टालिया

पो० आ० चौखम्भा, पो० बाक्स नं० ३२

गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी–२२१००१ (भारत)

टेलीफोन : ६३३५४ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव

शाखा—बंगलो रोड, ९ यू० बो० जवाहर नगर

दिल्ली–११०००७ फोन : २२१६१७

प्रथम संस्करण १९८२

मूल्य : रु० ~~[illegible]~~ 20

मणिपुरी नर्तन

लेखिका

दर्शना झवेरी तथा कलावती देवी

भूमिका

हरेकृष्णमुखोपाध्याय एवं कपिला वात्स्यायन

मूल्य रु० १५–००

मुद्रक—श्रीगोकुल मुद्रणालय, वाराणसी–२२१००१

JADAUKUNWAR RASTRABHASHA SERIES
NO. 23

Published with the financial aid received from Sangit Natak Academy, Delhi to the Manipuri Nartanalaya, Calcutta.

VAIṢṆAVA SAṄGĪTAŚĀSTRA

[Vaiṣṇavite musicology]

of

NARAHARI CHAKRAVARTY

[the treatise includes Rāga-ratnākara, Gīta Chandrodaya (Tālārṇava) and music portion of Śrī ŚrīBhakti Ratnākara, chapter fifth]

Editor
GURU BIPIN SINGH

Translator
GAJĀNANA RĀNADE ŚĀSTRĪ : MADANALĀL VYĀS

Foreword by
Dr. PREMALATĀ ŚARMĀ
Head, Deptt. of Musicology,
B. H. U.

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
A House of Oriental and Antiquarian Books
VARANASI DELHI

Publisher :

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA

P. O. Chaukhambha, Post Box No. 32

Gokul Bhawan, K. 37/109, Gopal Mandir Lane

VARANASI-221001 (India)

Telephone : 63354 Telegram : Gokulotsav

Branch—Bungalow Road, 9 U. B. Jawahar Nagar

DELHI-110007 Phone : 221617

First Edition : 1982

Price : Rs. 60-00

स्वर और रागों के विकास में

वाद्यों का योगदान

लेखिका

इन्द्राणी चक्रवर्ती

प्रस्तावना

कु० प्रेमलता शर्मा

मूल्य रु० ३५–००

प्राक्कथन

श्रीनरहरि चक्रवर्ती अथवा श्रीघनश्यामदास के संगीत-सम्बन्धी ग्रन्थों के इस संकलन का मैं हार्दिक स्वागत करती हूँ। देवनागरी अक्षरों में इनका सर्वप्रथम प्रकाशन हुआ है; अब ये भारत के सभी प्रदेशों में अध्ययन के लिए सुलभ हो सकेंगे।

अठारहवीं शताब्दी ई० के पूर्वार्ध में रचित इन ग्रन्थों का अध्ययन कई प्रकार से उपादेय होगा। यथा :—

१. अनेक ऐसे ग्रन्थों के उद्धरण यहाँ प्रस्तुत हैं, जो कि अपने मूल रूप में आज अप्राप्त हैं। यथा—मम्मटकृत संगीतमाला। उन अप्राप्य ग्रन्थों का यह यत्किंचित् परिचय शोधार्थी के लिए अमूल्य है।

२. भारतीय संगीत के आधुनिक युग का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी में मानें तो अठारहवीं शताब्दी में रचित लक्षण-ग्रन्थ उसकी पूर्वपीठिका के रूप में मूल्यवान हैं। उस काल में प्राचीन और मध्ययुगीन लक्षण-ग्रन्थों के प्रति क्या दृष्टिकोण था, इस अनुसन्धान के लिए भी विपुल सामग्री यहाँ उपलब्ध होगी। साथ ही, लक्षण-ग्रन्थों का अपने काल के लक्ष्य के साथ कितना और कैसा समन्वय था, इस प्रश्न पर विचार करने के लिए भी आधार मिल सकेगा।

३. श्रीचैतन्यदेव द्वारा प्रवर्तित बंगाल की वैष्णव-धारा का भारतीय संगीत में जो योगदान रहा है, उसका अध्ययन भी हो सकेगा।

४. भारत के पूर्वी और पूर्वोत्तर प्रदेश की संगीत-नृत्य परम्परा के विकास पर इनके अध्ययन से प्रकाश पड़ सकेगा। इससे भारत की संगीत-परम्परा की समग्रता और प्रादेशिकता का परस्पर सम्बन्ध स्फुट होगा।

मुझे पूर्ण आशा है कि ऊपर लिखी सभी दृष्टियों से इस संकलन का अध्ययन होगा और यह शोध का ठोस आधार बनेगा।

वाराणसी

मंगलवार, १६ अक्टूबर, १९८२

(शारदीय नवरात्र)

प्रेमलता शर्मा

अध्यक्षा, संगीतशास्त्र विभाग,

प्रमुखा, संगीत-नाट्य संकाय,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

सम्पादकीय

मणिपुर में वैष्णव धर्म के आगमन के साथ वैष्णव साहित्य तथा संगीत शास्त्रों का भी आगमन हुआ। गत २५० वर्षों से राजाओं ने वैष्णव धर्म को राजकीय धर्म बनाया जिससे गुरुओं तथा कलाकारों ने इन शास्त्रों को मूल में रखकर अपनी नृत्यसंगीत परम्परा को अपने रीति-रिवाज के अनुसार शास्त्रीय ढंग से विकसित किया जो रास और संकीर्तन में देखा जाता है। गुरुओं ने भी अपनी रीति से हस्तलिपियाँ (*manuscripts*) तैयार कीं।

इन सबमें से हमने नरहरि चक्रवर्ती लिखित तीन पुस्तकों में से मणिपुरी नृत्य के उपयोगी भाग चुने हैं। भक्तिरत्नाकर के पंचम तरंग में रासलीला के विविध तत्त्वों का वर्णन है। रास में कई गीतों का भी व्यवहार इस पुस्तकों में से होता है; जैसे—"जय जगत वंदीनी…" या "नट पुंगव ताण्डव आरू ताण्डव द्विविध" इत्यादि। गीतचन्द्रोदय के अष्टम परिच्छेद तालार्णव में वर्णित ताल के विविध अंगों का भाव मणिपुर की परंपरा में दिखाई पड़ता है; जैसे-आठ प्रकार की जातियाँ, पातकला इत्यादि। राग-रत्नाकर पुस्तक में वर्णित रागरागिणी का ध्यान, मूर्ति इत्यादि गुरु लोग रास संकीर्तन में गाते हैं।

नरहरि चक्रवर्ती ने जिन-जिन पुस्तकों का उल्लेख किया है उन सबको हमने पुस्तक संपादन करने के समय निर्दिष्ट करके संशोधन किया है। फिर भी श्लोक में त्रुटियाँ रही हों तो क्षमा चाहता हूँ। हमारी शिष्या दीपादास गुप्ता ने भी प्रूफ देखने में मदद की है।

अन्त में डॉ० (कु०) प्रेमलता शर्मा जी का हृदय से आभार स्वीकार करता हूँ जिन्होंने अपने व्यस्त जीवन का अमूल्य क्षण इस ग्रन्थ की भूमिका में लगाया है। ईश्वर उन्हें दीर्घायु रखें ताकि स्वस्थ साहित्य के सर्जन में उनका मार्गदर्शन सदैव मिलता रहे।

विजया दशमी, संवत् २०३६
मणिपुर नर्तनालय, १५ए, बिपिन पाल रोड
कलकत्ता-७०००२६

गुरु बिपिन सिंह

प्रस्तावना

श्री नरहरि चक्रवर्ती–घनश्यामदास अत्यन्त प्रतिभाशाली वैष्णव कवि थे। उन्होंने अपने पदों के भणिता में नरहरिदास या घनश्यामदास नाम का प्रयोग किया है। कहा जाता है कि एक समय नरहरिदास वृन्दावन के श्री राधागोविन्दजी के मन्दिर में रसोइये थे, अतः उस समय के वैष्णव समाज में 'रसुआ नरहरि' के नाम से जाने जाते थे। नरहरिदास ने अपने ग्रन्थ 'भक्ति रत्नाकर' के अन्त में अपना परिचय इस प्रकार दिया है :—

निज परिचय दिते· लज्जा हय मने ।
पूर्व वास गङ्गातीरे·जाने सर्वजने ॥
बिश्वनाथ चक्रवर्ती सर्वत्र विख्यात ।
ताँर शिष्य मोर पिता विप्र जगन्नाथ ॥
ना जानि–कि हेतु हैलो मोर दुइ नाम ।
नरहरिदास, आर दास घनश्याम ॥
गृहाश्रम होइते होइनु उदासीन ।
महापाप विषये मजिनु रात्रि दिन ॥

श्री नरहरि का घर गंगा के पूर्वी तट पर स्थित सैयादाबाद में था। इसे पश्चिम बंगाल के राड़देश की सीमा में शामिल किया गया था। उन्होंने कई अधिकृत ग्रन्थों और सैकड़ों पदों की रचना की। उनके प्रारम्भिक ग्रन्थ हैं—श्रीनिवास चरित्र, भक्ति रत्नाकर और नरोत्तम विलास। इनके अलावा उन्होंने गौर-चरित्र-चिन्तामणि, राग-रत्नाकर, गीत-चन्द्रोदय, छन्द-समुद्र और पद्धति-प्रदीप की रचना की।

नरहरिदास शास्त्रीय संगीत के निष्ठावान अध्येता थे। उन्होंने दिल्ली, मथुरा और वृन्दावन के तत्कालीन हिन्दू गुरुओं और मुस्लिम उस्तादों से सभी प्रकार के संगीत, विशेष प्रकार से ध्रुपद-प्रबन्धगान की शिक्षा ग्रहण की। नरोत्तम ठाकुर की भाँति नरहरि ने श्री वैष्णव-पदगान व पदावली कीर्तन का शास्त्रीय ध्रुवपद संगीत के रूप में विकास और पुनर्गठन किया। ठाकुर नरोत्तम खेतरी महोत्सव में विलम्पत गराणहाटि कीर्तन का ध्रुवपद शैली में प्रवर्तन कर चुके थे। बाद में उसके स्थान पर मनोहरसाई, रेणेटि और मन्दारिणी शैलियों के कीर्तन का प्रवर्तन हुआ, जिसकी तुलना शास्त्रीय

संगीत के खयाल, टप्पा एवं ठुमरी से की जा सकती है। नरहरि ने भारतीय संगीत के सैद्धान्तिक एवं ऐतिहासिक ज्ञान के लिए सभी उपलब्ध अधिकृत संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन-मनन किया। वे भली-भाँति जानते थे कि संगीत की 'थ्योरी'—सैद्धान्तिक पक्ष मूल तत्त्व नहीं है, किन्तु सही अभ्यास एवं प्रस्तुतीकरण के लिए यह अनिवार्य है। उन्होंने भारत के परम्परागत 'पावन' संगीत को आत्मसात किया, जिससे उन्हें बंगाल के, विशेषतया वैष्णव संगीतज्ञों में शास्त्रीय संगीत की सच्ची और शास्त्रीय शैली के प्रति रुचि जाग्रत करने में सहायता मिली।

अब प्रश्न उठता है कि यह परम्परागत पावन संगीत क्या है? यह सत्य है कि श्री चैतन्य (ई० १४५८–१५३३) ने नाम कीर्तन का प्रवर्तन किया, जिसका ठाकुर नरोत्तम ने नये ढंग से विकास किया। श्री नरोत्तम ने आलाप, राग, ताल आदि का प्रयोग कर रास अथवा लीला-कीर्तन का प्रवर्तन किया। उन्होंने बंगाल के लोगों में संगीत के प्रति नवजागरण की सृष्टि की। कहा जाता है कि उन्होंने स्वामी हरिदास गोस्वामी और श्री स्वरूप दामोदर के शिष्य श्री रघुनाथ गोस्वामी जैसे सन्त संगीतज्ञों से ध्रुवपद की शिक्षा ग्रहण की। कृष्णदास कविराज के 'चैतन्य-चरितामृत' से पता चलता है कि स्वरूप दामोदर उस समय के संस्कृत विद्वान् एवं महान संगीतज्ञ श्री चैतन्य के निजी सचिव थे। नरहरि चक्रवर्ती-घनश्यामदास को शास्त्रीय संगीत की प्रेरणा खेतरी के ठाकुर नरोत्तम से मिली। नरोत्तम को संगीत में दैवी प्रेरणा श्री चैतन्य, स्वरूप दामोदर, कृष्णदास कविराज, स्वामी हरिदास गोस्वामी, राय रामानन्द, कवि करणपुर और रघुनाथदास गोस्वामी (स्वरूप दामोदर के शिष्य) से मिली।

बंगाल ने उस समय सैकड़ों विद्वान–संगीतशास्त्रज्ञ और सन्त-संगीतज्ञ दिये, जिनसे भारत की संस्कृति का भण्डार समृद्ध हुआ। बंगाल के इतिहास से पता चलता है कि गुप्त, पाल और सेन राजाओं के समय से बीसवीं शताब्दी तक बंगाल में कई संगीत ग्रन्थ लिखे गये, जिनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—गोरक्षनाथ, चौरंगीनाथ, मीनानाथ का 'नाथगीतिका' (ई० ८ वीं–९ वीं शताब्दी), सावेरी-पा, कानु-पा, हाड़ी-पा, लुई-पा तथा अन्यों का 'चर्यापद' (ई० ९५०–१२००), सरह का 'दोहाकोश' (ई० ११००–११५०), कवि जयदेव का 'गीतगोविन्द' (ई० १२ वीं शताब्दी), चण्डीदास का 'कृष्णकीर्तन' (ई० १४ वीं–१५ वीं शताब्दी) आदि; 'संगीत दामोदर' और 'हस्तमुक्तावली' (ई० १६ वीं–१७ वीं शताब्दी), कवि लोचन का 'रागतरंगिणी' और 'राग संगीतसंग्रह' (ई० १७ वीं शताब्दी

का मध्यकाल), 'गीतप्रकाश' (ई० १६ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध), नेपाल के राजा जगज्योतिमल्लम का संगीतसारसंग्रह' और संगीतभास्कर' (ई० १६१७-१६३३), राजा नारायण देव का 'संगीतनारायण' (ई० १८००), कवि नारायण का 'संगीतसारणी' (ई० १८००), 'संगीत कामोद', 'संगीत कौमुदी'। रूपराम के 'धर्म मङ्गल' और कल्हण की 'राजतरंगिणी' से पता चलता है कि नटियों और देवदासियों द्वारा शास्त्रीय नृत्य किया जाता था और उनका प्रदर्शन बंगाल के मन्दिरों में होता था। कहा जाता है कि इन नृत्यों में प्रयुक्त अङ्गहार एवं हस्तमुद्राएँ भरत के 'नाट्यशास्त्र' में वर्णित अङ्गहार और हस्तमुद्राओं से भिन्न नहीं थीं। द्वारभांगा (दरभंगा), मिथिला, गौड़, कामरूप एवं कलिंग (उड़ीसा) शास्त्रीय संगीत एवं नृत्य के प्रमुख केन्द्र थे। गौड़ और मगध के जरिये नेपाल, कश्मीर एवं गान्धार को भी बंगाल से संगीत, वाद्य एवं नृत्य की प्रेरणा मिली। नरहरि चक्रवर्ती ने भी इसी सांस्कृतिक बंगाल की भावना को पूर्णतया आत्मसात किया।

ई० १८ वीं शताब्दी के आरम्भ के सन्त संगीतज्ञ एवं संगीतशास्त्रज्ञ नरहरि चक्रवर्ती (घनश्यामदास) का ग्रन्थ 'राग-रत्नाकर' भारतीय संगीत के अध्ययन की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण अवदान है। 'राग-रत्नाकर' मणिपुर के विद्वानों की नवीनतम खोज है। अब तक घनश्यामदास रचित ग्रन्थों का नाम 'गौड़ीय वैष्णव अभिधान' में मिलता है किन्तु इसमें इस छोटे संस्कृत ग्रंथ का कोई उल्लेख नहीं है। इस पुस्तक की पाण्डुलिपि की प्रतिकृति (१२½" × ७") का पता इस पुस्तक के सम्पादक श्री जी० सुरचन्द शर्मा ने शाही प्रासाद के बामन पाला लोयसांग (विभाग) से सम्बद्ध गुरु नित्यानन्द शर्मा के घर से लगाया। श्री जी० सुरचन्द शर्मा मणिपुर के नामी विद्वान् लेखक हैं, जिन्होंने संगीत-नृत्य के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थों का संग्रह किया है—उनका अनुवाद तथा प्रकाशन भी करते रहे हैं। 'राग-रत्नाकर' इनमें से एक है। यह पाण्डुलिपि मणिपुर में ही उपलब्ध है। श्री जी० सुरचन्द शर्मा के सम्पादन एवं मणिपुरी अनुवाद के साथ इसका प्रकाशन मणिपुर राज्य कला अकादमी द्वारा किया गया, जिसका आमुख लिखा है श्री ई० नीलकान्त सिंह ने। इस पुस्तक में पाँच प्रकरण हैं, जिनमें राग-संगीत के परम्परागत वर्गीकरण-सम्पूर्ण, षाडव, औडव और संकीर्ण—पर प्रकाश डाला गया है और राग-लक्षणों के साथ-साथ रागों के ध्यान व मूर्तितत्त्व का भी वर्णन है। यह पुस्तक 'भक्ति-रत्नाकर', गीत चन्द्रोदय' एवं 'संगीत-सारसंग्रह' की पूरक कृति सिद्ध हो सकती है।

'गीतचन्द्रोदय' ग्रन्थ का संगीतांश (अष्टम परिच्छेद) बंगाल का एक विशिष्ट गौरवमय सांस्कृतिक अवदान है। अब तक यह अंश अप्रकाशित था। स्वर्गीय पण्डित हरिदास दास महाशय के अथक प्रयास से इस अंश का संग्रह सम्भव हो सका। इस अंश को श्रद्धेय स्वामी प्रज्ञानानन्द (श्री रामकृष्णवेदान्त मठ, कलकत्ता) ने अपने ग्रन्थ 'राग ओ रूप' में परिशिष्ट के रूप में संयोजित किया। इसके साथ इसका 'तालार्णव' भी शामिल है। इस अंश की भूमिका में पं० हरिदास दास के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए स्वामीजी ने लिखा है कि "संगीत-सेवी मात्र के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रयोजनीय है। इसके अलावा इस अप्रकाशित ग्रन्थ का प्रकाशन समाज में सब समय ही आदरणीय है। वैष्णव समाज में पदावली कीर्तन के शास्त्रीय ग्रन्थ के रूप में समस्त भारत में ही नहीं, बल्कि समग्र विश्व में इसका आदर चिरदिन अक्षुण्ण रहेगा। आशा है कि संगीत-शिक्षार्थी और संगीत पिपासु इस ग्रन्थ का अध्ययन करेंगे और संगीत विद्या के सैद्धान्तिक अंश का ज्ञान प्राप्त करेंगे। सभी संगीतसेवियों के लिए यह सहजबोध्य है। मैं मानता हूँ कि इस ग्रन्थ का सभी विद्यालयों और संगीतशिक्षा-प्रतिष्ठानों में अनिवार्य पाठ्यपुस्तक के रूप में रखना उचित है।" इसके गीतांश में पूर्वज विद्वानों के उद्धरणों के साथ नादोत्पत्ति, श्रुति, स्वर, गीतलक्षण, गायकों के गुण-दोष, वाद्य-प्रकार, गायन के फल तथा विभिन्न रागों में रचनाएँ दी गयी हैं। तालार्णव अंश में विभिन्न उद्धरणों के साथ विविध तालों का विवेचन किया गया है तथा उनकी मात्राओं और संकेत-चिह्नों को स्पष्ट किया गया है। तालों के अङ्ग, प्रमाण, धरण-प्रकार, दस प्राण, जैसे—काल-निरूपण, मार्ग, निःशब्द व सशब्द क्रियाएँ, अङ्ग-देवता, ग्रह, जाति, कला, लय, यति, प्रस्तार आदि इसके विषय हैं।

'भक्ति-रत्नाकर' पञ्चदश तरङ्गों (अध्यायों) का एक विशद ग्रन्थ है। इस भक्तिभावपूर्ण ग्रन्थ के पञ्चम तरङ्ग में संगीत (गायन-वाद्य-नृत्य) का विवेचन है। इसमें श्रीनिवास नरोत्तम के श्रीराघव के साथ व्रजगमन का वर्णन है। विहार के समय नाना प्रसङ्गों का उल्लेख है और इसी प्रसङ्ग में संगीत की व्याख्या है। इसमें महारास के अपूर्व-अलौकिक स्वरूप के वर्णन के साथ-साथ पञ्चम वेद—संगीत वेद, संगीत का स्वरूप, संगीत का भेद, नाद-उत्पत्ति, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्छना, जाति, वर्ण, अलङ्कार, राग-रागिनी, गीत-प्रकार, गीत-गुण, ताल-लय, यति, गायकों-वादकों के गुण-दोष, नृत्य-नृत्त-अभिनय-लक्षण, मुद्रा, नायक-नायिका-भेद आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है तथा पूर्वज आचार्यों के उद्धरणों के साथ विषय को सुस्पष्ट

किया गया है। इसके साथ ही प्रसंगानुसार विभिन्न रागों में गीत दिये गये हैं, जो राधा-कृष्ण की लीलाओं को सरस भाव उजागर करने में सक्षम हैं।

प्रसंगवशात् यहाँ यह उल्लेख करना युक्तिसंगत होगा कि श्री नरहरि चक्रवर्ती-घनश्यामदास का अन्य ग्रन्थ 'संगीतसार-संग्रह' श्रीरामकृष्ण वेदान्त मठ, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है जिसका सम्पादन श्रद्धेय स्वामी प्रज्ञानानन्दजी ने किया है। श्रद्धेय स्वामीजी को इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि भी संस्कृत विद्वान् श्री हरिदास दास से प्राप्त हुई। स्वामीजी द्वारा लिखित सुदीर्घ प्रस्तावना में ही यह स्पष्ट किया गया है कि संत संगीतज्ञ नरहरिदास १८वीं शताब्दी के आरम्भ के गुणी थे। इस समालोचनात्मक प्रस्तावना में इस गुणी के पूर्व की और उस समय की सांस्कृतिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। संगीतसार-संग्रह में छः अध्याय—प्रकरण हैं; यथा-गीत-प्रकरणम्, वाद्य-प्रकरणम्, नृत्य-नाट्य-प्रकरणम्, आङ्गिकाभिनय-प्रकरणम्, भाषादि-निरूपणम् एवं छन्दप्रकाश-प्रकरणम्।

'वैष्णव-संगीतशास्त्र' ग्रंथ का सम्पादन मणिपुरी नृत्य के विद्वान गुरु बिपिन सिंह ने किया है। इसके संस्कृत अंश का अनुवाद संस्कृत विद्वान् पं० गजानन रानडे शास्त्री ने और बंगला अंश का अनुवाद श्री मदनलाल व्यास ने किया है। इस कार्य के पीछे मणिपुरी नृत्य के ख्यातनाम, गुरु बिपिन सिंह की शिष्याएँ, झवेरी बहनों की पूर्ण सहायता रही है तथा उनकी नृत्यसंस्था, कलकत्ता स्थित 'मणिपुरी नर्तनालय' का भी पूरा साथ रहा है।

गुरु बिपिन सिंह—मणिपुरी के प्रतिभाशाली नृत्यशिल्पी, नृत्यशिक्षक, सर्जनशील कलाकार एवं स्वरूप नियोजक गुरु बिपिन सिंह विद्वान अध्येता हैं। मणिपुरी नृत्य के विशुद्ध रूप को कायम रखकर उसका प्रचार-प्रसार करना सांस्कृतिक पुनरुज्जीवन की दिशा में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। अध्ययन एवं अनुसंधान के बल पर ही वे प्राचीन और वर्तमान में कड़ी प्रस्थापित कर सके हैं। उनके द्वारा निर्धारित सार्वदेशिक सिद्धान्तों से मणिपुरी नृत्य को गति मिली है और इस चैतन्यमय कला की जटिलताओं को समझने में सहायता मिली है। मणिपुर के निकटवर्ती जिले कछार में सन् १९१८ में जन्मे गुरु बिपिन सिंह ने बचपन से ही मणिपुर, कछार, सिल्हट एवं त्रिपुरा में रहने वाले विभिन्न गुरुओं से मणिपुरी नृत्य का गहन अध्ययन किया अतः उनमें विभिन्न अङ्गों का अच्छा समन्वय हुआ। इसके साथ ही उन्होंने संगीत-नृत्य सम्बन्धी शास्त्रों और साहित्य का सतत

अध्ययन किया। उन्होंने वैष्णव-संगीतशास्त्र, पदावलियों और साहित्य का संग्रह किया। ३० वर्षों तक परम्परागत नृत्य, संगीत और शास्त्र के अध्ययन के बाद मणिपुरी नृत्य का प्राचीन नृत्य के साथ सम्बन्ध स्थापित किया। शास्त्रीय मणिपुरी शैली को अक्षुण्ण रूप में मंच पर लाने का उन्हें श्रेय प्राप्त है। उनके कई शिष्य आज नामी कलाकार एवं शिक्षक हैं। उनके कार्य के सम्मान में मणिपुर के महाराजा ने १९६१ में उन्हें 'हंजाबा' की उपाधि दी। १९६५ में उन्हें राष्ट्रीय संगीत नाटक अकादमी के पुरस्कार से सम्मानित किया।

१५ वीं और १८ वीं शताब्दी के भक्तियुग में बंगाल के कई वैष्णव विद्वानों ने वैष्णव धर्म, सगीत-नृत्य पर कई ग्रन्थ लिखे। मणिपुर में १७६४ में महाराजा भाग्यचन्द्र के शासनकाल में वैष्णव धर्म राज्यधर्म घोषित किया गया और उस समय से गोविन्दलीलामृतम्, कृष्णभावनामृतम्, गीतचन्द्रोदय, संगीतसारसंग्रह, पदकल्पतरु, आदि ग्रन्थों का अनुसरण गुरुओं द्वारा किया जाता है। गुरु बिपिन सिंह ने इनका अध्ययन एवं संग्रह किया। उन्होंने अनुभव किया कि इनका सम्पादन एवं हिन्दी अनुवाद किया जाय। उन्होंने नरहरि चक्रवर्ती के 'रागरत्नाकर', 'गीतचन्द्रोदय' एवं 'भक्तिरत्नाकर' (पञ्चमतरङ्ग) का चयन किया, जो मणिपुरी नृत्य के लिए प्रेरणास्रोत हैं। गुरु बिपिन सिंह ने इनके सम्पादन में कृष्णरस संगीत-संग्रह, नारद पञ्चम-सार-संहिता, संगीतदामोदर, संगीतसार-संग्रह आदि ग्रन्थों की सहायता ली। इसमें पं० गजानन रानडे शास्त्री का पूर्ण सहयोग रहा। तालशास्त्र का गहन अध्ययन होने के कारण गुरु बिपिन सिंह तालार्णव में वर्णित ताल पद्धति का सही विवेचन कर सके हैं।

पं० गजानन रानडे शास्त्री—प्रतिभाशाली विद्वान् पं० रानडे शास्त्री ने बाल्यकाल से ही संस्कृत का अध्ययन अपने पूज्य पिता श्री गोपाल रानडे शास्त्री से किया। बाद में वाराणसी में गहन अध्ययन किया तथा 'तर्कतीर्थ', 'न्यायतीर्थ', 'व्याकरणाचार्य' एवं 'वेदान्ताचार्य' की उपाधियाँ प्राप्त की। संस्कृत व्याकरण पर उनका अच्छा अधिकार है एवं संस्कृत साहित्य व न्यायशास्त्र का भी पाण्डित्यपूर्ण ज्ञान प्राप्त है। उन्होंने कई वर्षों तक गुरु बिपिन सिंह एवं झवेरी बहनों के सम्पर्क में आकर संगीत-नृत्य शास्त्रों का सुन्दर अनुवाद किया है, इनमें श्रीकृष्ण रससंगीतसंग्रह, गोविन्द-संगीत-लीला-विलास, संगीतसारसंग्रह, संगीतदामोदर, गोविन्दलीलामृतम्, कृष्णभावनामृतम्, आनन्दवृन्दावनचम्पू आदि शामिल हैं। उन्होंने पुराणों में नर्तन सम्बन्धी अंश का भी हिन्दी अनुवाद किया है।

श्री मदनलाल व्यास—जोधपुर (राजस्थान) के उच्च ब्राह्मण कुल में जन्मे श्रीमदनलाल व्यास ने राजस्थान विश्वविद्यालय से बी० ए०, हिन्दी साहित्य सम्मेलन से 'साहित्यरत्न' एवं विश्वभारती से 'साहित्यतीर्थ' (बंगला) की उपाधियाँ प्राप्त की। किन्नर स्कूल में सितार शिक्षा एवं मास्टर नवरंग से कंठ्य संगीत की शिक्षा ली। नवभारत टाइम्स के उप सम्पादक एवं संगीत समीक्षक श्री व्यास, श्री बिमलाकान्त राय चौधरी का 'भारतीय संगीतकोश' एवं 'रागव्याकरण' एवं स्वामी प्रज्ञानानन्द लिखित 'भारतीय संगीत का इतिहास' एवं 'राग ओ रूप' का हिन्दी अनुवाद कर चुके हैं।

'वैष्णव-संगीतशास्त्र' ग्रन्थ में 'रागरत्नाकर'-'गीतचन्द्रोदय-तालार्णव' एवं 'भक्ति-रत्नाकर' का 'संगीतांश' सन्निविष्ट है। वैष्णव संगीतमर्मज्ञ नरहरि चक्रवर्ती (घनश्यामदास) का संगीत जगत को यह अनुपम अवदान है। गायन-वादन-नृत्य के विविध अङ्गों के अनुशीलन-परिशीलन में यह ग्रन्थ ज्ञान-मन्दिर का नवद्वार उद्घाटित करेगा, इसमें सन्देह नहीं।

इसकी प्रस्तावना-लेखन में मैंने श्रद्धेय स्वामी प्रज्ञानानन्द के लेखन की सहायता ली है, अतः मैं उनकी ऋणी हूँ। इसके सुन्दर मुद्रण एवं प्रकाशन के लिए मैं वाराणसी के 'चौखम्भा ओरियन्टालिया' की कृतज्ञ हूँ। प्रूफ-संशोधन में श्रीकपिलदेव गिरि ने श्लाघनीय सहायता की है अतः उन्हें हार्दिक धन्यवाद देती हूँ।

विजयादशमी, संवत् २०३९
दिनांक २७ अक्टूबर, १९८२
कलकत्ता

दर्शना झवेरी

विषय-सूची

रागरत्नाकर

गीतचन्द्रोदयः

गीतचन्द्रोदय (तालार्णवः) अष्टम परिच्छेद

श्री श्रीभक्तिरत्नाकरः

वैष्णव-संगीतशास्त्र

प्रथमप्रकरण

राग-रत्नाकर

श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

नत्वा कृष्णपदद्वन्द्वं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ।
गायकानां प्रमोदाय रागरत्नाकरं ब्रुवे ॥ १ ॥

श्रीश्रीराधा और कृष्ण को नमस्कार

सर्व मंगलों के मंगल रूप कृष्ण के चरणद्वय को प्रणाम करके गायकों के आनन्द के लिए मैं राग-रत्नाकर नामक ग्रंथ कहता हूँ ॥ १ ॥

रागस्वरूपमाह—

नारदपञ्चमसारसंहितायाम्—

यैस्तु चेतांसि रज्यन्ते जगत्त्रितयवर्तिनाम् ।
ते रागा इति कथ्यन्ते मुनिभिर्भरतादिभिः ॥ २ ॥
सङ्गीतमारभत् कृष्णो मुरलीनादमोहितम् ।
गोपीभिर्गीतमारब्धमेकैकं कृष्णसन्निधौ ॥ ३ ॥
तेन जातानि रागाणां सहस्राणि तु षोडश ।
ऐषु रागेषु षट्त्रिंशद् रागा जगति विश्रुताः ॥ ४ ॥
सन्ति मेरोश्चतुर्दिक्षु सर्वे तेऽपीति केचन ॥ ५ ॥

राग का स्वरूप कहते हैं—नारदपञ्चमसारसंहिता में है—तीनों लोकों में रहने वालों के मन जिन से अनुरञ्जित होते हैं, उन्हें राग कहा जाता है; ऐसा भरतादि मुनियों ने कहा है। कृष्ण ने मुरली-नाद से मोहित करने वाला संगीत आरम्भ किया और गोपियों ने कृष्ण के सान्निध्य में एक-एक गीत गाना आरम्भ किया। उससे सोलह हजार राग उत्पन्न हुए। इनमें से छत्तीस राग जगत में प्रसिद्ध हैं। कुछ गुणी कहते हैं कि मेरु पर्वत की चारों दिशाओं में वे राग प्रसिद्ध हैं ॥ २–५ ॥

संगीतदामोदरे—

अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, तैलङ्ग, भूलिङ्ग, हार्ङ्ग, सबङ्ग (सुरङ्ग), यूपलङ्ग, खेलाङ्ग, सौवीर, कीर, काश्मीर, लाहीर, सिन्धु, जालन्धर, मग, मगध, निषध, मलय, हीहय, गजान्धय, जालव, मालव, मरु, मुरु, चोल, उत्कल,

कुन्तल, सिंहल, हरिकेल, केरल, कोशल, मल्लिवार, मल्ल, भल्ल, सौविल्ल, मल्लिरात, किञ्जात, गुञ्जरात, गुज्जर, किञ्चुल, कालञ्जर, गौड़, द्राविड़, औड्र, आयुर्वेदी, चेदि, काञ्ची, कुञ्चिका, पाञ्चाल, सुराष्ट्र, महाराष्ट्र, शबर, लोहावर, खषर, रणश, कीकश, शवरूप, कामरूप, हरिगर्भ, विदर्भ, दुर्म्मट, वट, कीकट, दोरङ्गण, टङ्गण, नाट, भोट, कराट, करहाट, कर्णाट, कुन्ति, कावन्ती, कानकाब्ज, कान्यकुब्ज, भोज, कम्बोज, तेजि, तुखार, बिहार, बलहोर, राजगह, विदेह, वाह्लीक, चञ्चरीक, त्रिगर्ता नर्त्तादि देशेषु (रागाः) प्रचरन्तीति ॥

संगीतदामोदर में है—अंग, बङ्ग, कलिङ्ग, तैलङ्ग, भूलिङ्ग, हार्ङ्ग, सबङ्ग, यूपलङ्ग, खेलाङ्ग, सौवीर, कीर, काश्मीर, लाहीर (नाभीर), सिन्धु, जालन्धर, मग, मगध, निषध, मलय, हीहय, गजान्धय, जालव, मालव, मरु, मुरु, चोल, उत्कल, कुन्तल, सिंहल, हरिकेल, केरल, कोशल, मल्लिवार (सलिलवान), मल्ल; भल्ल, सौविल्ल, मल्लिरात (वाट), किन्जात, गुञ्जरात, गुज्जर, किञ्चुल, कालञ्जर, गौड़, द्राविड़, औड़, आयुर्वेदी (आन्तर्वेदी), चेदि, काञ्ची, कुञ्चिका, पाञ्चाल, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, शबर, लोहावर, खषर, रणश, कीकश, शवरूप, कामरूप, हरिगर्भ, विदर्भ, दुर्मट, वट, कीकट, दोरङ्गण, टङ्गण, नाट, (लाट), भोट, कराट, करहाट, कर्णाट, कुन्ति, कावन्ती, कानकाब्ज, कान्यकुब्ज, भोज, कम्बोज, तेजि, तुखार; विहार, बलहोर, (बलिहार), राजगेह, विदेह, वाह्लीक, चञ्चरीक, त्रिगर्त, आनर्त आदि देशों में रागों का प्रचार है ॥

अथप्राशस्त्यमाह--
पञ्चमसारसंहितायाम्--

शिवशक्तिमयो रागः परप्रेमरसार्णवः।
यस्य श्रवणमात्रेण विष्णुराद्रवितोऽभवत् ॥ ६ ॥
ताशब्देनोच्यते गौरी नाशब्देनोच्यते हरः।
तानेति शब्दहुंकारात् प्रख्याप्यन्ते शनैः शनैः ॥ ७ ॥
तत्तत्कालस्वरैर्ज्ञात्वा दम्पत्योर्मेलनं बुधः।
उभयोर्ज्ञानमात्रेण त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥ ८ ॥

अब रागों की प्रशंसा कहते हैं—पञ्चमसारसंहिता में कहा गया है—राग शिव-शक्ति रूप और प्रेमरस के सागर हैं, जिनके श्रवण मात्र से विष्णु भगवान् का मन पिघल गया। 'ता' शब्द से गौरी का और 'ना' शब्द से शिव का बोध होता है। 'तान' शब्द के हुंकार से धीरे-धीरे शिवशक्ति का ही प्रकाश होता है। उन 'तान' स्वरों के ज्ञान से उस काल में दम्पती (शिव-पार्वती) का मिलन होता है, अतः इन दोनों के ज्ञान से त्रैलोक्य को वश में करें ॥ ६–८ ॥

अथ पुंस्त्रीभेदेन रागानाह दामोदरः।
रागाः षडेव तु प्रोक्ता रागिण्यस्त्रिंशदेव हि।
भैरवोऽथ वसन्तश्च रागो मालवकौशिकः॥ ९॥
श्रीरागो मेघरागश्च नटनारायणस्तथा।
एते पुमांसः षड्रागाः क्रमात्तद्रागिणीर्ब्रुवे॥ १०॥
भैरवी कौशिकी चैव भाषा वेलावली तथा।
बङ्गाली चेति रागिण्यो भैरवस्यैव वल्लभाः॥ ११॥
आन्दोलिता च देशाख्या लोला प्रथममञ्जरी।
मल्लारी चेति रागिण्यो वसन्तस्य सदानुगाः॥ १२॥
गौरी(गौड़ी)गुण्डकिरी चैव वराड़ी च क्षमावती।
कर्णाटी चेति रागिण्यः प्रिया मालवकौशिके॥ १३॥
गान्धारी देवगान्धारी मालवश्रीश्च सावरी।
रामकिर्यपि रागिण्यः श्रीरागस्य प्रिया इमाः॥ १४॥
ललिता मालसी गौरी लाटी देवकिरी तथा।
मेघारागस्य रागिण्यो भवन्तीमाः सुवल्लभाः॥ १५॥
तारामणिस्तथाभीरी कामोदी गुज्जरी तथा।
ककुमा चेति रागिण्यो नटनारायणप्रियाः॥ १६॥

दामोदर ने स्त्री-पुरुष भेद से राग इस प्रकार कहे हैं—राग छः हैं और रागिणियाँ तीस हैं। भैरव, वसन्त, मालवकौशिक, श्रीराग, मेघराग, नटनारायण—ये छः पुरुष राग हैं। इनकी रागिणियाँ क्रमशः अब कहते हैं। भैरवी, कौशिकी, भाषा, वेलावली, बंगाली—ये भैरव की प्रियाएँ हैं। आन्दोलिता, देशाख्य, लोला प्रथममञ्जरी मल्लारी-ये वसन्त की प्रियाएँ हैं। गौड़ी, गुण्डकिरी, वराड़ी, क्षमावती, कर्णाटी—ये मालवकौशिक की प्रियाएँ हैं। गान्धारी, देवगान्धारी मालवश्री, सावरी. रामकिरी—ये श्रीराग की प्रियाएँ हैं। ललिता, मालसी गौरी, लाटी, देवकिरी—ये मेघराग की वल्लभा हैं। तारामणि, आभीरी, कामोदी, गुज्जरी, ककुभा—ये नटनारायण की प्रियाएँ हैं॥ ९–१६॥

पञ्चमसारसंहितायाम्—

रागाः षडथ रागिण्यः षट्त्रिंशच्चारुविग्रहाः॥ १७॥

तत्र रागाः—

मालवश्चैव मल्लारः श्रीरागश्च वसन्तकः।
हिन्दोलश्चाथ कर्णाट [1]एते रागाः षडीरिताः॥ १८॥

१. षट् पुंरागाः प्रकीर्तिताः; इति पाठान्तरम्।

पञ्चमसारसंहिता में है—छः राग और छत्तीस रागिणियाँ सुन्दर स्वरूप-वाली हैं। इनमें राग ये हैं—मालव, मल्लार, श्रीराग, वसन्त, हिन्दोल और कर्णाट ॥ १७–१८ ॥

एतेषां स्त्रियः—

धानसी मालसी (मानसी) रामकिरी चैवापि सिन्धुजा।
आशावरी भैरवी च मालवस्य प्रिया इमाः ॥ १९ ॥
वेलाबली च पूरवी कानड़ा माधबी तथा।
कोड़ा केदारिका चैव मह्लारस्य प्रिया इमाः ॥ २० ॥
वेलापारी च गौरी च गान्धारी सुभगा तथा।
कौमारी चैव वैरागी श्रीरागस्य प्रिया इमाः ॥ २१ ॥
(गान्धारी[1] च तथा गौरी सुभगा च कुमारिका।
वेलोयारी च वैरागी श्रीरागस्य प्रिया इमाः ॥)
तोड़ी च पञ्चमी चैव ललिता पथमञ्जरी।
गुर्जरी च विभाषा च वसन्तस्य प्रिया इमाः ॥ २२ ॥
मायूरी दीपिका चैव देशकारी च पाहिड़ा।
वराड़ी मारहाटी च एता हिल्लोलयोषितः ॥ २३ ॥
नाटिका चाथ भूपाली रामकेरी गड़ा तथा।
कामोदी चाथ कल्याणी कर्णाटस्य प्रिया इमाः ॥ २४ ॥

धानसी, मालसी (मानसी), रामकिरी, सिन्धुजा, आशावरी, भैरवी—ये मालव की प्रियाएँ हैं। वेलावली, पूरवी, कानड़ा, माधवी, कोड़ा, केदारिका—ये मह्लार (मल्लार) की स्त्रियाँ हैं। वेलापारी, गौरी, गान्धारी, सुभगा, कौमारी, वैरागी—ये श्रीराग की प्रियाएँ हैं। [पाठान्तर में—गान्धारी, गौरी, सुभगा, कुमारिका, वेलोयारी, वैरागी—ये श्रीराग की प्रियाएँ हैं।] तोड़ी, पञ्चमी, ललिता, पठमञ्जरी, गुर्जरी, विभाषा—ये वसन्त की प्रियाएँ हैं। मायूरी (माधवी), दीपिका, देशकारी, पाहिड़ा, वराड़ी, मारहाटी—ये हिल्लोल (हिन्दोल ?) की स्त्रियाँ हैं। नाटिका, भूपाली, रामकेरी (रागपूरी), गड़ा, कामोदी, कल्याणी—ये कर्णाट की प्रियाएँ हैं ॥ १९–२४ ॥

मम्मटाचार्यकृत सङ्गीतमालायाम्—

कर्णाट-नाट-मह्लारा-देशाख्यौ मालवस्तथा।
वसन्तश्चेति पुंरागः रागज्ञैः षट्प्रकीर्तिताः ॥ २५ ॥

---

१. कोष्ठक के पद्य पाठान्तर हैं। —संपादक.

चान्दनी मालवश्रीश्च सिन्धुर्वेलावली तथा ।
प्रतापनी विभाषाख्या कर्णाटस्यैव नायिकाः ॥ २६ ॥
कामोदी नाटभाषा च नाटिका गुणमञ्जरी ।
शेखरी मुखरी चेति नाटदाराः प्रकीर्तिताः ॥ २७ ॥
मल्लारी ललिता चेति तथा प्राचीनमञ्जरी ।
मधुकरी दुग्धकारी देशी मल्लारवल्लभाः ॥ २८ ॥
गुर्जरी, रामकेरी च गुण्डकेरी सुरेहिका ।
धनासी च वराडी च देशाख्यस्यैव नायिकाः ॥ २९ ॥
सिरीकेदारसंज्ञा च मेघमार्जनिका तथा ।
कन्धूश्चिन्ता च लवणी मालवस्यैव नायिकाः ॥ ३० ॥
भैरवी रङ्गहारी च मेघताना सुपञ्चमी ।
अमरा तोड़िका गौरी वसन्तस्यैव नायिकाः ॥ ३१ ॥

मम्मटाचार्य कृत संगीतमाला में है—कर्णाट, नाट, मल्लार, देशाख्य, मालव, वसन्त—ये छः पुंराग कहे गये हैं। चान्दनी, मालवश्री, सिन्धु, वेलावली, प्रतापनी, विभाषा—ये कर्णाट की रागिणियाँ हैं। कामोदी (काम्बोजी ?) नाटभाषा, नाटिका, गुणमञ्जरी, (गुणक्रिया ?), शेखरी, मुखरी—ये नाट की प्रियाएँ हैं। मल्लारी, ललिता, प्राचीनमञ्जरी (पटमञ्जरी ?), मधुकरी, दुग्धकारी, देशी—ये मल्लार की वल्लभाएँ है। गुर्जरी, रामकेरी, गुण्डकेरी, सुरेहिका, धनासी, वराड़ी—ये देशाख्य की नायिकाएँ हैं। श्री, केदार, मेघमार्जनी, कन्धू, चिन्ता, लवणी—ये मालवराग की स्त्रियाँ हैं। भैरवी, रंगहारी, मेघताना, सुपञ्चमी, आम्रतोड़ी, गौरी—ये बसन्त की नायिकाएँ हैं ॥ २५–३१ ॥

केचित् पुंरागा अष्टावित्याहुः, तदुक्तं सङ्गीतकौमुद्याम्—

भैरवो भूपतिश्चैव श्रीरागः पठमञ्जरी ।
वासन्तिकश्च भूपालः सारङ्गा(सारङ्गो)मालवस्तथा ॥ ३२ ॥
एते सङ्गीतशास्त्रज्ञैः पुमांसश्चाष्टकीर्तिताः ॥ इति ।
श्रीराग इत्यादि गण इति ।
चतुर्विंशति रागिण्यस्तास्तेषां स्त्रिय ईरिताः ॥ ३३ ॥ इति ॥

कुछ गुणी कहते हैं कि पुंराग आठ हैं—संगीतकौमुदी में है—भैरव, भूपति, श्रीराग, पठमञ्जरी, वासन्ती, भूपाल, सारङ्ग और मालव। संगीतशास्त्रज्ञों ने ये आठ पुंराग (पुरुष राग) कहे हैं। इति। श्री राग इत्यादि गण हैं। इति रागिणियाँ उनकी स्त्रियाँ हैं ॥ ३२–३३ ॥ इति ।

यथा दाक्षिणात्यनिबन्धे रागविवेके—

भैरवश्चाथ भूपालः श्रीरागः पठमञ्जरी।
वसन्तो मालवश्चैव बङ्गालो नाटकस्तथा ।। ३४ ।।
एतेऽष्टरागाः कथिता पुंरागा इति सूरिभिः ।। ३५ ।।

दाक्षिणात्य निबन्ध रागविवेक में इस प्रकार है—भैरव, भूपाल, श्रीराग, पठमञ्जरी, वसन्त, मालव, बङ्गाल और नाटक—ये आठ पुरुषराग विद्वानों ने कहे हैं ।। ३४–३५ ।।

रागाणां स्त्रीपुंस्त्वविवेचने फलमाह नारदः—

रागं चेदालपेत् पूर्वं (रागं चैवालपेत् पूर्वं) तत्पत्नीं तदनन्तरम् ।
अन्यपत्नी न गातव्या नृपाज्ञायां न दूषणम् ।। इति ।। ३६ ।।

नारद ने रागों के स्त्री-पुरुष सम्बन्धी विवेचन का फल कहा है—पहले राग गायें तो उसके बाद उसी की पत्नी रूप रागिणी का गान करें। दूसरे राग की पत्नी का गान नहीं करना चाहिए। अगर राजा की आज्ञा से दूसरी रागिणी का गायन किया जाय तो दोष नहीं होता ।। ३६ ।।

अतएवास्यानतिप्रयोजनत्वाद्धरिनायकादिभिर्न लिखितम्। तत्र विरोधस्तु कल्पान्तराभिप्रायेण परिहरणीयः। किञ्च—

देशे देशे भिन्ननाम्नां रागाणां तत्त्वनिर्णयम्।
कोऽपि कर्तुं न शक्नोति निरणायि न तन्मया ।। ३७ ।।

इसका विशेष फल न होने के कारण हरिनायक आदि ने इसे लिखा नहीं है। उसमें विरोध हो तो कल्पान्तर के अभिप्राय से उसका परिहार करें। और भी ऐसा है—देश-देश में भिन्न—भिन्न नाम के राग होने से उसका तत्त्व-निर्णय कोई नहीं कर सकता, इसलिए मैंने भी उसका निर्णय नहीं किया है ।। ३७ ।।

तथापि—

सङ्गीतसारहरिनायकरत्नमालागीतप्रकाशपरिदर्शितवर्त्मनैव ।
सदैव विज्ञैः सह विचार्य तत्रानुभूय देशानुगुण्य-
विधिना हि विविच्यते तत्।
सम्पूर्णाः षाडवाश्चैव औड़वाश्चेति ते त्रिधा ।। ३८ ।।

ते रागाः—

सम्पूर्णास्ते तु ये तत्र जायन्ते सप्तभिः स्वरैः ।। ३९ ।।

फिर भी—संगीतसार, हरिनायक, रत्नमाला और गीतप्रकाश के अनुसार अभिज्ञ लोगों के साथ विचार-विमर्श कर, अनुभव करके देशानुकूल पद्धति से ही मैं

विवेचन करता हूँ। राग तीन प्रकार के हैं—सम्पूर्ण, षाड़व और औड़व। सम्पूर्ण राग वे हैं जो सातों स्वरों के प्रयोग से गाये जाते हैं ॥ ३८–३९ ॥

के ते इत्याह—

श्रीरागनटकर्णाटरेवगुप्तवसन्तकाः।
शुद्धभैरवबङ्गाल[1]सोमरागास्तु पञ्चमाः ॥ ४० ॥
कामोदो मेघरागश्च तथा द्राविडगौड़कः।
वराड़ी गुर्जरी तोड़ी मालवः श्रीश्च सैन्धवी ॥ ४१ ॥
देवक्रीटैरवीमक्री तथा प्रथममञ्जरी।
नट्टा वेलावली गौरीत्याद्याः सम्पूर्णका मताः ॥ ४२ ॥
आदि पदेन अन्येऽपि नाटाद्या गृह्यन्ते।

तदुक्तं सङ्गीतसारे—

नाटघण्टारवौ नट्टनारायणकभूपतिः।
शङ्कराभरणश्चेति पूर्णरागा इमे मताः ॥ ४३ ॥

वे इस प्रकार हैं—श्रीराग, नट, कर्णाट, रेवगुप्त, वसन्त, शुद्ध भैरव, बंगाल, सोमराग, पञ्चम (पाठान्तर-आम्रपञ्चम), कामोद, मेघराग, द्राविड़, गौड़, वराड़ी, गुर्जरी, तोड़ी, मालवश्री, सैन्धवी, देवक्री, रामक्री, प्रथममञ्जरी, नट्टा, वेलावली, गौरी—ये सम्पूर्ण राग हैं। आदि शब्द से और भी नाटादि राग सम्पूर्ण रागों में गिने जाते हैं। यह बात संगीतसार में कही गयी है—नाट, घण्टारव, नट्टनारायण, भूपति, शंकराभरण—ये पूर्ण राग माने गये हैं ॥ ४०–४३ ॥

एतद् गानफलमाह कोहलः—

आयुर्धर्मयशो बुद्धिवृद्धिसौख्यधनानि च।
राज्याभिवृद्धिः सन्तानं पूर्णरागेषु जायते ॥ ४४ ॥ इति।

कोहल ने इनके गायन का फल कहा है—पूर्ण रागों के गायन से आयुष्य, धर्म, कीर्ति, बुद्धि-वृद्धि, सौख्य, धन राज्याभिवृद्धि और सन्तान का लाभ मिलता है ॥ ४४ ॥

एषामुक्तक्रमेण फललक्षणमाह—

श्रीरागः—

जातिन्यासग्रहग्रामांशेषु षड्जालापपञ्चमः।
शृंगारवीरयोर्गेयः श्रीरागो गीतकोविदैः ॥ ४५ ॥

---

१. सोमरागाम्रपञ्चमाः इति पाठान्तरम्।

अस्यार्थः—

षड्जेति षड्जस्वरः । स्वरो नाम श्रुत्यारब्धमनुरणनम्'

तदुक्तं सङ्गीतसारे—

श्रुत्यनन्तरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः ।
स्वतो रञ्जयति श्रोतुश्चित्तं स स्वर उच्यते ॥ ४६ ॥

इन रागों का क्रम से फल और स्वरूप कहते हैं—श्री रागः—जाति, न्यास, ग्रह, ग्राम, अंश षड्ज है और पञ्चम से आलाप है। गीतज्ञगणों को श्रीराग शृंगार, वीर रस में गाना चाहिए। षड्ज स्वर है, स्वर का अर्थ हैं श्रुति से होने वाला अनुरणन। संगीतसार मे इस प्रकार है—श्रुति के बाद जो सरस, अनुरणात्मक ध्वनि होती है और वह स्वयं श्रोताओं के चित्त को अनुरञ्जित करती है, उसे स्वर कहते हैं ॥ ४५–४६ ॥

श्रुतिर्नाम स्वरारम्भकावयवः शब्दविशेषः । तदुक्तम्—

प्रथमश्रवणाच्छब्दः श्रूयते ह्रस्वमात्रकः ।
सा श्रुतिः संपरिज्ञेया स्वरावयवलक्षणा ॥ ४७ ॥ इति ।

श्रुति यानी स्वर को आरम्भ करने वाला अवयव, शब्द-विशेष। यह बात इस प्रकार कही गयी है—प्रथम सुनते समय शब्द केवल ह्लस्व सुनायी देता है, उसे श्रुति कहते हैं। यह स्वर का अवयव स्वरूप है ॥ ४७ ॥

श्रुतिसंख्या चोक्ता—

चतुश्चतुश्चतुश्चैव　　षड्जमध्यमपञ्चमाः ।
द्वे द्वे निषादगान्धारौ　त्रिस्त्रिर्ऋषभधैवताविति ॥
　　　　　　　　　द्वाविंशतिः ॥
श्रुतिभ्यः स्युः स्वराः षड्जर्षभगान्धारमध्यमाः ।
पञ्चमो धैवतश्चाथ निषाद इति सप्त ते ॥ ४८ ॥
तेषां संज्ञाः स-ऋ-ग-म-प-ध-नीत्यपरा मताः ।
ते त्रिधा स्युर्मन्द्रमध्यतारभावसमाश्रिताः ॥ ४९ ॥
त्रीणि स्थानानि तेषां हि हृदि मन्द्रोऽभिधीयते ।
कण्ठे मध्यो मूर्ध्नि तारो द्विगुणस्तूत्तरोत्तरम् ॥ ५० ॥

श्रुति-संख्या इस प्रकार कही गयी है—षड्ज, मध्यम और पञ्चम में चार-चार, निषाद एवं गान्धार में दो-दो, तथा ऋषभ एवं धैवत में तीन-तीन श्रुतियाँ हैं। इस प्रकार कुछ बाईस (२२) श्रुतियाँ हैं। श्रुति से स्वर उत्पन्न होते हैं, वे (स्वर) सात हैं—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद। इनके अन्य नाम (संक्षेप में) हैं—स रि ग म प ध नि। ये तीन प्रकार के हैं,

यानी स्थान तीन हैं यथा मन्द्र, मध्य एवं तार। उनके तीन (उद्गम) स्थल इस प्रकार हैं—मन्द्र हृदय से, मध्य कण्ठ से और तार मस्तक से निकलते हैं। एक से दूसरा उत्तरोत्तर द्विगुण होता है ॥ ४८–५० ॥

तत्साम्यध्वनिकथने तद्रूपमाह—

मयूरः षड्जमाख्याति ऋषभं वक्ति चातकः ।
छागो गान्धारमाचष्टे क्रौञ्चो वदति मध्यमम् ॥ ५१ ॥
कोकिलः पञ्चमं ब्रूते भेको वदति धैवतम् ।
निषादं भाषते हस्तीत्येतद् ब्रह्मादि सम्मतम् ॥ ५२ ॥

उनके समान ध्वनि का निर्देश करके स्वरूप बताते हैं—मयूर का स्वर षड्ज के, चातक पक्षी का स्वर ऋषभ के, बकरे का स्वर गान्धार के, कौंच का स्वर मध्यम के, कोकिल का स्वर पञ्चम के, मेंढ़क का स्वर धैवत के और हस्ती का स्वर निषाद के समान होता है। यह ब्रह्मादि से सर्वसम्मत है ॥ ५१–५२ ॥

ग्रामेति—ग्रामलक्षणं चोक्तम्—

यथा कुटुम्बिनः सर्वेऽप्येकीभूता भवन्ति हि ।
तथा स्वराणां सन्दोहो ग्राम इत्यभिधीयते ॥ ५३ ॥
षड्जग्रामो भवेदाद्यो मध्यमग्राम एव च ।
गन्धारग्राम इत्येतद् ग्रामत्रयमुदाहृतम् ॥ ५४ ॥
नन्दावर्तोऽथ जीमूतः सुभद्रा ग्रामकास्त्रयः ।
षड्जमध्यमगान्धारास्त्रयाणां जन्महेतवः ॥ ५५ ॥

ग्राम—ग्राम का लक्षण कहते हैं—जिस प्रकार कुटुम्ब के सभी सदस्य एकत्र होने पर वह कुटुम्ब कहलाता है, उसी प्रकार स्वरों के समूह को ग्राम कहा जाता है। ग्राम तीन प्रकार के हैं—पहला ग्राम है षड्ज ग्राम, दूसरा मध्यम ग्राम और तीसरा गान्धार ग्राम। नन्दावर्त, जीमूत और सुभद्रा ये तीन नाम हैं, जो क्रमशः षड्ज, मध्यम और गान्धार से उत्पन्न होते हैं ॥ ५३–५५ ॥

तत्र मूर्छनीयलक्षणं चोक्तम्—

क्रमात् स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम् ।
सा मूर्च्छेत्युच्यते ग्रामास्त्रयस्ते सप्त सप्त च ॥ ५६ ॥ इति ।

षड्जमध्यमगान्धाराः स्वरसंघातभेदाः। ग्रामविशेषास्त्रयस्तेषां स्वरारोहावरोहक्रमेण मूर्च्छना ग्रामत्रयेऽपि प्रत्येकं सप्तसप्तेत्येकविंशति मूर्च्छना इति ।

अब मूर्च्छना के लक्षण कहते हैं—सात स्वरों का क्रमशः आरोहण और अवरोहण मूर्च्छना है। तीन ग्रामों में सात-सात मूर्च्छनाएँ हैं ॥ ५६ ॥

षड्ज, मध्यम एवं गान्धार ये स्वर-समूह के प्रकार हैं यानी ग्राम हैं। ग्राम विशेष में स्वरों के आरोहण अवरोहण से मूर्च्छना होती है। इस प्रकार प्रत्येक ग्राम में सात-सात मूर्च्छनाएँ होने से इक्कीस (२१) मूर्च्छनाएँ होती हैं।

ग्रहेति—

ग्रहांशन्यासेति त्रयः, तल्लक्षणं चोक्तम्।

तत्र ग्रहस्वरः—

स ग्रहस्वर इत्युक्तो यो गीतादौ समर्पितः ॥ ५७ ॥

अथ अंशस्वरः—

बहुलत्वं प्रयोगेषु स अंशस्वर उच्यते ॥ ५८ ॥

अथन्यासस्वरः—

न्यासस्वरस्तु स प्रोक्तो यो गीतादि समाप्तिकृत् ॥ ५९ ॥ इति।

ग्रह इति (ग्रह शब्द श्लोक नं ४५ में है)—ग्रह स्वर, अंश स्वर और न्यास स्वर तीन प्रकार हैं। उनके लक्षण कहते हैं—ग्रह स्वर-जिस स्वर से गीत आरम्भ होता है वह ग्रह स्वर है। अंश स्वर-जिस स्वर का गीत में बाहुल्य है अथवा अधिक प्रयोग है, वह अंश स्वर है। न्यास स्वर–जिस स्वर पर गीत की समाप्ति होती है, वह न्यास स्वर है ॥ ५७–५९ ॥

जातिलक्षणं चोक्तम्—

यस्या (यः स्याद्) रागयोनिस्तु जातिरिह सा रागस्य
मातापि सा शुद्धाख्या विकृता द्वयोश्च
मीलनात् संकीर्णकास्त्रिधेति ॥ ६० ॥

जाति लक्षण कहते हैं—जिस स्वर से राग का आरम्भ होता है अथवा जो स्वर राग के आरम्भ में प्रयुक्त होता है, जिससे राग की उत्पत्ति होती है, वह उस राग की माता है। जातियाँ तीन प्रकार की हैं—शुद्ध, विकृत और शुद्ध-विकृत के मिलन से निर्मित संकीर्ण ॥ ६० ॥

शृङ्गार इति—

शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतशान्ताश्च नवनाट्ये रसाः स्मृताः ॥ ६१ ॥

शृंगार इति—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त–नाट्य में ये नौ (९) रस हैं ॥ ६१ ॥

अथ दामोदर-कलाङ्कुर-नारदसंहिता-चन्द्रिका, रत्नमालादिषु निर्णीतामूर्त्तयो यथास्थानमुत्कीर्त्यन्ते नारदसंहितायाम्—

लीलाविहारेण वनान्तरेण, चिन्वन् प्रसूनानि वधूसहायः।
विलासिवेषोऽसितदिव्यमूर्तिः श्रीराग एषः प्रथितः पृथिव्याम् ॥ ६२ ॥

सर्वेषां गानकालः पश्चात् कथयिष्यते—

अथनट्टः—

श्रीरागवत् (तथा) नटः प्रोक्तः किन्तु नैषोऽल्पपञ्चमः ।
ध-रितारो नि-मन्द्रश्च गमकैरुत्कटैर्युतः ॥ ६३ ॥

श्रीरागवदिति—श्रीरागो यथा यो जात्यादिषु षड्जस्तथेत्यर्थः विशेषस्तु—

धैवतऋषभयोस्तारो निषादे मन्द्रः ।
एवमेव वक्ष्यमाणरागेषु बोद्धव्यम् ।

गमक इति—

स्वरस्य कम्पो गमकः श्रोतुश्चित्तसुखावहः ॥ ६४ ॥ इति ।

अब दामोदर, कलांकुर, नारदसंहिता, चन्द्रिका, रत्नमाला, इत्यादि में निर्णीत मूर्तियों का यथावत् वर्णन करते हैं। नारदसंहिता में है—अपनी वधू के साथ लीला से विहार करता हुआ, वन में फूल चुनता हुआ, विलासपूर्ण वेषयुक्त कृष्णवर्ण, दिव्यमूर्ति श्रीराग जगत प्रसिद्ध है। सब रागों का गायन-काल बाद में कहा जायगा। अब नट—नट राग श्रीराग की तरह ही है, लेकिन इसमें पञ्चम अल्प नहीं होता। तार सप्तक में ध एवं रि और मन्द्र सप्तक में नि का जोरदार गमक के साथ प्रयोग है। श्रीराग के समान—श्रीराग की तरह जाति, न्यास, ग्रह आदि षड्ज है। विशेष बात यह है—धैवत और ऋषभतार सप्तक में, निषाद मन्द्र सप्तक में इसी प्रकार आगे कहे जाने वाले रागों में जानना। गमक—स्वर का कम्प गमक है। सुनने वालों के लिए वह सुखप्रद है ॥ ६२–६४ ॥

मूर्त्तिस्तु निबन्धान्तरे—

अङ्गेषु (अङ्केषु) धृत्वा ऋजुतां नयनबालां (?) शुकद्युतिः ।
आसनस्थो युवा चारुवेषो नट्टश बाहुजः ॥ ६५ ॥

अथकर्णाटः—

कर्णाटस्तद्वदाख्यातो निन्यासग्रहांशकः ॥ ६६ ॥

मूर्त्तिस्तु—

कृपाणपाणिर्गजदन्तखण्डमेकं वहन् दक्षिणकर्णपूरम् ।
संस्तूयमानः सुरचारणौघैः कर्णाटरागः शिखिकण्ठनीलः ॥ ६७ ॥

नारदसंहितायां त्वन्यथा दृश्यते—

कृपाणपाणिस्तुरगाधिरूढोमयूरकण्ठोपमकण्ठकान्तिः ।
स्फुरत् स्मितोष्ठाधरकः प्रयाति कर्णाटरागो हरिणान् विहन्तुम् ॥ ६८ ॥

अन्य निबन्ध में मूर्ति का वर्णन इस प्रकार है—अंगों में सरलता है, नयनों एवं बालों में किरणों की तरह कान्ति है, सुन्दर वेष वाला है; ऐसा तरुण क्षत्रिय नट्ट

राग आसन पर आसीन है। अब कर्णाट—कर्णाट भी उसी तरह है और न्यास, ग्रह एवं अंश स्वर नि है। मूर्ति—हाथ में खड्ग, गजदन्त का एक खण्ड दक्षिण कर्ण में कर्णपूर की तरह धारण करने वाला, मयूर की तरह नीलकण्ठ, देवचारण आदि के समूह जिसकी स्तुति करते हैं, ऐसा कर्णाटराग है। नारदसंहिता में भिन्न प्रकार से वर्णन है—खड्गहस्त, अश्वारूढ़, मयूर की तरह नील कण्ठ है, जिसके अधरोष्ठ पर किञ्चित् हास्य चमक रहा है, ऐसा कर्णाट राग हरिणों को मारने के लिए जा रहा है ॥ ६५–६८ ॥

अथरेवगुप्तः—

रेवगुप्तोऽपि ग्रहांशो मान्तोमर्षभसोद्भवः ॥ ६६ ॥

मूर्त्तिस्तु निबन्धान्तरे—

अङ्के निषण्णां सुरतातिखिन्नाम् आश्वासयन् स्वाञ्चलवीजनेन ।
सीमन्तिनीं श्वासचलत्कुचान्ताम् । सुवर्णकान्तिः किल रेवगुप्तः ॥ ७० ॥

रेवगुप्त—ग्रह, अंश एवं न्यास मध्यम है और मध्यम, ऋषभ और षड्ज से इसकी उत्पत्ति है। अन्य निबन्ध में मूर्त्ति इस प्रकार हैं—अङ्क पर बैठी हुई, सुरत क्रीड़ा से क्लान्त, सुन्दर केशकलापवाली, श्वासप्रश्वास से जिसके स्तनाग्र हिल रहे हैं, ऐसी प्रियतमा को अपने वस्त्र-पल्लव से वायु प्रदान द्वारा प्रसन्न करने वाला, सुवर्ण की तरह अंग-कान्ति वाला राग रेवगुप्त है ॥ ६९–७० ॥

अथवसन्तः—

षड्जमध्यमिकाज्जातः षड्जन्यासग्रहांशकः ।
गेयो वसन्तरागोऽयं वसन्तसमये बुधैः ॥ ७१ ॥

मूर्त्तिस्तु—

शिखण्डिबर्होच्चयबद्धचूडः पुष्णन् पिकं चूतनवाङ्कुरेण ।
भ्रमन् मुदा वाममनोज्ञमूर्तिः मत्तो मतङ्गः स वसन्तरागः ॥ ७२ ॥

नारदसंहितायां तु—

चूताङ्कुरेणैव कृतावतंसो विघूर्णमानारुणनेत्रपद्मः ।
पीताम्बरः काञ्चनचारुदेहः वसन्तरागो युवतिप्रियश्च ॥ ७३ ॥

अथ वसन्त—षड्ज और मध्यम से वसन्त का उद्भव है। इसका ग्रह, अंश एवं न्यास स्वर षड्ज है। वसन्त राग वसन्त ऋतु में गेय है। मूर्ति इस प्रकार है—जिसके केशकलाप में मयूरपिच्छ बंधे हैं, आम्र के नवपल्लवों से कोकिलों को आनन्दित करता हुआ, सुन्दर मनोहर रूप वाला, मदोन्मत्त हाथी की तरह आनन्द से घूमने वाला वसन्त राग है। नारदसंहिता में इस प्रकार कहा गया है:—

जिसने आम्रपल्लव का भूषण बनाया है, जिसके आरक्त नेत्रकमल इधर-उधर घूम रहे हैं, जिसने पीला वस्त्र पहना हुआ है, सुवर्ण की तरह सुन्दर कान्ति वाला है और जिसे युवती अति प्रिय है, ऐसा वसन्त राग है ॥ ७१–७३ ॥

अथशुद्धभैरवः—

धैवतांशग्रहन्यासयुक्तः स्यात् शुद्धभैरवः ।
सकम्पमन्द्रगान्धारो गेयो मध्याह्नतः परम् ॥ ७४ ॥

मूर्त्तिस्तु निबन्धान्तरे—

स चन्द्रहासं फलकं दधानो, निबद्धकक्षो दृढबद्धचूडः ।
चारीं वितन्वन् बहुधा पदातिः, प्रचण्डरूपः किल भैरवोऽयम् ॥ ७५ ॥

अन्यस्तु औडवे वक्ष्यते ।

शुद्ध भैरव—अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर धैवत युक्त राग शुद्ध भैरव है। इसमें कम्प युक्त मन्द्र गान्धार है और यह मध्याह्न के बाद गाया जाता है। अन्य निबन्ध में मूर्ति इस प्रकार है—हाथ में खड्ग है, कमर में ढाल कसी हुई है, केशकलाप दृढ़ बन्धा हुआ है, प्रायः पदचारी है और प्रचण्ड रूप वाला भैरव है ॥ ७४–७५ ॥ भैरव का अन्य रूप औडव कहा जायगा।

अथबङ्गालः—

बङ्गालः कैशिकीजातः षड्जन्यासग्रहांशकः ।
सकम्पमन्द्रगान्धारो गेयः करुणहास्ययोः ॥ ७६ ॥

मूर्तिस्तु—

मनोज्ञमौञ्जीगुण गुम्फिताङ्गः स्रजं दधानो धरणीरुहस्यः ।
चण्डः कुमारः कमनीयमूर्त्तिः बङ्गालरागः शुचिसामगानः ॥ ७७ ॥

बङ्गाल राग—यह राग कैशिकी से उत्पन्न है, इसका ग्रह, अंश एवं न्यास स्वर षड्ज है। कम्पयुक्त मन्द्र गान्धार है, करुण-हास्य रस में गेय है। बंगाल की मूर्ति इस प्रकार है—सुन्दर मौञ्जी गुण वाला, फूलों की माला धारण करने वाला, क्रोधी, कुमार, सुन्दर देहवाला और पवित्र सामगान करने वाला बंगाल राग है ॥ ७६–७७ ॥

अथसोमरागः—

जातिन्यासग्रहांशेषु षड्जो वीरे धनागमे ।
नितारपरिबाहुल्यः सोमरागोऽत्र गीयते ॥ ७८ ॥

मूर्तिस्तु चन्द्रिकायाम्—

निश्यङ्गनां वक्षसि शाययित्वा कलङ्कदम्भात् सुरतश्रमार्ताम् ।
स्खलत्करः सालसलोचन-श्रीः कामी सुधापाण्डुर एष सोमः ॥ ७९ ॥

सोमराग—जाति, न्यास, ग्रह एवं अंश षड्ज (षड्ज ग्राम में षाड्जी जाति) है; तार नि का बहुल प्रयोग है; वीररस और वर्षा ऋतु में गेय सोमराग है। चन्द्रिका में मूर्ति इस प्रकार है—कलंक के मिष से, (रूप में) स्त्री को वक्ष-स्थल पर सुलाकर सुरतश्रम से क्लान्त स्त्री पर हाथ फेर रहा है, जिसकी सुन्दर आँखें आलस्य भरी हुई है, ऐसा कामी और चूने की तरह सफेद वर्ण का सोमराग है ॥ ७८–७९ ॥

अथाम्रपञ्चमः—

मान्द्र(आन्द्र)जातिसमुत्पन्नो मध्यमग्रामगोचरः ।
गान्धारांशग्रहन्यासो रागः स्यादाम्रपञ्चमः ॥ ८० ॥

मान्द्र(आन्द्र)जातिस्तूक्तैव—

अयमेवामरपञ्चमोऽप्युच्यते-पञ्चमोप्ययं प्रसिद्धः ॥

मूर्त्तिस्तु तत्रैव—

युवातसीसूनसमानकान्तिः श्रीखण्डपङ्कार्द्रसमस्तदेहः ।
वीणाप्रवीणोऽमरपञ्चमोऽयं गीतेन मुग्धीकृतदेवराजः ॥ ८१ ॥

आम्रपञ्चम—मन्द्र (आन्ध्री) जाति से उत्पन्न है और इसमें मध्यम ग्राम की मूर्च्छना है। अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर गान्धार है। (मन्द्र व मध्य में ही संचार है।) मन्द्र (आन्ध्री) जाति में कहा गया है कि इस राग को अमरपञ्चम भी कहते हैं और पञ्चम नाम से भी यह प्रसिद्ध है। आम्रपञ्चम की मूर्ति इस प्रकार है—जवस (अलसी) के फूल की तरह वर्ण वाला, सर्वांग देह चन्दन से लिप्त, वीणावादन में प्रवीण, गीत से देवराज इन्द्र को मुग्ध करने वाला अमरपञ्चम (आम्रपञ्चम) राग है ॥ ८०–८१ ॥

अथकामोदः—

कामोदः करुणे हासे नितारो बहुकम्पनः ।
षड्जो जातिग्रहांशेषु यामार्धन्यासमन्तगः ॥ ८२ ॥

यामात् प्रहरात् भृङ्ग-गानकालः ।

मूर्त्तिस्तु—

अक्षमालां करे धृत्वा वसानं स्तारवीं त्वचम् ।
जपन् जह्नुसुतातीरे कामोदः परिकीर्तितः ॥ ८३ ॥

नारदसंहितायाम्—

भर्त्तासमं [1]पाथसि हेमवर्णा पयोविहारेण सरोरुहाणि ।
विचिन्वती सौरभमोदमाना कामोदरागिण्युदिता [2]मुनीन्द्रैः ॥ ८४ ॥

---

१. चाम्भसि सञ्चरन्ती । २. विदग्धैः ।

कामोद—जाति, ग्रह एवं अंश षड्ज है; तार नि का बहुकम्प युक्त प्रयोग है—(तक सञ्चार है) और करुण एवं हास्य रस में गेय है। गायन का समय आधे प्रहर के बाद है। याम अर्थात् प्रहर भृङ्ग-गानकाल। मूर्त्ति—हाथ में अक्ष की माला रखने वाला, पेड़ की छाल पहनने वाला, गंगा के तीर पर जप करने वाला कामोद राग है। नारद संहिता में मूर्त्तितत्त्व—पति के साथ जल में विहार करने वाली, सुवर्ण वर्णा, जलविहार के समय कमल चुनने वाली, सुगन्ध से आनन्दित होने वाली ऐसी कामोद रागिणी है, मुनिवर ऐसा कहते हैं ॥ ८२–८४ ॥

अथ मेघरागः—

वीरे धांशग्रहन्यासः षड्जधैवतकोद्भवः ।
गेयो घनागमे मेघरागोऽयं मन्द्रहीनकः ॥ ८५ ॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे—

पर्यङ्के प्रियया सार्धमासीन उपवीणयन् ।
पीताम्बरः सुभूषाढ्यो मेघरागो घनद्युतिः ॥ ८६ ॥

मेघराग—अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर धैवत है, षड्ज धैवत (षड्ज ग्राम की धैवती जाति) से उत्पन्न है, वीर रस में लीलायित है, मेघों के आगमन पर गेय है और मन्द्र में सञ्चार नहीं है। इतर निबन्ध में मूर्ति—अपनी प्रिया के साथ पर्यंक पर बैठा हुआ, वीणा बजाने वाला, पीतवस्त्र-धारी, आभूषणों से सुशोभित, श्यामवर्ण मेघराग है ॥ ८५–८६ ॥

अथ द्राविडगौडः—

निषादांशग्रहन्यासः षड्जपञ्चमसंकुलः ।
गेयो द्राविडगौडोऽयं वीरशृङ्गारयोर्निशि ॥ ८७ ॥

गौडस्य द्वैविध्यं कोहलीये—तुरुष्कगौडो द्राविडगौडश्चेति । तुरुष्कगौडस्तु औडवे वक्ष्यते ।

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे—

अंसाप्तकर्णः शिशिरांशुधामा कृकाटिकाचुम्बितचाकचूलः ।
स्रग्वी जपन् पाणिधृताक्षदर्भः विप्रो युवा द्राविडगौड एषः ॥ ८८ ॥

द्राविड़गौड़राग—अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर निषाद है, षड्ज-पञ्चम से व्याप्त (बहुलत्व), वीर शृंगार में लीलायित रात्रि में गेय है। कोहलीय में गौड़ दो प्रकार बताये गये हैं—तुरुष्क गौड़ और द्राविड़ गौड़। तुरुष्क गौड़ औड़व रागों में कहा जायगा। निबन्धों में मूर्ति—कन्धे पर कर्ण, चन्द्र किरण की तरह तेज, वस्त्र से जिसका गलदेश अवगुण्ठित है, मालाधारी, ब्राह्मण, तरुण, हाथ में रुद्राक्ष और दर्भ है, ऐसा द्राविड़ गौड़ है ॥ ८७–८८ ॥

अथ वराडी—

प्रहरादूर्ध्वतो गेया भिन्नपञ्चमसम्भवा ।
षड्जन्यासग्रहांशेऽयं वराडी भरतोदिता ॥ ८९ ॥

अस्यास्त्रैविध्यं तु उद्देशस्थान उक्तम्—

रत्नमालायाम्—

शुद्धवराडी द्राविड़वराडी देशीवराडी इति भेदान्
(कौमुद्यां तु सा औडवमध्ये गणिता)
कौमुद्यां तु सा षाडवमध्ये गणिता ॥

मूर्तिस्तु—

विनोदयन्ती दयितं च गौरी
सुकङ्कणा चामरचालनेन ।
कर्णे दधाना सुरपुष्पगुच्छम्
वराङ्गनेयं कथिता वराडी ॥ ९० ॥

नारदसंहितायां त्वन्यथा दृश्यते—

कर्णे दधाना सुरपुष्पयुग्मम् सुवृत्तवक्षोजमनोहराङ्गी ।
स्मेराननना चारुविलोलनेत्रा गौराङ्गयष्टिः कथिता वराडी ॥ ९१ ॥

वराड़ी—दिन के प्रथम प्रहर के बाद गेय, भिन्नपञ्चम से उत्पन्न वराड़ीराग है, जिसका ग्रह, अंश एवं न्यास स्वर षड्ज हैं; ऐसा मुनि भरत ने कहा है। रत्नमाला में उद्देश स्थान में इसके तीन प्रकार कहे गये हैं, यथा—शुद्ध वराड़ी, द्राविड़ वराड़ी, देशी वराड़ी। कौमुदी में इसे (औड़व) षाड़व माना गया है। इसकी मूर्ति—प्रियतम का मनोरञ्जन करने वाली, गौरवर्ण वराड़ी सुन्दर नारी है, चामर संचालन से जिसके कंकण हिल रहे हैं और कल्पवृक्ष का पुष्पगुच्छ जिसके कर्ण पर सुशोभित है। नारदसंहिता में भिन्न वर्णन है—सर्वांग मनोहर, हास्यवदना, सुन्दर चञ्चल नेत्रों वाली वराड़ी रागिनी है, जिसके कानों में कल्पवृक्ष का पुष्पगुच्छ सुशोभित है और जिसकी शरीरयष्टि गौर है ॥ ८९–९१ ॥

अथ गुञ्जरी रागः—

गुञ्जरी सग्रहांशान्ता जाता पञ्चमषाडवात् ।
(गुञ्जरी रीग्रहान्ता च जाता पञ्चमषाडवा) ।
कचिन्माघस्य मासादौ गेया शृङ्गारवर्धिनी ॥ ९२ ॥

षाडवः षड्जस्वरः ।

संगीतसारे तु—

दक्षिणगुञ्जरीसौराष्ट्रगुञ्जरीति भेदद्वयमाह ।

रत्नमालायां तु—

दशधा गुञ्जरी प्रोक्तेत्याद्युक्तम् । तत् प्रपञ्चभिया न लिखितम् ।

मूर्तिस्तु—

श्यामा सुकेशी मलयद्रुमाणाम्
मृदुल्लसत्पल्लवतल्पयाता ।
श्रुतेः स्वराणां दधती विभागम्
तन्त्रीमुखा (सुखा) दक्षिणगुञ्जरीयम् ॥ ६३ ॥

नारदसंहितायां तु—

इति पञ्चसारसंहितायाम्—

कर्णोत्पलालम्बि मधुव्रतानाम्
संश्रृण्वती मञ्जुलकूजितानि ।
कान्तान्तिकं गन्तुमनाः प्रदोषे
सा गुञ्जरी वेषकलाञ्चिताङ्गी ॥ ६४ ॥

गुञ्जरी (गुर्जरी) राग—ग्रह, अंश एवं न्यास स्वर षड्ज है, पञ्चम-षाडव से उत्पन्न, शृंगार रस बढ़ाने वाली, क्वचित् माघ के आरम्भ में गेय गुर्जरी है। यहाँ षाडव का अर्थ षड्ज है। संगीतसार में—इसके दो भेद बताये गये हैं यथा दक्षिण गुञ्जरी और सौराष्ट्र गुञ्जरी। रत्नमाला में गुर्जरी के दस भेद बताये गये हैं, जो विस्तार के भय से यहाँ नहीं कहे गये हैं। मूर्ति—श्यामवर्ण, सुन्दर केशकलाप वाली, मलयस्थ चन्दन वृक्ष के कोमल चमकने वाले पल्लवों की शैया पर आसीन है, श्रुतियों, स्वरों का सुन्दर विभाजन जानने वाली, वीणा की तरह ध्वनि वाली दक्षिण गुञ्जरी है। नारदसंहिता में तो—कान पर धारण किये हुए कमल पर मंडराने वाले भ्रमरों का मञ्जुल कूजन सुनने वाली, रात्रि के आरम्भ में प्रियतम के पास जाने की इच्छा करने वाली, कलात्मक वेष से सुशोभित अंगों वाली गुञ्जरी (गुर्जरी) रागिणी है ॥ ६२–६४ ॥

अथ तोडी—

मध्यमांशग्रहन्यासा तोडिका शुद्धषाडवात् ।
जाता मध्याह्नसमये गेया श्रृङ्गारवीरयोः ॥ ६५ ॥

मूर्तिस्तु—

उन्निद्रपङ्केरुहचारुनेत्रा कुरङ्गसारं कमलाङ्कुरेण ।
सम्भावयन्ती विधिनोपकण्ठे तोडीयमिन्दीवरदामवल्ली ॥६६॥

तोड़ी—शुद्ध षाडव से इसकी उत्पत्ति है और इसका (तोड़ी या तोड़िका का) अंश, ग्रह एवं न्यास मध्यम है। मध्याह्न समय में गेय है तथा शृंगार एवं वीर रस

में लीलायित है। मूर्ति—प्रस्फुटित कमल की तरह सुन्दर नेत्र हैं, बालहरिणों को कोमल पल्लवाङ्कुरों से आदर करने वाली, उनको गले में लगाने वाली, नील कमल माला की तरह सुन्दर तोड़ी रागिनी है॥ ९५–९६॥

अथ मालवश्रीः—

मालवश्रीः शरद्गेया जाता मालवकौशिकात्।
एषा षड्जग्रहन्यासा पार्वतीप्रीतिकारिणी॥ ९७॥
आर्षभीवर्जिता शुद्धजातयः कौशिकी जातिवाच्याः।
प्रमाणमुक्तं जातिविवेचनावसरे॥

मूर्तिस्तु—

[1]लीलारविन्दस्य दलानि बाला विभावयन्ती तनुदेहयष्टिः।
मुहूरवृक्षस्य तले निषण्णा शोणा मृदुर्मालविका प्रदिष्टा॥९८॥

नारदसंहितायाम्—

करावधूताम्बुजयुग्मरम्या इतस्ततश्चारु विलोकयन्ती।
कण्ठे स्फुरन् मौक्तिकचारुहारा सा माधवश्रीः कथिता विचित्रा॥९९॥
मालवश्रीरियमेव मालसीत्युच्यते।

मालवश्री—मालवकौशिक से उत्पन्न शरद् ऋतु में गेय राग है, ग्रह और न्यास स्वर षड्ज है और पार्वती को प्रीतिकर है। आर्षभी को छोड़कर शुद्ध जातियाँ कैशिकी कही जाती हैं। जाति-विवेचन के समय इसका प्रमाण दिया गया है। मूर्ति—कमल दलों से खेलने वाली, कृश शरीर, मुहुर वृक्ष के नीचे बैठी, अरुण वर्ण, कोमलांगी मालविका (मालसिका या मालसी या मालवश्री) है। नारदसंहिता में—हाथों से कमल के साथ खेलने वाली, इधर-उधर सुन्दर दृष्टिपात करने वाली विचित्र मालवश्री है, जिसके गले में मोतियों का सुन्दर हार चमक रहा है। मालवश्री को मालसी भी कहा जाता है॥ ९७–९९॥

अथ सैन्धवी—

सैन्धवी पञ्चमाज्जाता ग्रहांशन्यासपञ्चमा।
मध्याह्नादूर्ध्वतो गेया शृङ्गारे करुणेऽपि च॥ १००॥
सैन्धवी सिन्धुड़ेति प्रसिद्धा।

मूर्तिस्तु पञ्चमसारसंहितायाम्—

सदिन्द्रनीलद्युतिरम्बुजाक्षी
प्रवादयन्ती कपि(वि)लासयन्त्रम्।

---

१. 'नीलारविन्दस्य दलानि बाला' पाठान्तरम्।

रत्नैर्विचित्राभरणा सुकेशी
सा सिन्धुडा कान्तसमीपसंस्था ॥ १०१ ॥

सैन्धवी—यह पञ्चम से उत्पन्न है और इसका ग्रह, अंश एवं न्यास स्वर पञ्चम है; मध्याह्न के बाद गेय है और श्रृंगार एवं करुण रस में गाने योग्य है। सैन्धवी ही सिन्धुड़ा या सिन्धुरा नाम से प्रसिद्ध है। पञ्चमसारसंहिता में मूर्ति—अच्छे इन्द्रनील मणि की भाँति कान्ति है, कमलनेत्रा है, कपिलास यंत्र बजाने वाली है, रत्नखचित नाना भूषण धारण करने वाली है, सुन्दर केशकलाप युक्त है और अपने कान्त के पास बैठी हुई है—ऐसी सैन्धवी (सिन्धुड़ा) है ॥१००–१०१॥

अथ देवकिरी—

षड्जन्यासग्रहांशेऽयं वीरे देवकृतिर्मता ।
असावृतुषु सर्वेषु गातव्या समयेषु च ॥ १०२ ॥
इयमेव शुद्धवसन्तः कृष्णदत्तेषु ।

मूर्तिस्तु—

भ्रमन्ती नन्दने श्यामा पुष्पप्रचयतत्परा ।
ख्याता देवकिरीत्येषा करार्पितसखीकरा ॥ १०३ ॥

देवकिरी—इसका अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर षड्ज है, वीर रस की पोषक है, सब ऋतुओं में सब समय गाने योग्य देवकिरी या देवकृति है। इसी को शुद्ध वसन्त भी कहते हैं। मूर्ति—श्यामवर्ण, नन्दनवन में फूल चुनने के लिए घूमने वाली देवकिरी है, जिसका हाथ उसकी सखी के हाथ में है ॥ १०२–१०३ ॥

अथ रामकिरी—

प्रहरादूर्ध्वतो गेया[1] षड्जन्यासग्रहांशका ।
षड्जर्षभघनारम्भा (ग्रहारम्भा) तज्ज्ञै रामकृतिर्मता ॥१०४॥

मूर्तिस्तु—

स्वर्णप्रभाभास्वरभूषणाढ्या
नीलं[2] निचोलं वपुषा वहन्ती ।
कान्ते पदोपान्तमधिश्रितेऽपि
मानोन्नता रामकिरी प्रदिष्टा ॥ १०५ ॥

रामकिरी—दिन के प्रथम प्रहर के बाद गेय रामकिरी या रामकृति का ग्रह, अंश एवं न्यास स्वर षड्ज है। (पाठान्तर—प्रहर के अन्दर गाने योग्य)। गुणी-

१. 'प्रहराभ्यन्तरे गेया' पाठान्तरम् ।
२. 'सदिन्द्रनीलं वपुषा वहन्ती' पाठान्तरम् ।

जनों के अनुसार रामक्रति में षड्ज और ऋषभ बहुल स्वर है, इन स्वरों से राग का आरम्भ है और वर्षा ऋतु में गाने योग्य है। मूर्ति—शरीर पर नील निचोल (चोली वगैरह वस्त्र) धारण करने वाली (पाठान्तर—अच्छी इन्द्रनील मणि धारण करने वाली) रामक्रति है, जिसकी कान्ति सुवर्णमय है, जो चमकने वाले भूषणों से सुशोभित है, जो प्रियतम के चरणों में नत होकर भी मान का परित्याग न करने वाली है ॥ १०४–१०५ ॥

अथ पठमञ्जरी (प्रथममञ्जरी)—

पञ्चमांशग्रहन्यासा धरितारागमोत्कटा।
शृङ्गारे चोत्सवे गेया प्रातः प्रथममञ्जरी ॥ १०६ ॥

मूर्तिस्तु—

वियोगिनी कान्तवितीर्णपुष्प स्रजं वहन्ती वपुषातिमुग्धा।
आश्वास्यमाना प्रियया च सख्या विधूसराङ्गी पठमञ्जरीयम् ॥१०७॥
पठमञ्जरीयमेव प्रथममञ्जरीत्यप्युच्यते।

पठमञ्जरी (प्रथम मञ्जरी)—अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर पञ्चम है, तार धैवत और तार ऋषभ का प्रयोग है और गान्धार तथा मध्यम का गम्भीर प्रयोग। शृंगार एवं उत्सव-प्रसंग में इस प्रातःगेय राग प्रथममञ्जरी का प्रयोग है। पठमञ्जरी (प्रथममञ्जरी) वियोगिनी है, वह प्रियतम के दिये हुए फूलों की माला धारण करने वाली है, उसकी देह अति सुन्दर है, प्रिय सखी उसे आश्वस्त कर रही है और उसका शरीर धूसर वर्ण का है। पठमञ्जरी को ही प्रथम-मञ्जरी कहा जाता है ॥ १०६–१०७ ॥

अथ नट्टा—

नट्टा नट्टवदाख्याता सकम्पाऽऽन्दोलितस्वरा।
हास्येऽद्भुते च शृङ्गारे गातव्या निशि मङ्गले। १०८ ॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे—

विदेशस्थस्य कान्तस्य वृत्तान्तमतिविह्वला।
नट्टारहित(नट्टावहित)वेशाढ्या पृच्छन्ती काकमादरात् ॥ १०९ ॥

नट्टा—नट्टा नट्ट की तरह ही है और इसमें कम्पयुक्त आन्दोलित स्वर हैं। यह हास्य, अद्भुत और शृंगार रसों में मंगल प्रसंग पर रात्रि के समय गेय है। निबन्धान्तर में मूर्ति—अत्यन्त विह्वल होकर कौए से विदेश में रहने वाले प्रियतम का वृत्तान्त बड़े आदर भाव से पूछने वाली नट्टा है, जो वेशभूषा के बिना भी सुन्दर है ॥ १०८–१०९ ॥

अथ वेलावली—

धैवतांशग्रहन्यासा समन्द्रा च समस्वरा ।
शृङ्गारे करुणे चैव गेया वेलावली बुधैः ॥ ११० ॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे—

सङ्केतदीक्षां दयितस्य दत्वा
वितन्वती भूषणमङ्गयष्टेः ।
मुहुः स्मरन्ती स्मरमिष्टदेवम्
वेलावली नीलसरोजकान्तिः ॥१११॥

नारदसंहितायां तु—

सङ्केतितोत्फुल्ललता निकुञ्जे कृतास्थितिः कान्तसमागमाय ।
वेलावली[1] चम्पकदाममौलिः नाना[2] विचित्राभरणा विरुक्ता ॥११२॥

वेलावली—अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर धैवत है, मन्द्र और समस्वर का प्रयोग है। गुणीजनों का कहना है कि वेलावली शृंगार एवं करुण रस की पोषक है अथवा इन रसों में गेय है। निबन्धान्तर में मूर्ति—इसकी कान्ति नील कमल जैसी है, यह शरीर को आभूषणों से सजाने वाली है, इष्टदेव मदन का सतत चिन्तन करती है और संकेत द्वारा प्रियतम से मिलन का निश्चय करती है। नारदसंहिता में मूर्ति—पुष्पित लताकुञ्ज में प्रियतम के साथ समागम के लिए प्रतीक्षा करने वाली, चम्पक पुष्पों की माला मस्तक पर धारण करने वाली नाना चित्र-विचित्र आभूषणों से सुशोभित वेलावली है ॥ ११० ॥

अथ गौडी (गौरी)—

ग्रहांशन्यासषड्जा स्याद् गौरी मालवकौशिकात् ।
वीरशृङ्गारयोर्गेया सकम्पान्दोलितस्वरा ॥ ११३ ॥

मूर्तिस्तु—

शुचिहरिचन्दनपङ्कै रतिसहितं मन्मथपुरःकृत्वा ।
गौरतनुर्बहुविधिना गौरीपरिपूजयत्येषा ॥ ११४ ॥

गौड़ी (गौरी)—ग्रह, अंश एवं न्यास स्वर षड्ज है और मालवकौशिक से उत्पन्न (भाषाराग) है। वीर एवं शृंगार रस में गेय है। इसके स्वर कम्पयुक्त आन्दोलित हैं। मूर्ति—रति सहित मदन की मूर्ति सामने रखकर पवित्र

---

१. 'वेलावली चम्पकदाममौलिः' पाठान्तरम् ।
२. 'विचित्रवैषाभरणा निरुक्ता' पाठान्तरम् ।

हरिचन्दन के लेप से अनेक विधियों के साथ गौरी-पूजन में रत गौरवर्ण गौरी (गौड़ी) है ॥ ११३–११४ ॥

अथ नाटः—

नाटो निशि शुचौ वीरे षड्जांशो गमकोत्कटः ॥ ११५ ॥

शुचौ = शृङ्गारे ।

मूर्तिस्तु—

तुरङ्गमस्कन्धनिबद्धरागः[1]
स्वर्णप्रभा[2] शोणितशोणगात्रः ।
संग्रामभूमौ विचरन् धृतासिः[3]
नाटोऽयमुक्तः किल काश्यपेन ॥ ११६ ॥

शोणितं = कुङ्कुमम् ।

नाट—अंश स्वर षड्ज है और जोरदार गमक का प्रयोग है । शृंगार और वीर रस में प्रयोज्य है तथा रात्रिगेय है । मूर्ति—कश्यप के अनुसार राग का स्वरूप इस प्रकार है—सुवर्ण कान्ति युक्त, रक्त या कुंकुम की भाँति अवयव वाला वीर राग घोड़े के स्कन्ध पर आरूढ़ है और उसके हाथ में तलवार है तथा युद्धभूमि में विचरण करने वाला है ॥ ११५–११६ ॥

अथ घण्टारवः—

घण्टारवो धैवतजः प्रतापे सर्वदाऽपि च ॥ ११७ ॥

मूर्तिस्तु सङ्गीतरत्नमालायाम्—

प्रसरदिभवरस्य स्कन्धमारुह्य चोद्यत्
कनकरुचिरमध्यं धूनयत् सर्वगात्रम् ।
प्रदलितरिपुसैन्यो भीमघण्टारवेण
स्फुरितकनककान्तिर्भाति घण्टारवोऽयम् ॥ ११८ ॥

घण्टारव—धैवत स्वर से उत्पन्न (अंश तथा ग्रह–धैवत) और पराक्रम एवं सर्वदा भी गेय घण्टारव है । संगीतरत्नमाला में मूर्ति इस प्रकार है—चलते हुए हाथी के स्कन्ध पर चढ़कर घण्टे की भयंकर ध्वनि के साथ शत्रु सैन्य का हनन करने वाला, चमकते सुवर्ण की भाँति कान्ति वाला एवं अपने पूरे शरीर को–सब अवयवों को प्रकम्पित–आन्दोलित करने वाला शोभायुक्त घण्टारव राग है ॥ ११७–११८ ॥

१. बाहुः । २. प्रभः । ३. धृतासि इति पाठः ।

अथ नट्टनारायणः—

धैवतांशग्रहन्यासो नट्टनारायणो दिवा ॥ ११९ ॥

मूर्तिस्तु रत्नमालायाम्—

स्त्रीवेषधारी पुरुषो नवीनः सङ्गीतशास्त्रे भ्रमिमादधानः।
गायन् सतालं सलयं मनोज्ञः स्यान्नट्टनारायणराग एषः ॥ १२० ॥

नट्टनारायण—इसका ग्रह, अंश एवं न्यास स्वर धैवत है और यह दिन में गेय है। रत्नमाला में मूर्ति—यह स्त्री वेषधारी होते हुए भी पुरुष है, तरुण, संगीत-शास्त्र में सर्वदा मग्न, सुन्दर, ताल-लय सहित गाने वाला मनोज्ञ नट्टनारायण राग है ॥ ११९–१२० ॥

अथ भूपतिः—

मध्यमांशग्रहन्यासो भूपतिः करुणे दिवा ॥ १२१ ॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे—

(सिंहासनगतः श्वेतश्चामरद्वयवीजितः[1] ।)
मन्त्रिभिर्वेष्टितः श्यामछत्राढ्योरागभूपतिः ॥ १२२ ॥

भूपति—इसका अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर मध्यम है, यह राजा है, करुण रस में प्रयोज्य है एवं दिन में गेय है। निबन्धान्तर में मूर्ति—यह सिंहासनारूढ़ है, दो श्वेत चामरों से जिसे वायु सेवन कराया जा रहा है, मंत्रियों से घिरे हुए हैं और श्याम वर्ण का छत्र धारण किये हुए हैं—ऐसा राग भूपति है ॥ १२१–१२२ ॥

अथ शङ्कराभरणः—

वीरे निशि निषादांशः शङ्कराभरणः सदा ॥ १२३ ॥

मूर्तिस्तु रत्नमालायाम्—

व्याघ्रचर्मवसनं (शकलं) परिधाय भोगिहारवलयाङ्गदभूषः।
सान्द्रभूतिपरिलिप्तशरीरः शङ्कराभरण इत्युदीरितः ॥ १२४ ॥

इति सम्पूर्णं प्रथमं प्रकरणम् ॥ १ ॥

शंकराभरण—इसका अंश स्वर निषाद है, वीर रस में प्रयोज्य है और रात्रि में गेय है। रत्नमाला में मूर्ति—व्याघ्रचर्म का वस्त्र धारण किये हुए है, सर्पों का हार, कंकण, बाहुभूषण पहनने को है और भस्म के गहरे लेप से शरीर रञ्जित है—ऐसा शंकराभरण राग है ॥ १२३–१२४ ॥

प्रथम प्रकरण सम्पूर्ण ॥ १ ॥

---

१. 'चारुचामरद्वयवीजितः' पाठान्तरम् ।

द्वितीय प्रकरण

अथ षाडवा उच्यते

तत्र च—

षाडवास्तेऽभिधीयन्ते ये रागाः षट्स्वरोत्थिताः ॥ १२५ ॥

के ते इत्याह—

गौडः कर्णाटगौडश्च देशी धन्नासिका तथा ।
कोलाहला च वल्लाली (री) देशाख्याशावरी तथा ॥ १२६ ॥
खम्बावती हर्षपुरी मल्लारी हुञ्चिका तथा ।
इत्याद्याः षाडवा प्रोक्ता हरिनायकसम्मता ॥ १२७ ॥
आदिपदेन अन्येऽपि श्रीकण्ठाद्या गृह्यन्ते ।

अब षाड़वराग कहते हैं। जो राग छः स्वरों से बनते हैं उन्हें षाडव कहते हैं। वे कौन-कौन हैं, यह कहते हैं—गौड़, कर्णाटगौड़, देशी, धन्नासिका, कोलाहल, वल्लाली (वल्लारी), देशाख्य, आशावरी, खम्बावती, हर्षपुरी, मल्लारी, हुञ्चिका इत्यादि राग हरिनायक के मत से षाडव हैं ॥ १२५–१२७ ॥

आदि पद से श्रीकण्ठ आदि लिये जाते हैं।

तदुक्तं सङ्गीतसारे—

श्रीकण्ठश्चैव भोली च ताला[1] सालगगौडकाः ।
शुद्धाभीरी मधुकरी छाया नीलोत्पलापि च ॥ १२८ ॥
इति षाडवगणने ।

संगीतसार में कहा गया है—श्रीकण्ठ, भोली, ताला, सालगगौड़ (तारा, मालवगौड़—ऐसा भी पाठान्तर है), शुद्ध आभीरी, मधुकरी, छाया, नीलोत्पला ऐसी षाड़व गणना है ॥ १२८ ॥

फलमाह कोहलः—

सङ्ग्रामे वीरतारूपलावण्यगुणकीर्तनम् ।
गाने षाडवरागाणां गदितं पूर्वसूरिभिः ॥ १२९ ॥

कोहल ने गाने का फल कहा है—पूर्व विद्वानों ने कहा है कि षाडव राग गाने से युद्ध में वीरता, रूपलावण्य, गुणगौरव का फल मिलता है ॥ १२९ ॥

---

१. 'तारा-मालवगौडकाः' पाठान्तरम् ।

क्रमेण लक्षणमाह—

अथ गौडः—

निपादांशग्रहन्यासो गौड़ः स्यात् पञ्चमोज्झितः ।
वीरशृङ्गारयोर्गेयो दिनान्ते विरलर्षभः ॥ १३० ॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे—

विधाय शम्भुं सुरनिम्नगातटे मुदार्चयन् नीलसरोजसङ्घैः ।
मनोज्ञमूर्तिर्दधदंशुकेशी[1] त्वगासनस्थो[2] द्विज एष गौडः ॥ १३१ ॥

अब क्रम से लक्षण कहते हैं—

गौड़—इसका अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर निषाद है, पञ्चम वर्ज्य है, ऋषभ अल्प है, वीर एवं शृंगार रस में गाने योग्य है और सायंकाल में गेय है । निबन्धान्तर में मूर्ति—गंगा नदी के तट पर शिवमूर्ति बनाकर आनन्दपूर्वक नीलकमलों की पूजा करता हुआ, सुन्दर सुन्दर वस्त्रधारी, व्याघ्रचर्मादि आसन पर विराजमान ब्राह्मण गौड़राग है ॥ १३०–१३१ ॥

अथ कर्णाटगौडः—

निषादांशग्रहन्यासयुक्तः पञ्चमवर्जितः ।
एष कर्णाटगौडस्तु कर्णाटवदुदाहृतः ॥ १३२ ॥

कर्णाटवदिति=कर्णाटोक्तगानकालरसमूर्त्यन्वितः ।

अथ कर्णाटबङ्गालः—

अत्र कर्णाटबङ्गाल इति गीतप्रकाशसङ्गीतसारयोर्दृश्यः ।

तत्स्वरूपं तु—

गान्धारांशग्रहन्यासः षड्जपञ्चमवर्जितः ।
एष कर्णाटबङ्गालः शृङ्गारे टक्कवंशजः ॥ १३३ ।

टक्कलक्षणमाह—

नाटकर्णाटयोर्योगे टक्करागो नपुंसकः ॥ १३४ ॥

मूतिस्तु बङ्गालवत् ।

कर्णाट गौड़—इसका अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर निषाद है और पञ्चम वर्ज्य है । कर्णाट की तरह इसका रस, मूर्ति और गायन काल है । कर्णाट बंगाल—इसका वर्णन

---

१. 'दधदंशुकोऽपि' पाठान्तरम् ।
२. 'दुर्गामनःस्थ' पाठान्तरम् ।

गीतप्रकाश एवं संगीतसार में देखिये। इसका स्वरूप—इसका अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर गान्धार है, षड्ज एवं पञ्चम वर्ज्य है, टक्क वंशोत्पन्न शृंगार रस में गेय कर्णाट बंगाल है। टक्क का लक्षण—नाट एवं कर्णाट के मिश्रण से टक्क राग बनता है। यह नपुंसक है ॥ १३२–१३४ ॥

मूर्ति—बंगाल की तरह है।

अथ देशी—

रेवगुप्तोद्भवा देशी प्रयुक्ता ग-नि-विस्तरा।
नि-न्यासांशग्रहा प्रातर्गेया करुणशान्तयोः ॥ १३५ ॥

मूर्तिस्तु रत्नमालायाम्—

गजपतिगतिवेणी लोचनेन्दीवराङ्गी
प्रथुलतरनितम्बा लम्बिवेणी भुजङ्गी।
तनुतरतनुवल्ली पीतकौसुम्भवासा
इयमुदयति देशी वालिनी चारुहासा ॥ १३६ ॥

देशी—यह रेवगुप्त से उत्पन्न है और इसमें ग नि बहुलस्वर हैं, अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर निषाद है और करुण एवं शान्त रस में गाने योग्य है। रत्नमाला में मूर्ति (मूल स्त्रीलिङ्गी निर्देश है)—यह हाथी की गति वाली, वेणीयुक्त, कमल-लोचना है, इसके नितम्ब अति स्थूल हैं, सर्प की तरह वेणी लम्बायमान है, शरीर-यष्टि कृश है, पीत एवं कौसुम्भी वर्ण के वस्त्र धारण करने वाली, सुन्दर हास्यवाली, बड़े केशकलाप युक्त देशी प्रकाशित होती है ॥ १३५–१३६ ॥

अथ धन्नासी—

षांशधन्नासिका जाता शुद्धकैशिकमध्यमात्।
षड्जग्रहा मध्यमान्ता रि-हीना विजये सदा ॥ १३७ ॥
सर्वकालेषु गेया इत्यर्थः।

मूर्तिस्तु—

दूर्वादलश्यामतनुर्मनोज्ञा कान्तं लिखन्ती फलके विदग्धा।
बाला गलल्लोचनवारिबिन्दु निष्यन्दधौतस्तनहृद्धनासी ॥१३८॥

धन्नासी—अंश स्वर षड्ज (सा) है, शुद्धकैशिकमध्यम से उत्पन्न सन्नासिका (धन्नासी) का ग्रह स्वर षड्ज है और न्यास स्वर मध्यम है, रि (ऋषभ) वर्ज्य है और विजय में गेय है। सर्वकाल में इसका गायन किया जाता है। मूर्ति—दूर्वादल के समान श्यामवर्ण शरीर है, सुन्दर है; फलक पर प्रियतम का चित्र

बनाती हुई बाला के आँखों से गिरने वाले जलबिन्दुओं से स्तन और हृदय धोया जा रहा है, ऐसी धन्नासिका (धन्नासी) है ॥ १३७–१३८ ॥

अथ कोलाहला--

षड्जन्यासग्रहा कोलाहला टक्कुलोद्भवा ।
मध्यमांश प-हीना च कोलाहलगमकोत्कटा ॥ १३९ ॥

मूर्तिस्तु--

उन्मत्तपुंस्कोकिलनादरम्या नादस्वरं गायति कृष्णगाथाः ।
इसी सदा सर्वपुरः प्रवर्ती कोलाहलोऽयं तरुणोऽसिताङ्गः ॥१४०॥
न च पूर्वमस्य स्त्रीलिङ्गत्वमिह पुल्लिङ्गत्वं, केयं सङ्गतिरितिवाच्यम् ।
"दृश्यते नैव कुत्रापि रागाणां लिङ्गनिर्णयः" ॥ १४१ ॥

इति सर्वग्रन्थकारसम्मतम् एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यम् ।

कोलाहला—टक्क कुल से उत्पन्न इस राग का ग्रह एवं न्यास स्वर षड्ज है एवं अंश स्वर मध्यम है, पञ्चम (प) वर्ज्य है, गमकयुक्त यह राग कोलाहल का आभास उत्पन्न करने वाला है। मूर्ति—मदोन्मत्त पुंस्कोकिल की तरह रमणीय स्वर में कृष्ण चरित्र गाता हुआ रसिक राग कोलाहला है, इसकी प्रवृत्ति सबसे आगे है, यह तरुण और गौरवर्ण है। इसमें प्रथम विशेषण स्त्रीलिङ्गी और अन्त में पुंल्लिग, इसमें क्या संगति है? रागों का लिंग-निर्णय निश्चित रूप से कहीं भी नहीं रहता ॥ १३९–१४१ ॥

यह बात सर्वसम्मत है। इसी तरह अन्यत्र भी समझिये।

अथ बल्लाली--

हिन्दोलान्वयसम्पन्ना बल्लाली षड्जग्रहांशका ।
शृङ्गाराख्ये च मन्द्रा च रिहीना न्यासषड्जिका ॥ १४२ ॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे--

सख्या प्रबोध्यमानापि कान्ते रोषं न मुञ्चति ।
परावृतमुखी श्यामा बल्लाली प्रौढनायिका ॥ १४३ ॥

बल्लाली—यह हिन्दोल वंश से उत्पन्न है, इसका ग्रह, अंश एवं न्यास स्वर षड्ज है, ऋषभ (रि) स्वर वर्ज्य है, मन्द्र स्वरों में संचार है एवं शृंगार रस का पोषक हैं। निबन्धान्तर में मूर्ति—सखी के समझाने पर भी प्रियतम के प्रतिरोष का परित्याग न करने वाली एवं मुँह फेर कर बैठी हुई श्यामवर्ण प्रौढ़ा नायिका बल्लाली है ॥ १४२–१४३ ॥

अथ देशाख्या—

गान्धारपञ्चमाज्जाता देशाख्यार्षभवर्जिता ।
गान्धारांशग्रहन्यासा शान्तशृङ्गारयोः प्रगे ॥ १४४ ॥
प्रगे = प्रातर्गेया इत्यर्थः ।

मूर्तिस्तु --

आस्फोटना विस्कृतरोमहर्षो नियुद्धसन्नद्धविशालबाहुः ।
प्रांशुप्रचण्डद्युतिहेमगौरः देशाख्यरागः स हि मल्लराजः ॥ १४५ ॥

देशाख्या—यह राग गान्धार-पञ्चम से उत्पन्न है और इसमें ऋषभ वर्ज्य है; अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर गान्धार है, शान्त और शृंगार रस का पोषक यह राग प्रातः काल में गेय है। मूर्ति—दण्ड ठोककर रोमहर्ष पैदा करने वाला है, इसके विशाल बाहु युद्ध के लिए तैयार है, ऊँचा, महाकान्तिमान और सुवर्ण वर्ण की तरह गौर देशाख्य राग मल्लों में सर्वश्रेष्ठ है ॥ १४४–१४५ ॥

अथ शावरी—

शावरी धैवतान्ता च ग-तारा मन्द्रमध्यमा ।
स-ग्रहांशाल्पषड्जा च प-हीना करुणे मता ॥ १४६ ॥

मूर्तिस्तु कलाङ्कुरनिबन्धे—

श्रीखण्डशैलशिखरे शिखिबर्हवासा
मातङ्गमौक्तिककृतोत्तमहारयष्टिः ।
आकृष्य चन्दनतरोः शबरी (शावरी) भुजङ्गम्
आबन्धती वलयमुज्ज्वलनीलकान्तिः ॥ १४७ ॥

शावरी—इसका न्यास स्वर धैवत है, तार ग और मन्द्र मध्यम में संचार है, ग्रह एवं अंश स्वर स है, षड्ज अल्प है, पञ्चम वर्ज्य है और यह करुण रस में गाने योग्य है। कलांकुरनिबन्ध में मूर्ति—चन्दन (मलय) के पहाड़ शिखर पर स्थित, मयूर पिच्छों के वस्त्र धारण करने वाली, हाथी के गण्डस्थल के मौक्तिक का सुन्दर हार धारण करने वाली, शबरी जाति की, चन्दन के पेड़ से सर्प को खींच कर बलय रूप में धारण करने वाली, उज्ज्वल नील वर्ण की शावरी है ॥ १४६–१४७ ॥

अथ खम्बावती—

धैवतांशग्रहन्यासा सान्दोला म-नि-मण्डिता ।
खम्बावती ग-हीना च शृङ्गारे निशि गीयते ॥ १४८ ॥

मूर्तिस्तु तत्रैव—

वासोवसाना शरदभ्रशुभ्रं विरञ्चिदेवी परिकर्मदक्षा।
कुन्दावदाता चतुराननस्य खम्बावती लब्धसमृद्धसेवा ॥ १४६ ॥
खमाचित्री पाश्चात्यभाषायाम्।

खम्बावती—इसका अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर धैवत है, यह आन्दोलनयुक्त है, म-नि स्वरों से सुशोभित है, गान्धार स्वर वर्ज्य है, शृंगार रस की पोषक है और रात्रि में गेय है। मूर्ति—शरद् ऋतु के मेघ की तरह सफेद, ब्रह्मदेव की स्त्री सावित्री का साज-शृंगार करने वाली, कुन्द पुष्प की तरह सफेद एवं ब्रह्मदेव की खूब सेवा करने वाली खम्बावती है। पश्चिम में इसका नाम खमाचित्री भी है ॥१४८–१४६॥

अथ हर्षपुरी—

जाता हर्षपुरी षड्जमन्द्रा मालवकौशिकात्।
षड्जाद्यन्ता तारमध्या ध-हीना विजये मता ॥ १५० ॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे—

निपत्य तल्पे सुदृढ़ानुरागात् कान्तं रतिश्रान्तमवेक्ष्य मुग्धा।
प्रौढाङ्गना पौरुषमाचरन्ती मनोहरा हर्षपुरी प्रदिष्टा ॥१५१॥

हर्षपुरी—यह मालवकौशिक से उत्पन्न (भाषाराग) है, मन्द्र स्थान में षड्ज का प्रयोग है; इसका ग्रह, अंश और न्यास षड्ज है, तार स्थान में मध्यम का प्रयोग है, धैवत वर्ज्य है और हर्ष-विजय में इसका प्रयोग है। निबन्धान्तर में मूर्ति—अतिशय गाढ़ प्रेम से शैया पर पड़ी हुई सुन्दर प्रौढाङ्गना हर्षपुरी अपने प्रियतम (कान्त) को रतिक्रीड़ा से क्लान्त देखकर उन्हें पुरुषायित करती है ॥ १५०–१५१ ॥

अथ मल्लारी—

पञ्चमांशग्रहन्यासा प-हीना मन्द्रमध्यमा।
शृङ्गारे दुर्दिने गेया मल्लारी परिकीर्तिता ॥ १५२ ॥

अयमेव माधवादिरुच्यते इति गीतगोविन्दटीकाकारः ॥ १५३ ॥

मूर्तिस्तु—

विस्पष्टकृष्णाजिनमध्यवर्ती
कान्तापरीतः स्थविरोऽतिगौरः।
कुर्वन्[1] कथां तुम्बुरुनारदाभ्याम्
श्रीमाधवादिः कथितो मुनीन्द्रैः ॥ १५४ ॥

---

१. 'गृह्णन् करे केतकिकुन्तयष्टिम्' इति ग्रन्थान्तरे पाठः।

मल्लारी—इसका अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर पञ्चम है ('प-हीना' पाठ असंगत है), मन्द्र स्थान में मध्यम का प्रयोग है। यह शृङ्गार रस का पोषक है और मेघाच्छन्न दिनों में गेय है। गीतगोविन्द-टीकाकार इसी को माधवादि कहते हैं। मूर्ति—चमकने वाले कृष्णाजिन पर आसीन, स्त्री से आलिङ्गित, वृद्ध, अति गौरवर्ण, नारद व तुम्बुरु से वार्तारत श्री माधवादि (मल्लारी) है, ऐसा मुनिवर कहते हैं (द्वितीय चरण में पाठान्तर का भाव है—कुन्त की तरह हाथ में केतकी पत्र धारण करने वाला)॥ १५२–१५४॥

अथ हुञ्चिका—

आन्दोलितप-सा धातुग्रहा मध्यमवर्जिता।
गेया यामद्वयादूर्ध्वं शृङ्गारे हुञ्चिका बुधैः॥१५५॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे—

दूर्वादलश्यामतनुर्विवस्त्रा[1] बलाद्वसन्ती दमितोरुमध्ये।
कक्षान्तरे प्रेरितदक्षहस्तधृतस्तनान्ता किल हुञ्चिकेयम्॥१५६॥

हुञ्चिका—इसमें प, सा स्वर आन्दोलित हैं, जो क्रमशः धातु और ग्रह स्वर है तथा मध्यम वर्ज्य है। (पाठान्तर—'आन्दोलित स–मा धान्तग्रहा पञ्चमवर्जिता'—सा एवं म आन्दोलित हैं, ग्रह एवं न्यास स्वर धैवत है और पञ्चम वर्ज्य है)। दो प्रहर के बाद गेय है और शृंगार रस की पोषक हुञ्चिका है। निबन्धान्तर में मूर्ति—दूर्वादल की तरह श्यामवर्ण शरीर, वस्त्ररहित, हठ से प्रियतम के ऊरुओं के मध्य में बैठने वाली, कक्षा के बीच में दाहिना हाथ रखे और स्तनाग्र पकड़े हुए हुञ्चिका रागिनी है॥ १५५–१५६॥

अथ श्रीकण्ठिका—

गेयोत्सवे ग-रहिता धान्ता श्रीकण्ठिका मता॥ १५७॥

र्तिस्तु निबन्धन्तरे—

कान्तस्य कुन्तलश्रेणीं शोणयन्त्यञ्जनद्युतिः।
कणत्सुवर्णवलयावलिः श्रीकण्ठिका मता॥ १५८॥

श्रीकण्ठिका—इसका न्यास स्वर धैवत है और गान्धार वर्ज्य है और उत्सव में (वीर रस में) गाने योग्य है। निबन्धान्तर में मूर्ति—प्रियतम के केशकलाप को सुखाने वाली, कज्जलवत्, कृष्णवर्ण श्रीकण्ठिका के हाथ में पहने हुए सोने के कंकण शब्द कर रहे हैं॥ १५७–१५८॥

---

१. 'रुचिर्विवस्त्रा' पाठान्तरम्।

अथ भोली—

पोज्झितांशग्रहा भोली प्रातर्गेया सुरस्तुतौ ॥ १५६ ॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे—

निधायास्फोटनैरङ्के लालयन्ती सुतं मुहुः ।
कुर्वन्ती विविधालापं भोली मौलिमनोहरा ॥ १६० ॥

भोली—इसका अंश और ग्रह पञ्चम नहीं होता, ऐसी देवों की स्तुति के लिए प्रातः काल गेय भोली है। निबन्धान्तर में मूर्ति—लड़के को अंक में रख कर उसे थपकियाँ देती हुई, उसका बार-बार लालन करने वाली, नाना प्रकार से आलाप करने वाली और मुकुट से सुन्दर दीखने वाली भोली है ॥ १५६–१६० ॥

अथ तारा—

तारा दिवारतौ युद्धे निषादांशा मवर्जिता ॥ १६१ ॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे—

अङ्गहारान् शिक्षयन्ती कुमारान् नृत्यमन्दिरे ।
तारा माराङ्गना कारा नाट्याटोपविदांवरा ॥ १६२ ॥

तारा—इसका अंश स्वर निषाद है और मध्यम वर्ज्य है। यह दिन में, रतिक्रीड़ा के समय और युद्ध में गाने योग्य है। निबन्धान्तर में मूर्ति—नृत्य मन्दिर में कुमारों को अंगहार सिखाती हुई, रति की भाँति सुन्दर और सांगोपांग नाट्य जानने वालों में श्रेष्ठ तारा है ॥ १६१–१६२ ॥

अथ सालगगौडः—

मांशः पहीनो वीरे च रतौ सालगगौडकः ॥ १६३ ॥

मूर्तिस्तु—

वीणाविनोदप्रतिपन्नपाणिः गृह्णन् कथां नारदसंप्रयोगात् ।
श्यामो युवा विप्रकुलप्रसूतः स सालगो नाट्यमुनिप्रणीतः ॥१६४॥

सालग गौड़—इसका अंश स्वर मध्यम है और पञ्चम वर्ज्य है। वीर रस और रतिक्रीड़ा में गाने योग्य है। मूर्ति—एक हाथ वीणा-वादन में रत है, यह राग नारद के साथ कथा-कौतुक में व्यस्त है, श्यामवर्ण, तरुण, विप्रकुल में पैदा हुआ सालग गौड़ है। (इसे मालव गौड़ भी कहते हैं।) ॥ १६३–१६४ ॥

अथ आभीरी—

धान्ताऽऽभीरी धैवतजा रिहीना च शुचौ प्रगे ॥ १६५ ॥

मूर्तिस्तु कलाङ्कुरोक्ता—

वाचालकङ्कणविभूषितबाहुवल्ली
उन्निद्रचम्पकमनोहरगात्रयष्टिः ।
श्रीखण्डशैलशिखरे गजमौक्तिके द्वे
आभीरिका विदधती स्रजमिन्दुशुभ्राम् ॥ १६६ ॥

निबन्धान्तरे तु अन्यथा दृश्यते—

दधिमन्थनशिञ्जानमेखलाङ्गदकङ्कणा ।
स्वेदार्द्रवदनाम्भोजाऽऽभीरी गोपालवल्लभा ॥ १६७ ॥

आभीरी—धैवत से उत्पन्न इस राग का न्यास स्वर धैवत है और ऋषभ (रि) वर्ज्य है, शृंगार रस की पोषक है एवं प्रातः काल में गेय है। कलांकुर में मूर्ति—कंकणध्वनि से बाहुवल्ली विभूषित है, फूले हुए चम्पक पुष्पों से सजा सारा शरीर मनहरण कर रहा है, चन्दन के पहाड़ के शिखर पर बैठकर चन्द्रिका की तरह सफेद माला बना रही है और हाथी के गण्डस्थल के मोती माला के बीच में हैं। निबन्धान्तर में भिन्न वर्णन है—दधि मन्थन करने से उसकी मेखला, बाहुभूषण और कंकण आवाज कर रहे हैं, घर्मबिन्दुओं से मुख आर्द्र है और गोपालक की प्रियतमा है ॥ १६५–१६७ ॥

अथ मधुकिरी (मधुकरी)—

धांशग्रहा मधुकरी गहीना करुणार्द्रके ॥ १६८ ॥

मूर्तिस्तु—

आताम्रनेत्रा चम्पकगौरी कृतरतारम्भा ।
मुखमधुलुब्धान् भ्रमरान् मधुकरी करोत्येषा ॥ १६९ ॥

मधुकरी—इसका अंश एवं ग्रह स्वर धैवत है और गान्धार वर्ज्य है। यह करुण रस में गायी जाती है। मूर्ति—किञ्चित् लाल नेत्र है, चम्पक की तरह गौरवर्ण है, रतिक्रीड़ा जिसने आरम्भ की है, ऐसी मधुकिरी (मधुकरी) का मुख मधु भ्रमरों को मोहित करने वाला है ॥ १६८–१६९ ॥

अथ छाया—

षडज्ग्रहा मरहिता छाया शृङ्गारवीरयोः ॥ १७० ॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे—

सूर्यप्रिया सूर्यमयूखदूना
आह्लादयन्ती पथिकान् स्वकान्त्या ।
करे दधानारुणपद्ममालाम्
छाया प्रदिष्टेयमनङ्गरूपा ॥ १७१ ॥

छाया—इसका ग्रह स्वर षड्ज है और मध्यम वर्ज्य है। शृंगार और वीर रस में गाने योग्य है। निबन्धान्तर में मूर्ति—यह सूर्य की पत्नी है, सूर्य किरणों से इसका मुख म्लान है। अपनी अंगकान्ति से मार्गस्थ जनों अथवा पथिकों को आनन्दित करने वाली छाया रागिणी रक्तकमलों की माला हाथ में लिये हुए है और मदनमोहिनी है ॥ १७०–१७१ ॥

अथ नीलोत्पला—

नीलोत्पला धैवतजा गहीना
बीभत्सरौद्रेषु सदैव गेया ॥ १७२ ॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे—

कृपाणखर्परे पाण्योर्बिभ्राणा मुक्तमूर्जजा।
नीलोत्पलघनश्यामामाधनाढ्या दिगम्बरा ॥ १७३ ॥

इति षाडवाः।

नीलोत्पला—धैवत से उत्पन्न नीलोत्पला में गान्धार वर्ज्य है और बीभत्स तथा रौद्र रस की पोषक सब समय गेय है। निबन्धान्तर में मूर्ति—हाथ में खड्ग और मृत्पात्र धारण करने वाली नीलोत्पला के केशकलाप विमुक्त हैं। वह नील कमल की तरह या मेघ की तरह श्यामवर्ण, धनसम्पन्न और दिशारूपी वस्त्र पहनी हुई है ॥ १७२–१७३ ॥

षाडवराग प्रकरण समाप्त।

तृतीय प्रकरण

अथ औडवाः

अथ औडवा उच्यन्ते—

ते ख्याता औडवा ये हि जायन्ते पञ्चभिः स्वरैः ॥ १७४ ॥

के ते इत्याह—

मध्यमादिश्च मल्लारो देशकारी (पाली) त्वियं तथा ।
[मालवो हिन्दोलो भैरविश्च नागध्वनिर्गण्डकृतिः
(गौण्डकिरिश्च) ललिता च छायातोडी वेलावली ।
तदनन्तरं सैन्धवी तथा द्वितीया सैन्धवी]
इत्याद्या औडवा प्रोक्ताः रागा जनमनोहराः ॥ १७५ ॥

आदिपदेन तुरष्कगौडादयोऽपि गृह्यन्ते ।

अब औडवराग कहते हैं—जो राग पाँच स्वरों से बनते हैं वे औडव हैं । वे कौन से हैं यह कहते हैं—मध्यमादि, मल्लार, देशकिरी (पाली) और [मालव, हिन्दोल, भैरवी, नागध्वनि, गण्डकृति (गौण्डकिरी), ललिता, छायातोड़ी, वेलावली, सैन्धवी, द्वितीय सैन्धवी] इत्यादि औडवराग मन हरण करने वाले कहे गये हैं । आदि पद का अर्थ यह है कि तुरष्कगौड़ इत्यादि भी लिये जाते हैं ॥१७४–१७५॥

तदुक्तं सङ्गीतसारे औडवगणने—

तुरुष्कगौडगान्धारा पुलिन्दो मेघरञ्जकः ॥ १७६ ॥

संगीतसार में औडवराग इस प्रकार हैं—तुरुष्कगौड, गान्धार, पुलिन्द, मेघरञ्जक ॥ १७६ ॥

फलमाह कोहलः—

व्याधिनाशे शत्रुनाशे भयशोकविनाशने ।
औडवास्तु प्रगातव्याः गृहशान्त्यर्थकर्मणि ॥ १७७ ॥

कोलाहल के अनुसार गानफल—व्याधिनाश, शत्रुनाश, भय एवं शोक के नाश हेतु और गृहशान्तिमूलक कर्मों में औडव राग गाये जाते हैं ॥ १७७ ॥

क्रमेणेषां लक्षणमाह—

अथ मध्यमादिः—

मध्यमादिर्मग्रहान्तो मध्यमग्रामगोचरः ।
अयं सायं तु गातव्यः शृङ्गारे रिधवर्जितः ॥ १७८ ॥

मूर्तिस्तु चन्द्रिकायाम्—

अतितरुणवयाः श्रीः कुन्दकर्पूरकान्तिः।
युवतिभजनदक्षः क्रौञ्चचाटूक्तिभासः॥ १७९॥

[वृत्तार्धेऽप्यकं दानमनुचितमिव प्रतिभाति]

अरुणजलजनेत्रः स्कन्धसंन्यस्तवीणः।
स्मितमधुरवचस्को राजते मध्यमादिः॥ १८०॥

क्रम से इनके लक्षण कहते हैं—

मध्यमादि—मध्यमादि राग का ग्रह एवं न्यास स्वर मध्यम है, ऋषभ (रि) एवं धैवत (ध) वर्ज्य है। यह मध्यम ग्राम का राग है (राग-उत्पत्ति, न्यास, मूर्च्छना, काकली स्वर-प्रयोग और वर्णालंकार सभी मध्यम ग्राम जैसे हैं)। यह शृंगार रस का पोषक है और यह सायंकाल में गेय है। चन्द्रिका में मूर्ति—अति तरुण वय, कुन्द के फूल और कर्पूर की तरह कान्ति, तरुण स्त्री की सेवा में दक्ष, क्रौञ्च की तरह विनोदपूर्ण उक्तियों में चतुर, रक्त कमल की तरह लाल नेत्रवाला, कन्धे पर वीणा रखे हुए, हास्ययुक्त मधुर भाषण करने वाला मध्यमादि राग है॥ १७८–१८०॥

अथ मल्लारः—

धांशन्यासः (मांशन्यासः) पञ्चमजो मल्लारः सधवर्जितः।
सदा वर्षास्विष्टरसे गमन्द्रस्तारसप्तमः॥ १८१॥

मूर्तिस्तु—

शङ्खावदातं पलितं दधानः प्रलम्बकर्णः कुमुदेन्दुवर्णः।
कोपीनवासाः शुचिहारधारी मल्लारराग: कथितस्तपस्वी॥ १८२॥

नारदसंहितायां तु अन्यथा दृश्यते—

विहारशीलोऽप्यति नीलदेहो गम्भीरवाक्यः प्रियकामिनीसुतः।
कामातुरः पिङ्गलनेत्रयुग्मो मल्लाररागोऽखिलमोहनश्च॥ १८३॥

मल्लार—इसका अंश स्वर धैवत (मतान्तर से मध्यम) है, पञ्चम से मल्लार की उत्पत्ति है और षड्ज धैवत वर्ज्य है, मन्द्र गान्धार में संचार है, तार सप्तम है तथा यह सर्वदा वर्षा ऋतु में गेय है और किसी भी रस में गाया जा सकता है। मूर्ति—शंख की तरह धवल वर्ण के केश धारण करने वाला, लम्बे कानवाला, कुमुद (रात्रि में विकसित कमल) सदृश या चन्द्र की तरह कान्ति वाला, कोपीन पहने एवं सफेद हार धारण करने वाला मल्लार राग तपस्वी है। नारदसंहिता में भिन्न प्रकार से वर्णन—क्रीड़ाशील स्वभाव, अति नील वर्ण शरीर, गम्भीर वाणी,

स्त्री और पुत्र को प्रेम करने वाला, कामातुर, दोनों पिंगल आँखों वाला मल्लार राग सबको मोहित करता है ॥ १८१-१८३ ॥

अथ देशपालः—

न्यंशन्यासग्रहो देशपालः सान्दोलषड्जकः।
वीरश्रृङ्गारयोः सायं टक्कवंशोरिपोज्झितः ॥ १८४ ॥
इत्थमेव देशकारीत्युच्यते।

मूर्तिस्तु नारदसंहितायाम्—

सार्द्धं सखीभिर्विजने वसन्ती विचित्रवक्षोजयुगक्षतानि।
निरीक्षमाणा मणिदर्पणेषु सा देशकारी कथिता गुणज्ञैः ॥ १८५ ॥

अयमेव केदार उच्यते इति गीतप्रकाशकारः। तथा सत्यापि मूर्तिभिन्ना, तदुक्तं चन्द्रिकायाम्।

मूर्तिस्तु—

चिरप्रवासी जलदावलोकाद् विचिन्तयन्नीलसरोरुहाक्षीम्।
कामी युवा गीतकलाभिलाषी केदाररागस्तरुणोऽरुणाभः ॥ १८६ ॥

देशपाल—देशपाल का अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर निषाद है। टक्क वंशोद्भव यह राग लोकपाल है। इसका षड्ज आन्दोलित है और ऋषभ-पञ्चम वर्ज्य है। वीर और शृंगार का पोषक यह राग सायंकाल गेय है। इसी प्रकार को देशकारी कहते हैं। नारदसंहिता में मूर्ति—गुणज्ञ लोगों के अनुसार सखियों के साथ एकान्त में रहने वाली, स्तनद्वय के नाना क्षतों को रत्नदर्पण में देखने वाली देशकारी है। इसी राग को केदार कहा जाता है, ऐसा गीतप्रकाशकार का कहना है। ऐसा होने पर भी मूर्ति भिन्न है—चन्द्रिका में मूर्ति बतायी गयी है। मूर्ति—दीर्घकाल का प्रवासी, मेघों की ओर निहारने वाला, नील कमल की तरह आँखों वाला, युवती का चिन्तन करता हुआ, कामभावनाशील, तरुण, अरुण वर्ण और गानकला की इच्छा करने वाला यह राग है ॥ १८४-१८६ ॥

अथ मालवः (माल्लवः)—

रि-ग-ध-हीनष्टक्कवंश्यो गभूरिः स-ध-कम्पितः।
नि-न्यासांशग्रहः सायं निशि वा मालवः शुचौ ॥ १८७ ॥

मूर्तिस्तु—

नितम्बिनी चुम्बितवक्त्रपद्मः शुकद्युतिः कुण्डलवान् प्रमत्तः।
सङ्गीतशालां प्रविशन् प्रदोषे मालाधरो मालवरागराजः ॥ १८८ ॥

मालव (माल्लव)—टक्क वंशोत्पन्न मालव (माल्लव) में ऋषभ और गान्धार वर्ज्य है और गान्धार बहुल स्वर है तथा षड्ज-धैवत कम्पित है। इसका अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर निषाद है। शृङ्गार रस का पोषक है और सायंकाल तथा रात्रि में गेय है। ("रिविहीनष्टक्कवंश्यो' पाठ होना चाहिए। यहाँ गान्धार वर्ज्य एवं बहुल स्वर की बात विरोधाभास प्रस्तुत करती है—एक पाठ के अनुसार रि-प वर्ज्य है और अन्य के अनुसार रि वर्ज्य है)। मूर्ति—तोते की तरह हरित-द्युति वाला, कुण्डलधारी, सायंकाल में संगीतशाला में प्रवेश करने वाला मालव रागराज है, जिसके मुख कमल का चुम्बन बड़े नितम्ब वाली स्त्री ने कर लिया है ॥ १८७–१८८ ॥

अथ हिल्लोलः (हिन्दोलः)—

षड्जन्यासग्रहांशोऽयं हिन्दोलो रि-प-वर्जितः।
अधैवत्यार्षभीजातो वीरशृङ्गारयोः सदा ॥ १८९ ॥
धैवतीमार्षभीं विना अन्यजात्युत्पन्न इत्यर्थः।
सदा सर्वेषु कालेषु।

मूर्तिस्तु—

नितम्बिनी मन्दतरङ्गितासु दोलासु खेलासुखमादधानः।
खर्वः कपोतद्युतिकर्बुरश्रीः हिल्लोलरागः कथितो मुनीन्द्रैः ॥१९०॥

नारदसंहितायां तु—

लीलाविलासेन पतन् पृथिव्याम् उत्थापितस्तत् प्रियकामिनीभिः।
उल्लासयन् गीतरसैर्विदग्धः हिल्लोल(हिन्दोल)रागः कथितो रसज्ञैः ॥१९१॥

हिल्लोल (हिन्दोल)—इसका ग्रह, अंश एवं न्यास स्वर षड्ज है और ऋषभ-पञ्चम वर्ज्य है; धैवती-आर्षभी जातियों से भिन्न जाति से उत्पन्न यह राग हिल्लोल (हिन्दोल) वीर और शृंगार रस का पोषक है और सर्वदा गाने योग्य है। मूर्ति—नितम्बशालिनी स्त्री द्वारा मन्द-मन्द आन्दोलित हिन्दोलों पर सुख से खेलने वाला, वामनमूर्ति, कबूतर की तरह चित्र-विचित्र वर्ण वाला राग हिल्लोल (हिन्दोल) है, ऐसा मुनिश्रेष्ठ कहते हैं। नारदसंहिता में—लीला विलास में मग्न होने के कारण जमीन पर गिरते समय उसकी प्रिय प्रियतमाओं ने उन्हें उठा लिया है ऐसा हिन्दोल राग विद्वानों एवं गायन के रस से सबको आनन्दित करने वाला है, ऐसा मत रसज्ञों का है ॥ १८९–१९१ ॥

अथ भैरवी—

षड्जन्याससमुत्पन्नो भैरवोऽपि रिपोज्झितः।

षग्रहांशो मध्यमान्तो गेयो मङ्गलकर्मणि ॥ १६२ ॥

अयमेव भैरवी-तदुक्तं दामोदरे—

भैरवी कैशिकी चैव भैरवस्यैव वल्लभे ॥ १६३ ॥

मूर्तिस्तु—

सरोवरस्थे स्फटिकस्य मण्डपे
सरोरुहैः शङ्करमर्चयन्ती ।
तालप्रयोगप्रतिबद्धगीतिः
[1]गौरी कृशाङ्गी किल भैरवीयम् ॥ १६४ ॥

भैरवी—षड्ज से उत्पन्न भैरवी का न्यास स्वर षड्ज है और ऋभष-पञ्चम वर्ज्य है। षड्ज ग्रह एवं अंश है तथा मध्यम न्यास है और मंगल कार्य में गाने योग्य है। (प्रथम पंक्ति में षड्ज न्यास है और द्वितीय पंक्ति में मध्यम न्यास है, अतः इससे विरोधाभास प्रकट होता है।) (यही भैरव भैरवी दोनों नामों से प्रसिद्ध है—वस्तुतः भैरवी भैरव का उपांग है।) दामोदर में कहा गया है—भैरवी और कैशिकी दोनों भैरव की प्रियाएँ हैं। मूर्ति— सरोवर में स्फटिक मण्डप में कमलों से शिवजी की पूजा करने वाली कृशांगी गौरवर्ण भैरवी का गायन ताल से आबद्ध, परिपूर्ण है ॥ १६२–१६४ ॥

अथ नागध्वनिः—

टक्कान्वयोद्भवो नागध्वनि रि-ध-विवर्जितः ।
षड्जन्यासग्रहांशोऽयं गेयो वीररसे दिवा ॥ १६५ ॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे—

नागध्वनिः समारूढगजो हिङ्गुलसन्निभः ।
सितवासाः कुन्तकरो युवा राजकुलोद्भवः ॥ १६६ ॥

नागध्वनि—टक्क वंश से उत्पन्न नागध्वनि में ऋषभ-धैवत वर्ज्य है, इसका अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर षड्ज है, वीर रसका पोषक नागध्वनि दिन में गेय है। निबन्धान्तर में मूर्ति—हाथी पर आसीन, अरुण वर्ण, शुभ्रवस्त्रधारी और कुन्तधारी राजकुलोत्पन्न तरुण नागध्वनि राग है ॥ १६५–१६६ ॥

अथ गोण्डकिरी—

षड्जन्यासग्रहांशेयं गुण्डकीरी परिष्कृता ।
रिधहीना दिनान्ते च गातव्याऽष्टरसे बुधैः ॥ १६७ ॥

---

१. 'गौरीतनुर्नारदभैरवीयम्' पाठान्तरम् ।

मूर्तिस्तु—

रत्युत्सुका कान्तपथप्रतीक्षा-
मापादयन्ती मृदुपुष्पतल्पे ।
इतस्ततः प्रेरितदृष्टिरार्ता
श्यामाङ्गिका गोण्डकिरी प्रदिष्टा ॥ १९८ ॥

गोण्डकिरी—इसका अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर षड्ज है, ऋषभ-धैवत वर्ज्य है। भूषण-विभूषित यह राग आठों रसों का पोषक और सायंकाल में गेय है। मूर्ति—रति-क्रीड़ा के लिए उत्कण्ठित, प्रियतम-पथ की प्रतीक्षा करने वाली, मृदु फूलों की शैया पर अपनी पीड़ायुक्त दृष्टि इधर-उधर डालने वाली श्यामांगी गोण्डकिरी राग है ॥ १९७–१९८ ॥

अथ ललिता—

टक्कान्वयसमुद्भूता ललिता ललितस्वरा ।
षड्जन्यासग्रहांशा च समन्द्रा रिपवर्जिता ।
शृङ्गार-वीरयोर्गेया निशान्ते च दिनान्तके ॥ १९९ ॥

मूर्तिस्तु—

प्रफुल्लसप्तच्छदमालभारी
युवातिगौरोऽलसलोचनश्रीः ।
विनिःसृतो वासगृहात्प्रभाते
विलासवेशो ललितः प्रदिष्टः ॥ २०० ॥

ललिता—टक्कवंश में उत्पन्न (भाषाराग), ललित स्वर वाली, ललिता का ग्रह, अंश एवं न्यास स्वर षड्ज है और मन्द्र षड्ज में संचार है तथा ऋषभ-पञ्चम वर्ज्य है। शृगार और वीर रस की पोषक ललिता सायंकाल और प्रातः काल गेय है। सप्तच्छद (छतिवन) वृक्ष के फूलों की माला धारण करने वाली, तरुण, अति गौरवर्ण ललिता की आँखों में आलस्य प्रतीत हो रहा है, प्रभात में घर से निकली हुई विलासपूर्ण वेषधारी ललिता है ॥ १९९–२०० ॥

अथ छायातोडी—

छायातोडी रि-पत्यक्ता संजाता धैवतान्वये ।
मृदुकम्पस्वरा मांशग्रहा ज्ञेया दिवातनी ॥ २०१ ॥

मूर्तिस्तु—

तोडीतुल्या पूर्णरागमध्ये उक्ता ।

छायातोड़ी—धैवतान्वय से उत्पन्न छायातोड़ी में ऋषभ-पञ्चम वर्ज्य है, इसका अंश और ग्रहस्वर मध्यम है और इसके स्वर मृदुल कम्पित हैं। यह दिन में गाने

योग्य है। मूर्ति —इसकी मूर्ति तोड़ी की तरह है और यह पूर्ण रागों में कही गयी है ॥ २०१ ॥

अथ प्रतापवेलावली—

ककुभस्य कुले जाता प्रतापोपपदा दिवा।
गेया वेलावली तज्ज्ञैर्धग्रहान्ता रिपोज्झिता ॥ २०२ ॥

मूर्तिस्तु—वेलावली तुल्या।

प्रताप वेलावली—ककुभ कुल में उत्पन्न प्रताप वेलावली का ग्रह एवं न्यास स्वर धैवत है और इसमें ऋषभ-पञ्चम वर्ज्य है। दिन में गाने योग्य है। इसमें उपपद है। (अकारान्त ककुभ शब्द अर्जुन वृक्ष का वाचक है) इसकी मूर्ति वेलावली के समान ही है ॥ २०२ ॥

अथ सैन्धवी—

षड्जन्यासग्रहांशान्या सैन्धवी नि-ग-वर्जिता।
मृदुकम्पस्वराज्ञेया (गेया) जाता मालकौशिकात् ॥ २०३ ॥

मूर्तिस्तु—पूर्णसैन्धवीवत्।

सैन्धवी—मालवकौशिक से उत्पन्न (भाषाराग) सैन्धवी का अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर षड्ज है, निषाद-गान्धार वर्ज्य है। मृदु कम्प स्वरों का प्रयोग है। मूर्ति—पूर्ण सैन्धवी के समान है ॥ २०३ ॥

अथ द्वितीया सैन्धवी—

द्वितीया सैन्धवी भिन्नषड्जान्दोलितसुस्वरा।
धैवतांशग्रहन्यासा शृङ्गारे रिपवर्जिता ॥ २०४ ॥

मूर्तिस्तु—पुनः (पूर्ण) सैन्धवीवत्।

द्वितीया सैन्धवी —द्वितीय सैन्धवी भिन्नषड्ज का भाषाराग है और यह आन्दोलित सुस्वर युक्त है। इसका अंश, ग्रह एवं न्यास स्वर धैवत है और ऋषभ-पञ्चम वर्ज्य है। यह शृंगाररस का पोषक है। इसकी मूर्ति भी पूर्ण सैन्धवी के समान है ॥ २०४ ॥

अथ तुरुष्कगौड:—

वीरे च रौद्रे च तुरुष्कगौडो।
निषादजांशो रि-प-वर्जितश्च ॥ २०५ ॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे—

तुरुष्कगौडो आरूढहयः पक्वेष्टकारुचिः।
शरचापधरश्चण्ड उष्णीषकवचावृतः ॥ २०६ ॥

तरुष्कगौड़—इसका अंश और ग्रह (न्यास) स्वर निषाद है और ऋषभ-पञ्चम वर्ज्य है। यह वीर और रौद्र रस में प्रयोज्य है। निबन्धान्तर में मूर्ति—अश्वारूढ़, पक्की ईंट की तरह अरुण वर्ण, धनुष बाणधारी, अति क्रोधी तथा पगड़ी और कवच धारण किये हुए तुरुष्क गौड़ है ॥ २०५–२०६ ॥

अथ गान्धारः—

गान्धारको मध्यमजश्च मान्तः।
सपोज्झितः स्यात् करुणे सदैव ॥ २०७ ॥

मूर्तिस्तु—

जटां दधानः कृतभूरिभूषः कषायवासास्तनुदेहयष्टिः।
स-योगपट्टः कृतनेत्रमुद्रो गान्धाररागः कथितस्तपस्वी ॥ २०८ ॥

गान्धार—गान्धार राग मध्यम से उत्पन्न है और इसका अन्त (न्यास) स्वर मध्यम है। इसमें षड्ज-पञ्चम वर्ज्य है और यह करुण रस में सर्वदा गेय है। मूर्ति—जटाधारी, विपुल अलंकार धारण करने वाला, कषाय रंग का वस्त्र पहनने वाला, शरीर-यष्टि कृश, आँखें मुंदी हुईं, योगपट्टधारी तपस्वी गान्धार राग है ॥ २०७-२०८ ॥

अथ पुलिन्दी—

ग-पोज्झिता षड्जभवा सदा स्यात्।
पुलिन्दिकाऽभीष्टरसेषु धान्ता ॥ २०९ ॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे—

गुञ्जापुञ्जलसद्भूषा पल्लवैः सत्कृताम्बरा।
कण्ठेन वीणां दधती पुलिन्दीन्दीवरद्युतिः ॥ २१० ॥

पुलिन्दी—षड्ज से उत्पन्न (भिन्न षड्ज का भाषाराग) पुलिन्दी में गान्धार-पञ्चम वर्ज्य है और धैवत अन्त (न्यास) स्वर है। यह सभी अभीष्ट रसों में गाने योग्य है। निबन्धान्तर में मूर्ति—गुञ्जाफल के भूषण से शोभित, पल्लवों से वस्त्र का काम चलाने वाली, कण्ठ में वीणा धारण करने वाली, नीलकमल कान्ति युक्त पुलिन्दी है ॥ २०९–२१० ॥

अथ मेघरञ्जी—

धपोज्झिता षड्जभवा च गान्ता।
दिवा च वीरे किल मेघरञ्जी ॥ १११ ॥

मूर्तिस्तु निबन्धान्तरे—

श्रुतौ दधाना नवकर्णिकारमारामगा केशरपुष्पकाञ्ची।
अध्यापयन्ती स्वकरस्थसारीं श्रीरामरामेति च मेघरञ्जी ॥ २१२ ॥

इति औडवाः।

तृतीयञ्च प्रकरणं सम्पूर्णम्।

मेघरञ्जी—षड्ज से उत्पन्न मेघरञ्जी में धैवत-पञ्चम वर्जित है और अन्त (न्यास) स्वर गान्धार है। यह वीर रस की पोषक है और दिन में गाने योग्य है। निबन्धान्तर में मूर्ति—कर्ण में नया कर्णिकार पुष्प (कनकचंपा का फूल) धारण की हुई, बगीचे में बैठी, केसरयुक्त फूलों की मेखला धारण करने वाली, हाथ में सारिका को लेकर उसे 'श्रीराम-राम' शब्द पढ़ाने वाली मेघरञ्जी है ॥ २११–२१२ ॥

औड़वराग में तीसरा प्रकरण समाप्त।

चतुर्थ प्रकरण

अथ संकीर्णाः

तत्र हरिनायकः—

एषामन्योन्यसंसर्गाद्रागाणां बहुशोभिदाः।
तत्र केचित्तु संकीर्णाः कथ्यन्ते श्रुतिशोभनाः॥ २१३॥

अब संकीर्ण राग—हरिनायक ने कहा—इन रागों के परस्पर मिश्रण से नाना प्रकार बनते हैं। उनमें कुछ संकीर्ण राग कहे जाते हैं, जो सुनने में सुन्दर लगते हैं॥ २१३॥

तत्र पौरवी—

देशाख्यायाश्चाथ मल्लारिकायाः।
स्यादंशाभ्यां पौरवीयं प्रदिष्टा॥ २१४॥

पौरवी—देशाख्या और मल्लारी के योग से पौरवी होती है॥ २१४॥

अथ कल्याणी—

वराटाख्या नाटकर्णाटकेभ्यः।
सम्भूतेयं मञ्जुलकल्याणिकाख्या॥ २१५॥

कल्याणी—वराटो, नाट और कर्णाट के योग से सुन्दर कल्याणी राग की निर्मिति होती है॥ २१५॥

अथ सारङ्गः—

सारङ्गः स्यात्तोडी धन्नासिकाभ्याम्॥
(सारङ्गः स्यात्तोडी धानासिकाभ्याम्।)

सारङ्ग—तोड़ी और धन्नासिका (धानसी) के मेल से सारंग राग बनता है।

अथ गौडी (गौरी)—

श्रीरागात् स्याद् गौडरागाच्च गौडी॥

गौड़ी (गौरी)—श्रीराग और गौड़राग के मेल से गौड़ी (गौरी) राग की निर्मिति है॥

अथ नट्टमल्लारिका—

जाता नाटस्याथ मल्लारकस्य।
स्यादंशाभ्यां नट्टमल्लारिका च॥ २१६॥

नट्टमल्लारिका—नाट और मल्लार के योग से नट्टमल्लारिका बनती है ॥ २१६ ॥

अथ वल्लरी—

देशाख्या शावरी योगाद्द्व वल्लरी परिकीर्तिता ॥

वल्लरी—देशाख्या और शावरी के योग से वल्लरी होती है ॥

अथ कर्णाटिका—

कर्णाटतो भैरवोतशकाभ्याम् ।
कर्णाटिका स्याद्द्व गदिता सकम्पा ॥ २१७ ॥

कर्णाटिका—कर्णाट और भैरव के आंशिक योग से कर्णाटिका की सृष्टि है, इसके स्वर कम्पयुक्त हैं ॥ २१७ ॥

अथ मुखावरी (सुखावरी)—

सैन्धवी तोडिका योगात् समुत्पन्ना सुखावरी ॥

मुखावरी (सुखावरी)—सैन्धवी और तोड़ी के योग से सुखावरी की उत्पत्ति है ।

अथ आशावरी—

मल्लरी सैन्धवी तोडीयोगादाशावरी भवेत् ।

आशावरी—मल्लरी, सैन्धवी और तोड़ी के योग से आशावरी होती है ।

अथ रामकेलिः (रामकेरी)—

गुर्जरी देशिका सङ्गाद्रामकेलिरजायत ॥ इति ॥
अन्येऽपि सन्ति भूयांसो रागाः संकीर्णलक्षणाः ।
ये ये यथा श्रुता देशे ज्ञेयास्ते तु तथा बुधैः ॥ २१८ ॥

इति संकीर्णाः ।

इति चतुर्थप्रकरणम् ।

रामकेलि (रामकेरी—गुर्जरी और देशिका (देशी) के योग से रामकेलि (रामकेरी) होती है ।। इति ।

संकीर्ण लक्षण के राग और भी हैं, वे जो-जो, जिस-जिस देश में, जिस रूप में श्रुत हैं वे वहीं से विद्वानों को जानने चाहिए ॥ २१८ ॥

संकीर्णा में चतुर्थ प्रकरण समाप्त ।

पञ्चम प्रकरण

अथ गानसमयः

अत्र केष्वपि रागेषु गानसमय उक्तः। तथापि प्रतिदेशं भिन्नतया क्वचिद् दृष्टत्वात्। तद्विवेकाय शिशुबोधाय च पुनर्लिख्यते।

यहाँ कुछ रागों का गायन-समय कहा गया है। फिर भी प्रत्येक देश में भिन्न-भिन्न प्रथा होती है, उसके पृथक् ज्ञान के लिए और अज्ञ लोगों के बोध के लिए फिर लिखते हैं।

तत्र दामोदरः—

प्रातर्गेयाश्च देशाख्यो ललिता पठमञ्जरी।
विभाषा भैरवी चैव कामोदो गण्डकीर्यपि॥ २१९॥

एकावराडी मध्याह्ने सायं कर्णाटमालवौ।
नाटश्चैव विशेषेण शेषा गेयास्तु सर्वदा॥ २२०॥

हिल्लोलश्च वसन्तश्च वसन्ते रञ्जकावुभौ।
नाटो गौडी वराडी च गुञ्जरी देशिरेव च॥ २२१॥

पूर्वाह्णे गानमेतेषां निषिद्धमिति तद्विदः।
नैवपराह्णे गातव्यौ भैरवीललितौ क्वचित्॥ २२२॥

दामोदर में है—प्रातःकाल गाने योग्य राग हैं—देशाख्य, ललिता, पठमञ्जरी, विभाषा, भैरवी, कामोद और गुण्डकिरी, सायंकाल गाने योग्य हैं—कर्णाट, मालव और नाट; एक बराड़ी मध्याह्न गेय है और शेष राग सर्वदा गेय हैं। वसन्त ऋतु में विशेष रूप से हिललोल (हिन्दोल) और वसन्त मनरञ्जक हैं। नाट, गौड़ी, वराड़ी गुञ्जरी (गुर्जरी), देशी का गायन पूर्वाह्न में निषिद्ध है। ऐसा तज्ञ लोगों का अभिमत है। अपराह्न में न गाने योग्य हैं—भैरवी और ललिता॥ २१९–२२२॥

नारदपञ्चमसारसंहितायाम्—

विभाषा ललिताश्चैव कामोदा पठमञ्जरी।
रामकेलि रामकिरी वेलोयारी च गुर्जरी॥ २२३॥

देशकारी च सुभगा पञ्चमी च गडा तुडी।
भैरवी चापि कौमारी रागिण्यो दशपञ्च च॥ २२४॥

एताः पूर्वाह्णे काले तु गेयास्तद्गानकोविदैः।

.........(गीयन्ते रागकोविदैः)।
वराडी मायूरी कोडा वैरागी चापि धानसी ॥ २२५ ॥
वेलावली मारहट्टी (माहराटी) सप्तैता रागयोषितः।
गेया मध्याह्नकाले च यथा भरतभाषितम् ॥ २२६ ॥
गान्धारी दीपिका चैव कल्याणी प्रवरा तथा।
आशावरी कानडा च गौड(गौरी) केदारपाहिडा ॥ २२७ ॥
माधवी मालसी लाटी भूपाली सिन्धूडा तथा।
सायाह्ने रागिणीश्चैताः प्रगायन्ति मनीषिणः ॥ २२८ ॥
मेघमल्लाररागस्य गानं वर्षासु सर्वदा।
दाक्षिणात्यास्तु कोहलनाम ग्रहं पठन्ति च ॥ २२९ ॥
देशाख्या भैरवी शुद्धा सारङ्गाख्या च भैरवी।
देवकी रक्तहंसा च माहुला रक्तरञ्जिता ॥ २३० ॥
एता सूर्यांशतो जाताः सायंकालेषु निन्दिताः।
प्रभाते येन गीयन्ते स नरः सुखमेधते ॥ २३१ ॥
शुद्धा नट्टा च सारङ्गी शुद्धनट्टा वरालिका।
वरालिका द्राविडी च तथा नागवरालिका ॥ २३२ ॥
छाया गेली तथा चान्या बाहुल्यान्दोलिता तथा।
मल्लारिका तथा छाया गौणी कर्णाटिकाह्वरा ॥ २३३ ॥
गोलोमा मानकश्चैव रामक्रियस्तचैव च।
छायारागकृते रञ्जावच्छाया सर्वबालिका ॥ २३४ ॥
कर्णाटभूपवङ्गाला इत्येते चन्द्रमांशकाः।
एते रागा विशेषेण प्रातः कालेषु निन्दिताः ॥ २३५ ॥
सायमेषां तु गानेन महतीं श्रियमाप्नुयात् ॥ इति ॥ २३६ ॥

नारद-पञ्चमसार-संहिता में— विभाषा, ललिता, कामोद, पठमञ्जरी, रामकेलि, रामकिरी, वेलोयारी, गुर्जरी, देशकारी, सुभगा, पञ्चमी, गड़ा, तुड़ी, भैरवी; कौमारी—ये पन्द्रह (१५) रागिनियाँ हैं। रागतत्त्वज्ञों का कहना है कि इनका गायन पूर्वाह्न में किया जाना चाहिए। वराड़ी, मायूरी, कोड़ा, वैरागी, धानसी, वेलावली, मारहाटी (मरहट्टी = मराठी)—ये सात राग-पत्नियाँ मध्याह्न में गाने योग्य हैं, ऐसा मुनि भरत का अभिमत है। गान्धारी, दीपिका, कल्याणी, प्रवरा, आशावरी, कानड़ा, गौड़ (गौरी), केदार, पाहिड़ा, माधवी, मालसी, लाटी, भूपाली, सिन्धूड़ा—ये रागिनियाँ विद्वानों के मतानुसार सायंकाल में गायी जाती हैं।

मेघमल्लार (मेघमह्लार) राग वर्षा ऋतु में सर्वदा गेय है। दाक्षिणात्य विद्वान कोहल का उल्लेख करके कहते हैं। देशाख्या, शुद्धभैरवी, सारङ्गा, भैरवी, देवक्री, रक्तहंसा, माहुला, रक्तरञ्जिका—ये रागिनियाँ सूर्यांश से उत्पन्न हुई हैं, अतः इनका गायन सायंकाल निन्दित हैं। ये प्रातः काल में गाने योग्य हैं, इससे मनुष्य सुख से बढ़ता है। शुद्धा, नट्टा, सारंगी, शुद्धनट्टवराली, वराली, द्राविड़ी, नागवराली, छायागेली, बाहुली, आन्दोलिता, मल्लारी, छायागौणी, कर्णाटिका, गोलोमा, मानक, (मालब-गोल), रामकिरी (रामक्रिय), छायाराग, रञ्जावच्छाया, सर्ववालिका, कर्णाट, भूपबंगाल—ये चन्द्रमा के अंश हैं। अतः इनका राग प्रातः काल में गाना निन्द्य है। इनको सायंकाल में गाने से बड़ी सम्पत्ति लाभ होती है ॥ २२३–२३६ ॥

किं च—

श्रीगीतगोविन्दटीकायां लक्ष्मणभट्टः—

प्रातर्गण्डकिरी सदा मनहरा देशाख्यिका गुर्जरी।
मध्याह्नेऽपि च (तास्तु) तद्द्वयमथो कर्णाटनाटादयः॥ २३७॥
सायं मालविका कृतेऽपि सुधियो गायन्ति सायन्तने।
सारङ्गं पुनरेव गौरममरं प्रत्यूषतो भैरवीम्॥ २३८॥

और गीतगोविन्द की टीका में लक्ष्मण भट्ट ने कहा है—गण्डकिरी, देशाख्या और गुर्जरी प्रातः काल गाने योग्य हैं। मध्याह्न में पिछली दोनों तथा कर्णाट, नाट इत्यादि गाने योग्य हैं। सुधी पण्डित मालविका सायंकाल में गाते हैं। सारंग, गौर तथा अमर भी सायंकाल में और भैरवी प्रभात में गाने योग्य है ॥ २३७–२३८ ॥

सङ्गीतकौमुद्याम्—

श्रीपञ्चमीं समारभ्य विष्णोः शयनमेव च।
तावद्वसन्तो गीयेत प्रभाते भैरवादिकम् ॥ २३९ ॥

मध्याह्ने तु वराड्यादेः सायं कर्णाटनाटयोः।
श्रीरागमालवादेस्तु गाने दोषो न विद्यते॥ २४०॥ इति।

इन्द्रपूजां समासाद्य यावद्रिसुतार्चनम्।
तावदेव समुद्दिष्टं गानं वै मालवश्रियः॥ २४१॥

एवं तु बहुधाऽऽचार्यैर्गाने कालः समीरितः।
यस्मिन् देशे यथा शिष्टं गीतं विज्ञस्तथाचरेत्॥ २४२॥

संगीतकौमुदी में है—श्रीपञ्चमी से आरम्भ कर विष्णुशयन तक (आषाढ़ शुक्ल ११ तक) वसन्त गाना चाहिए। प्रभात में भैरव आदि राग गाने चाहिए। मध्याह्न में वराड़ी आदि और सायंकाल में कर्णाट, नाट गेय हैं। श्रीराग, मालव

आदि राग को सायंकाल में गाना दोषपूर्ण नहीं है। इति। इन्द्रपूजा के समय से गिरिसुता पार्वती (दुर्गा) की पूजा के समय तक मालव और श्रीराग गाना उचित है। आचार्यों ने इस प्रकार गायन के समय कहे हैं। फिर भी जिस देश में गीत की जैसी परम्परा या अनुशासन हो, अभिज्ञ मनुष्यों को वैसा ही करना चाहिए ॥ २३९–२४२ ॥

अकालगाने दोषमाह--

समयोल्लङ्घने गानं सर्वनाशकरं ध्रुवम् ॥ २४३ ॥

आकाल में गाने के दोष कहते हैं—निश्चित समय का उल्लंघन कर गायन करने से गान सर्वनाश का कारण होता है ॥ २४३ ॥

अथापराधमाह (अथापराधभावमाह)—

श्रेणीबद्धे नृपाज्ञायां रङ्गभूमौ न दूषणम् (दोषदम्) ॥ २४४ ॥

अब अपराध न होने का सिद्धान्त कहते हैं—(विशेष लोगों की श्रेणी में) श्रेणीबद्ध, राजाज्ञा एवं रंगभूमि पर गाने में समयोल्लंघन करने का दोष नहीं है ॥ २४४ ॥

परिहारमाह कोहलीये—

लोभान्मोहाच्च ये केचिद् गायन्ति च वियोगतः।
सुरसा गुञ्जरी तेषां दोषं हन्तीति कथ्यते ॥ २४५ ॥

कोहलीय में इसके लिए दोष-परिहार के उपाय बताये गये हैं—लोभ से या मोह से जो लोग असमय में गाते हैं, उनके दोष सुरसा और गुञ्जरी (गुर्जरी) गाने से दूर हो जाते हैं ॥ २४५ ॥

अन्यत्रापि—

अवेलारागमाकर्ण्य तस्य दोषप्रशान्तये।
ईशानं च हरिं स्तुत्वा मध्यमादिमनन्तरम् ॥ २४६ ॥
गायेद्वा शृणुयाद्वापि सोऽस्माद्दोषाद्विमुच्यते ॥ २४७ ॥
अकालगाने प्रायश्चित्तमनयोरन्यतरत्कुर्यादित्यर्थः ॥

अन्यत्र भी कहा गया है—अकाल गान सुनने से होने वाले दोष के परिहार के लिए शिव और विष्णु की स्तुति करके मध्यमादि का गान करे अथवा सुने, उससे दोष से मुक्ति मिलती है। अकाल गान के प्रायश्चित्त इन दोनों में से किसी एक के द्वारा किया जा सकता है ॥ २४६–२४७ ॥

रत्नमालायाम्—

वसन्तो रामकेरी च गुञ्जरी सुरसाऽपि च।
सर्वस्मिन् गीयते काले नैव दोषोऽभिजायते ॥ २४८ ॥

रत्नमाला में—वसन्त, रामकेरी, गुञ्जरी, सुरसा—ये राग सर्वदा गेय हैं; इसमें किसी प्रकार का दोष नहीं है ॥ २४८ ॥

नारदस्तु विशेषमाह—

दशदण्डान् परं रात्रौ सर्वेषां गानमीरितम् ॥ २४६ ॥ इति।
रागरत्नाकरो ग्रन्थः सर्वानन्दकरः परः।
श्रीघनश्यामदासेन कृतः संक्षेपसंग्रहः ॥ २५० ॥

इति रागरत्नाकरसंग्रहः सम्पूर्णः। श्रीगौडदास श्रीहस्तलिखितम्।

हे नाथ अपराध क्षमा कर।
जनमे जनमे तुया पदेर किङ्कर।
अधम पतित जानिया ना छाड़ किङ्कर ॥

नारद ने विशेष बात कही है—रात्रि में दसघड़ी के बाद सब रागों का गान किया जा सकता है, इसमें दोष नहीं है। सबको आनन्द प्रदान करने वाले इस सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ-राग रत्नाकर का श्रीघनश्यामदास ने संक्षेप में संग्रह किया है ॥ २४६–२५० ॥

इस प्रकार राग-रत्नाकर संग्रह ग्रंथ सम्पूर्ण हुआ। श्री गौड़दास (गौरदास) ने अपने श्रीहस्त से इसे लिखा है। हे नाथ! मेरे अपराध क्षमा करिये। जन्म-जन्म तक तुम्हारे चरणों का दास रहूँ, यही मेरी कामना हैं, अतः अधमपतित जानकर इस दास को छोड़ नहीं देना ॥ २४६–२५० ॥

गीतचन्द्रोदयः

सर्वाभीष्टप्रद श्रीमद्गुरुदेव दयानिधे ।
नानाविघ्नभयान्नित्यं पाहि मां मङ्गलालय ॥ १ ॥

श्रीमन्नवद्वीपवृन्दावनेन्द्रं प्रेमार्णवं पूर्णतमं परेशम् ।
भक्तप्रियं वेदवृन्दैरगम्यं वन्दे सदा गौरगोविन्ददेवम् ॥ २ ॥

राधाकृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनीशक्तिरस्मा–
देकात्मानावपि भुवि पुरा देहभेदं गतौ तौ ।
चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद्द्वयञ्चैक्यमाप्तम्
राधाभावद्युतिसुवलितं नौमि कृष्णस्वरूपम् ॥ ३ ॥

ये गोवर्द्धनमूलकर्दमरसव्यादष्टबर्हाङ्गदा
ये वृन्दावन-कुक्षिषु व्रजवधूलीलोपधानानि च ।
ये चाभ्यङ्गसुगन्धयः कुवलयापीडस्य दानाम्भसा
ते वो मङ्गलमादिशन्तु सततं कंसद्विषो बाहवः ॥ ४ ॥

श्रीनाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो जगत्पते
प्रसीद परमानन्दकन्द हे भक्तवत्सल ।
वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥ ५ ॥

हे करुणासागर, सर्व इच्छापूर्ण करने वाले गुरुदेव, मंगलों के निवासस्थल, आप अनेक विघ्नों की भीति से सर्वदा मेरी रक्षा करें। श्रीनवद्वीप और वृन्दावन के स्वामी, प्रेम के सागर, पूर्णतम और परमेश्वर-स्वरूप, भगवान के प्रिय भक्त अथवा भक्त जिन्हें प्रिय हैं, वेद जिनकी महिमा नहीं जानते, ऐसे गौरांग रूपी गोविन्ददेव को प्रणाम। राधाकृष्ण के प्रणयरूपी विकार को निर्माण करने वाली, जो ह्लादिनी शक्ति है, उससे मूल में एक रूप होने पर भी देहभेद धारण करने वाले इस समय चैतन्य नाम से प्रकट हुए, राधाभावद्युति से संवलित कृष्ण स्वरूप चैतन्य की मैं स्तुति करता हूँ। गोवर्धन पर्वत उठाने से उसके मूल का कीचड़ धारण किये हुए, मयूर-पिच्छ और बाहुभूषणों को लगा, ऐसे बाहु; जो वृन्दावन की गुफा में व्रजवधुओं के लिए लीला से धारण किये हुए तकिये की तरह है; और जो बाहु कुवलयापीड़ हाथी के मदोदक से अभ्यस्त होकर सुगन्धित हुए हैं, ऐसे कंस का नाश करने वाले श्री कृष्ण के बाहु आप लोगों का मंगल करें। हे श्रीकृष्ण, लक्ष्मीपते, करुणासागर, दीनों के बान्धव, जगत के स्वामी, भक्तों पर दया करने वाले, परमानन्द के उद्गमस्थल,

ऐसे आप प्रसन्न हो। जो इच्छाशक्ति के लिए कल्पवृक्ष हैं, करुणासागर हैं, पापियों को पवित्र करने वाले, ऐसे आप वैष्णवों को अनेक प्रणाम ॥ १–५ ॥

किञ्च—

क्वाहं मूर्खतमः क्वेदं सर्पणं रसवारिधेः।
इत्यसम्भवमालोक्य प्रसीद मयि सज्जन ॥ ६ ॥
श्रीगीतानि समालोक्य यानि भक्तकृतानि वै।
संक्षेपात्तानि गृह्यन्ते पौर्वापर्यानुसारतः ॥ ७ ॥
रसज्ञगीतकर्तृणां करुणामवलोकयन् (–लवलोकनात्)।
रचयिष्यामि तद्दोषं क्षमश्रोतः श्रमापह ॥ ८ ॥
गीतचन्द्रोदयाख्योऽयं तापान्धकारहारकः।
परमानन्ददो नित्यनूतनः स प्रकाश्यते ॥ ९ ॥
हे संगीतरसप्रज्ञ सर्वेषां चित्तरञ्जक।
भगवच्चरितं नित्यं गीयतां गीयतां मुदा ॥ १० ॥

मूर्ख से मूर्ख मैं कहाँ और रस-सागर को तैरना कहाँ ? इस असम्भव को देखकर भी सज्जनगण मुझ पर कृपा करें। भक्तों द्वारा प्रणीत जो श्रीगीत हैं, उन्हे देखकर पूर्वापर क्रम से संक्षेप में उन्हें ग्रहण करेंगे। रस जानने वाले गीतकारों की दया को देखकर मैं रचना करूँगा। तो भी मेरे श्रम का हरण करने वाले श्रोतागण मुझे क्षमा करें। गीतचन्द्रोदय नामक यह ग्रंथ ताप एवं अन्धकार को हरण करने वाला है। परमानन्द दायक नित नवीन रूप प्रकट करता है। संगीतरस प्रज्ञ, सबके चित्त को रञ्जित करने वाले भगवान के चरित्र का नित्य गायन कीजिये ॥ ९–१० ॥

तथाहि श्रीचैतन्यचरितामृते (मध्य १।७७):
चण्डीदास विद्यापति, रायेर नाटक गीति
कर्णामृत श्रीगीतगोविन्द।
स्वरूप रामानन्द सने
आस्वादये रात्रि दिने।
गाय शुने परम-आनन्द ॥ ११ ॥
ताहे कबि किछु चिन्ता ना करिहे चिते।
सफल होइबे काव्य प्रभुर इच्छाते ॥ १२ ॥
ताहे कवि प्रभुर चरित्र मनोहर।
शास्त्रमते गद्यपद्ये वर्णे निरन्तर ॥ १३ ॥

विविध प्रकार गीत करह वर्णन।
संस्कृत नानादेशभाषा-विलक्षण ॥ १४ ॥

जैछे छन्दशास्त्रे छन्दनाम बहु हॅय।
तैछे गीत नाम से संगीतशास्त्रे कॅय ॥ १५ ॥

प्रसङ्गे कोहिये एथा गीत विवरण।
नाद हैते गीतेर उत्पत्ति शास्त्रे कॅन ॥ १६ ॥

प्रथमे नादलक्षण किछु जानाइबो।
तदुपरि अल्पे गीतलक्षण कोहिबो ॥ १७ ॥

तत्र नादः—

नाद बिना गीत नोहे नाद सर्वमूल।
देखछो शास्त्रेते नाहि नाद समतूल ॥ १८ ॥

चैतन्य चरित्तामृत (मध्य १।७७) में कहा गया है—चण्डीदास, विद्यापति, राय की नाटक गीति, कर्णामृत, श्रीगीतगोविन्द आदि का स्वरूप रामानन्द के साथ रात-दिन आस्वादन करते हैं और उनका गायन एवं श्रवण परम आनन्द के साथ करते हैं। हे कवि ! मन में किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करना, प्रभु की इच्छा से काव्य सफल होगा। इसमें कवि प्रभु के मनोहर चरित्र का शास्त्रमत से गद्य और पद्य में निरन्तर वर्णन करता है। संस्कृत तथा नाना देशों की भाषा में विलक्षण ढंग से विविध प्रकार के गीतों का वर्णन है। जैसे छन्दशास्त्र में कई छन्दनाम होते हैं वैसे ही संगीतशास्त्र में गीत नाम कहा जाता है। प्रसंगवश यहाँ गीत-विवरण कहते हैं। शास्त्र में कहा गया है कि नाद से गीत की उत्पत्ति है। पहले कुछ नाद-लक्षण बताऊँगा। इसके बाद संक्षेप में गीत-लक्षण कहूँगा। नाद—नाद के विना गीत नहीं है, अतः नाद ही सब का मूल है। शास्त्रों में देखिये नाद की कोई तुलना नहीं है ॥ ११–१८ ॥

तथाहि आग्नेये—

न नादेन विना गीतं न नादेन विना स्वरः।
न नादेन विना रागस्तस्मान्नदात्मकं जगत् ॥ १९ ॥

न नादेन विना ज्ञानं न नादेन विना शिवः।
नादरूपं परं ज्योतिर्नादरूपी स्वयं हरिः ॥ २० ॥

अग्निपुराण में है—नाद के बिना गीत, स्वर और राग नहीं होते। इसलिए सम्पूर्ण जगत नाद स्वरूप है। नाद के विना ज्ञान नहीं, नाद के बिना

शिव भी नहीं; परम ज्योतिरूप जो है वह नाद रूप ही है। स्वयं हरि भी नाद रूप है ॥ १९-२० ॥

आञ्जनेयः—

नादाब्धेस्तुपरं पारं न जानाति सरस्वती।
अद्यापि मज्जनभयात्तुम्बीं वहति वक्षसि ॥ २१ ॥

आञ्जनेय—नादसागर के परपार को सरस्वती भी नहीं जानती। इसलिए डूबने के भय से वक्ष स्थल तुम्बी (वीणा की) धारण करती है ॥ २१ ॥

अथ नादोत्पत्तिप्रकारमाह—

नादोत्पत्ति आकाशाग्निवायु हैते हॅय।
संगीतज्ञगण नानामते निरूपॅय ॥ २२ ॥

नादोत्पत्ति-प्रकार कहते हैं—आकाश, अग्नि और वायु से नाद उत्पन्न होता हैं। संगीतज्ञगण नाना मत से निरूपण करते हैं ॥ २२ ॥

तथाहि भरतः—(संगीतसारसंग्रहः)

आत्मा विवक्षमाणोऽयं मनः प्रेरयते यतः।
देहस्थं वह्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥ २३ ॥

नकारः प्राणवायुः स्याद्दकारो हव्यवाहनः।
ताभ्यामुत्पद्यते यस्मात्तस्मान्नादोऽयमुच्यते ॥ २४ ॥

व्यवहारे त्वसौ नादः प्रोच्यते त्रिविधो बुधैः।
मन्द्रो हृदि स्थितः कण्ठे मध्यस्तारश्च मूर्धनि।
द्विगुणः किल मानेन पूर्वस्मादुत्तरोत्तरः ॥ २५ ॥

भरत का ऐसा कहना है—बोलने की इच्छा होने पर आत्मा मन को प्रेरणा देती है। मन शरीरस्थ अग्नि पर आघात करता है। अग्नि वायु को प्रेरित करती है। नकार प्राणवायु है। दकार अग्नि है। इन दोनों से उत्पन्न होने के कारण नाद कहा जाता है। व्यवहार में यह नाद तीन प्रकार का है। मन्द्र हृदय में, स्वर कण्ठ में, तार स्वर मस्तक में स्थित होता है। पहले से दूसरे, क्रम से उत्तरोत्तर द्विगुणित होते हैं ॥ २३—२५ ॥

कोहलीये तु—

आहतोऽनाहतश्चेति स नादो द्विविधो मतः।
यत्रोभयश्च संयोग आहतः स प्रकीर्तितः ॥ २६ ॥
आकाशसम्भवो नादस्तथानाहत उच्यते।

आहतं नादमाकृष्य तथानाहतसंज्ञकात् ।
तं नादं सप्तधाऽकार्षीत्तथा षड्जादिभिः स्वरैः ॥ २७ ॥ इति ।

कोहलीय—आहत और अनाहत उस नाद के दो प्रकार हैं। जहाँ दो के आघात से नाद हो, वह आहत है। जो सिर्फ आकाश से हो, वह अनाहत है। अनाहत नाद से खींचकर आहत नाद का षड्जादि स्वरों के रूप में सात प्रकार किया गया ॥ २४-२७ ॥

वस्तुतस्तु—

आकाशाग्निमरुज्जातो नाभेरूर्ध्वं समुच्चरन् ।
मुखेऽभिव्यक्तिमायाति यः स नादः प्रकीर्तितः ॥ २८ ॥
स च प्राणिभवोऽप्राणिभवश्चोभयसम्भवः ।
आद्यः कायभवो वीणासम्भवस्तु द्वितीयकः ।
तृतीयश्चापि वंशादिसम्भवः स त्रिधा मतः ॥ २९ ॥ इति ।

(संगीत-मुक्तावली—) आकाश, अग्नि और वायु से उत्पन्न हुआ स्वर नाभि से
ऊपर उठता है और मुख से प्रकट होता है, उसी को नाद कहा गया है। वह तीन
प्रकार का होता है—प्राणी से उत्पन्न, अप्राणी से उत्पन्न और दोनों से उत्पन्न।
पहला शरीर से उत्पन्न होता है, दूसरा वीणा से और तीसरा बांसुरी वगैरह से
उत्पन्न होता है ॥ २८-२९ ॥

श्लोकार्थ सुगम ए विचारे सुखोदय ।
नाद होइते श्रुति आदि क्रमे उपजय ॥ ३० ॥

श्लोक का अर्थ सुगम है, इसका विचार करने से सुख उत्पन्न होता है। नाद से
क्रमशः श्रुति आदि की उत्पत्ति होती है ॥ ३० ॥

तदुक्तं—(संगीतसारसंग्रहः, श्लोक ३८)

नादाच्च श्रुतयो जातास्ताभ्यः षड्जादयः स्वराः ।
[1]तेभ्यस्तु मूर्छनास्ताभ्यस्तानाख्या ग्रामसम्भवः ॥ ३१ ॥ इति ।

नाद से श्रुतियाँ उत्पन्न हुईं। श्रुतियों से षड्जादि स्वर, स्वरों से मूर्छना, मूर्छनाओं से तीनों और ग्रामों की उत्पत्ति हुई ॥ ३१ ॥

अस्यार्थः—

नाद हैते श्रुति द्वाविंश मनोहर ।
श्रुति हैते हय षड्जादिक सप्तस्वर ॥ ३२ ॥

१. द्वितीय पंक्ति-पाठान्तर = तेभ्यः स्युर्मूर्च्छनास्ताभ्यस्तालाख्या ग्रामसम्भवाः ।

स्वर हैते हॅय एकविंशति मूर्छना।
इहा हैते जानो उनपञ्चाशत ताना ।। ३३ ।।

भेदमते पञ्चायुत त्रयस्त्रिंश तान।
ग्रामत्रयक्रमे इथे अशेष विधान ।। ३४ ।। इति नादः।

अथ गीतम्—

नाना ग्रंथे गीतेर लक्षण नानामत।
धातु-मातुयुक्त गीत नारदसम्मत ।। ३५ ।।

धातु कोहि नादात्मक ए' अर्थप्रचार।
नादेर आत्मा स्वरूप होय जार ।। ३६ ।।

गीत-अवयव धातु गुणादि गृहीत।
अलंकार वाक्ये गुणरञ्जकौजस्वित ।। ३७ ।।

मातु कोहि मनुष्येर प्रमोद बाढ़ाय।
प्रमोदेर हेतु रागादिक सर्व जाय ।। ३८ ।।

इसका अर्थ—नाद से बाईस मनोहर श्रुतियों की उत्पत्ति है और श्रुतियों से षड्जादि सात स्वरों की स्वरों से। इक्कीस मूर्छनाएँ बनती हैं और इनसे ४९ (उनचास) तानों की निर्मिति है। मतभेद से पांच हजार तैंतीस तानें हैं। ग्राम तीन हैं, जिनमें अगणित विधान हैं। इति नारद ।। अब गीत—नाना ग्रंथों में गीत-लक्षणों के बारे में विविध मत हैं। नारद के मत के अनुसार धातु-मातु युक्त गीत है। धातु नादात्मक है, इसका इसी अर्थ में प्रचार है और वह नाद की आत्मा है। गुण आदि ग्रहण करने के कारण यह गीत का अवयव है। अलंकार-युक्त वाक्यों में रञ्जकता-ओजस्विता होने से उसे मातु कहा जाता है और वह मनुष्य के आनन्द में वृद्धि करता है। प्रमोद का कारण होने से सभी उसे रागादि कहते हैं ।। ३२–३८ ।।

तथाहि नारदसंहितायाम् (संगीतसारसंग्रह-श्लोकः ३६-३७)
धातुमातुसमायुक्तं गीतमित्यभिधीयते।
तत्र नादात्मकं गेयं धातुरित्यभिधीयते ।। ३९ ।।
गुणादिधारणाद्धातुर्गीतावयव एव सः।
णालङ्कारवाक्येषु रञ्जकौजस्विता यदि।
मातुः स गदितस्तज्ज्ञैर्मानवस्य प्रमोदनात् ।। ४० ।।

सङ्गीत सारे—

गीतस्यावयवो धातुरागादिर्मातुरुच्यते ।। ४१ ।।

नारदसंहिता में—धातु-मातु से जो युक्त है वह गीत कहलाता है। उसमें गाने लायक नादात्मक जो भाग है, उसे धातु कहा जाता है। गुणादि धारण करने के कारण धातु गीत का अवयव ही है। गुणालंकार-युक्त वाक्यों में यदि रञ्जकता और ओजस्विता हो तो वह मनुष्य के लिए आनन्ददायक होने से तज्ञ लोग उसे मातु कहते हैं। संगीतसार में—धातु गीत का अवयव होता है और रागादि को मातु कहा जाता है ॥ ३९–४१ ॥

अथ गीतस्य भेदानाह—

देखह संगीतशास्त्रे विवरिया कॅय।
अनिबद्ध निबद्ध गीतेर भेदद्वय ॥ ४२ ॥

गीत के दो भेद हैं—अनिबद्ध और निबद्ध, जिनके बारे में संगीतशास्त्र में विस्तृत रूप से कहा गया है ॥ ४२ ॥

तथाहि रत्नाकरे—

अनिबद्धं निबद्धञ्च द्विधागीतमुदिरितम् ॥ ४३ ॥

रत्नाकर में कहा गया है—गीत के दो प्रकार हैं—अनिबद्ध और निबद्ध ॥४३॥

तत्रानिबद्धम्—

वर्णादि नियम नाइ अनिबद्ध गीते।
केवल आलाप राग प्रकट जाहाते ॥ ४४ ॥

अनिबद्ध गीत में वर्णादि नियम नहीं है, इसमें केवल आलाप में राग प्रकट होता है ॥ ४४ ॥

रागस्यालापनं प्रकटीकरणम्—

तत्रैव—आलप्तिरनिबद्धं स्याद्रागालापनरूपिणी।
तदुक्तं—आलप्तिर्बद्धहीनत्वादनिबद्धमितीरितम् ॥ ४५ ॥

राग के आलापन का प्रकटीकरण—वह इस प्रकार है—आलप्ति अनिबद्ध है और वह रागालापन रूपिणी है। ऐसा कहा गया है—आबद्ध न रह कर आलप्ति करने को अनिबद्ध कहा जाता है ॥ ४५ ॥

आलापे गमक-वर्ण-अलंकार युक्त।
बहुभंगि मते से आलाप शास्त्रयुक्त ॥ ४६ ॥
आलापेर वर्णशास्त्रे कैलो निरूपण।
आ ता ना ऋट शताब्दी हुंकार रसायन ॥ ४७ ॥

आलाप गमक-वर्ण-अलंकार युक्त होता है। विविध भंगिमाओं से आलाप करना शास्त्रसम्मत है। शास्त्र में आलाप के वर्ण का निरूपण किया गया है तथा आ, ता, ना, ऋ आदि शब्द, हुंकार उपादान का भी ॥ ४६–४७ ॥

तथाहि—

हुंकारान् प्रसरश्चैव यथा वेदस्य ओमिति।
आकारेण हरिः प्रोक्तो ऋकारेण पितामहः ॥ ४८ ॥

नारदसंहितायाम्—

ता-शब्देनोच्यते गौरी ना-शब्देनोच्यते हरः।
तानेति शब्द हुंकारात प्रोक्षाप्यन्ते शनैःशनैः ॥ ४९ ॥ इति।

जैसे वेद में ओंकार है, वैसे ही हुंकार और प्रसर है। आकार से हरि और ऋकार से पितामह है। नारदसंहिता में—ता-शब्द से गौरी का बोध होता है, ना-शब्द से हर का। तान शब्द हुंकार से धीरे-धीरे प्रकट किये जाते हैं ॥ ४८–४९ ॥

पुनः कहि संहितोक्त आलाप ए, हॅय।
स रि ग म प धन्यादि स्वर षड्जादय ॥ ५० ॥

पुनः कहता हूँ—संगीतोक्त आलाप यह होता है। स रि ग म प ध नि आदि षड्जादि स्वर हैं ॥ ५० ॥

स्वरानाह—

षड्जर्षभौ च गान्धारो मध्यमः पञ्चमस्तथा।
धैवतश्च निषादश्च स्वराः सप्तात्र कीर्तिताः।
स रि ग म प ध निश्चेत्येतेषामपराऽभिधा ॥ ५१ ॥

स्वर कहते हैं—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद ये सात स्वर कहे गये हैं। स, रि, ग, म, प, ध, इनके अन्य नाम हैं ॥ ५१ ॥

अनिबद्ध गीत एइ कैलो निरूपण।
देखह संगीतशास्त्रे विशेष लक्षण ॥ ५२ ॥

इत्यनिबद्धः ॥

मैंने यहाँ अनिबद्ध गीत का निरूपण किया है। विशेष लक्षण संगीतशास्त्र में देखिये ॥ ५२ ॥ इति अनिबद्ध ॥

अथ निबद्धमाह—

निबद्धगीते धातु अङ्गबद्ध हॅय।
इथे शुद्ध, छायालग, क्षुद्र भेदत्रय ॥ ५३ ॥

केहो एइ छायालग क्षुद्र गीतद्वये।
सालग, संकीर्ण कोहे एहो युक्त हॅये ॥ ५४ ॥

अब निबद्ध (गीत) कहते हैं—निबद्ध गीत धातु-अंग बद्ध होते हैं। इसके तीन भेद हैं—शुद्ध, छायालग और क्षुद्र। कोई-कोई गुणी इन छायालग एवं क्षुद्र गीतद्वय को सालग, संकीर्ण कहते हैं। इन (शुद्ध और छायालग) का योग अथवा मिश्रण ही संकीर्ण गीति है ॥ ५३–५४ ॥

तथाहि संगीत-रत्नाकरे—(संगीतसार-संग्रह-श्लोकः १५३, १५४)

बद्धं धातुभिरङ्गैश्च निबद्धमभिधीयते।
शुद्धं छायालगं क्षुद्रमिति तच्च त्रिधामतम् ॥ ५५ ॥

तत्र शुद्धमाह—

आलापैर्धातुभिश्चाङ्गैः संयुक्तं शुद्धमुच्यते।
आलापोऽत्र सार्थकपदैरेति साम्प्रदायिकाः ॥ ५६ ॥

संगीतसारे—

शुद्ध-सालग-संकीर्णभेदाद् गीतं त्रिधामतम् ॥ ५७ ॥

संगीत-रत्नाकर में—धातुओं और अंगों से जो रचित है, वह निबद्ध है। उसके तीन प्रकार हैं—शुद्ध, छायालग और क्षुद्र। अब शुद्ध के लक्षण कहता हूँ—आलाप; धातुओं और अंगों से जो युक्त है, वह शुद्ध है। यहाँ आलाप पदों से ही सार्थक होता है। संगीतसार में—गीत के तीन प्रकार हैं—शुद्ध, सालग और संकीर्ण ॥ ५५–५७ ॥

केहो कोहे निबद्ध गीतेर संज्ञात्रय।
प्रबन्ध, वस्तु, रूपक-एहो सुनिश्चय ॥ ५८ ॥

चारि धातु षडङ्गेते प्रबन्ध कल्पित।
शुद्धगीत मध्ये ए' प्रबन्ध निरूपित ॥ ५९ ॥

धातुत्रयादि पञ्चाङ्गे वस्तुनाम कॅय।
द्विधातुक अङ्गद्वये रूपक कॅहय ॥ ६० ॥

कुछ गुणी कहते हैं कि गीत की तीन संज्ञाएँ हैं—प्रबन्ध, वस्तु और रूपक। चार धातु और छः अंगों से युक्त प्रबन्ध है। शुद्धगीत में यह प्रबन्ध निरूपित है। तीन धातुओं और पाँच अंगों से युक्त वस्तु और दो धातु एवं दो अंग होने से रूपक कहलाता है ॥ ५८–६० ॥

तथाहि हरिनायके—(संगीतसारसंग्रह-श्लोकः १५७–१५८)

संज्ञात्रयं निबद्धस्य प्रबन्धो वस्तुरूपकम्।
चतुर्भिर्धातुभिर्बद्धस्त्वङ्गैः षड्भिश्च कल्पितः ॥

प्रकृष्टो यस्य बन्धः स्यात् स प्रबन्धो निगद्यते ॥ ६१ ॥
(एतेन शुद्धगीतमेव प्रबन्ध इत्युच्यते ।)

त्र्यादिभिर्धातुभिश्चाङ्गैः पञ्चभिर्वस्तु कथ्यते ।
द्विधातुकं तथा द्व्यङ्गं रूपकं परिकीर्तितमिति ॥ ६२ ॥

हरिनायक में-निबद्ध गीत की तीन संज्ञाएँ हैं—प्रबन्ध, वस्तु और रूपक। चार धातुओं से रचित, छः अंगों से युक्त ऐसी जो विशिष्ट रचना है, उसे प्रबन्ध कहते हैं। इससे शुद्ध गीत से प्रबन्ध होता है, ऐसा कहा गया है। कम से कम तीन धातुओं और पाँच अंगों से बना हो तो इसे वस्तु कहते हैं। दो धातु और दो अंग हों तो उसे रूपक कहते हैं ॥ ६१–६२ ॥

ऐछे जे निबद्धगीते सङ्गीतज्ञगण।
अनेक प्रकार कोहे कर्णरसायन ॥ ६३ ॥

किन्तु पूर्वपद्ये देखो निबद्धलक्षण।
सेइ क्रममते एवे शुनो दिया मन ॥ ६४ ॥

प्रथमे कहिबो धातु अङ्ग तारपर।
जाते बद्ध हैले निबद्ध मनोहर ॥ ६५ ॥

शुद्ध, सालग, संकीर्ण-निबद्ध एत्रय।
अल्पे जानाइबो जाते कवि-सुखोदय ॥ ६६ ॥

अत्र धातुमाह—

गीत-अवयव धातु गीतज्ञ कोहय।
अवयव जानो भागविशेष निश्चय ॥ ६७ ॥

भाग कोहि उद्ग्राहकमेलापक आर।
ध्रुव, अन्तरा, आमो-प पञ्च प्रकार ॥ ६८ ॥

केहो चतुर्विध केहो त्रिविध कोहये।
केहो मेलापक केहो अन्तरा ग्रहये ॥ ६९ ॥

केहो कोहे ए द्वय ना होय सर्वठाञि।
विचारिबे ए' सकल अल्पेते जानाइ ॥ ७० ॥

चतुर्विध प्रथमे त्रिविध तारपर।
पञ्चविध शेषे ए' सकल सुखाकर ॥ ७१ ॥

अत्र चतुर्विधमाह—

उद्ग्राहक, मेलापक ध्रुवाभोग चाहि ।
उद्ग्राह प्रथम भाग जानो क्रम करि ॥ ७२ ॥

संगीतज्ञगण निबद्धगीत के कई प्रकार बताते हैं, जो कर्ण मधुर हैं । किन्तु निबद्ध के लक्षण इसके पूर्व के पद्यों में देखिये । उनके बारे में मैं क्रमशः कहता हूँ जिसे ध्यान से सुनिये । पहले मैं धातु, अंग कहूँगा और उसके बाद यह बताऊँगा कि जिसमें आबद्ध होने पर वह मनोहर बनता है । निबद्ध तीन प्रकार के हैं—शुद्ध, सालग एवं संकीर्ण । इनके बारे में मैं संक्षेप में बताऊँगा, जिससे सुख की उत्पत्ति हो । अब धातु कहते हैं—गीतज्ञों का कहना है कि धातु गीत का अवयव है, अवयव निश्चय ही भाग विशेष है । भाग कहता हूँ—उद्ग्राहक, मेलापक, ध्रुव, अन्तरा और आभोग-ये पाँच प्रकार हैं । कुछ गुणी चार प्रकार एवं कुछ तीन प्रकार कहते हैं; कोई मेलापक एवं कोई अन्तरा ग्रहण करते हैं । कुछ गुणी कहते हैं कि सब जगह ये दो नहीं होते, इन पर संक्षेप में विचार करेंगे । पहले चार प्रकार बाद में तीन प्रकार और अन्त में पाँच प्रकार—ये सभी सुखकर हैं । अब चतुर्विध कहते हैं—उद्ग्राहक, मेलापक, ध्रुव, आभोग ये चार हैं । उद्ग्राहक प्रथम भाग जानिये ॥ ६३–७२ ॥

तथाहि संगीत-शिरोमणौ—(संगीतसार-संग्रहः १५६-१६०)
(अथ धातुमाह)—

प्रबन्धावयवो[1] धातुः स चतुर्धा प्रकीर्तितः ।
उद्ग्राहक-मेलापक-ध्रुवाऽऽभोग इति क्रमात् ॥ ७३ ॥

उद्ग्राहः प्रथमो भागस्ततो मेलापकः स्मृतः ।
ध्रुवत्वाच्च ध्रुवः पश्चादाभोगस्त्वान्तिमो मतः ॥ ७४ ॥

संगीतशिरोमणि में धातु लक्षण विभाग कहते हैं—प्रबन्ध के अवयव को धातु कहते हैं, वह चार प्रकार का कहा गया है । उद्ग्राहक, मेलापक, ध्रुवा, आभोग—ये उनके क्रम से नाम हैं । प्रथम भाग उद्गाहक, दूसरा मेलापक, अवश्य और पुनः पुनः आने से ध्रुव और अन्तिम भाग आभोग है ॥ ७३–७४ ॥

ध्रुवत्वान्निश्चलत्वात् पुनः पुनरुपादानादित्यर्थः ।

तत्रोदाहरणं यथा मानवः—

शरद्-सुधाकर-निकर-निन्दि मुख
मञ्जुमिलित मृदुहास अमियझरु ।
भाङ् मदन-धनु सघने धुनावत
लोचन-कोणे तिखिन समर सञ्चरु ॥ उद्ग्राह ॥

---

१. अवयवो भागविशेषः ।

शिरे शिखिपिञ्च खचित कुसुमावलि
सौरभे भ्रमत भ्रमरगण झङ्कृत।
कुण्डल श्रुतिजिति कम्बुकण्ठमणिहार
रुचिर कर-वलय अलंकृत ॥ मेलापक ॥
विलसति कुञ्जभवने नटनागर।
व्रजनवरमणी कुञ्जवन कुञ्जरकेलि।
सुनिपुण पिरिति रससागर ॥ ध्रुव ॥
ललित त्रिभङ्ग अङ्ग जलु जलधर।
पहिरण वसन तड़ित सम शोहत।
बाजत मुरली मधुर गरजन घनश्याम-
निछनि शुनि भुवन-विमोहित ॥ ७५ ॥ आभोग ॥

ध्रुव निश्चल का अर्थ है बार-बार उपादान—

उसका उदाहरण जैसे मानव—शरद्शशि-झुण्ड जिससे ईर्ष्या करे ऐसे सुन्दर मुँह के मृदुहास्य से अमृत झर रहा है। कामदेव का धनुष तोड़कर उनके सुन्दर लोचन चारों ओर घूम रहे हैं ॥ उद्ग्राह ॥ सिर पर मयूर पुच्छ शोभायमान है और कुसुमावली की सौरभ से भ्रमर गुन-गुन कर रहे हैं। कानों में कुण्डल, शंख के समान गले में सुन्दर मणिहार एवं कर वलय अलंकृत हैं ॥ मेलापक ॥ ऐसे नटनागर कुञ्ज-भवन में विलसित हैं। व्रज की नवेली रमणियाँ कुञ्जभवन में केलि कर रही हैं, नट-नागर प्रीति के रससागर हैं ॥ ध्रुव ॥ सुन्दर त्रिभंग अंग पर वसन बादल में बिजली के समान शोभायमान हैं। घनश्याम की मुरली बज रही हैं जिसे सुनकर पूरा भुवन विमोहित है। आभोग ॥ ७५ ॥

पुनस्तत्प्रकारान्तरम्—

उद्ग्राह ध्रुव अन्तरा आभोग क्रमेते।
प्रथमादि पादे युक्त एहो एकमते ॥ ७६ ॥

पुनः उसके प्रकारान्तर—क्रमशः उद्ग्राह, ध्रुव; अन्तरा एवं आभोग। एक मत के अनुसार यह प्रथमादि पाद से युक्त है ॥ ७६ ॥

तथाहि संगीत-दामोदरे—(संगीतसार-संग्रह-श्लोकः १६३-१६४)

उद्ग्राहं प्रथमं गीत्वा ध्रुवं गायेत्ततः परम्।
ततोऽन्तराध्रुवस्तस्मादाभोगोध्रुवकस्ततः ॥ ७७ ॥
उद्ग्राहः प्रथमः पादः कथितः पूर्वसूरिभिः।

गीत्वा पूर्वपदं न्यासो यत्र स ध्रुवको मतः ॥
(यत्रैव कविनाम स्यात् स आभोग इति स्मृतः) ॥ ७८ ॥

संगीतदामोदर में कहा गया है—पहले उद्ग्राह गाकर फिर ध्रुवगान करना, उसके बाद अन्तरा, फिर ध्रुव, फिर आभोग और बाद में ध्रुवक। उद्ग्राह को पूर्वाचार्यों ने प्रथम पाद कहा है। पूर्वपद गाने के बाद जहाँ न्यास हो वह ध्रुवक है। जिसमें कविनाम ग्रथित हो उसे आभोग कहते हैं ॥ ७७–७८ ॥

अत्रोदाहरणं यथा वेलावली—

कोटिशरद विधु-जिनि मुखमण्डल
मिलित सुहास अमिय रस चारि।
झलकत दर्शन कुन्द-जिनि मोतिम
अधर सुरङ्ग मदनमदहारि ॥ उद्ग्राह ॥
पेखलुँ रसमय गौरकिशोर।
विदलित कुँकुम तडित हेम-जिनि
तनु रुचि रुचिर तरुणि-चितचोर ॥ ध्रुव ॥
अमल कमलदल लोचन डगमग
भङ्गि मधुर भुरु भ्रमरकि पाँति।
चाँचर चिकण चिकुर परिमण्डित
मालती मल्ली कुसुम बहुभाँति ॥ अन्तरा ॥
कण्ठ कलित मणिहार हरइ द्युति
परिसर-वक्ष क्षीण-कटिदेश।
जानुलम्बिकर चरणचारु गति
नरहरि रचब कि वसन सुवेश ॥ आभोग ॥ ७९ ॥

वेलावली में उदाहरण—जिनके मुखमण्डल पर कोटि शरद् चन्द्र की शोभा है और जो अमृत रस के समान है। कुन्द के समान जो झलकते हैं, जिनके अधर मदन-मद हरण करने के समान हैं ॥ उद्ग्राह ॥ मैंने इस रसमय गौरकिशोर को देखा। अत्यन्त चमकीले कुंकुम, तरुणी-चित्त को हरण करने वाली सुन्दर देह है ॥ ध्रुव ॥ कमल दल के समान लोचन डगमग कर रहे हैं, उन नयनों की भंगिमा जैसे मधुर भवरों की पाँति हैं। कुञ्चित उज्ज्वल केशराशि कई प्रकार के मालती कुसुमों से परिमण्डित है ॥ अन्तरा ॥ कण्ठ में मणिहार चमक रहा है; परिसर वक्ष एवं क्षीण कटि है। पाँव दोलायमान है एवं चरण की चपल गति है; नरहरि कहते हैं, क्या सुन्दर वेश रचा है ॥ आभोग ॥ ७९ ॥

अथ त्रिधातु—

उद्ग्राह, ध्रुव, आभोग, ऐछे केहो कॅय।
क्रमे घटाइबे प्रथमादि पादत्रय ॥ ८० ॥

अब त्रिधातु—उद्ग्राह, ध्रुव एवं आभोग—कुछ गुणी इस प्रकार कहते हैं। इन प्रथमादि पादत्रय को क्रमशः बतायेंगे ॥ ८० ॥

तथाहि शिरोमणौ—

उद्ग्राहः प्रथमः पादः कथितः पूर्वसूरिभिः।
ध्रुवत्वाच्च ध्रुवो मध्य आभोगश्चान्तिमः स्मृतः ॥ ८१ ॥

शिरोमणि में—पूर्वाचार्यों ने उद्ग्राह को प्रथम पाद कहा है। मध्य में ध्रुव और अन्त में आभोग है ॥ ८१ ॥

तत्रोदाहरणं यथा वेलावली—

मञ्जुवदनमृदुहास लसत जनु
विकच-सरोज वरिषे मकरन्द।
लोचन ललित कलित लहुचाहनि
जनु नवतरुणि-नयनमन फन्द ॥ उद्ग्राह ॥
सखि! शचीनन्दन मनमथ भूप।
शिरीष-कुसुम दलि (दल ?) मृदुल कलेवर
निखिल भुवन जनरञ्जन रूप ॥ ध्रुव ॥
कुन्तल कुटिल विलम्बिललित नववेश
विचित्र विरचि अनुपाम।
कुञ्जरगमन-दमन गति मन्थर
मधुरिमभङ्गि निछनि घनश्याम ॥ आभोग ॥ ८२ ॥

वेलावली में उदाहरण—सुन्दर वदन पर मृदुहास्य इस प्रकार दिखायी दे रहा है; जैसे खिले हुए सरोज से मकरन्द की वर्षा हो रही हो। आँखों की सुन्दर दृष्टि जैसे नवतरुणी के नयनमन की मस्त-मोहक दृष्टि है ॥ उद्ग्राह ॥ सखी ! शचिनन्दन मन्मथ भूप। विशेष फूल-दल के समान शरीर है, जो सकल जगत का मन रञ्जन-रूप है ॥ ध्रुव ॥ लम्बे कुटिल कुन्तल एवं विचित्र अनुपम वेश है। कुञ्ज में गमन की गति मन्थर है और मधुर भंगिमा है, घनश्याम बलिहारी है ॥ आभोग ॥ ८२ ॥

अथ पञ्चधातु—

गीते पञ्चधातु केहो कोरिया स्वीकार।
कोरिलो विभाग पुनः शुनो से प्रकार ॥ ८३ ॥

ध्रुवाभोगान्तरे जे अन्तरा धातु हॅय।
सालगसूड़-रूपके स्थित तिंहो कॅय ॥ ८४ ॥

सूड़ कोहि बहुतान युक्त सेइ गीत।
रूपक कोहि रूपक ताले जे निर्मित ॥ ८५ ॥

मेलापक अन्तरा सर्वत्र सदा नॅहे।
ऐछे नाना प्रकारे गीतज्ञ सब कॅहे ॥ ८६ ॥

अब पञ्चधातु—कुछ गुणी गीत में पञ्चधातु स्वीकार करते हैं, उनका जो पुनः विभाग किया जाता है, वे प्रकार सुनिये। ध्रुव और आभोग के बीच में जो अन्तरा है, वह धातु होता है। सालगसूड़ और रूपक में उसकी स्थिति है। बहुतानयुक्त गीत सूड़ है और रूपक ताल में गठित रूपक है। मेलापक अन्तरा सर्वत्र सर्वदा नहीं होता, ये नाना प्रकार के हैं, सब गीतज्ञ कहते हैं ॥ ८३–८६ ॥

हरिनायके—(संगीतसार-संग्रह-श्लोकः १६२ ॥)

ध्रुवाभोगान्तरे जातो धातुरन्योऽन्तराभिधः।
स तु सालगसूडस्थ रूपकेष्वेव दृश्यते।
मेलापकान्तराख्यौ तु न भवेतां क्वचित् क्वचिदिति ॥ ८७ ॥

हरिनायक में—ध्रुवा और आभोग के बीच अन्तरा नामक एक दूसरा धातु होता है। वह सालगसूड़ और रूपक में ही दिखायी देता है। मेलापक और अन्तरा ये दो कहीं कहीं नहीं होते ॥ ८७ ॥

बाहुल्येर भये एथा नारि विस्तारिते।
पञ्चधातु स्पष्ट जानाइये एक गीते ॥ ८८ ॥

बाहुल्य के भय से यहाँ विस्तार से नहीं कह सकता। गीत में पञ्चधातु स्पष्ट किये गये हैं ॥ ८८ ॥

तद्यथा (मालवः)—

मृगमद-नील जलद दलिताञ्जन
तनुरुचि रुचिर विरचि नववेश।
मालती मल्ली-कुसुमे परिमण्डित
चाँचर चिकण चौंर जिनि केश ॥ उद्ग्राह ॥

चञ्चल-चारु-श्रवणमूले कुण्डल
मरकत सुन्दर गण्डतट काँपि।
चन्दन तिलक विचित्र भाल छवि
हेरइते कोटि मदन घन काँपि ॥ मेलापक ॥
पेखलुँ नटवर बरजकिशोर ।
कालिन्दी-तीर तरुण तरुतल तहिँ
विलसत तरुणी-निकर चितचोर ॥ ध्रुव ॥
लहुलहु हास मिलित मुखपङ्कज
अलकावलि अलि आवृत ताय।
बङ्क नयन भुरु सञ्चरु श्रुतिपथ
धैरज धरम देवत उलटाय ॥
सिंहगरवभर-भञ्जन अपरूप
उन्नत गीम परमरुचिकारि।
भुजयुग जानु विलम्बि मधुरतर
परिसर वक्ष वलनि बलिहारि ॥ अन्तरा ॥
कटितट क्षीण नील रसना-पट
पीतवसन पहिरण अनुपाम ।
मन्थर गमन रणित मणि-नूपुर
पदतल ललित निछनि घनश्याम ॥ आभोग ॥
आभोग कहिया भोगे कवि-नाम-हॅय।
कवि नायकेर नाम एकत्रे ओ कॅय ॥ ८६ ॥

जैसे मालव—कस्तूरी के समान सुगन्धित, नील मेघ के समान रंग, अञ्जन सम रुचिकर वेश की रचना की है। सुन्दर कुञ्चित केश मालती मल्ली कुसुम से परिमण्डित हैं। सुन्दर चञ्चल कानों में पहने कुण्डल की मणि गालों के नीचे दोलायमान है। भाल पर विचित्र चन्दन का तिलक है। इस छवि को देखकर कोटि-कोटि मदन भी काँप उठते हैं। मैंने नटवर ब्रजकिशोर को देखा। कालिन्दी के तीर पर तरुतल में तरुणी-समूह का चितचोर विलसित है। ध्रुव पंकज-सम मुँह पर स्मितहास्य है और केशराशि जैसे भँवरों से आवृत है। बाँकी चितावन से देवताओं का भी धीरज छूट जाता है। सिंह-गर्व का भंजन करने वाले अपरूप परम रुचिकर हैं। दोनों भुजाएँ एवं जानु विलम्ब हैं, मधुररत परिसर वक्ष वलनि पर बलिहारी है ॥अन्तरा॥ कटि क्षीण है और अनुपम पीत वसन धारण किये हुए हैं। मंथर गमन से नूपुर-मणि

अनुरणित है। ललित लावण्य पर घनश्याम न्यौछावर हैं ॥ आभोग ॥ आभोग कह कह कर भोग में कवि का नाम रहता है। कवि और नायक दोनों के नाम भी रहते हैं ॥ ८९ ॥

हरिनायके—

यत्रैव कवि नाम स्यात् स आभोग इतीरितः ॥ ९० ॥

हरिनायक में—जहाँ भी कवि नाम रहता है वह आभोग होता है ॥ ९० ॥

शिरोमणौ—

आभोगे कविनाम स्यात्तथा नायकनाम च ॥ ९१ ॥

आभोग में कवि-नाम रहता है और नायक का नाम भी रहता है ॥ ९१ ॥

धातुज्ञान बिना सुख ना बाढये चिते ।
एथा दर्शाइलो जानो संकीर्ण गीतिते ॥
इति धातुः × × ॥ ९२ ॥

धातुज्ञान के बिना चित्त को सुख की प्राप्ति नहीं होती, मैंने यह दर्शाया है। संकीर्ण गीति में इसे जानिये। इति धातु ॥ ९२ ॥

अथाङ्गान्याह—

प्रबन्धेर छॅय अङ्ग कोहे गीतदक्ष ।
पद, ताल, स्वर, पाट, तेन, विरुदाख्य ॥ ९३ ॥

अब अंग कहता हूँ—गीत में दक्ष गुणियों ने प्रबन्ध के छः अंग बताये हैं—पद, ताल, स्वर, पाट, तेन और विरुद ॥ ९३ ॥

तथाहि संगीत-पारिजाते—(संगीतसारसंग्रह-श्लोकः १७०–१७२)

पद-ताल-स्वराः पाटास्तेनो विरुदनामकः ।
इति गीते षडङ्गानि कथितानि मनीषिभिः ॥ ९४ ॥

पदानि वाचकाः शब्दास्तालाश्चच्चत्पुटादयः ।
स्वराः षड्जादयस्ते स्युः पाटो वाद्योद्भवाक्षरम् ।
तेन स्यान्मङ्गलः शब्दो विरुदं गुणनामयुक् ॥ ९५ ॥

संगीत-पारिजात में—प्राचीन संगीतज्ञों ने प्रबन्ध गीति के छः अंग बताये हैं, यथा—पद, ताल, स्वर, पाट, तेन और विरुद। इनमें (१) अर्थवाचक शब्द को पद कहा जाता है; (२) चच्चत्पुट आदि ताल के नाम है; (३) षड्जादि स्वर हैं; (४) वाद्य समुद्भूत अक्षर का नाम पाट है; (५) मांगलिक अर्थ में शब्द-विशेष को तेन कहा जाता है एवं विरुद में गुण-वर्णन और नाम आते हैं ॥ ९५ ॥

अङ्गभेदमते मेदिन्यादि नाम हॅय ।
एकाङ्ग प्रबन्ध नोहे शास्त्रवेत्ता कॅय ॥ ६६ ॥

अंगभेद के अनुसार मेदनी आदि नाम होते हैं। शास्त्रवेताओं का कहना है कि एकांग प्रबन्ध नहीं होता ॥ ६६ ॥

तथाहि कोहलीये—(संगीतसारसंग्रह-श्लोकः १७४-१७५)
षडङ्गा मेदिनी प्रोक्ता पञ्चाङ्गा नन्दिनी तथा ।
दीपनी चतुरङ्गा स्यात् पावनी त्र्यङ्गिका मता ।
द्व्यङ्गा तारावली प्रोक्ता पुराणैर्गीतवेदिभिः ॥ ६७ ॥
[एतेन एकाङ्गप्रबन्धो न भवतीति प्रतिपादितम्]
इथे बहुरीत ताहार विस्तार ना हॅय ।
दिगदर्शन मात्र जानाइये गीत द्वय ॥ ६८ ॥

कोहलीय में—जिस गीत में छः अंग है, उसे मेदिनी कहते हैं, पाँच अंग हों तो नन्दिनी; चार अंग हों तो दीपनी, तीन अंग हों तो पावनी; दो अंग हों तो तारावली ऐसा प्राचीन संगीतज्ञ कहते हैं। [एक अंग का प्रबन्ध नहीं होता।] इससे अधिक इसका विस्तार नहीं है, मैंने गीत द्वय का दिग्दर्शन-मात्र किया है ॥ ६७-६८ ॥

अत्र षडङ्ग (चञ्चत्पुटतालेन नटरागेण)—
जय जय गोवर्द्धनधर माधव गोकुल गोपसुता धृतिमोचन ।
कालिय-विषधर दर्प-विमर्दक केशव कृष्ण कमलदललोचन ।
लोलालक दलिताञ्जनिभ जनरञ्जन घनचन्दन परिमण्डित ।
पीतांशुकधृन ललितकृशोदर मधुरानन नवताण्डव-पण्डित ।
श्रीवृषभानु-तनयीमुखचन्द्र चकोर चतुर सुन्दर सुखसागर ।
पीनवक्षशिखि-पिञ्छविभूषण गोचारणरत रसिक सुनागर ॥
झिकि झिकि झिकि झिकि झाँकृण कृण तक थोङ्ग थोङ्ग
तक थइ थइ थइ थइ ।
करुणाङ्कुरु नरहरि पतिते स स् स रि ग रि तेन्ना ।
ति अइ अ अइ अइ ॥ १।५ ॥ ६६ ॥

नटराग में चञ्चत्पुट ताल में षडङ्ग—गोवर्धन माधव की जय हो, जो गोकुल की गोपसुता के धैर्य का हरण करने वाले हैं, जो विषधर कालिया का दर्प चूर्ण करने वाले केशव कृष्ण हैं, जिनके नयन कमल दल के समान हैं, जो दोलायमान दलिता-

ञ्जन के समान जनरंजक हैं एवं घनचन्दन परिमण्डित हैं, जो उन्नत वक्ष एवं पीत वस्त्रधारी हैं, सुन्दर पतली कमर वाले हैं, जिनका मुख सुन्दर है एवं जो नवताण्डव में पण्डित हैं, जो वृषभानु तनयी (पुत्री) के मुखचन्द्र हैं और चतुर सुखसागर हैं, जो शिखिपिच्छ के आभूषण पहने हुऐ हैं और जो गोचारण-रत रसिक सुनागर हैं... ॥ ९९ ॥

अथ पञ्चाङ्ग—(ब्रह्मतालादौ धानसीरागेण)—

लसंत अतिप्रचण्ड प्रतापे धेनु भुवनवन्दित इआ ।
चञ्चल खुर-रेणुगत दिवि देव वृन्द नन्दित इआ
आवत वन प्रपन्न-रञ्जन गमन मञ्जु कुञ्जर गञ्जन मृदुतर तनु सुचिक्कणाञ्जन ।
नृत्यत दृग नवीन खञ्जन कामिनीगण धैर्यविभञ्जन गोपमध्य विलसत इआ ॥
विकसित सत सरोज कान विजय स्वच्छ
झलकत आनन मञ्जुल अलंकाराlि
अलि सम श्यामरङ्ग तरलित इआ ।
ता ता थिररा मिररा किट झिक् झिक् झाङ्किट ता
झुक झुक झिक् झिक् तेना तिआ इआ इआ आइआ आइया
श्यामघन सुवर्णित इआ ।
बाजत यंत्र सुगान श्रुति-सुरयुक्त मधुरिम छन्द आ ।
वंशीधुनि शुनि राधिका गृह तेजि सहसखीवृन्द इआ ॥
ललित नटवर वेश निरखत नयन अनिमिख नन्द आ ।
प्रबल मनसिज अङ्ग थरहर कम्पगति अतिमन्द आ ॥
ता ता ता कुट ता ता कुट नाकुट ताकु थै ता
थै थै दिग दिग ताथै था ता ता किटि तक थो दि किटि तक थुन्ना
द्रुमकट झाँ झाँ किटि झक झाँकुणा झाँकुणा कुणा कुणा ।
मिलत दृगन्ते निरन्तर दोउको जानत अद्भुत लगना ।
कौतुक अधिक होत व्रजवीथन शोभासिन्धु घनश्याम मगना
दिग दिग थै थै थै थै तथै थै अता धि धिकट धिधिकट तिआ इआ ।
झाँकिन् किन् झाँकिन् किन् किन किन झाँ झाँकिन किन
झाँ झाँकिन कि झाँकुणा झाँकुणा कुणा कुणा ।२।६ ॥ १०० ॥

अब धानसी राग एवं ब्रह्मताल में पञ्चाङ्ग—धेनु-भुवन वन्दित यहाँ पूर्ण प्रताप के साथ शोभायमान है। चञ्चल खुर-उदीरित रेणु के बीच वृन्द-नन्दित शोभायमान हैं। रंजनकारी गमन से मस्त हाथी को भी पराजित करने वाले, मृदुतर तन, चमकीला

अंजन लगाये श्रीकृष्ण कुञ्ज में आ रहे हैं। खंजन के समान उनके नेत्र नाच रहे हैं, वे गोपियों के बीच विलसित हैं, जिससे कामिनियाँ अधीर हो उठती हैं। उनका सुन्दर मुख चमक रहा है, सुन्दर अलंकार शोभायमान है, जैसे सौ-सौ सरोज विकसित हों। वाद्य बज रहे हैं, श्रुति, स्वर युक्त एवं मधुर छन्द में सुगान हो रहा है। वंशी की ध्वनि सुनकर श्री राधिका अपना गृह त्याग कर गोपियों के साथ आ गयी और नटवर का ललित वेश अनिमेष देखती रहीं। मदन के प्रबल बाणों से आहत-सम वह काँपने लगीं। दोनों (श्रीकृष्ण-श्रीराधिका) के नेत्र मिलते ही दोनों को अद्भुत लगने लगा। व्रज में अधिक कौतुक हो रहा था॥ १००॥

ऐछे अङ्गभेदे कवि कोरह वर्णन।
शुद्ध गीतमध्ये ए' सकल निरूपण॥ १०१॥

इस प्रकार अंगभेद का कवि वर्णन करते हैं। शुद्ध गीत में इन सबका निरूपण है॥ १०१॥

अथ शुद्धगीतमाह—

आलाप धातु-अङ्ग संयुक्त शुद्ध हॅय।
आलाप सार्थक पद एथा निरूपॅय॥ १०२॥

अब शुद्ध गीत कहते हैं—आलाप धातु अंग युक्त शुद्ध होता है। आलाप सार्थक पद का यहाँ निरूपण किया गया है॥ १०२॥

हरिनायके—

आलापैर्धातुभिश्चाङ्गैः संयुक्तं शुद्धमुच्यते।
आलापोऽत्र सार्थपदैरेवेति साम्प्रदायिकाः॥ १०३॥

हरिनायक में—आलाप, धातु, अंगों से युक्त गीत को शुद्ध कहा जाता है। साम्प्रदायिकों का कहना है कि यहाँ आलाप पदों से ही सार्थक होता है॥ १०३॥

पूर्वे जानाइलो धातु अङ्गेर प्रकार।
शुद्ध गीत भेद बहु संख्या नाइ तार॥ १०४॥

इसके पूर्व धातु अंग के प्रकार बताये गये हैं। शुद्ध गीत के अधिक भेद नहीं है॥ १०४॥

तथाहि—

भेदः शुद्धप्रबन्धानामानन्त्यादेक एव हि॥ १०५॥

तत्रापि—(संगीतसार-संग्रहः १७८, १७६, १८०)

तातेनैकेन वा द्वाभ्यां त्रिभिर्वा बहुभिस्तथा।
प्रबन्धान् सुकविर्नूनं यथेच्छमुपकल्पयेत् ॥ १०६ ॥

किञ्च—

बहुतानाः प्रबन्धास्तु रागैर्बहुभिरेव च।
एकरागेण वा कल्प्याः पाटादीनां विधानतः ॥ १०७ ॥
आदिमध्यान्तविन्यासात् पाटादीनां विधानतः।
भेदा बहुतरास्तेषां कस्तान् कात्स्न्र्येन वक्ष्यति ॥ १०८ ॥

प्रबन्ध होने से शुद्ध का भेद एक ही है। फिर भी अच्छे कवि एक, दो, तीन या उससे भी ज्यादा तालों से अपनी इच्छानुसार रचना करें। बहुतानों से बहुरागों से अथवा एक राग से पाटादि विधानों से प्रबन्धों की रचना करें। पाटादि आदि में, मध्य में या अन्त में होने से उनके प्रकार बहुत हैं, उनको सम्पूर्णतया कौन कह सकता है ॥ १०५-१०८ ॥

श्लोकार्थ सुगम इथे पाटादि जे कॅय।
देखो अंग मध्ये ए' लक्षण निरूपॅय ॥ १०६ ॥

प्रबन्धादि मध्य-अन्ते वर्णो सुविधाने।
प्रबन्धेर नाम बहु के बा ताहा जाने ॥ ११० ॥

अकारादि षकारान्ताक्षरविन्यासेते।
मातृका प्रबन्ध नाम कोहये शास्त्रेते ॥ १११ ॥

सरगमेत्यादि स्वरनामाक्षरगण।
यथेच्छा विन्यासे स्वरार्थे प्रबन्ध होन ॥ ११२ ॥

एला आदि प्रबन्ध अमेक मत हॅय।
तार मध्ये षड्विंशति केहो प्रकाशय ॥ ११३ ॥

पञ्चताले स्वर अदि जानह शास्त्रेते।
एथा ना कोहिलो ताहा बाहुल्य-भयेते ॥ ११४ ॥

सुश्रावक प्रबन्धे परमानन्द पाइ।
वर्ण स्वर नामे एक प्रबन्ध जानाइ ॥ ११५ ॥

वर्ण स्वर प्रबन्ध ए' लक्षण शास्त्रेते।
स्वर पाट पद तेना वर्णो एइ मते ॥ ११६।

श्लोक का अर्थ सुगम है, जहाँ पाटादि कहे गये हैं। अंग में देखिये इनके लक्षणों का निरूपण किया गया है। प्रबन्ध के आदि, मध्य और अन्त में वर्णों का सुविधान है। प्रबन्ध के कई नाम हैं। उन्हें जानता है। अकार आदि व षकार अन्ताक्षर

विन्यास को शास्त्र में मातृका प्रबन्ध नाम दिया गया है। सरिगम आदि स्वरनामाक्षर हैं। इच्छानुसार विन्यास से स्वरार्थ प्रबन्ध होते हैं। एला आदि प्रबन्ध कई प्रकार के होते हैं। कुछ गुणी उनमें छब्बीस प्रकाशित करते हैं। शास्त्र में पञ्चताल में स्वर आदि जानिये। बाहुल्य भय से मैंने यहाँ नहीं कहा है। सुश्रावक प्रबन्ध से परम आनन्द मिलता है। वर्ण स्वर नाम से एक प्रबन्ध बताते हैं। वर्ण स्वर प्रबन्ध के लक्षण शास्त्र में हैं। इस मत के अनुसार, पाट, पद, तेन वर्ण हैं ॥१०६-११६॥

तथाहि—

स्वरैः पाटैः पदैस्तेनैर्रचना-वाञ्छित-क्रमात्।
यस्य स्यात्तेनकैर्न्यासः सवर्णः स्वर उच्यते॥ ११७॥

अब मैं कहता हूँ—स्वर, पाट, पद, तेन इत्यादि अंगों की रचना इच्छानुसार क्रम से होती है। जिसमें तेनक-न्यास व सवर्ण हो, उसे स्वर कहा जाता है ॥११७॥

तद् यथा (भैरवरागेण)—

जय जय कंसनिसूदन कृष्ण कृपामय कामददेव विभो।
माधव मधु-मुर-नरक-विनाशन गरुडासन परमेश प्रभो॥
नन्द-तनुजवर पुष्कर-लोचन निखिलयुवतिधृतिधर्मविमोचन नीलजल
दमदहर रुचिरोचन चारु चतुर चन्द्रानन
नव नव नर्तन पटु नट सुन्दर हे।
ता द्मि द्मि थइ थोङ्ग थोङ्ग तक धो धिगि धिगि
झेङ्कु झेङ्कु नक झाङ्कृण कृण शरणागतरक्षक
विश्वम्भरो धृतमञ्जु-धराधर वृन्दाविपिन-पुरन्दर हे।
हे जगदीश जनार्दन अघ-वकमर्दन मुदवर्द्धन जनरञ्जन।
सारि गरि गारग पम्म रिगरि स सस्सरिर्गारि भवभयभरभञ्जन॥
यदुकुल-कमल दिवाकर केशव पुरुषोत्तम एइ अइ ति आ।
आइ अइ अ तेन्ना नरहरिमव गोकुलवल्लभ ऐ तिइ आ॥ ११७॥११८॥

भैरव राग में—हे कंस को मारने वाले कृष्ण तेरी जय हो। तुम दयालु और मदन सुन्दर हो। व्यापक हो। तुम लक्ष्मीपति, मधु, मुर और नरक नामक असुरों को मारने वाले, सर्व सत्ताधीश हो। नन्द के पुत्रों में श्रेष्ठ, कमल-लोचन और सब स्त्रियों का धर्म और धैर्य नष्ट करने वाले हो। नील मेघ की कान्ति को जीतने वाले, अन्तःकरण में प्रिय लगने वाले, सुन्दर, कुशल और चन्द्र की तरह मुखवाले हो। नवीन-नवीन नर्तनों में निष्णात, नटों में सुन्दर हो। आश्रय में आनेवालों पर दया करने वाले हो। तुम विश्व का भरण-पोषण करने वाले, सुन्दर पर्वत को धारण करने वाले, वृन्दावन के इन्द्र हो। हे जगत के स्वामी, जनमर्दन करने वाले, अघा-

सुर को मारने वाले, आनन्द बढ़ाने वाले और लोगों का रञ्जन करने वाले हो। यदुकुल में कमल की तरह शोभा पाने वाले लोगों को प्रफुल्लित करने वाले सूर्य हो। हे केशव, पुरुषोत्तम, हे गोकुलप्रिय नरहरि कवि की रक्षा करो।१।७।। ११८।।

कोहिलो ए' एक ऐछे वर्णो नानामते।
शुद्धगीतप्राय छायालग से शास्त्रेते।। ११६।।

अथ छायालगमाह—

शुद्ध छायालग्न हैले छायालग हॅय।
शुद्धेर लक्षण हैते कुछ भेद कॅय।। १२०।।
छायालगे सूड़ प्रबन्धाति मनोहर।
बहुताल वाद्यमते वर्णे कवीश्वर।। १२१।।

यह मैंने एक गीत बताया है। इस प्रकार नाना प्रकार से वर्णन है। शुद्ध गीत युक्त छायालग होता है, जैसा कि शास्त्रों में बताया गया है। अब छायालग कहता हूँ—शुद्ध गीत की छाया युक्त होने पर छायालग होता है। शुद्ध के लक्षण कुछ भिन्न कहे जाते हैं। छायालग में सूड़ प्रबन्ध अति मनोहर है। कवीश्वर ने इनका कई तालों और वाद्यों के साथ वर्णन किया है।। ११६–१२१।।

तथाहि—

शुद्धस्य लगतिच्छायां यत्तु छायालगं विदुः।
रञ्जकं तद्भवेत्तालैर्वाद्याद्यैः सूड-कल्पितम्।। १२२।।

भरतादि मुनि ऐछे कैलो निरूपण।
शुद्ध-छायामते ए' सालगसूड हॅन।।
छायालग नामान्तर रसालग निश्चय।
बहुतालयुक्त मते सूड़ निरूपय।।
दामोदर श्रीपञ्चमसारसंहिताते।
ध्रुवकादि निरूपिलो सालगसूड़ेते।। १२३।।

तथाहि—

ध्रुवको मण्ठकश्चैव प्रतिमण्ठो निशारुकः।
रासकः प्रतितालश्च तथान्या चैकतालिका।।
यतिश्च झूमरीचेति सालगं सूडमीरितम्।। १२४।।

ध्रुवकादिभेद बहुशास्त्रेते प्रचार।
ध्रुवक षोड़श मण्ठे षष्ठ आर।। १२५।।

शुद्ध की छाया रहने पर उस गीत को विद्वानों ने छायालग कहा है। ताल-वाद्य आदि से सूड़ की कल्पना की गयी है, जो रंजक है। भरतादि मुनियों ने इस प्रकार निरूपण किया है। शुद्ध-छाया से यह सालगसूड़ होता है। छायालग का नामान्तर रसालग है। बहुताल युक्त होने पर सूड़ रूप में निरूपित किया जाता है। दामोदर ने श्रीपंचमसारसंहिता में ध्रुवकादि का निरूपण सालगसूड़ में किया है। दामोदर पंचमसारसंहिता में ध्रुवक, मण्ठक, प्रतिमण्ठ, निःशारुक, रासक, प्रतिताल वैसे ही एकतालिका, यति और झूमरी को सालगसूड़ कहा है। ध्रुवकादि के भेद का कई शास्त्रों में प्रचार है। ध्रुवक के सोलह और मण्ठ के छः भेद हैं॥ १२२-१२५॥

तत्र ध्रुवलक्षणमाह—

ध्रुवगीतलक्षण जानहशास्त्रमते। वर्णिबे समानमात्रा उद्ग्राह ध्रुवेते।
उद्ग्राह प्रथम खण्ड शास्त्रे निरूपय। इथे द्वित्रि मात्राधिक किंवा सम हॅय।
ध्रुवधातु उच्चगान उद्ग्राह होइते। ध्रुवकोदाहरण जानाइ एक गीते॥१२६॥

अब ध्रुव के लक्षण कहते हैं—ध्रुवगीत के लक्षण शास्त्रमत से जानिये। ध्रुव में उद्ग्राह समान मात्रा का वर्णित होगा। शास्त्र में निरूपित है कि उद्ग्राह प्रथम खण्ड में है। इसमें दो-तीन मात्राधिक्य किंवा समान होता है। ध्रुवधातु उद्ग्राह से उच्च गान है। एक गीत में ध्रुवक का उदाहरण देते हैं॥ १२६॥

[आदितालेन मल्लाररागेण]

जय जय सुन्दर नन्दतनुज दलिताञ्जननिभ जनरञ्जनु आ।
कमलदलेक्षण गोकुलवल्लभ गोपसुताधृतिमञ्जननु आ रे।
॥ प्रथम खण्ड !

यमुनापुलिन-विभूषण रसमय-वेणुवाद्यरत नृत्यत्तरो।
मुरहर गोवर्धनधर अभ्रमुपति मदमर्दन ति आइ आइ आ रे॥
॥ इत्युच्चखण्ड ॥ ध्रुव ॥

मधुरानन मानद मुदवर्द्धन मधुसूदन भव-बन्ध विभो।
शरणागतरक्षक वर-करुणामय नरहरिमव अइ ति इ आ रे॥ १२७॥

[मल्लारराग में आदिताल में]—हे सुन्दर नन्दतनुज (नन्दपुत्र) तुम घोटे हुए कज्जल की तरह कान्तिमान हो। लोगों का मनरञ्जन करने वाले, कमल की पंखुड़ियों की तरह आँखों वाले, सब गोकुल के प्रिय, गोपस्त्रियों की धृति (धैर्य) भग्न करने वाले, यमुना के बालुकामय प्रदेश में भूषण की तरह, रस से भरे हुए वेणु बजाने में निमग्न, नृत्य के जैसे बड़े वृक्ष, मुर नामक राक्षस को मारने वाले, गोवर्धन उठाकर धारण करने वाले, अभ्रमु नामक हस्तिनी का जो पति ऐरावत

की तरह है, उसका मदमर्दन करने वाले हो। तुम्हारा मुख माधुर्यपूर्ण है। सबको मान देने वाले, आनन्द बढ़ाने वाले हो। मधु नामक दैत्य को मारने वाले, सारे संसार के वन्दनीय हो। व्यापक हो। अपने आश्रय में आने वालों का रक्षण करने वालों में श्रेष्ठ हो। दयारस से भरे हुए तुम नरहरि कवि की रक्ष करो ॥ १२७ ॥

ध्रुवेर लक्षण आर चतुर्विध हॅय।
एथा प्रकाशिते नारि विस्तारेर भय ॥ १२८ ॥

ध्रुव के लक्षण और चार प्रकार के होते हैं। विस्तार के भय से यहाँ उन पर प्रकाश नहीं डाला जा सकता ॥ १२८ ॥

अथ मण्ठलक्षणमाह—

मण्ठ उद्ग्राह आभोग सममात्रा कॅय।
ध्रुवे मात्रा द्विगुणत्रामार्द्धगुण कॅय ॥ १२९ ॥

तथाहि—

स स्यान्मण्ठकलक्षणो यदि समानुग्राहका भोगकावुद्ग्राहा-
द्विगुणोऽथ सार्द्धगुणको वा स्याद्ध्रुवस्तत्र च ॥ १३० ॥

तदुक्तं हरिनायकेन—

साम्यं यत्र तु मात्राया उद्ग्राहाभोगयोरथेति ॥ १३१ ॥

अब मण्ठ का लक्षण कहते हैं—जिसमें उद्ग्राह और आभोग सममात्रा हो वह मण्ठ है और ध्रुव में उद्ग्राह से द्विगुण या डेढ़ी मात्रा कही गयी है। उसे अब कहता हूँ। इसके उदाहरण का पद्य भी नीचे है। जिसमें उद्ग्राह आभोग हों और ध्रुव उद्ग्राह के जितना अथवा डेढ़ा हो, वह मण्ठक है। हरिनायक ने भी कहा हैं—उद्ग्राह और आभोग की जहाँ सम है ॥ १२९–१३१ ॥

उदाहरणमादितालेन मल्लाररागेण—

कृष्ण कृपामय मंगलविग्रहविश्वभयाग्रह देव हवे।
गोप कुलोत्सव-वर्द्धन माधव गोवर्द्धनधर ति आइ आइ आ रे ॥

॥ इत्युद्ग्राहः ॥

श्रीवृन्दावन-भूपति आ आ।
राधामुख-सरसीरुह-मधुकर नन्दतनुज रसकंद ति आरे ॥

[इति सार्द्धैकगुणमात्रे ध्रुवः]

पीताम्बर सुर-वन्द्य गदाग्रज सुन्दर नटवर शौरे।
कंसरिपो मुर-मर्दन घननिभ घनश्याम सब ऐ इ आ रे ॥

इत्याभोगः ॥ २ ॥ १३२ ॥

उदाहरण मल्लारराग में आदिताल में—हे दया से भरे हुए कृष्ण, तुम्हारा शरीर मंगलमय है। तुम सम्पूर्ण विश्व स्वरूप हो। गोपालों के समूह का आनन्द बढ़ाने वाले, लक्ष्मीपति और गोवर्द्धन पर्वत धारण करने वाले हो॥ इति उद्ग्राह॥ वृन्दावन के राजा हो। राधा के मुख रूपी कमाल का मधुपान मरने वाले भ्रमर हो। नन्द के पुत्र और रस के बीजभूत कन्द हो। तुमने पीताम्बर धारण किया है। तम सब देवों को वन्दनीय हो। गद के बड़े भाई हो। सुन्दर और नटों में श्रेष्ठ हो। शूरसेन के कुल में उत्पन्न हो। कंस के शत्रु, मुर नामक असुर को मारने वाले, मेघ की तरह श्यामवर्ण हो। इति आभोग॥ १३२॥

सालगसूड़ेर एइ दिग्दरशन। विस्तारिया ए' सब वर्णइ कविगण।
क्षुद्रगीत नामान्तर संकीर्ण कॅहय। पूर्वे निरूपिलो इहा जानिबे निश्चय॥१३३॥

सालगसूड़ का यही दिग्दर्शन है कवियों ने इसका विस्तार से वर्णन किया है। क्षुद्रगीत का नामांतर संकीर्ण है, जिसका निरूपण पहले किया गया है, जिसे जानिये॥ १३३॥

अथ क्षुद्रगीतमाह—

तालि-धातुयुक्त वाक्यमात्रक्षुद्रगीत।
इथे ध्रुव मण्ठादिक-लक्षण किञ्चित॥ १३४॥

तथाहि—

तालधातुयुतं वाक्यमात्रं क्षुद्रमितीर्यते।
बाहुल्येनेष्यते ह्यत्र ध्रुवमण्ठादिलक्षणम्॥ १३५॥

क्षुद्रगीते अन्त्य-अनुप्रास सुनिश्चय।
देखह शास्त्रज्ञगण विवरिया कॅय॥ १३६॥

तथाहि—सर्वयोऽप्यनुप्रासस्तेष्वन्त्यस्यैव निश्चयः।

(आन्त्यस्यानुप्रासस्य) तदुक्तम्—

पज्झटिकायां विरुदावल्यां च क्षुद्रगीतादौ।
अन्त्यानुप्रासोऽयं निवेशनीयो विशेषज्ञैः॥ इति॥ १३७॥

अन्त्यानुप्रासः यथा दर्पणे—

व्यञ्जनं चेद् यथावस्थं पूर्वस्वर-समन्वितम्।
आवर्ततेऽन्त्ययोज्यत्वादन्त्यानुप्रास उच्यते॥ १३८॥

क्षुद्रगीतस्य भेदानाह—

क्षुद्र ीतभेद कॅहि चित्रपदा आर।
चित्रकला ध्रुवपदा पाञ्चाली प्रचार॥ १३६॥

अब क्षुद्रगीत कहते हैं—तालधातु युक्त वाक्य मात्र क्षुद्रगीत है। इसमें किंचित् ध्रुव-मण्ठादि के लक्षण रहते हैं। अब कहते हैं—ताल-धातु युक्त जो वाक्य मात्र है उसे क्षुद्र कहते हैं, प्रायः इसमें ध्रुव-मण्ठादि लक्षण रहते हैं। क्षुद्रगीत में अन्त्यानुप्रास निश्चित रूप में रहता है। शास्त्रज्ञों ने विस्तृत रूप से कहा है, वह देखिये। अब कहते हैं—अनुप्रास सर्वत्र प्रयुक्त होने पर भी उनमें निश्चय ही अन्त में रहता है। वह कहा है—पज्झटिका में, विरुदावली में और क्षुद्रगीतादि में विशेषज्ञों को अन्त्यानुपास रखना चाहिए। अन्त्यानुप्रास के लक्षण दर्पण में इस प्रकार हैं—पूर्वस्वर के सहित यथावस्थित व्यञ्जन की आवृति के अन्त में प्रयुक्त हो, तो वह अन्त्यानुप्रास होता है। क्षुद्रगीत के भेद कहते हैं—क्षुद्रगीत के भेद हैं—चित्रपदा, चित्रकला, ध्रुवपदा और पाञ्चाली॥ १३४–१३९॥

तत्र चित्रपदामाह—

केवल पदवैचित्र्ये चित्रपदा हॅय।
इथे धातुवैचित्र्यादि नोहे ए' निश्चय॥
अकठोर-अनुप्रास-प्रसादादिगुणे।
युक्तपद-वैचित्र्यार्थ जानो पुनः पुनः॥ १४०॥

तथाहि—

केवलं पदमात्रेण वैचित्र्यं यत्र दृश्यते।
न धात्वादौ विचित्रत्वं ज्ञेया चित्रपदेति सा॥ १४१॥
(पदवैचित्र्यन्तु अकठोरानुप्रास प्रसादादि गुणयुक्तत्वम्)

उदाहरणम् (गुण्डकिरीरागेण।

कलयति नयनं दिशि दिशि वलितं।
पङ्कजमिव मृदुमारुत-चलितमिति॥
(जगन्नाथवल्लभनाटके)॥ १४२॥

अब चित्रपदा कहते हैं—केवल पदवैचित्र्य में चित्रपदा है। यह निश्चय है कि यहाँ धातुवैचित्र्यादि नहीं है। मृदु अनुप्रास-प्रसादिगुण में युक्त पद वैचित्र्यार्थ जानिये। अब कहते हैं—केवल पदमात्र से जहाँ वैचित्र्य दिखायी देता है। धातु वगैरह में विचित्रता नहीं होती, उसे चित्रपदा कहते हैं। उदाहरण गुण्डकिरी राग में—प्रत्येक

दिशा में नयन घुमाकर आकलन करते हैं, जैसे कि मन्द वायु से कमल हिल रहे हों (जगन्नाथ वल्लभ नाटक में) ॥ १४०–१४२ ॥

यथा वा (सारङ्गरागेण)—

कुन्दल कनक कलित कर कङ्कण कालिन्दी कूलविहारी।
कुञ्चित कच केशर कुसुमाकुल कामिनी करधारी॥
जय जय जगजीवन यदुवीर।
जलधर जिति सुजोति यछुमोहित युवतीयूथ अरिवर॥ ध्रु०।
पदुमिनी-पाणि परशे पुलकायित परिजन-प्रेम पसारि।
पहिरण पीत पतनि पतिताञ्चल पदपङ्कज परचारि॥
रमणीरमण रतन रुचिरानन रतिरञ्जित रणरास (?)।
रसनारोचन रसिक-रसायन रचयति गोविन्ददास॥ १॥ १४३॥

सारंग राग में—कालिन्दी तीर विहारी के शुद्ध स्वर्ण करकंकण सुशोभित हैं, घुंघराले बाल हैं, केशर चर्चित है और फूलों से सुसज्जित कामिनी का कर धारण किये हुए जगजीवन यदुवीर की जय हो। मेघ के समान जिनकी ज्योति समस्त युवतियों को मोहित करती है। पद्मिनी का हाथ स्पर्श करने से प्रसन्न होते हैं और परिजनों में प्रेम का संचार करते हैं। पीत वसन पहनने को है, आंचल पतित है, पंकज के समान पद है। रमणियों में रमण करने वाले रतन की आँखें सुन्दर हैं। रंजित रुचिकर छत्रनियुक्त रसिक रसायन की रचना गोविन्ददास करते है॥१४३॥

अथ चित्रकलामाह—

उद्ग्राह आभोगे मात्रासम निरूपॅय।
ध्रुवे मात्रा न्यून होइले चित्रकला कॅय॥ १४४॥
इहाते त्रिपाद चतुष्पादादि प्रचार।
अष्टपाद पर्यन्त ए' सीमा-सुनिर्द्धार॥ १४५॥

तथाहि—

उद्ग्राहाभोगयोर्मात्रा समा न्यूना ध्रुवे यदि।
त्र्याद्याष्टावधिपादाढ्या ज्ञेया चित्रकला हि सा॥ १४६॥

यथा श्रीगीतगोविन्दे (गुर्जरीरागेण)—

हरिरभिसरति वहति मृदुपवने।
किमपरमधिकसमं सखि भवने।
माधवे सा कुरु मानिनि मानमये॥ ध्रुव॥

(इत्याद्यनन्तुरमाभोगः)॥ १४७।

अब चित्रकला कहते हैं—उद्ग्राह और आभोग में मात्रा सम होने, ध्रुव में मात्रा कम होने पर चित्रकला कहते हैं। इसमें त्रिपाद चतुष्पादादि का प्रचार है। इसकी सीमा अष्टपाद तक निर्धारित है। अब कहते हैं—उद्ग्राह और आभोग में मात्रा सम हो और ध्रुव में कम हो, तीन से आठ तक चरण हों तो वह चित्रकला है। जैसे गीतगोविन्द में (गुर्जरी राग में) मन्द पवन बह रहा है और हरि अभिसरण कर रहे हैं। हे सखि, घर में इससे अधिक क्या है। हे मानिनी, माधव के विषय में मान मत कर॥ ध्रुव॥ (इसके बाद आभोग)॥ १४४–१४७॥

पुनः (मयूररागेण)—

मुखरित मुरली मिलित मुखमोदने मरकत मुकुर मैलान।
मानिनी मान सखन मुचकारति मुनिमानस मूरुछाल॥
माइ मोहन मूरति मुरारि।
मनइते मरमे मनोरथ-माधुरी मनमथ मनमथ मारि॥ ध्रु०॥
मुकुलित मल्ली मधुर-मधु माधवी मालती-मञ्जुलमाला।
मन्द-मरन्द मुदित मत्त मधुकर मण्डित मौलिमन्दार॥
माथहिं मौर मुकुट मद-मन्थर रमणीमण्डल मन मान।
मञ्जु मञ्जीर-महिम महिमामय गोविन्ददास गुणगान॥ १४८॥

सुन्दर मुख पर मुरली मुखरित है जैसे मरकत (पन्ना) और दर्पण का मिलन हुआ है। माननी मन ही मन मुस्कराती है जिससे मुनिगण चकित हो जाते हैं। हे भाई! ऐसे मोहनमूर्ति मुरारी है। कामदेव के बाणों से अन्तर में मधुर मनोरथ की सृष्टि होती है॥ ध्रु०॥ मल्लिकालता मुकुलित है, मधुर मधु माधवीलता, मालती मंजुलमाला फैली हुई है। मन्द मकरन्द से मुदित मधुकर श्रेष्ठ मन्दार को मण्डित किये हुए हैं। सिर पर मोरमुकुट है। मन्दार गति से चलते हुए रमणियों का मन हरण करते हैं। सुन्दर नूपुर शोभायमान है ऐसे कृष्ण का गोविन्ददास गुणगान करते हैं॥ १४८॥

अथ ध्रुवपदामाह—

चित्रपदा चित्रकलालक्षण संयुक्त।
ध्रुवपदागीत एइ जानो शास्त्र उक्त॥
केहो कोहे इथे ध्रुवाभोग-पदद्वय।
केहो कोहे उद्ग्राह ध्रुवाभोगत्रय॥
केहो कोहे ध्रुवान्तराभोग इहाते।
ध्रुवपदा गीत अति सुगम शास्त्रेते॥ १४९॥

एतत्क्रमेणोदाहरणं यथा (मल्लाररागेण)—

जय जय नटनागर रससागर गिरिधारी।
सुन्दरवर वसन-चौर अञ्जननिभ नवकिशोर। तरुणीधृतिभञ्जन
जनरञ्जन गुणभारी ॥ ध्रुव ॥
मुरलीधर परमधीर शोभाकर वरजवीर मन्मथमदहर
सरसिज-लोचन रुचिकारी।
यमुनाजल-केलिदक्ष सुतनुशयनशेज वक्ष-मञ्जुल मुखचन्द्रकिरण
नरहरि बलिहारी ॥ १५० ॥

(गुर्जरीरागेणादितालेन)—

केशव कमलदलेक्षण कामद – कान्त मुरान्तक कलित सुरेश।
नन्दतनुज जनरञ्जन भवभय – भञ्जन कञ्जचरणकमलेश ॥ उद्ग्राह ॥
जय जय गोप बधुवदनाम्बुज – मत्त मधुप मकरध्वज-भूप।
पीताम्बर बर नागर रसमय मञ्जुल भुज दलिताञ्जन रूप ॥ ध्रुव ॥
परमानन्द – कन्द मधुराधर – मुरलीवाद्यधुरन्धर धीर।
नरहरिमव मधुसूदन माधव गोवर्धन गोकुलवीर ॥ १५१ ॥

चित्रपदा—चित्रकला के लक्षणों के संयुक्त रूप को ध्रुवपद गीत जानिये, ऐसा शास्त्रोक्त है। कुछ गुणी इसमें ध्रुव-आभोग पदद्वय कहते हैं, जबकि कुछ गुणी उद्ग्राह-ध्रुव-आभोग तीन पद कहते हैं। कुछ गुणी कहते हैं कि इनमें ध्रुव-अन्तरा-आभोग हैं। शास्त्र में ध्रुवपद गीत अति सुगम हैं। इनका क्रमशः उदाहरण (मल्लारराग में)—नटनागर रससागर गिरधारी की जय हो। सुन्दरतम वसनधारी, अञ्जनयुक्त नवकिशोर तरुणियों का धैर्य हरण करने वाले जनरञ्जन गुणागार हैं। मुरलीधर परमधीर शोभाकर, वीर, मन्मथमदहर, सुन्दर पद्मसम लोचन रुचिकर हैं। यमुनाजल में केलि करने में दक्ष, सुन्दर देह, मंजुल वक्ष, चन्द्र रूपी मुख वाले पर नरहरि बलिहारी है। गुर्जरी (गुज्जरी) राग में, आदि ताल में—हे केशव, हे कमलपत्र की तरह नयन वाले, हे कामनापूर्ण करने वाले, हे मुर को मारने वाले, हे इन्द्र को स्वाधीन रखने वाले, हे नन्दसुत, हे लोकमनोरञ्जन, हे संसार की भीति नष्ट करने वाले, हे कमल की तरह चरण वाले, हे कमलापते ॥ उदग्राह ॥ गोपस्त्री के मुख कमल का मधुपान करके उन्मत्त होने वाले, हे मदनराज, तेरी जय हो। हे पीत वस्त्र धारण करने वाले श्रेष्ठ नागरिक, रसरूप, सुन्दर हस्त वाले, घोटे काजल की तरह कृष्ण-रूप ॥ ध्रुव ॥ परमानन्द के मूल कन्दरूप, मधुर अधरोष्ठ से मुरलीवाद्य वादन के धुरन्धर धीर, हे मधुसूदन माधव गोवर्धन धारण करने वाले, गोकुल के वीर (तेरे भक्त) नरहरि का रक्षण करो ॥ आभोग ॥ १४९–१५१ ॥

(केदाररागेण)—

देख देख सोइ मुरतिमय नेह ।
काञ्चन कान्ति सुधा जिनि मधुरिम, नयन चमक भरि लेह ॥ ध्रुव ॥
श्यामल वरण मधुरस-औषधि पुरुव यो गोकुल माह ।
उपजल जगत युवती उमता-लअ याक सौरभ परवाह ॥
यो रस-वरज गोपीकुचमण्डल मण्डल-वर करि राखि ।
ते भेल गौर गौड़ अव आओल प्रकट प्रेम सुरशाखी ॥ अन्तरा ॥
सकल भुवन सुख कीर्तन–सम्पद माति रहल दिनराति ।
भवदव कौन कौन कलिकल्मष याँहा हरिवल्लभ भाँति* ॥ १५२ ॥

केदार राग में—इस प्रेमपूर्ण मूर्ति को देखो । काँचन कान्ति, सुधा के समान मधुर नयनों में चमक भरी है ॥ ध्रुव ॥ श्यामल वरण है, गोकुल में वह मधुर रस स्वरूप है । इससे युवतियों में सौरभ का प्रवाह उमड़ पड़ता है । इस रस प्रवाह को गोपीदल अपने केशमण्डल में बाँध रखता है । इससे इस क्षेत्र में प्रेम का प्रवाह बह चलता है । समस्त क्षेत्र दिन-रात सुखप्रद कीर्तन की सम्पद से चमक रहा है । हरिवल्लभ के समान संसार की कालिमा को नष्ट करने वाला और कौन है ।।१५२।।

यथ पाञ्चालीमाह—

बहुपदे पाञ्चाली शास्त्रेते निरुपय । सध्रुव अध्रुव से द्विविध सुनिश्चय ॥१५३॥

तदुक्तं हरिनायकेन—

पाञ्चालैर्बहुभिः पादैर्द्विविधा सध्रुवाऽध्रुवा ।
(ध्रुवसहिता ध्रुवरहिता च) ॥ १५४ ॥

---

* द्वितीय पुस्तक में अतिरिक्त पद—

आजु नृत्यत सरस गौरसुन्दर वरण । रुचिर चन्दनतिलकलसत भूषण विविध पहुपमाला चपल चारु नहि पट भरन ॥ मधुर हस्तक अंभंगि-शोभा अतुल भुवनमंगल अमललित युगपगधरण । प्रिय गदाधर वदन हसत अवलोकि उर उमगि बहुरंग मृदु-हसत जनमनहरण । चतुरवर भकत चहु ओर लिये नव यंत्र नव ,गाओत सुधंग जनु अमृत लागे झरण । कोन शकि वरणि उह राग-रागिणी सकल भेद सुधन्या स ग्रह अंश संशयभरण । सरीगमपधनि सुरसप्त सुविकार बहुश्रुति द्वाविंश अरु ग्रामत्रय दुखदरण ॥ स्थायी आरोह अवरोह सञ्चारी शुभमूर्च्छना एकविंशति कठिन संकीरण । विदित संगीतविद्यानिपुण मञ्जुतर ताल-पाटादि शुनि मगन जय सुरल रल । श्यामघन प्रभुचरित छाया दश दिश धन्य-धन्य कलिमे यो विहरत सबहि सुखकरण ॥ ६ ॥
(एइ पदे बहु अशुद्धि आछे) ।

ए' सुलभ गौड़े पाञ्चाली प्रसिद्ध हय।
ऐछे भाषान्तरे कवि यथेष्ट वर्णय॥

संगीतसारे—

एवं भाषान्तरे ज्ञेयं गीतं गीतविशारदैः॥ १५५॥
बाहुल्य-भयेते उदाहरण ना दिये।
भाषा प्रसंगेते गीत प्रकार कहिये॥
दिव्यगीत जानह मानुषगीत आर।
दिव्यमानुष गीत ए' तिन प्रकार॥
संस्कृत दिव्य प्राकृत मानुष कय।
संस्कृत-प्राकृते दिव्यमानुष हय॥
देशभाषा वर्णने मानुष कहे केहो।
देश अंग बंग कलिंगादि व्यक्त सेहो॥
जे देशे जे भाषा सेइ देशे से सुन्दर।
से से भाषाते काव्य रचे कवीश्वर॥ १५६॥

अब पाञ्चाली कहते हैं—शास्त्र में पाञ्चाली बहुपदायुक्त बतायी गयी है। यह दो प्रकार की होती है सध्रुव और अध्रुव। हरिनायक ने कहा है—पाञ्चाली अनेक पदों से युक्त दो प्रकार की है—सध्रुवा और अध्रुआ=ध्रुवसहित व ध्रुवरहित। गौड़ देश में यह सुलभ पाञ्चाली प्रसिद्ध है। भाषान्तर में कवि ने यथेष्ट रूप में वर्णन किया है। संगीत-सार में—गीतविशारदों ने भाषान्तर में गीत बताया है। बाहुल्य भय से उदाहरण न देकर भाषा-प्रसंग से गीत प्रकार कहा है। दिव्यगीत, मानुषगीत और दिव्यमानुष-गीत—ये तीन प्रकार के जानिये। संस्कृत में रचित गीत दिव्य, प्राकृत में रचित गीत मानुष कहलाते हैं और संस्कृत-प्राकृत में रचित गीत दिव्यमानुष कहलाते हैं। देश-भाषा में रचित गीत को कुछ गुणी मानुष कहते हैं। देशभाषा का तात्पर्य है, अंग, बंग, कलिंगादि। जिस देश की जो भाषा है उसी भाषा में कवीश्वर गीत रचते हैं॥ १५३—१५६॥

संगीत-रत्नाकरे—

दिव्यञ्च मानुषञ्चैव गीतं स्याद्दिव्यमानुषम्।
दिव्यं संस्कृतसम्पन्नं मानुषं प्राकृतोत्थितम्॥
संस्कृत-प्राकृतोत्थञ्च दिव्यमानुषमुच्यते।
केचिद्देशविशेषोत्थभाषया मानुषं विदुः॥
अंग-बंग-कलिंगाद्या देशभाषादिहेतवः।
येषु येषु च देशेषु या भाषाश्चैकवल्लभाः।
तास्तु तत्तज्जलालापादाहृत्य प्रतियोजयेत्॥ १५७॥

संगीतरत्नाकर में—दिव्य और मानुष दो प्रकार के गीत दिव्यमानुष कहलाते हैं। संस्कृत सम्पन्न दिव्य और प्राकृत युक्त मानुष हैं और दोनों से युक्त दिव्यमानुष। किसी-किसी देश विशेष की भाषा से बना हुआ गीत मानुष है, ऐसा विज्ञजन कहते हैं। अंग, बंग, कलिंगादि देशभाषाएँ हैं, जिस-जिस देश में जो-जो भाषा प्रचलित है, उस-उस भाषा को उन-उन जनों के आलाप से लेकर गीत में योजना करनी चाहिए ॥ १५७ ॥

तत्र दिव्यं यथा—

(वसन्तरागेण) [जगन्नाथवल्लभनाटक १।२८]

कलय सखे भुवि सारम् ।
त्वदुपगमादिव सरसमिदं मम वृन्दावनमनुवारम् ॥ ध्रुव ॥
अपरिचितं तव रूपमिदं वत पश्य दिवोचितखेलम् ।
ललितविकस्वर-कुसुमचयैरिव हसति चिरादतिवेलम् ।
मृदुपवनाहति-चञ्चल-पल्लवकरनिकरैरिव कामम् ।
नर्तितुमुपदिशतीव भवन्तं सन्तमिदमभिरामम् ॥
सुखयतु गजपतिरुद्रमनोहरमनुदिनमिदमभिधानम् ।
रामानन्दराय-कविरचितं रसिकजनं सुविधानम् ॥ १५८ ॥

इसमें दिव्य इस प्रकार है—(वसन्तराग में) [जगन्नाथवल्लभनाटक १।२८] हे सखे ! इस भूमि में सारभूत यह वृन्दावन है ऐसा समझो। तुम्हारे आने से यह रस मय हुआ है। मुझे पद-पद पर ऐसा लगता हैं। तुम्हारा यह रूप परिचित होते हुए भी अपरिचित-सा दिन में क्रीड़ा के लिए उचित लगता है। यह वृन्दावन सुन्दर-फूले हुए फूलों के समूह से प्रतिक्षण मानों हँस रहा है। मन्द वायु के झोंकों से हिलने वाले पल्लव रूपी कर-समूह से अत्यन्त सुन्दर लगने वाला यह मानों आप को नृत्य का उपदेश दे रहा है। शिवजी का मनहरण करने वाला यह रोज-रोज सबकों सुख दे। रसिकजन की सुविधा के लिए यह रामानन्द कवि द्वारा रचित है ॥ १५८ ॥

अथ मानुषं यथा—

(गौडभाषायां धानसीरागेण)

कि मधुर वृन्दाविपिन-शोभा । आहा मरि मुनिमानस लोभा ।
मिलियाछे तरु तरुर भाले । नाना लता तरु बेड़ाछे भाले ॥
फुटियाछे फूल कतेक भाँति । मधुलोभे अलि रैयाछे माति ।
शारीशुक पिकु गायचे रंगे । नाचये मयूर, मयूरी-संगे ॥

हंस सारसादि कालिन्दीतीरे। नाना रवे कतो कौतुके फिरे।
चारिपाशे किवा कालिन्दीधारा। निरमल रारि काजलपारा॥
तीरे तरुशाखा परशे नीर। दोले वायु-छले ना रहे थिर।
मृगमृगीकुल कुलेते गिया। पिये वारि हेरि के धरे हिया॥
अपरूप भूमि माधुरी किये। हेन नाहि किछु उपमा दिये।
सदा छय ऋतु सेवे ये सुखे। कि कहब नरहरि एक मुखे॥
—इयमेव पाञ्चाली॥ १५६॥

अथ दिव्यमानुषोदाहरणं यथा—

जय जय श्रीनदीया सुखधाम।
अद्भुत वसति वसत चतुराश्रम जहि नितिनिति उत्सव अनुपाम॥ ध्रुव॥
अष्टसिद्धि नवनिधि आदि प्रतिमन्दिरे निरत फिरत जनुदान।
धर्म, अर्थ अरु काम मोक्षगणे गणत न कोउ करत उपहास।
प्रबल प्रताप तापत्रयभञ्जन नवधा भक्ति-दीप्त अनिवार।
निर्मल प्रेमपूर्ण अहर्निशि यहि थिरचर सततरहत मातोयार॥
विविध भाँति गृह लसत स्वच्छपुरी वेष्टित सुरधनी धवल सुपानी।
जनु नव कुन्द कुसुम-मुकुतास्रज जनुशशिखण्ड उदय अनुमानि॥
शोभा नव नव वृन्दावन-सम षड्ऋतु सेवित सरस दिगन्त।
मञ्जु महामहिमा महि विस्तृत गायत फणिप ना पायत अन्त।
सुरसह सुरवह हर चतुरानन ध्यानधरत उर हरष अपार।
भण घनश्याम सो पहुँ परिकर संगे निरखर कब उह भूमि माझार
॥ १६०॥

अब मानुष जैसे—गौड़भाषा में, धानसी राग में—वृन्दाविपिन की क्या अद्भुत शोभा है, जो मुनियों के मन को मोह लेती है। वृक्ष वृक्ष से मिले हुए है और विभिन्न लताएँ उन्हें घेरे हुए हैं। कई प्रकार के फूल खिले हुए हैं और मधु के लोभ से भँवरे मत्त हैं। सारी-शुक-पिक रंग में नाच रहे हैं और मयूर-मयूरी एक साथ नाच रहे हैं। कालिन्दीतीर पर हंस-सारस नानाध्वनि करते हुए कौतुक के साथ फिर रहे हैं चारों ओर क्या अद्भुत कालिन्दी धारा है, निर्मल जलधारा जैसे काजल-रेखा बना रही है। तीर पर तरुशाखा जल का स्पर्श कर रही है और वायु के कारण लताएं दोलायमान हैं, वे स्थिर नहीं रह सकतीं। मृग-मृगी दल तीर पर जाकर जलपान करते हैं, यह देखकर कौन धैर्य धर सकता है। यह भूमि कितनी मधुर है; इसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती। छहों ऋतुओं में जो इसका

सुख से सेवन करते हैं उनके बारे में नरहरि क्या कह सकता है। यही पाञ्चाली है॥ १५९॥

अब दिव्यमानुष का उदाहरण—श्री नदिया सुखधाम की जय हो। यहाँ अद्भुत चतुरा-श्रम का वास है; जहाँ नित नये उत्सव होते हैं। ध्रुव। प्रतिमन्दिर में अष्टसिद्धि; नवनिधि प्रतिनिष्ठित है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कामना न करते हुए भक्त उनका उपहास करते हैं। प्रबल प्रताप तापत्रयभञ्जन नवधा भक्ति अनवरत दीप्त है। निर्मल प्रेमपूर्ण भावना में जो यहाँ स्थिरचित्त से मत्त रहते हैं। विविधप्रकार के घरों वाली स्वच्छपुरी स्वच्छ जलधारा से वेष्ठित हैं। नवकुन्द कुसुमास्रज है, जैसे शशिखण्ड का उदय हुआ है। वृन्दावन के समान इस नव-नव शोभा का छहों ऋतुओं में चारों दिशाओं में सेवन होता है। इस सुन्दर महिमामय भूमि की महिमा विस्तृत है, जिसका सर्पपति (शेषनाग) गान करते है, जिसका कोई अन्त नहीं है। सुरसह सुखदायक शिव-ब्रह्मा ध्यान धरते हैं और उनके हृदय में अपार हर्ष है। घनश्याम कहते हैं कि इस भूमि में उस स्वामी का परिजन सहित कब दर्शन किये हैं॥ १६०॥

एइ गीत किछु संस्कृतमिश्र हय।
इथे जे विशेष ना कहि बाहुल्य भय॥
कहिलुँ मानुष-संज्ञा प्राकृतोत्थ गीत।
प्राकृत लक्षण पद्ये जानिह किंचित्॥
तथाहि प्राकृत सर्वस्वे प्राकृतं संस्कृतात्
एतत् तत् भवेत् प्राकृतमुच्यते॥
जानह प्राकृत संस्कृत हैते हय।
संस्कृत सम आर देशी निरूपय॥ १६१॥

इस गीत में कुछ संस्कृत मिश्र रहता है। इसमें जो विशेष है, बाहुल्य भय से उस पर प्रकाश नहीं डाला गया है। प्रकृतोत्थ गीत को मानुष कहा गया है। प्राकृत के कुछ लक्षण पद्य से जानिये। प्राकृत सर्वस्व में—संस्कृत से बना हुआ विकार प्राकृत कहा जाता है। संस्कृत के विकार रूप में उद्भूत को प्राकृत जानिये। संस्कृत सम और देशी का निरूपण किया जाता है॥ १६१॥

अत्रैव—

तद्भवं तत्समश्चेति द्वेधा देश्यं च केचन।
तद्भवं रुक्ख घरपेरन्तादि।
तत्समं तरलतरंगमन्दारादि।
देश्यं देश्यं लड़हपेट चोक्यमादि।
इथे बहु भेद ताहा ना हय प्रचार

पुनः कहि गीतभेद त्रिविध प्रकार ।।
सम, अर्द्धसम आर विषम ए' हय।
समेते समान जानो पादचतुष्टय ।।
अर्द्धसम प्रथम तृतीय सम हन ।
द्वितीय चतुर्थपाद-सम-निरूपण ।।
विषम पृथक् चिह्न चारिपाद हय ।
एइत त्रिविध गीत संगीतज्ञ कय ।। १६२ ।।

जैसे—तद्भव और तत्सम दो प्रकार के देशज हैं। तद्भव रुक्ष घरपेरन्तादि और तत्सम तरल रंगमन्दरादि है। देशज-देशज लड़-लपेट शुद्ध आदि है। यहाँ कई भेद हैं जिनका प्रचार नहीं है। मैं पुनः कहता हूँ कि गीत के तीन प्रकार के भेद हैं—सम, अर्द्धसम और विषम। सम में समान पादचतुष्टय जानिये। अर्द्धसम में प्रथम एवं तृतीय पाद सम होता है और द्वितीय एवं चतुर्थ पाद में सम का निरूपण होता है। विषम चारों पाद पृथक् चिह्न के होते हैं। ये ही त्रिविध गीत संगीतज्ञ कहते हैं ।। १६२ ।।

तदुक्तं कोहलीये—

सममर्द्धसमञ्चेति विषमं गीतकं त्रिधा।
पादैः समानमात्रैस्तु चतुर्भिः सममुच्यते ।।
तृतीय-प्रथमौ पादौ समौ तु द्वि-चतुर्थकौ ।
जायेते यस्य गीतस्य तदर्द्धसममीरितम् ।।
चत्वारोऽपि पृथक् पादा यस्य मात्रानुसंख्यया।
तद्गीतं विषमं प्राहुर्मुनयो भरतादयः ।। १६३ ।।

कोहलीय में कहा गया है—सम, अर्धसम और विषम ये गीत के तीन प्रकार हैं। समान थात्रा वाले चार पाद जिसमें हों वह सम कहा जाता है। पहला और तीसरा तथा दूसरा चौथा सम हो वह अर्धसम कहलाता है। मात्रा की दृष्टि से चारों पाद अलग-अलग हों वह विषम है। ऐसा भरतादि मुनियों ने कहा है ।। १६३ ।।

समार्द्धसम विषम गीत ये प्रकार।
बाहुल्येर भये नाहि करिते विस्तार ।।
सम हइते अर्द्धसमे बहुविध हय।
विषमे त्रिविध मत शास्त्रे निरूपय ।।
ए सकल व्यक्त महाकविकृत गीते।
विचारि वर्णिवे सुख उपजये याते ।।

गीतचन्द्रोदय ग्रंथ करिये प्रचार।
इहाते पाइबे गीत अनेक प्रकार॥
तथापिह क्रमे एथा कहि किछु गीत।
जाहार श्रवणे कवि चित्ते जन्मे प्रीत॥ १६४॥

सम, अर्धसम और विषम के जो प्रकार हैं, बाहुल्य के भय से उन पर विस्तार से प्रकाश नहीं डाला गया है। सम से अर्धसम में कई प्रकार होते हैं। विषम के तीन प्रकार हैं जिनका शास्त्रों में निरूपण है। इन सब को महाकवि-कृत गीतों में व्यक्त किया गया है। विचार कर वर्णन करने पर जिनसे सुख की उत्पत्ति होती है। गीतचन्द्रोदय ग्रंथ का प्रचार किया गया है। इसमें कई प्रकार के गीत मिलेंगे। फिर भी यहाँ क्रमशः कुछ गीत कहता हूँ जिनके श्रवण से कवि-चित्त में प्रीति की उत्पत्ति होती है॥ १६४॥

तत्र समोदाहरणं यथा (धानसीरागेण)—

जय जय सुन्दर गौरकिशोर। निखिल भुवन-मन लोचन चोर।
संकीर्तन रस लम्पट देव। पशुपति चतुरानन-कृतसेव॥
करुणालय कलिकलमषहारी। शरणागतरक्षक सुखकारी।
चन्द्रानन जनरञ्जन रूप। नरहरि पतितनाथ गणभूम॥ १६५॥

(पुनः वराडी रागेण)—

कुटिल कुन्तल कुसुम काँचनि कान्ति कुवलय भास।
कुञ्चिताधर कुमुद कौमुदी कुन्द कैरव हास॥
कानु कालिन्दी कुल कानने कुञ्ज कुञ्जरराज।
कामिनी कुच-कुंकुमाञ्चित काम-कोटि विराज॥
कनक-किंकिनी कंकणास्पद कुण्डलाञ्चित अंश।
केलि कोकिल-कण्ठ कुण्ठक काकलीकृत-वंश॥
केशरि कटि कम्बु-कण्ठक कञ्जकेशर दाम।
(कलि) काल कालिय कवल-कम्पित दासगोविन्द नाम॥१६६॥

सम का उदाहरण (धानसी राग में) निखिल भुवन-मन को चुराने वाले सुन्दर गौर किशोर की जय हो। संकीर्तन का रस चुराने वाले देव, शिव व ब्रह्मा सेवित, करुणा के सागर, कलि की कालिमा हरण करने वाले, शरणागत रक्षक, सुखकारी, चन्द्रसम मुखवाले और जनचित्त को रंजित करने वाला रूप है। नरहरि कहते हैं कि वे पतितनाथ गणभूम हैं। पुनः वराड़ी राग में—घुंघराले बाल, फूलों की बाँधनी है, भूमण्डल में कान्ति भाषित है। कुंचित अधर पर ज्योति व चन्द्र समहास है। कृष्ण कालिन्दी तीरस्थ कानन में कुंज हस्तिराज है। कामिनी का वक्ष कुंकुमांचित

है, काम कोटि विराज करते है। स्वर्ण किंकिणी कंकणास्पद है और कुण्डलांचित अंश है। कोकिल कंठ कुण्ठक काकलीकृत वंश है। सिंह सम कटि, नाना वर्ण युक्त कण्ठक, कंजकेशर दाम है। कलिकाल नाग ग्रास से कम्पित दास गोविन्द नाम है॥ १६५-१६६॥

अथार्द्धसमोदाहरणं यथा (देशीरागेण)—

रसमय नन्दकिशोर। त्रिभुवन जनचितचोर॥
जय जय सुन्दर श्यामशरीर। गोकुल-कुलजा-रतिरणधीर।
चन्द्रवदन गुणधाम। मनमथ मोहन श्याम॥
वंशीवाद्यनिपुण सुखकारी। नरहरिवल्लभ विपिनविहारी॥ १६७॥

(पुनः धानसीरागेण)—

जय जय व्रजकुलचन्द। व्रजरमणीगण-लोचनफन्द।
अभिनव कुञ्जविहारी। रसमय-नागर गिरिवरधारी॥
केलिकलहपटु धीर। अञ्जन-घन जयि श्यामशरीर।
गीतनिपुण गुणधाम। नरहरि मुदवर्द्धन घनश्याम॥ १६८॥

(पुनः कर्णाटरागेण)—

कृष्णनन्द गोपनन्दना। जयकृष्ण मन्दहास वदना॥
कंकण-किंकिणी केयूरभूषण कौस्तुभमणि राजिता।
कृष्ण पद्मनिन्दि-चरणा। वञ्जुल समवीथी-चलना॥
इन्दुकोटिजयि नखमणिदर्पण दण्डित घनतिमिरा।
कृष्ण-राजदंकललिता। मदगजराजवर्षचलिता॥
मञ्जुल-शिञ्जित मञ्जीर-चुम्बित-चञ्चल माल्यतटा।
कृष्ण हाटक-रुचि-वसना। नवरसनाटक मणिरसना॥
नीभिसरोवर-तीरसमुत्थित-वीचिवलिश्रितया।
कृष्ण कुन्ददासचपला। बन्धुरतुन्दशोभि-तरला॥
वक्षसि भृगुपतिलक्षण सक्षण इन्दिरांकरुचिरा।
कृष्णपीन-बाहु-युगला। नियत नवीनरंगकुशला॥
राधिका-सुखस.गर नागर सुन्दराजनयना।
कृष्ण-कर्णलम्बि कुण्डला, कुवलयवर्णनीलकुन्तला॥
भालरञ्जि तिलकावलि नासिक दण्डरोचिरतुला।
कृष्ण वंशवाद्यचतुरा लसदवतंसपिञ्छ-मधुरा॥
नीलकञ्जघन-पुञ्जजिष्णु मणिजैष्णु नव्यसुषमा।

कृष्णरासलास्य विदिता। मधुरविलास नृत्यमुदिता ॥
वल्लभीनयनाञ्जन रञ्जित मञ्जु दशनवसना ॥ १६६ ॥

अब अर्द्धसम का उदाहरण (देशी राग में)—रस के सागर नन्दकिशोर तीनों लोकों के चितचोर हैं। सुन्दरश्याम शरीर वाले की जय हो। गोकुल जात रतिकेलि में धीर हैं। चन्द्रवदन गुणधाम हैं और मदन को भी मोहित करने वाले श्याम हैं। वंशीवाद्य वादन में निपुण गुणकारी हैं। नरहरि के प्रिय विपिन विहारी है ॥ १६७ ॥

पुनः धानसी राग में—व्रजकुल के चन्द और व्रजरमणियों के नयनों के तारे अभिनव कुंजविहारी, रसमय-सागर, गिरिवरधारी, केलि में निपुण एवं धीर, घन-अंजन के समान श्यामशरीर, गीतनिपुण गुणधाम और नरहरि की प्रीति वढ़ाने वाले घनश्याम की जय हो ॥ १६८ ॥

पुनः कर्णाट राग में—हे नन्दगोपा के पुत्र मन्दहास्ययुक्त मुखवाले, आपकी जय हो। हाथ में कंकण है, छोटी-छोटी किंकणी युक्त बाहुभूषण धारण किये हैं। कौस्तुभमणि से सुशोभित हैं। हे कृष्ण आपके चरण कमल को भी तुच्छ कर रहे हैं। पाणवेत से युक्त और समतल मार्ग से चलने वाले, कोटिचन्द्र जैसी आपके नखरूपी रत्नों की शोभा है। बड़ा अंधकार भी आपकी प्रभा से दूर होता है। हे कृष्ण राजा रंक सबको आप अच्छे लगते हैं। मदोन्मत्त हाथी की तरह आपका चलना है। मंजीर की मञ्जुल ध्वनि है और हिलनेवाली मालाएँ धारण किये हैं। सुवर्ण कांति जैसा वस्त्र धारण किये हैं। नवरसों का अभिनय करने में आप निपुण हैं। आपकी कटि मेखला रत्नयुक्त है। नाभिरूपी सरोवर से उठी हुई तरंगें मानो पेट पर वलीत्रय के रूप में हैं। हे कृष्ण, आप कुन्दपुष्प की कांति को हराये हैं। ऊँचा-नीचा वढ़ा हुआ पेट सुशोभित है। आप चंचल जैसे दीखते हैं। वक्षः स्थल पर भृगु के लता प्रहार का भूषण धारण किये हैं। लक्ष्मी आपके अंक सेवा के लिए सज्ज हैं। पुष्ट कर युग्म है। हमेशा नये-नये रंग जमाने में कुशल हैं। राधा के लिए आप सुख का सागर हैं जिसके सर्वांग, विशेषतः नेत्र अति सुन्दर हैं। काले लम्बे बाल है। नील कमल की तरह वे शोभायमान हैं। भाल प्रदेश तिलक से सुशोभित है। सरल नासिका दण्ड की शोभा अति सुन्दर है। हे कृष्ण ! आप वंशीवादन में निपुण है। मयूर-पिच्छ भूषण की तरह शोभायमान है। नीलकमल, मेघसमूह, उसकी कांति को जीतने वाली आपकी परम शोभा है। आप रास नामक लास्य (स्त्रीनृत्य) करने में चतुर हैं। अनेक मधुर हावभावों से नृत्य से आप सर्वविदित हैं। गोपवालिकाओं के मन-रञ्जन करने वाले और सुन्दर रक्त वर्ण ओष्ठ हैं ॥ १६९ ॥

अथ विषमोदाहरणम् यथा (नटरागेण)—

मृदुल-मलयज-पवन-तरलित चिकुर-परिगत-कल्यपकम् ।
साचि-तरलित-नयन मन्मथ-शंकुसंकुलचित्त-सुन्दरीजन जनितकौतुकम् ॥

मनसिज–केलि–नन्दित–मानसम् ।
भजत मधुरिपुमिन्दु–सुन्दर–वल्लवीमुख–लालसम् ॥ ध्रुव ॥

लघुतरलित कन्दरं हासितलवमतिसुन्दरम् ।
गजपति–प्रतापरुद्र–हृदयानुगतमनुदिनम् ।
सरसं रचयति रामानन्द-राय इति चारुसंगीतम् ॥ १७० ॥

अब विषम-उदाहण (नटराग में)—मलय पर्वत से मन्द पवन से हिलने वाले केशकलाप चारों ओर बिखरे हुए हैं। मदत के तीरों से जिनका चित्त कीलित हुआ हैं, जिनके नयन तिरछे और चंचल हैं, ऐसी सुन्दर स्त्रियों को जिससे कौतुक होता है। मदन-क्रीड़ा से जहाँ मन आनन्दित है। चन्द्रमुखी गोपस्त्री के मुख से लालायित ऐसे मधुसूदन को भजो। जलद हिलने वाली ग्रीवा जिसकी है, जिसका हास्य अति मनोहर हैं। गजपति प्रतापरुद्र के हृदय में रोज रहने वाला। रामानन्द राय ने रस-मय होकर जिसकी रचना की है, ऐसा यह सुन्दर संगीत है ॥ १७० ॥

। इति त्रिविधः ।

ओहे विज्ञ अल्पे गीत-लक्षण कहिल ।
संस्कृत-भाषा–गीते दिग्दर्शाइल ॥
यदि कह महाकविकृत-भाषागीते ।
गुरुवर्णे लघुपाठ ना पारि बूझिते ॥
ताहा जानो छन्द–अनुरोधेर कारण ।
गुरुवर्णे लघुपाठ आछे ए' लक्षण ॥
पिंगलादि छन्दोग्रंथे देखह ए' प्रथा ।
तथापि गुरुलघु-नियम कहि एथा ॥
विसर्गानुस्वारयुक्त वर्ण गुरु हय ।
दीर्घगुरु वर्ण संयोगादि गुरु कय ॥
पाद-अन्ते लघु हय गुरु कवि कल्पेते ।
पादसंज्ञा जानो पद्य चतुर्थभागेते ॥ १७१ ॥

हे विज्ञजन ! मैंने संक्षेप में गीत के लक्षण कहे हैं। संस्कृत व भाषा के गीतों में दिखाया गया है। यदि महाकविकृत भाषागीत की बात करो तो गुरुवर्ण में लघु पाठ में नहीं समझ सकता। उसे छन्द के अनुसार जानिये। गुरुवर्ण में लघुपाठ के लक्षण हैं। इस प्रथा को पिंगलादि छन्दग्रंथ में देखिये; फिर भी गुरु-लघु नियम मैं

यहाँ कहता हूँ। विसर्ग-अनुस्वार युक्त वर्ण गुरु होता है। दीर्घ गुरु और वर्ण संयोगादि गुरु होता है। पाद के अन्तस्थ लघु विकल्प से गुरु होता है। पाद-संज्ञा पद्य के चतुर्थ भाग में जानिये ॥ १७१ ॥

तथाहि वृत्तरत्नाकरे—

अनुस्वारी च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा[1] ॥ १७२ ॥

इथे अपवाद कहि शुन दिया मन।
इहि बिन्दुयुक्त गुरु विकल्पेते हन।
एओ वर्णमिलित विकल्पे गुरु हय।
प्रह्लादि-संयोग आदि गुरु ऐछे कय ॥ १७३ ॥

वृत्तरत्नाकर में—अनुस्वारयुक्त, दीर्घ, सविसर्ग और संयुक्ताक्षर का पूर्वाक्षर गुरु होता है। पादान्तस्थ विकल्प से गुरु होता है। यहाँ एक अपवाद बताता हूँ, मन लगा कर सुनो। विकल्प से बिन्दू युक्त गुरु होता है। यह भी कि विकल्प से वर्ण मिलित गुरु होता है। प्रह्लादि (शब्दध्वनि) संयोग आदि का गुरु होता है ॥ १७२–१७३ ॥

तथाहि पिंगले—

इह आरा बिन्दु जुआ एओ सुध्वां-वत्व मिलि आविलहु।
रह रञ्जन संजोत्र पवे असेसम्पि होइ सरिहासम् ॥ १७४ ॥

पुन आर अपवाद कहिये ताहाय।
ए' अति सुगम याते कवि सुख पाय ॥
यदि दीर्घ द्विवर्ण लघु पढये जिह्वाय।
से हय विकल्पे लघु जान सर्वथाय ॥
दुई तिन वर्ण लघु शीघ्र उच्चारणे।
एक करि जान ता पिंगल मुनि भणे ॥ १७५ ॥

पिंगल में—बिन्दुयुक्त विकल्प से गुरु होता हैं, यह भी विकल्प से वर्णमिलित गुरु होता है। शब्दध्वनि के संयोग का आदि का गुरु होता है। इसमें और अपवाद कहता हूँ। यह अति सुगम है जिसमें कवि को सुख मिलता है। यदि दीर्घ द्विवर्ण का जिह्वा से उच्चारण किया जाय तो विकल्प से लघु होता है। दो तीन लघु वर्ण का शीघ्र उच्चारण किया जाय तो पिंगल मुनि के अनुसार उसे एक जानिये ॥ १७४–१७५ ॥

---

१. अतिरिक्त—तत्रैव, चतुर्थपद्यभागस्तु पादः सद्भिर्निगद्यते। श्लोकतुर्यांशपाद इत्यर्थः पादान्ते गुरुरपि लघुर्लघोश्च गुरु विवक्षा भवेत्।

तत्रैव—

जइ दीहो वि-अवल्लोल हु जीहा पढइ सो विलहु।
वन्नो रितु विअ पढिओ दो तिन्न एक्क जानेहु ।। १७६ ।।

एकमात्रा ह्रस्व द्विमात्रा से दीर्घ हय।
त्रिमात्रा प्लुत व्यञ्जन अर्द्धमात्रा कय ।। १७७ ।।

यदि दीर्घ द्विवर्ण का जिह्वा से उच्चारण किया जाय तो विकल्प में लघु होता है। दो तीन लघु वर्ण का शीघ्र उच्चारण किया जाय तो उसे एक जानिए। एक मात्रा ह्रस्व, द्विमात्रा से दीर्घ होता है। त्रिमात्रा से प्लुत और व्यञ्जन अर्धमात्रा कहलाता है ।। १७६–१७७ ।।

तदुक्तम्—

एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रोऽपि प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनञ्चार्द्धमात्रकम् ।। १७८ ।।

एछे गुरु लघु भेद जानि हृष्ट चिते।
हे गायक सावधान हओ गीत गीते ।।

प्राकृत काव्ये दशवर्ण निषेधय।
ए औ विसर्प य व अन्तस्थ ए' हय ।।

भञ्जन मूर्द्धण्य आर तालव्य-शकार।
एइ दश वर्ण देख शास्त्रेते प्रचार ।। १७९ ।।

ऐसा कहते हैं—एक मात्रा वाला अक्षर ह्रस्व, दो मात्रा वाला दीर्घ और तीन मात्रा वाला प्लुत होता है। व्यञ्जन अर्धमात्रा कहलाता है। इस प्रकार स्वस्थ मन से गुरु-लघु-भेद जानिये। हे गायक! गायन करते समय सावधान हो जाओ। प्राकृत-काव्य में दस वर्ण निषिद्ध हैं। ए, औ, विसर्ग, ज, न, य, र, ल, व, ए—ये दस वर्ण मूर्धन्य (ष) और तालव्य शकार (श)। इनका शास्त्रों में प्रचार है ।। १७८–१७९ ।।

तदुक्तम्—

ए ओ अं मनपुर ओस आर पुठ्ठेहि बेबि वर्णाउ।
कच्च तव गगौ अन्तादहवन्नापाउ वेणहूयन्ति ।। १८० ।।

गीते गुणदोष हय अनेक प्रकार।
से सब प्रसंग एथा नारि वर्णिबार ।। १८१ ।।

इसी प्रकार कहा गया है ए, ओ, अ, मनपुर, ओस और अन्तस्थ का वर्णन है। गीत में गुणदोष अनेक प्रकार होते हैं, इन सब का मैं इस प्रसंग में वर्णन नहीं कर सकता ।। १८०–१८१ ।।

तथाहि गीतप्रकाशे वा दामोदरे—

पौनरुक्त्यं न भाषाढ्ये गीते दोषोऽभिजायते ।
शीघ्रोच्चारे च वर्णानां तथा चैव प्रसारणे ॥
लिंगान्यन्ते विसन्धौ च संयुक्ताक्षरमोक्षणे ।
असंयुक्तोऽपि संयोगे ह्रस्वदीर्घव्यतिक्रमे ।
भवन्त्येते न दोषाय संस्कृते प्राकृतेऽपि च ।
वारद्वयाधिकं गीते पौनरुक्त्ये तु दोषभाक् ॥ १८२ ॥

श्लोकार्थ सुगम एथा भाषा ना कहिल ।
गीतज्ञेर सुखहेतु अल्पे जानाइल ॥
गीतज्ञे गायक कहि से त्रिविध मत ।
उत्तम मध्यमाधम शास्त्रसुसंगत ॥ १८३ ॥

गीतप्रकाश और दामोदर में कहा गया है—भाषागीत में पुनरुक्ति दोष नहीं होता। इसी प्रकार वर्णों के शीघ्र-उच्चारण में और लम्बे उच्चारण में दोष नहीं है। लिंग-भेद, सन्ध्यभाव, जोड़ाक्षर तोड़ने में, असंयुक्त अक्षरों को भी जोड़ने में, ह्रस्वदीर्घ के व्युत्क्रम में, संस्कृत में और प्राकृत में दोष नहीं होता। दो से ज्यादा पुनरुक्ति हो तो दोष होता है। श्लोकार्थ सुगम है अतः इसका अनुवाद नहीं किया है। गीतज्ञों के सुख के लिए संक्षेप में बताया है। गीतज्ञों ने गायको के बारे में तीन मत कहे हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। यह शास्त्र-सम्मत है ॥ १८२–१८३ ॥

तथाहि संगीतसारे—

गायकस्तु त्रिधा प्रोक्त उत्तमो मध्यमाधमः ॥ १८४ ॥

ए तिन प्रभेद बहुगुण विस्तारित ।
गायकेर दोष किछु शुनो सावहित ॥ १८५ ॥

तथाहि भरतः—

भीतोऽव्यक्तपदः शिरोविचलितः फुत्कारको विस्वरः ।
स्यात् सन्दष्टरदो निमीलनयनो ग्रामाऽव्यवस्थस्तथा ॥ १८६ ॥
गायन् वक्रगलः स्वरालपबहुलः स्यादराग-संमिश्रकः ।
कम्पाङ्गोऽनवधानको विरसकृत् काकस्वरः सत्वरः ॥ १८७ ॥

किञ्च—

वितालको गीततनुप्रसारकः करालकश्छागगलोऽव्यवस्थितः ।
उत्फुल्लगण्डस्त्वनुनासिकः स्यादेवंहि दुष्टः किल गायनः स्यात् ॥१८८॥

श्लोक ए' सुगम एथा भाषा ना लिखिये ।
यथा कठिनार्थ संस्कृते जानाइये ॥ १८६ ॥

संगीतसार में ऐसा कहा गया गया है—गायक के तीन प्रकार हैं—उत्तम, मध्यम और अधम । इन तीन प्रभेदों के कई गुण विस्तार से बताये गये हैं । गायक के कुछ दोष ध्यान से सुनिये । इस विषय में भरत ने कहा है—घबराया हुआ, अस्पष्ट उच्चारण करने वाला, फूत्कार करने वाला, विस्वर, दाँत चबाकर बोलने वाला, आँखें मूंदने वाला, ग्रामों में अव्यवस्थित, गाते समय गले को टेढ़ा करने वाला, स्वर छोटा-बड़ा या कम्पित करने वाला, काक की तरह स्वर वाला और जल्दी करने वाला वैसे ही—वेताल गाने वाला, गीत के आकार को बढ़ाने वाला, भयानक, अजबकरे की तरह कण्ठ वाला, अव्यवस्थित, गाल फुलाने वाला, नाक में गाने वाला गायक दुष्ट है । यह श्लोक सुगम है अतः मैंने अनुवाद नहीं किया है । कठिन अर्थ संस्कृत में बताये हैं ॥ १८४–१८६ ॥

भीतेति-भीतो भयान्वितः । अव्यक्तेति-घर्घरध्वनि-
रव्यक्त उच्यते गीतवेदिभिः । फूत्कारकेति-फूत्कारो

फूत्कृतिर्मुहुः । विश्वरेति-विस्वरो निरसां वर्ज्यः
स्वरगानात्तुविस्वरः । अव्यवस्थितेति-अव्यवस्थित

इत्युक्तः स्थानकैरव्यवस्थितः । स्वराल्पबहुल-
स्थाने स्वराल्पकपिलेति केचिदिति । कपिलः स तु

यो गायेत् स्वरा न्यूनाधिकश्रुतीन् । रागसंमिश्रकेति
—इतरेषां च रागाणां मिश्रको भूरिमिश्रणात् ।

अनवधानकेति—स्थाय्यादिष्ववधानेन
निर्मुक्तोनऽनवधानकः । काकस्वरेति—काकः

क्रूरवः । सत्वरेति—त्वरया सङ्कितो मतः
सत्वरेति । वितालकेति—वितालः स्थानविच्युतः ।

करालकेति—करालोद्घटिताननः । अनुनासिकेति—
—गायन् नासिकया गीतं गायकः सानुनासिकः ॥ १९० ॥

गायन निर्दोषी हैले गीते सुख हय ।
किन्तु वाद्य बिना गीत शोभा न जन्मय ॥ १९१ ॥

भीत = भयग्रस्त । अव्यक्त = घर्घरध्वनि । फूत्कारक = बार-बार फूत्कार करने वाला । विस्वर = नीरस, वर्ज्य स्वर गाने वाला । अव्यवस्थित = स्थान (स्वरस्थान)

में अव्यवस्था करने वाला, स्वल्पा बहुल = अस्थान में स्वराल्प बहुलता करने वाला। कपिल = गाते समय न्यूनाधिक श्रुति करने वाला और राग सम्मिश्रक। अनवधानक = स्थायी वगैरह की ओर ध्यान न देने वाला। काक स्वर = क्रूर कराल स्वर वाला। सत्वर = जल्दी-जल्दी गाने वाला। विताल = स्थानच्युत होने वाला। कराल=मुख खोल कर गाने वाला। अनुनासिक = नाक में गाने वाला। गायन निर्दोष होने पर गीत सुखदायी होता है। किन्तु वाद्य के बिना गीत शोभा नहीं देता ॥ १९०–१९१ ॥

तथाहि—

न वाद्येन बिना यस्माद् गीतं तानश्च शोभते।
तस्मान्माङ्गल्यमस्माभिर्वाद्यमत्र निगद्यते ॥ १९२ ॥

वाद्य चतुर्विध हय जानिह निर्धार।
तत, आनद्ध, शुषिर, घन ए' प्रचार ॥ १९३ ॥

तथाहि—

ततानद्धशुषिराणि घनञ्चेति चतुर्विधम्।
ततं वीणादिकं वाद्यमानद्धं मुरजादिकम्।
वंशादिकन्तु शुषिरं कांस्यतालादिकं घनम् ॥ १९४ ॥

संगीत-दामोदरे—

ततं शुषिरमानद्धं घनमित्थं चतुर्विधम्।
ततं तंत्रीगतं वाद्यं वंश्याद्यं शुषिरं तथा।
चर्मावनद्धमानद्धं घनं तालादिकं मतम् ॥ १९५ ॥

एइ चतुर्विधेर भेद अनेक प्रकार।
आनद्धे मर्दल श्रेष्ट जानह निर्द्धार ॥ १९६ ॥

वाद्य के बिना गीत और ताल शोभा नहीं देता। इसलिए मंगलरूप वाद्यों का हम निरूपण करते हैं। वाद्य चार प्रकार के होते हैं यह जानिये। तत, आनद्ध शुषिर और घन। अब कहते हैं—चार प्रकार के वाद्य हैं—तत, आनद्ध, शुषिर और घन। तत—तार वाले वीणादि, आनद्ध—मुरज, मृदंग आदि बद्ध वाद्य; शुषिर—छिद्र वाले वंशी आदि और घन—ताल, झांझ आदि। संगीत दामोदर में—तत, शुषिर, आनद्ध और घन ये चार प्रकार के वाद्य हैं। तत तंत्रीगत वाद्य, वंशी वाद्य आदि शुषिर, चर्मावनद्ध आनद्ध वाद्य और तालादि वाद्य घन हैं। इन चार प्रकार के अनेक प्रकार हैं। आनद्ध में मर्दल श्रेष्ठ है, ऐसा जानिये ॥ १९२–१९६ ॥

संगीतदर्पणे—

आनद्धे मर्दलः श्रेष्ठ इति ॥ १९७ ॥
मर्दले मृदंग कहि भेद किछु नय।
काष्ठ आर मृतिकाते निर्माण ए' हय ॥
निर्माणेर क्रिया बहुशास्त्रे सुविदित ।
सर्ववाद्य शोभापाय मर्दल-सहित ॥ १९८ ॥

संगीतपारिजाते—

अथवा खादिरोत्पन्नो मृदङ्गो मेषचर्मयुक् ॥ १९९ ॥

संगीतदामोदरे—

मृत्तिकानिर्मिताश्चैव मृदङ्गाः परिकीर्तिताः ।
एवं मर्दलकः प्रोक्तः सर्ववाद्योत्तमोत्तमः ।
अस्य संयोगमासाद्य सर्वं वाद्यञ्च शोभते ॥ २०० ॥
किन्तु ए' मृदंगे सर्वदेवेर निवास ।
मृदंगेर मध्यस्थाने ब्रह्मार विलास ॥ २०१ ॥

संगीत-पारिजाते—

मध्यदेशे मृदङ्गस्य ब्रह्मा वसति सर्वदा ।
यथा तिष्ठन्ति तल्लोके देवा अत्रापि संस्थिताः ।
सर्वदेवमयो यस्मान्मृदङ्गः सर्वमङ्गलः ॥ २०२ ॥
सर्वचित्ताकर्षक ए' मृदंग निर्धार ।
मृदंगवादक जे लक्षण कहि तार ॥ २०३ ॥

संगीतदर्पण में कहा गया है—आनद्ध वाद्यों में मर्दल श्रेष्ठ है। मर्दल में मृदंग है। इनका भेद नहीं है। काष्ठ और मृत्तिका से निर्मित होते हैं। निर्माण की क्रिया शास्त्र में है यह सुविदित है। मर्दल सहित सभी वाद्य शोभा पाते हैं। संगीत पारिजात में है—अथवा खादिर से बना हुआ मृदंग (मर्दल) मेष के चमड़े से युक्त होता है। संगीतदामोदर में है—मृत्तिका से बनाया हुआ हो वह मृदंग कहलाता है। इस प्रकार मर्दल वाद्यों में उत्तमोत्तम होता है। इसी के साथ सब वाद्य शोभा पाते हैं। किन्तु इस मृदंग में सभी देवों का निवास है। मृदंग के मध्य स्थान में ब्रह्मा का विलास हैं। संगीतपारिजात में है—मृदंग के मध्यदेश में ब्रह्मा सर्वदा निवास करते हैं। जैसे अपने लोक में देव रहते हैं वैसे ही मृदंग में रहते हैं। मृदंग सर्वदेवमय है, इसलिए वह सर्वमंगल है। यह निश्चित है कि यह मृदंग सर्वचित्ताकर्षक है। मृदंग वादक के जो लक्षण हैं, वे कहते हैं ॥ १९७–२०३ ॥

तथाहि भरतः—

धीरो वाद्यविशारदः प्रवचनः पाठाक्षरव्यञ्जक-
स्तालाभ्यासरतः समस्तगमकप्रौढ–प्रकाशक्षमः।
नानावाद्यविवर्त–नर्तनपटुः स्वभ्यस्तगीतक्रमः
सन्तुष्टः सुखवादको द्रुतकरो मार्दंगिकः कीर्तितः॥ २०४॥

श्लोकार्थ सुगम इथे भाषा ना रचिल।
वादक–लक्षण एइ अल्पे जानाइल॥

वादकप्रवीणे वाद्य हय चमत्कार।
वाद्ये नृत्य सुख नृत्यलक्षण-प्रचार॥ २०५॥

तथाहि—

देशरीत्या प्रतीतोऽयस्तालमानलयाश्रितः।
सविलासाङ्गविक्षेपो नृत्यमुच्यते बुधैः॥ २०६॥

भाषा ना लिखिल एथा सुगम ए' श्लोक।
विलासांग विक्षेपिते श्रृङ्गारद्योतक॥

सूत्रमात्र जानाइल ए' अति विस्तार।
नर्तकेर क्रिया हय अनेक प्रकार॥

ए' सब जानिया सुखे गायकेर गण।
निरन्तर गाओ जाते मोहित भुवन॥

गीतेर श्रवणे धैर्य्य के धरिते पारे।
पशुपक्षी शिशु सर्प आपना पासरे॥ २०७॥

भरत कहते हैं—धीर, वाद्य में विशारद प्रवचन-निपुण, पाटाक्षरों को प्रकट करने वाला, तालाभ्यास में रत—निष्णात, सब गमको प्रोढ़ता से प्रकट करने वाला, नाना प्रकार के वाद्य बजाने वाला, नर्तन पटु, गीतक्रम को अच्छी तरह जानने वाला सन्तुष्ट, आराम से बजाने वाला, जलद गति से बजाने वाला, ऐसा मार्दंगिक होता है। श्लोकार्थ सुगम है इसलिए अनुवाद नहीं दिया है। वादक के लक्षण मैंने संक्षेप में बताये। वादक-प्रवीण से वाद्य चमत्कार हो जाता है। वाद्य से नृत्य सुखप्रद लक्षण सामने आते हैं। अब कहते हैं—अपने देश की पद्धति से अभ्यस्त, ताल, मान और लय पर आश्रित विलासयुक्त जो अंग विक्षेप है, उसे विद्वान नृत्य कहते हैं। यह सुगम श्लोक है अतः अनुवाद नहीं दिया है। विलासांगविक्षेप श्रृंगार का द्योतक है। सूत्र में यह विस्तार से बताया। नर्तक की क्रिया कई प्रकार की है। यह जानकर गायकों को सुख होता है। जिससे मोहित होकर सभी गायें।

गीत सुनकर कौन धीरज धर सकता है। पशु-पक्षी, शिशु-सर्प निकट आ जाते हैं ॥ २०४–२०७ ॥

संगीत-दामोदरे—

गीतेन हरिणा बन्धं प्राप्नुवन्त्यपि पक्षिणः ।
बलादायान्ति फणिनः शिशवो न रुदन्ति च ॥ २०८ ॥

सर्वश्रेष्ठ गीत इथे सर्वफलोदय ।
इथे जे विमुख तारे पशुशास्त्रे कय ॥ २०६ ॥

तत्रैव—

परमानन्द-विवर्द्धनमभिमतफलदं वशीकरणम् ।
सकलजनचित्तहरणं विमुक्तिबीजम् परं गीतम् ॥
संसारदुःखदग्धानामुत्तमानामनुग्रहात् ।
प्रभुणा शंकरेणात्र गीतविद्या प्रकाशिता ॥
संगीतकेन रम्येण सुखं यस्य न चेतसि ।
मनुष्य वृषभो लोके विधिनैव स वञ्चितः ॥ २१० ॥

नाना शास्त्र जानये संगीत ये ना जाने ।
तारे से द्विपाद मृग कहे विज्ञजने ॥ २११ ॥

संगीतदामोदर में—मनोहारी गीत से हरिण पक्षी बन्धन में पड़ जाते हैं। सर्प भी झपटकर आते हैं, गीत से बच्चे रोते नहीं। गीतसर्वश्रेष्ठ है और सब प्रकार का फल देने वाला है। इससे जो विमुख है उसे शास्त्र में पशु कहा गया है। उसी में लिखा गया है—परम आनंद बढ़ाने वाला, इष्ट फल प्रद, वश करने वाला, सब का मन हरण करने वाला, और मुक्ति का कारण है, ऐसा गीत होता है। सांसारिक दुःख से त्रस्त उत्तम लोगों पर अनुग्रह करके भगवान् शंकर ने गीत-विद्या का प्रकाश किया। मनोहारी संगीत से जिसके मन में सुख का संचार नहीं होता वह मनुष्य होते हुए भी बैल है, सृष्टि से वह वञ्चित है। नाना शास्त्र जानकर भी जो संगीत नहीं जानता उसे विज्ञजन दो पैरों वाला मृग कहते हैं ॥ २०८–२११ ॥

संगीत-रत्नाकरे—

श्रुतिस्मृत्यादिसाहित्यनानाशास्त्रविदोयऽपि च ।
संगीतं ये न जानन्ति ते द्विपादमृगाः स्मृताः ॥ २१२ ॥

गीत-वाद्य-नृत्य-त्रये संगीत मनोज्ञ ।
गीत वाद्ये संगीत कहये कोन विज्ञ ॥ २१३ ॥

संगीत-शिरोमणौ—

गीतं वाद्यञ्च नृत्यञ्च त्रयं संगीतमुच्यते ।
गीतवाद्ये उभे एव संगीतमिति केचन ॥ २१४ ॥
तत्तिर्य्यङ् नरदेवादि–मनोहारि प्रकीर्तितम् ॥ २१५ ॥

तथाच श्रीभगवद्‌वाक्यम्—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥ २१६ ॥

संगीत-रत्नाकर में—श्रुति, स्मृति, साहित्य नाना शास्त्र जानने वाले होते हुए भी जो संगीत नहीं जानते वे दो पैर वाले मृग हैं । गीत-वाद्य-नृत्य तीनों को मनोज्ञ संगीत कहते हैं । गीत-वाद्य को भी कुछ विज्ञ संगीत कहते हैं । संगीत शिरोमणि में—गीत वाद्य और नृत्य तीनों को संगीत कहा जाता है । कोई-कोई गीत और वाद्य इन दोनों को ही संगीत कहते हैं । वह नर, देव इतर प्राणी सब का मन हरण करता है । श्रीभगवद् वाक्य है—(भागवत में भगवान विष्णु नारद से कहते हैं)—हे नारद ! मैं वैकुण्ठ में नहीं रहता, योगियों के हृदय में भी नहीं रहता, मेरे भक्त जहाँ गाते हैं, वहीं मैं रहता हूँ ॥ २१२–२१६ ॥

तालार्णवः

अथ तालार्णवः प्रारभ्यते

श्रीश्रीकृष्णचैतन्याय नमः

श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रं प्रणम्य परोपकारातिशयप्रयत्नात् ।
संगीतवेत्राभिमतं विलोक्य तालार्णवं ग्रंथमिदं प्रवक्ष्ये ॥ १ ॥

श्री कृष्ण चैतन्यचन्द्र को प्रणाम करके, परोपकार के उद्देश्य से अति प्रयत्नपूर्वक संगीतज्ञ लोगों को मान्य हो, ऐसा यह तालार्णव ग्रंथ मैं कह रहा हूँ ॥ १ ॥

तालेन सुखं जनयतीति । तथाहि—

बिना तालेन गीतादेर्गीतशुद्धि र्न जायते ।
कर्णधारं विना नाव इवातस्तान् प्रचक्ष्महे ।
तत्राचार्यैस्तालशब्दव्युत्पत्तिर्बहुधेरिता ॥ २ ॥

ताल द्वारा संगीत सुख उत्पन्न करता है। जिस प्रकार कर्णधार न हो तो नौका बह जाती है, उसी प्रकार ताल न हो तो गीत कुमार्ग पर चला जायगा। इसलिए तालों को कहते हैं। आचार्यों ने ताल शब्द की व्युत्पत्ति बहुत प्रकार से कही है ॥ २ ॥

तत्र हरिनायकः—

समयस्य समत्वेन व्यञ्जकत्वेन चाधिकम् ।
तालयत्येष संगीतं यः स तालो निगद्यते ॥ ३ ॥ इति ।
तालयति—प्रतिष्ठापयति । तल प्रतिष्ठायां धातुः ।

हरिनायक कहते हैं—समय का साम्य रखने वाला, समय का बोधक, कालिक न्यूनाधिक्य नष्ट करने वाला, संगीत में प्रतिष्ठा उत्पन्न करके मुख्य आधार बनाने वाला ताल है ॥ ३ ॥

संगीतसारे तु—

ता(त)कार ईशो गिरिजा लकार-
स्तालस्ततः स्याच्छिवशक्तियोगात् ।
तलेस्तु धातोर्घञि वेह ताल-
स्तालोऽथवा स्यात्तलयोस्तु योगात् ॥ ४ ॥

संगीतसार में इस प्रकार कहा है—तकार-शिव और लकार-गिरिजा, इन दोन के शिवशक्त्यात्मक योग से ताल शब्द बनता है, अथवा तल धातु से घञ् (अ) प्रत्यय से वृद्धि होकर ताल बनाता है—अथवा त, ल् इन दोनों के योग से ।। ४ ।।

संगीतरत्नमालायाम्—

तकारः शिवजन्मा स्यादकारो विष्णुरुच्यते ।
लकारो मारुतः प्रोक्तस्ताले देवा वसन्त्यमी ।। ५ ।।

संगीतरत्नमाला में लिखा है—तकार शिव से उत्पन्न हुआ, अकार विष्णु है, लकार वायु है, इस प्रकार ताल में तीन देवों का निवास है ।। ५ ।।

वाचस्पतिस्तु—

हस्ताङ्गुलिप्रसारणाकुञ्चनादि क्रिया हि या ।
तया कालस्य मानं यत् स ताल इह कथ्यते ।। ६ ।।

वाचस्पति इस प्रकार कहते हैं—हाथ की उंगलियों का फैलाना, संकुचित करना इत्यादि जो कियाएँ हैं, उनसे काल का परिमाण मालूम होता है । वह काल का मान ही ताल है ।। ६ ।।

अत्र तालाङ्गविभाषा छन्दोरत्नाकरे—

मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः ।
जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः सोऽन्त्यगुरुः कथितोऽन्त्यलघुस्तः ।।७।।

गुरुरेको गकारश्च लकारो लघुरेककः ।
प्लुतः पकार इत्येवं दो द्रुतश्च प्रकीर्तितः ।। ८ ।।

अनुद्रुतो द्रुतश्चैवं लघुर्गुरुस्ततः परम् ।
प्लुतश्चैवं क्रमेणैव तालाङ्गानि तु पञ्चधा ।।
अनुद्रुतं बिनान्येषां संज्ञा दलपगात्मिकाः ।। ९ ।।

ताल के अंगों की परिभाषा छन्दोरत्नाकर में इस प्रकार है—भगण का आद्याक्षर गुरु, मगण में तीनों गुरु, नगण में तीनों वर्ण लघु, जगण में मध्यवर्ण गुरु, रगण में मध्यवर्ण लघु, सगण में अन्त्यवर्ण गुरु, तगण में अन्त्यवर्ण लघु । गुरु के बदले एक ग, अक्षर का प्रयोग, लघु के लिये एक ल, प्लुत के बदले एक प का प्रयोग होता है । अनुद्रुत, द्रुत, लघु, गुरु, प्लुत—ये पाँच क्रम से ताल के अंग हैं । अनुद्रूत छोड़कर चारों के संक्षेप में द, ल, ग, प, ऐसे नाम हैं ।। ७–९ ।।

अथ गुरुलघुसंज्ञा—

सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत् ।
वर्णः संयोगपूर्वश्च, तथा पादान्तगोऽपि वा ।। १० ।।

अथ लघ्वादीनां मात्रानियममाह—

लघ्वेकमात्रं तु गुरुर्द्विमात्रः प्लुतस्त्रिमात्रो द्रुतमर्धमात्रम्।
अनुद्रुतं तु द्रुतकार्धमात्रं विराम इत्यस्य भवेच्च नाम ॥ ११ ॥

अब गुरुलघु संज्ञा लिखते हैं—अनुस्वारयुक्त अक्षर, दीर्घ अक्षर, विसर्गयुक्त अक्षर और जोड़ाक्षर का पूर्वाक्षर गुरु होता है। चरण के अन्त का अक्षर विकल्प से गुरु होता है। अब लघु वगैरह का मात्रा-नियम कहते हैं—लघूवर्ण की एक मात्रा, गुरु की दो मात्राएँ, प्लुत की तीन मात्राएँ होती हैं। द्रुत की अर्धमात्रा, द्रुत का भी आधा (पाव मात्रा) अनुद्रुत होता है। इसका नाम विराम भी है ॥१०–११॥

मात्राप्रमाणमाह—

पञ्चलघ्वक्षराण्युच्चार्यन्ते कालेन यावता।
तावान् कालस्तु मात्रेति गदितं गीतकोविदैः ॥ १२ ॥

अथैषां विन्यासप्रकारमाह—

तिर्यग्रेखानुद्रुताङ्कं शून्यकारं द्रुतं स्मृतम्।
लघुर्ऋज्व्वल्पिका रेखा रेखाधो वक्रिता गुरुः।
प्लुतं गुरोर्मूर्धलेखा तिर्यक् चेद्दक्षपार्श्वगा ॥ १३ ॥

˘ ० । ऽ ऽ̍ अनुद्रुत-द्रुत-लघु-गुरु-प्लुता इति।

अब मात्राओं का प्रमाण कहते हैं—पाँच लघु अक्षरों के उच्चारण में जितना काल लगता है (क च ट त प), उस काल को एक मात्रा कहते हैं। अब इनके चिह्नों का स्वरूप बताते हैं—अनुद्रुत की तिरछी रेखा होती है। द्रुत का चिह्न शून्याकार होता है। लघु की छोटी सरल रेखा होती है। नीचे टेढ़ी रेखा गुरु का चिह्न होता है। गुरु के मस्तक पर तिरछी रेखा देने से प्लुत होता है ॥ १२—१३ ॥

एतेषां सावधिकं घातस्थानमाह—

द्रुतत्रयं तु कथितं चतुरङ्गुलमुच्छ्रितम्।
लघुरष्टाङ्गुलः प्रोक्तो गुरुः स्याच्छोडषाङ्गुलः।
प्लुतस्त्र्यष्टाङ्गुलश्चापि द्रुतः किञ्चित्करक्रिया ॥ १४ ॥
उच्छ्रितम्-उच्चम्।

अब इन अंगों का सावधिक घातस्थान कहते हैं—अनुद्रुत, द्रुत, द्रुतविराम इन तीनों में चार अंगुल ऊँचा। लघु आठ अंगुल, गुरु सोलह अंगुल, प्लुत चौबीस अंगुल, द्रुत में करक्रिया सूक्ष्म होती है। [अनुद्रुत के लिए दो अंगुल, द्रुत के लिए चार अंगुल, द्रुतविराम का छः अंगुल, यह प्रथा लघु के आठ अंगुल के हिसाब से है। यह अर्थ सर्वत्र रूढ है] ॥ १४ ॥

अथैषां धरणप्रकारमाह—

सशब्दं शब्दहीनं च तालस्य धरणं द्विधा।
उच्चैर्घातः सशब्दः स्यादेक एव लघौ परम् ॥ १५ ॥
गुरौ घातद्वयं प्रोक्तमेको नादः परोऽस्वनः।
सोऽप्यूर्ध्वं याति च लघोरर्द्धनादाद् द्रुताहतिः ॥ १६ ॥
प्लुते घातः सशब्दः स्यादेको घातद्वयं ततः।
तन्निःशब्दमेकमूर्ध्वं प्रपतेदपरेत्वधः ॥ १७ ॥

अब इनका धरण प्रकार कहते हैं—ताल का धरण दो प्रकार का होता है—सशब्द और निःशब्द। लघु में एक ही ऊँचा शब्दयुक्त घात होता है। गुरु में दो घात होते हैं। एक सशब्द और एक निःशब्द, वह भी गुरु के आधे भाग में ऊँचा ले जाकर दूसरे आधे भाग में आघात होता है। प्लुत में एक घात सशब्द और दो घात निःशब्द। एक निःशब्द घात ऊर्ध्व क्रिया में, और दूसरा हाथ को नीचे गिराकर ॥ १५-१७ ॥

तत्रायं प्रकारः—

चतुरङ्गुलं शङ्कुं भूमौ निखन्य, तच्छिखापर्यन्तं करमुत्तोल्य घातने तत्सम-कालेन द्रुतघातः। शङ्कुः = काष्ठयष्टिः। एवं लघावपि। गुरौ तु षोडशाङ्गुला-त्मकं घातं, अष्टाङ्गुलतया द्विधा विभज्य, तन्मूलेऽष्टाङ्गुल सम्मिलतया घातं दत्वा, तदवधिकोऽस्वनो घातस्तूपरि देयः। घाताकारदर्शनमात्रं कर्तव्य-मित्यर्थः। एवं प्लुतेऽपि चतुर्विंशाङ्गुलानि त्रिधा विभज्य घाता देयाः। अत्र सशब्द-निःशब्दतालघाते हस्तकविशेषा हरिनायकादावनुसंधेयाः ॥ १८ ॥

चार अंगुल का एक शङ्कु (काष्ठ का कीला) जमीन में गाढ़कर उसी शिखा तक हाथ ऊँचा करके घात देने में जितना समय लगता है उतने काल का घात द्रुत घात कहलाता है। लघु में भी परिमाण का घात होता है। गुरुमें सोलह अंगुल ऊँचा करके घात होता है। उसके आठ-आठ अंगुल के दो भाग करके पहले भाग में अष्टाङ्गुल का घात देकर शब्द किया जाता है। निःशब्द घात ऊपर देना। उस समय घाताकार को दिखाना चाहिए। इसी प्रकार प्लुत में भी चौबीस

अंगुलों का तीन भाग करके घात देने चाहिए। सशब्द निःशब्द घात के हस्त विशेष हरिनायकादि के ग्रन्थों से जानिये ॥ १८ ॥

द्रुतादेर्घातः कुत्रादेय इत्याह—

द्रुते लघौ गुरोर्मूले प्लुतमूले सशब्दकम्।
निःशब्दं गुरोर्मूर्ध्नि प्लुतमूर्ध्नि द्विवाकरम् ॥ १९ ॥ इति।

द्रुत, लघु, गुरु, प्लुत के मूल में सशब्द आघात। गुरु के ऊपर के भाग में निःशब्द, प्लुत के मूर्ध में (ऊपर) दो बार निःशब्द ॥ १९ ॥

अथ संगीतपारिजातमतम्—

अथ तालं प्रवक्ष्यामि कालरूपं जगद्धरम्।
जनयन्तं सुखं गीते वाद्यनृत्ये विशेषतः ॥ २० ॥

उत्पत्यादि त्रयं लोके येन तालेन जायते।
कीटकादि पशूनां च तालेनैव गतिर्भवेत् ॥ २१ ॥

यानि कानि च कर्माणि लोके तालाश्रितानि च।
आदित्यादिग्रहाणां च कालेनैव[1] गतिर्भवेत् ॥ २२ ॥

ब्रह्मकल्पोऽपितालेन यतः कालवशं गतः।
कालक्रिया परिच्छिन्नस्तालशब्देन भण्यते ॥ २३ ॥

अब संगीतपारिजात का मत देते हैं—अब जगत् का हरण करने वाला जो कालरूप ताल है, इसका विवरण करते हैं। यह ताल, गीत वाद्य और नृत्य में विशेष रूप से सुख उत्पन्न करता है। जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय इसी ताल से ही है। कृमि, कीटक, पशु इत्यादि की गति भी ताल से ही होती है। जो-जो जड़, चेतन जगत के कर्म हैं, वे सब ताल के अनुसार ही होते हैं। सूर्यादि ग्रहों की गति भी ताल से ही होती है। ब्रह्मदेव का एक कल्प भी (४३२०००० × १००० वर्ष) ताल के अनुसार ही समाप्त होता है। क्रियाओं से परिच्छिन्न (नापा हुआ) काल ही ताल कहलाता है ॥ २०–२३ ॥

अथवा—

यतः प्रतिष्ठितं सर्वं काले ताल इति स्मृतः।
कालो मार्गः क्रियाङ्गानि ग्रहो जातिः कला लयः।
यतिः प्रस्तारकश्चेति तालप्राणा दश स्मृताः ॥ २४ ॥

सम्पूर्ण विश्व काल में तालानुसार ही प्रतिष्ठित है। इसलिए काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति और प्रास्तार ये ताल के दस प्राण हैं ॥ २४ ॥

---

१. 'तालेनैव' पाठान्तरम्।

अथ कालः—

आक्षणात् कल्पपर्यन्तं काललक्षणमुच्यते ।
पद्मपत्र शतैकैकच्छेदकालः क्षणो भवेत् ॥

लवस्तस्मादष्ट गुणः, इति प्रकारेण निमेष–त्रुटि–अनुद्रुत–द्रुत–लघुगुरु,–प्लुतादिक्रमेण,ब्रह्मकल्पपर्यन्तं ज्ञेयम् । इतिकाललक्षणम् ॥ २५ ॥

अब काल का निरूपण करते हैं—क्षण से लेकर कल्पपर्यन्त काल का स्वरूप कहा जाता है । सौ कमल पत्रों को एक साथ सूची से भेद करने पर एक के बाद दूसरा, इस क्रम से ही भेद होता है । उस एक-एक पत्रभेद का जो काल है वही क्षण हैं । उससे अष्टगुण काल को लव कहते हैं । इसी प्रकार निमेष, त्रुटि, अनुद्रुत, द्रुत, लघु, गुरु, प्लुत इत्यादि क्रम से ब्रह्मकल्पपर्यन्त काल का परिमाण व्यवहृत होता है ॥ २५ ॥

अथ मार्गः—

अथ मार्गाश्च चत्वारो ध्रुवश्चित्रश्च वार्तिकः ।
दक्षिणश्चेति तत्रादौ ध्रुवे मात्रा कला भवेत् ॥ २६ ॥
अन्येषु द्वे चतुश्चाष्टौ क्रमान्मात्राः कला भवेत् ॥

अब मार्ग का निरूपण—मार्ग चार हैं । ध्रुव, चित्र, वार्तिक, दक्षिण । इनमें ध्रुव मार्ग में मात्रा को कला कहते हैं ॥ २६ ॥

मात्रेति—

मात्राक्षरं विभुर्बाणो ह्रस्वेनः सरलः शलः ।
मात्रिको दण्डनामा स्यादिति[1] संज्ञालघौ मताः ॥ २७ ॥ इति मार्गः ।

मात्रा क्या है—उसके पर्याय शब्द प्रसंग से कहते हैं । मात्रा, अक्षर, विभु, बाण, ह्रस्व, इन, सरल, शल, मात्रिक और दण्ड, ये सब लघु की संज्ञाएँ हैं ॥ २७ ॥

मार्ग समाप्त ।

अथ क्रिया—

तेषूच्यते क्रिया द्वेधा निःशब्दाशब्दसंयुता ।
निःशब्दा सा चतुर्धा स्यादावापादि प्रभेदतः ।
आवापश्चाथ निष्क्रामो विक्षेपश्च प्रवेशकः ॥ २८ ॥

अब क्रिया कहते हैं—क्रिया दो प्रकार की है । निःशब्द और सशब्द । निःशब्द क्रिया के आवापादि चार प्रकार हैं । आवाप, निष्क्राम, विक्षेप; प्रवेशक—ऐसे उनके नाम हैं ॥ २८ ॥

---

१. 'चेत्येताः' पाठान्तरम् ।

तत्र आवापः—

आवापो दक्षिणे पार्श्वे पताकोऽधस्तलेन च ॥ २९ ॥

आवाप—दाहिनी तरफ का पताकाहस्त अधस्तल धारण करना ॥ २९ ॥

[उत्तान हस्त का अंगुली कुञ्चन करना आवाप है। मतान्तर—सं० रत्ना०]

अथ निष्क्रामः—

उत्तानेन पताकेन वामे निष्क्रामको भवेत् ॥ ३० ॥

निष्क्राम—बाईं तरफ पताका हस्त उत्तान धारण करना निष्क्राम है ॥ ३० ॥

अथ विक्षेपः—

ऊर्ध्वंगम-पताकेन विक्षेपोऽधस्तलेन च ॥ ३१ ॥

विक्षेप—अधस्तल हस्त की पताका ऊपर ले जाना ॥ ३१ ॥

अथ प्रवेशकः—

उरो देशे-पताका स्यात् कुञ्चनेन प्रवेशकः ॥ ३२ ॥
इति निःशब्दक्रिया ॥

प्रवेशक—वक्षःस्थल पर पताका कुञ्चन करना ॥ ३२ ॥
यह निःशब्द क्रिया हुई ॥

अथ सशब्दा—

सशब्दापि चतुर्धा स्याद् ध्रुवः शम्पा तथैव च ।
तालश्च सन्निपातश्च तेषां लक्ष्यं च कथ्यते ॥ ३३ ॥

अब सशब्द क्रियाएँ कहते हैं—

ध्रुव, शम्पा, ताल और सन्निपात—ये चार सशब्द क्रियाएँ हैं। इनके लक्षण इस प्रकार हैं॥ ३३ ॥

तत्र ध्रुवः—

ध्रुवः शब्दस्य पातः स्याच्छोटिका शब्दपूर्वकः ॥ ३४ ॥

ध्रुव—चूटकी बजाकर हाथ को गिराना ॥ ३४ ॥

अथ शम्पा—

शम्पा दक्षिणहस्ते तु यदा वामेन ताडनम् ॥ ३५ ॥

शम्पा—दाहिने हाथ पर बायें हाथ से ताड़न करना ॥ ३५ ॥

अथ तालः—

ताडनं दक्षिणे नैव तालो वामकरे पुनः ॥ ३६ ॥

ताल—बायें हाथ पर दाहिने हाथ से ताड़न करना ॥ ३६ ॥

अथ सन्निपातः—

उभयोश्च समायोगे सन्निपातोऽभिधीयते ॥ ३७ ॥

इति क्रिया ॥

सन्निपात—दोनों हाथों से समान अघात सन्निपात है ॥ ३७ ॥ इति क्रिया ॥

अथ अङ्गानि—

सप्ताङ्गानि क्रियाताले ज्ञातव्यानि सदा बुधैः।
अनुद्रुतो द्रुतश्चेति विरामो द्रुतसंज्ञकः।
लघुर्लघुविरामाख्यो गुरुः प्लुताभिधा पुनः ॥ ३८ ॥

नामान्तराणीतिबाहुल्यभयान्नोक्तम्।

अङ्गानां लेखनस्यापि प्रकारः कथ्यतेऽधुना।
अनुद्रुतोऽर्धचन्द्रश्च वलयश्च द्रुतो मतः ॥ ३९ ॥
द्रुतः शिखासमायुक्तो[1] दविरामोऽभिधीयते।
दण्डाकारो लघुर्ज्ञेयो लविरामः शिखी लघुः।
गुरुर्वक्री त्रिरावृत्या गुरुः शिखी प्लुतः स च ॥ ४० ॥

अब अङ्ग कहते हैं—क्रियाताल में सात अंग होते हैं। अनुद्रुत, द्रुत, द्रुत विराम, लघु, लघुविराम, गुरु और प्लुत—ये सात अंग हैं। इनके और भी पारिभाषिक नाम हैं, विस्तार के भय से यहाँ नहीं कहे गये हैं। अब अंगों को लिखने का प्रकार कहते हैं। अनुद्रुत में अर्धचन्द्र। द्रुत में वलय होता हैं। द्रुतविराम में द्रुत के ऊपर शिखा है। लघु दण्डाकार होता है। लघु के ऊपर शिखा देने से लघुविराम होता है। तीन दफे टेढ़ी रेखा गुरु होता है। गुरु शिखायुक्त होने से प्लुत होता है ॥ ३८-४० ॥

किं च—

देवतानुद्रुते वायुर्वरुणः स्याद् द्रुते पुनः।
विरामाख्ये द्रुते रुद्रो लगयोर्देवता हरिः।
लविरामे प्लुताख्येऽपि देवता स्यात् प्रजापतिः ॥

इत्यङ्गनिष्ठदेवताः ॥ ४१ ॥

अंगदेवता—अनुद्रुत का देवता वायु है द्रुत का वरुण, द्रुतविराम का देवता रुद्र है। लघु-गुरु के देवता हरि हैं। लविराम और प्लुत के देवता प्रजापति हैं ॥ ४१ ॥

---

१. शिखायुक्तो गुरुः प्लुतः। इति युक्तम्।

किं च—

सर्वेषु च रसेषु स्तोऽर्धचन्द्रौ द्रुतसङ्गिनौ।
वीरेऽद्भुते तथा रौद्रे भयानके रसे पुनः ॥ ४२ ॥
एतेषु दविरामः स्याल्लघुः शृङ्गारके रसे।
लविरामोऽपि शृङ्गारे गुरुः शृङ्गारहास्ययोः ॥ ४३ ॥
करुणायां गपौ प्रोक्तावित्यङ्गानि रसेषु च ॥ ४४ ॥

इत्यङ्गानि।

रस के अंग—सभी रसों में अर्धचन्द्र युक्त दो द्रुत होते हैं। वीर, अद्भुत, रौद्र, भयानक इन रसों में दविराम होता है। शृंगार रस में लघुचिह्न होता है। शृंगार में लविराम भी होता है। शृङ्गार-हास्य में गुरु है। करुण रस में गुरु और प्लुत ऐसे अंग हैं ॥ ४२–४४ ॥

अथ ग्रहः—

ग्रहास्तत्र च चत्वारः समग्रहादिभेदतः।
समग्रहस्तथातीतोऽनागताख्यस्ततः परम् ॥ ४५ ॥
विषमग्रह एतेषां लक्षणं कथ्यतेऽधुना ॥ ४६ ॥

तत्र समग्रहः—

गीतस्य यदि तालस्य प्रारम्भस्त्वेककालिकः।
समग्रहः स एव स्याद् गीतादौ सुखदायकः ॥ ४७ ॥

ग्रह निरूपण—समग्रहादि नाम से चार ग्रह होते हैं—समग्रह, अतीतग्रह, अनागत और विषम। समग्रह के लक्षण—गीत और ताल का आरम्भ एक साथ एक काल में हो तो वह समग्रह कहलाता है। यह गीत में आनन्ददायक होता है ॥ ४५–४७ ॥

अतीतानागतौ—

गीतेऽतीते त्वतीतः स्यात्तालेऽतीते त्वनागतः ॥ ४८ ॥

अथ विषमग्रहः—

विषमेनैव पाठेन विषमग्रह उच्यते ॥ ४९ ॥

अथवा—

समस्तु समकालः स्यादतीतः स्याद्द्वितालकः।[1]
अनागतोऽनुतालः स्याद् विषमः प्रतितालकः।

---

१. 'समयः समतालः स्यादतीतः' इति पाठान्तरम्।

अनागतोऽङ्ग विक्रान्तेऽवलयः स च कथ्यते ॥ ५० ॥

इत्यवलयविशिष्टग्रहाः ॥

अब अतीत और अनागत ग्रह कहते हैं—गीत के पीछे जो ताल का ग्रहण करना है वह अतीत ग्रह है। ताल के पहले और गीत पीछे हो तो अनागत ग्रह होता है। दोनों का विषम पाठ हो तो विषमग्रह। [सम से विपरीत विषम है। उसके दो प्रकार हैं—अनागत और अतीत। अनागत अनुताल नाम से भी प्रसिद्ध है। उसी को अंग विश्रान्ति के बाद अवलय कहते हैं] ॥ ४८—५० ॥

अथ जातिः—

जातयोऽष्टौ लघौ सन्ति त्वेकादिवर्णसम्भवः ।
एकाकी पक्षिणी त्र्यश्रश्चतुरश्रः खण्डसंज्ञकाः ॥ ५१ ॥
ऋतुर्मिश्रश्च संकीर्ण इति नामभिरीरिताः ।
यया कयापि जात्या च लघुकालः स एव तु ॥ ५२ ॥
लघौ स्यात् केवलं घातो गुरौ घातश्च क्षेपकः ।
घातश्च भ्रमणं क्षेपः इति त्रयः प्लुते मताः ।
अनुद्रुतादि कालाश्च बुध्यन्ते पाटवर्णतः ॥ ५३ ॥ इति जातयः

अब जाति कहते हैं—लघु में आठ जातियाँ हैं। वे एक, दो इत्यादि वर्णों से होती हैं। एकाकी, पक्षिणी, त्र्यश्र, चतुरश्र, खण्ड, ऋतु, मिश्र और संकीर्ण इन नामों से प्रसिद्ध हैं। किसी भी जाति में लघु काल वही होता है। लघु में केवल घात होता है। गुरु में घात और क्षेपक दो होते हैं। प्लुत में घात, भ्रमण, क्षेप ये तीन हैं। अनुद्रुतादि काल पाटवर्णों से जाने जाते हैं ॥ ५१—५३ ॥

अथ कलाः—

चतुर्विधेषु मार्गेषु कला अष्टौ प्रकीर्तिताः ।
ध्रुवका च तथा कृष्णा, सर्पिणी पद्मिनी परा ॥ ५४ ॥
क्षिप्ता विसर्जनी पाता, पताका चाष्टमी मता ।
छोटिकाशब्दयुक्तेन करेण ध्रुवका मता ॥ ५५ ॥
अथवा वामहस्तेन [1]सा घातेन सतां मता ।
आक्षेपक्रियया कृष्णा निष्क्रामेणैव सर्पिणी ॥ ५६ ॥
अधोगतपताकेन पद्मिनी लोकविश्रुता ।
सा च क्षिप्ता पताकस्य कम्पनादेव सम्भवा ॥ ५७ ॥

१. सा घातेनापि संमता । पाठान्तरम् ।

पताकेन बहिर्देशे विसर्जी च विसर्जनी।
करस्य पतनात् पाता पताका ऊर्ध्वगामिनी ॥ ५८ ॥

इति कलाः ॥

अब कला कहते हैं—चारों मार्गों में कलाएँ आठ हैं। उनके नाम हैं—ध्रुवका कृष्णा, सर्पिणी, पद्मिनी, क्षिप्ता, विसर्जनी, पाता, पताका। चुटकी शब्दयुक्त हाथ से ध्रुवका होती है। अथवा—बायें हाथ के घात से भी वह होती है। हाथ फेंकने की क्रिया से कृष्णा, हाथ के निष्क्राम से (बाहर निकालने से) सर्पिणी होती है। पताका हस्त अधोमुख नीचे धरने से पद्मिनी होती है। पताका हस्त के कम्पन से क्षिप्ता होती है। पाताका बाहर ले जाने पर विसर्जनी होती है। कर के गिराने से पाता होती है। पताका के ऊर्ध्व गमन से पताका होती है। इति कला ॥ ५४–५८ ॥

अथ लयः—

क्रियानन्तरविश्रान्तिर्लयः स त्रिविधो मतः।
तत्तद्विरामकालेन द्रुतमध्यविलम्बिताः ॥ ५९ ॥

अब लय कहते हैं—क्रिया के बाद जो विश्रान्ति है वह लय है। यह तीन प्रकार की है—विराम काल के भेद से इसके तीन प्रकार हैं—द्रुत, मध्य, विलम्बित ॥५९॥

अथ यतिः—

लयप्रवृत्तिनियमो यतिरित्युच्यते जनैः।
समा स्रोतोगता चान्या मृदङ्गा च प्रकीर्तिता ॥ ६० ॥
पिपीलिका च गोपुच्छा यतयः पञ्चधा स्मृताः ॥ ६१ ॥

अब यति कहते हैं—लय-प्रवर्तक नियम को यति कहते हैं। समा, स्रोतोगता, मृदङ्गा, पिपीलिका, गोपुच्छा—ये पाँच यतियाँ हैं ॥ ६०–६१ ॥

तत्र समा—

आदिमध्यावसानेषु लयैकत्वे समा त्रिधा ॥ ६२ ॥

स्रोतोगता—

स्रोतोगता द्रुतारम्भा तत्समाप्तौ च मध्यमा।
अथवा मध्यमारम्भा विलम्बितापि सम्मता ॥ ६३ ॥

मृदङ्गा—

द्रुताद्यन्ता मध्यमा च मृदङ्गाख्ययतिर्मता।
अथवाद्यन्तयोर्मध्यगतिर्मध्ये विलम्बिता ॥ ६४ ॥

पिपीलिका—

अस्यास्तु वैपरीत्येन पिपीलिका यतिर्मता ।

गोपुच्छा—

मध्यमारम्भा विलम्बान्ता गोपुच्छा सा द्रुतान्तरा ॥६५॥ इति यतिः॥

समा के स्वरूप—आदि मध्य अन्त में एक ही लय हो तो समा यति है । वह तीन प्रकार की है । स्रोतोगता—आरम्भ में द्रुत, समाप्ति में मध्यमा अथवा आरम्भ में मध्यम एवं समाप्ति में विलम्बित । मृदङ्गा—आदि-अन्त में द्रुत, बीच में मध्यम अथवा आद्यन्त में मध्यमगति और मध्य में विलम्बित । पिपीलिका—मृदङ्गा के विपरीत पिपीलिका यति होती हैं । गोपुच्छा—आरम्भ में मध्य, अन्त में विलम्बित, मध्य में द्रुत हो तो गोपुच्छा यति कहलाती है ॥ ६२–६५ ॥

अथ प्रस्तारः—

तालस्याङ्गैकतां कृत्वा पश्चादल्पं[1] लिखेद् बुधः ।
अङ्गानि दाक्षिणात्यानि यथोपरि तथा ध्रुवम् ॥ ६६ ॥
लेखनादवशिष्टं यद् वामे तत्पूरयेद् बुधः ।
प्लुतस्याधो गुरुर्लेख्यो लविरामो गुरोरधः ॥ ६७ ॥
लघुः स्याल्लविरामाच्च दविरामोलघोरपि ।
दविरामाद् द्रुतो लेख्यो द्रुतादनुः सदा भवेत् ॥ ६८ ॥
प्रस्तारो वं + + स्याद्यतोऽग्रे भागशून्यता ।
द्रष्टुं तालगतानेतान् प्रस्तारः कथितो मया ॥ ६९ ॥

ताल के अंगों को एकत्र करके पश्चात् यथा सम्भव छोटे अंगों को बड़े अंगों के रूप में बदलकर लिखना और पीछे बायीं तरफ अल्प अंगों को लिखना । मिलाये हुए बड़े अंग दक्षिण की तरफ लिखना जैसे ऊपर हो वैसे ही । फिर बाईं तरफ प्लुत के नीचे गुरु, गुरु के नीचे लघु विराम, लघुविराम के नीचे लघु, लघु के नीचे द्रुत विराम, द्रुतविराम के नीचे द्रुत, द्रुत के नीचे अनु—इस प्रकार प्रस्तार होता है । अन्तिम में आगे भाग शून्यता हो तब तक ॥ ६६–६९ ॥

संगीतदामोदरमतम्— मात्रालक्षणमाह—

प्लुतगुरुलघुद्रुतरूपाश्चतस्रो मात्रा भवन्ति ।
प्लुतस्त्रिमात्रिको ज्ञेयो द्विमात्रो गुरुरुच्यते ॥ ७० ॥
एकमात्रो लघुः प्रोक्तो द्रुतं स्यादर्धमात्रकम् ।
राधाध्याने प्लुतो जातो गुरुः शशिकलाकृते ॥ ७१ ॥

---

१. पद्याङ्गाल्पं–पाठान्तरम् ।

लघुः कनकरेखायां पारिजाते द्रुतोदयः ।
एवं सांकेतिके वेणौ कृष्णस्यासन् प्लुतादयः ॥ ७२ ॥

संगीतदामोदर-मत से मात्रा-लक्षण—प्लुत, गुरु, लघु; द्रुत चार अंग होते हैं—प्लुत की तीन मात्राएँ, गुरु की दो, लघु की एक मात्रा होती है । द्रुत की आधी मात्रा । राधा के ध्यान से प्लुत का निर्माण हुआ शशिकला से गुरु की, सुवर्ण रेखा से लघु की, परिजात से द्रुत की उत्पत्ति हुई । सांकेतिक वेणु में इस प्रकार कृष्ण द्वारा प्लुतादि का प्रयोग होता था ॥ ७०–७२ ॥

अन्येऽपि—

अर्धमात्रं द्रुतं ज्ञेयमेकमात्रं लघु स्मृतम् ।
द्विमात्रस्तु गुरुर्ज्ञेयस्त्रिमात्रं तु प्लुतं स्मृतम् ॥ ७३ ॥
द्रुते स्याद्देवता शम्भुर्लघुन्यद्रिपतिः सुता ।
गौरीशिवौ च गुरूणि प्लुते ब्रह्मादयस्त्रयः ॥ ७४ ॥
द्रुतं लघुः । गुरुः प्लुतः ।

आधी मात्रा द्रुत की । लघु की एक मात्रा । गुरु की दो मात्राएँ । प्लुत की तीन मात्राएँ । द्रुत में शम्भुदेवता, लघु में अद्रिपति हिमालय की कन्या पार्वती । गौरीशंकर गुरु के देवता हैं । प्लुत में ब्रह्मा, विष्णु, महेश ॥ ७३–७४ ॥

अथ प्रस्तारः—

गुरुः प्लुताधोभागे तु, गुर्वधोभागतो लघुः ।
द्रुतं लघोरधोभागे, तुल्ये तुल्या तु पंक्तिका ॥ ७५ ॥
उद्धृताश्च कला पश्चादित्थं प्रस्तारणक्रमः ।
सर्वप्लुतात् समारभ्य मात्रानिवहनिर्मितात् ॥
तावत् प्रस्तारयेदन्ते यावत् सर्वं द्रुतं भवेत् ॥ ७६ ॥

अब प्रस्तार—प्लुत के नीचे गुरु, गुरुके नीचे लघु, लघु के नीचे द्रुत और तुल्य में याने समान में समान ही पंक्ति होनी चाहिए । बची हुई कलाएँ—अवयव बाद में वामभाग में लिखना । इस प्रकार प्रस्तार का क्रम है । सर्व प्लुत से आरम्भ करके, मात्रा समूह से बना हुआ जितना अंग हो, उतना अन्त तक प्रस्तार करना । अन्तिम में सर्वद्रुत आये तब तक ॥ ७५–७६ ॥

संगीतरत्नकोषे—

गीतकला प्रमोदाय तालप्रस्तार उच्यते ।
एकद्रुतस्यैकरूपं द्वे रूपे द्रुतयोर्मते ॥ ७७ ॥

त्रयस्य त्रीणि रूपाणि चतुष्कं प्राक् त्रिभिः समम् ।
अनन्तरं प्राग् युगलं प्रागेकैकान्तरं युगम् ॥ ७८ ॥
यावद् भवति तावत् स्यात् संख्यानां प्रथमावधिः ।
यथैकद्वित्रिऋतुदिगूनविंशतिसंज्ञकम् ।
त्रयस्त्रिंशस्तथाषष्टिरित्यायूह्यं मनीषिभिः ॥ ७९ ॥
यथा १, २, ३, ६, १०, १९, ३३, ६०, १०६, १९१, ३४०, ६१०

संगीत रत्नकोष में है—गीतकाल में मनोरञ्जन के लिए तालप्रस्तार कहते हैं। एक द्रुत का एक रूप। दो द्रुतों के दो रूप। तीन द्रुतों के तीन। चार द्रुतों के प्रस्तार, पूर्व तीनों की संख्या की जोड़ के बराबर (६)। इसके बाद पाँच द्रुतों का, पूर्व दो की संख्या (६।३) और एक छोड़कर एक लेना १०। छः द्रुतों की प्रस्तार में सन्निहित पूर्व की दो संख्याएँ और एक को छोड़कर एक। और छठा न होने से पञ्चम यानी प्रथम लेकर मिलाना तब उन्नीस होंगे (१०, ६, २, १)। इस प्रकार क्रम से एक द्रुत से लेकर क्रम से दो, तीन, द्रुतादि के प्रस्तारों की संख्या इस प्रकार होगी—१, २, ३, ६, १० १९, ३३, ६० इत्यादि, ऐसा विद्वानों ने कहा है ॥ ७७–७९ ॥

एकद्रुतस्य रूपमेकम्। द्रुतद्वयस्य रूपद्वयम्। द्रुतत्रयस्य पूर्व्वद्वये।१।२। मिश्रिते रूपत्रयम्। द्रुतचतुष्कस्य पूर्वत्रये ३, २, १, मिश्रिते रूपषट्कम्। ६। द्रुतपञ्चकस्य सन्निहितपूर्व–द्वयम् ६। ३। तत्[1] प्रागेकान्तरितमेकम् १। एतत् त्रयाणां योगे रूपदशकम्–१०। द्रुतषट्कस्य पूर्व्वद्वयम् १०, ६। तत् प्रागे–कान्तरितद्वयम्–२, १। एतच्चतुर्णां योगे ऊनविंशतिः–१९। द्रुतसप्तकस्य पूर्वद्वयम्–१९, १०। तत्[2] प्रागेकान्तरितद्वयम्–३, १। एतच्चतुर्णां योगे त्रयस्त्रिंशत्–३३। एवं द्रुताष्टकस्य षष्टिः–६०। द्रुतनवकस्य षडधिकं शतम् १०६। द्रुतदशकस्य एकनव–त्यधिकशतम् १९१। एकादशकस्य चत्वारिंशदधिक-शतत्रयं ३४०। द्वादशकस्य दशाधिका षट्शती–६१० ॥ ८० ॥

एक द्रुत का एक रूप १; दो द्रुत का दो प्रस्तार रूप २; तीन द्रुत का पूर्व दो (१।२) के योग से तीन रूप ३; चार द्रुत का पूर्व के तीन के योग से ३ + २ + १ = ६ रूप; पाँच द्रुतों का पास के पहले दो ६।३, पीछे पूर्व का एक छोड़कर एक १, इस प्रकार तीनों के योग से दस रूप होते हैं—६ + ३ + १ = १०; छः द्रुतों का पहले दो १०, ६, उसके बाद पूर्व का एक छोड़कर दो संख्या २, १, इन चारों के योग से १९ (१० + ६ + २ + १ = १९); सात द्रुतों में पूर्व के दो १९, १०, उसके बाद पूर्व में एक छोड़कर एक ऐसी दो संख्या ३, १—इन चारों के योग से हुए ३३;

१. 'तत्' इत्यत्र 'ततः'– इति पाठान्तरम्।
२. ततः इति पाठान्तरम्।

इसी प्रकार आठ द्रुतों की ६०; ९ द्रुतों की १०६; दस द्रुतों की संख्या १९१; ग्यारह द्रुतों की ३४०; बारह ६१० संख्या होती है ।। ८० ।।

द्रुत संख्या =	१	२	३	४	५	६	७	८	९
प्रस्तार संख्या =	१	२	३	६	१०	१९	३३	६०	१०६

ताले द्रुतानि यावन्ति तदाद्यन्यास इष्यते।
षड्भिः षड्भिः प्लुतं लेख्यं न्यूनतायां पुनर्लिखेत् ।। ८१ ।।
गुरुं चतुर्भिर्द्वाभ्यां तु लघुं वैषम्यतो द्रुतम्।
सम्भवे क्रमशो लेख्यं द्रुतं, लघु, गुरु, प्लुतम् ।। ८२ ।।

ताल में जितने द्रुत हो इनका आद्यविन्यास इस प्रकार इष्ट है। छः द्रुतों के बदले एक प्लुत लिखना बचे हों तो फिर से लिखना। चार द्रुतों के बदले गुरु, दो द्रुतों के लिए लघु, विषम संख्या हो बचा हुआ द्रुत लिखना। सम्भव हो तो इस क्रम से लिखना—द्रुत, लघु, गुरु, प्लुत ।। ८१–८२ ।।

एकद्रुतस्यादिन्यासः ० द्रुतद्वयस्यादिन्यासः । त्रयस्य ०। चतुष्कस्य ऽ पञ्चकस्य ०ऽ षट्कस्य ऽ̇ सप्तकस्य ०ऽ̇ अष्टकस्य ।ऽ̇ दशकस्य ऽऽ̇ एकादशकस्य ०ऽऽ̇ द्वादशकस्य ऽ̇ऽ̇ ।। ८३ ।।

एक द्रुत का आदिन्यास प्रथम पंक्ति एक द्रुत (०)। दो द्रुत का आदिन्यास (।) तीन का (०।)। चार का (ऽ)। पाँच का (०ऽ)। छः का (ऽ̇)। सात का (०ऽ̇)। आठ का (।ऽ̇)। दस का (ऽऽ̇)। ग्यारह का (०ऽऽ̇)। बारह का (ऽ̇ऽ̇)। इत्यादि ।। ८३ ।।

द्व्यादिरूपे विशेषोऽयं शिवेरूपे य आदिमः।
लघ्वादीनां त्रयाणां तु तस्यैवाधः पुरो लिखेत् ।। ८४ ।।
द्रुतं लघोरधोभागे पूर्वाधोभागतो लघुम्।
गुरुं प्लुताधोभागे तु, सर्वपंक्तिष्वं विधिः ।। ८५ ।।
दक्षिणे सम्भवे चोर्ध्वसादृश्यं विलिखेत् सुधीः।
आद्यवत् सम्भवे वामे यथामात्रं प्लुतादिकम्।
एवमेव लिखेद्धीमान् यावत्सर्वं द्रुतं भवेत् ।। ८६ ।।
इति तालप्रस्तारः।

दो से अधिक रूप हो तो यह विशेष है (शिवे रूपे) मूल स्वरूप में है। लघु आदि तीनो में, जो प्रथम हो उसके नीचे प्रथम लिखें। द्रुत लघु के नीचे (शायद गुरु हो तो) लघु, प्लुत के नीके गुरु, सभी पंक्ति में यही विधि है। दक्षिण में

सम्भव हों तो ऊपर के जैसा ही पहले की तरह लिखना। वाम में जैसा सम्भव हो उसके अनुसार, मात्राओं के हिसाब से प्लुतादि लिखना। इसी प्रकार सर्वद्रुत आवे तब तक बुद्धिमान लिखते हैं ॥ ८४–८६ ॥ यह ताल प्रस्तार है ॥

अथोद्दिष्टम्—

विलिख्य[1] यत् किञ्चित् कुत्रस्थमिति चेद् वदेत्।
यः कश्चित्तस्य तोषार्थं तालोद्दिष्टमिहोच्यते ॥ ८७ ॥
चतुर्भिरूपसंख्यातैरङ्कैर्बुध्यते क्रमात्।
न्यूनात् प्लुतान्तमेतावद् द्वितीयात्तु गुरूत्तमम् ॥ ८८ ॥
लघूत्तमं तृतीयात्तु चतुर्थात्तु द्रुतान्तकम्।
उद्दिष्टान्ते प्लुतश्चेत् स्यान् न्यसेत्तच्छीर्षके त्रयम् ॥ ८९ ॥
पूर्वादि-त्रितया-कालं गुरुरन्ते यदा तदा।
लघुद्रुतद्वयस्याङ्कौ लघुश्चेद् द्रुतकाङ्ककम् ॥ ९० ॥
यत्र कुत्र द्रुतं चेत् स्यान्न किञ्चित्तत्र विन्यसेत्।
यदि प्लुताद्युपान्ते स्यात्तावदन्तद्रुतस्य तु ॥ ९१ ॥
रूपप्रयोजका येऽङ्काः प्लुताद्यङ्काः पुरोवते।
प्लुतादिमूर्ध्निते प्राग्वन्न्यसेदेव पुनः पुनः ॥ ९२ ॥
सुविविच्यादि पर्यन्तं तावत्तावद् द्रुतानुगम्।
तत्तदङ्कं विलिख्यैकीकृत्य सर्वं तु तत्पुनः ॥
स्वरूपाङ्काद् विनिष्कास्य शेषात् तत्स्थानमादिशेत् ॥ ९३ ॥

अथ उद्दिष्टम्—प्रस्तार की पंक्तियों में से कोई भी एक रूप लेकर यदि कोई पूछे कि यह कौन सी पंक्ति है, इसके समाधान के लिए यह तालोद्दिष्ट कहा जाता है। जिन चार निर्दिष्ट अंकों में से न्यून करने पर क्रम से प्लुतान्त, दूसरे से गुरुतम, तीसरे से लघुतम, चौथे से द्रुतान्त यह रीति होती है। उद्दिष्ट में अन्त में प्लुत हो तो उसके मस्तक पर संख्या से तीन अंक रखना। (पूर्वादि-त्रितया-काल) अन्त में गुरु हो तो लध्वङ्क, और द्रुताङ्क ऐसी दो संख्याएं लेना। लघु होने से द्रुताङ्क (एक संख्या) लेना। कहीं भी द्रुत हो तो वहाँ कुछ भी नहीं रखना। अगर प्लुतादि उपान्त में हों, और द्रुत अन्त में हो तो, प्लुतादि के अंक ही पूर्व की तरह लेना। प्लुतादि के मस्तक पर पहले की तरह पुनः पुनः लिखना। द्रुत के पीछे आगे तक जितना है, उन सब का, पृथक्करण करना। वे अंक उसके ऊपर लिखकर सबका योग करना। कुल प्रस्तार की संख्या में से यह संख्या ऊन करके जो शेष रहे वही प्रस्तार का क्रमाङ्क है ॥ ८७–९३ ॥

1. (विशिष्टरूपं)

यथा द्वादशद्रुतप्रस्तारे उद्दिष्टम्—

तत्र प्लुतशीर्षे द्रुताङ्का ३४०, लघ्वङ्काः १६१, गुर्वङ्काः ६०, एतत् त्रयसंयोगे जातं ५६१, एतत् प्लुतशीर्षे देयम्। प्लुतं त्यक्त्वावशिष्टस्य। ६ एतस्य द्रुतषट्कस्य द्रुताद्यङ्कः १० । ६ । २ । १ । तत्र द्रुतशिरसि द्रुताङ्काः १० । लघ्वङ्काः ६ एतद्योगाज्जातं १६ देयम्। पुनरवशिष्टलघोर्द्रुतद्वयस्य द्रुताङ्कमेकं लघोरुपरि देयम्। सम्भूयाष्टाधिक स शतं द्वादश द्रुतप्रस्ताराङ्कादशाधिकं षट्शतानि निष्कास्य, शेषाङ्काद् द्वितीयं रूपमिति वदेत्। यथा वा षड् द्रुत प्रस्तारे लघुद्वयं द्रुतद्वयम्, द्रुतद्वयोपरि न्यासो नास्ति। अवशिष्ट लघुद्वये दक्षिणलघूपरि अग्निसंख्यां लिखेत्। (३) । ततोऽवशिष्टैकवामहस्तलघोरुपरि, द्रुताङ्कमेकं लिखेत्। एतत्द्वययोगे जातं चतुष्कं ऊनविंशतेरस्मिन् चतुष्के शोधिते शेषात् पञ्चदशं रूपमिति निर्दिशेत्। इति तालोद्दिष्टम् ।। ६४ ।।

जैसे बारह द्रुतों के प्रस्तार में उद्दिष्ट निकालना हो तो प्लुत के शीर्ष पर द्रुताङ्क ३४०, लघ्वङ्क १६१, गुर्वङ्क ६०, इन तीनों के संयोग से ५६१ लिखना। प्लुत छोड़कर बचे हुए छः द्रुतों का द्रुताद्यङ्क १०, ६, २, १। इसमें गुरु के शीर्ष पर द्रुताङ्क १०, और लघ्वङ्क ६, इनके योग से १६ रखना। फिर बचा हुआ दो द्रुतवाला लघु का द्रुताङ्क १ लघु के ऊपर रखना। मिलाकर ६०८ संख्या आई। इसको बारह द्रुत प्रस्तार के कुल अंक छः सौ दस में से घटाने से बची हुई दो संख्या से दूसरा रूप है, ऐसा कहना। अथवा—छः द्रुतों के प्रस्तार में दो लघु दो द्रुत (।।००) में दो द्रुतों के ऊपर कोई संख्या नहीं आयेगी। बचे हुए दो लघुओं में दक्षिण के लघु के ऊपर ३ संख्या लिखना, फिर बचे हुए वामस्थ लघु के ऊपर द्रुताङ्क एक संख्या लिखना। इन दोनों के योग से चार संख्या आयी। उन्नीस में से इस चार संख्या को घटाने से जो शेष संख्या पन्द्रह रहे, वह पूछा हुआ रूप है ।। ६४ ।।

अथ नष्टम्—

प्रस्तारेऽमुकसंख्याकं रूपं कीदृगितीरयेत्।
अन्यश्चैतस्य बोधाऽर्थं सुगमोपाय उच्यते ।। ६५ ।।
प्रस्तारात् पृष्टसंख्यां तु शोधयेच्छेशिताङ्कतः।
शुध्येद् द्रुतादि त्रितयादङ्कश्चेदन्ततः प्लुतम् ।। ६६ ।।
लिखेद् द्रुतस्य च लघोरङ्कश्चेद् गुरुमालिखेत्।
द्रुतस्याङ्के विशुद्धे तु लघुं द्रुतमतोऽन्यथा ।। ६७ ।।
ज्ञातमात्रां विना यावद्द्रुतं पृष्टस्य शेषितम्।
यावद् द्रुतस्य चत्वारो येङ्कास्तैः पूर्ववत् पुनः ।। ६८ ।।

शेषे विशुद्धे विलिखेत् पूर्ववच्च प्लुतादिकम् ।
एवं मात्रानुसारेण पूर्वं पूर्वं लिखेत् सुधीः ।
पदे निःशेषिते सर्वं द्रुतमेव लिखेत् पुरः ॥ ६६ ॥

प्रस्तार में अमुक संख्या का स्वरूप कैसा है, ऐसा कोई पूछे तो उसे जानने के लिये सरल उपाय कहते हैं। प्रस्तार की कुल संख्या में से पूछी हुई संख्या ऊन करना, शेष अंकों में से द्रुतादि तीन अंक (द्रुताङ्क-लध्वङ्क-गुर्वङ्क) निकले तो प्लुत लिखना। द्रुताङ्क और लध्वङ्क जाने से (शुध्येत्) गुरु लिखना। द्रुताङ्क निकलने से लघु लिखना और न निकले तो द्रुत लिखना। इस प्रकार जितने रूप मिले उससे पूछी हुई संख्या में जितना शेष रहे वे सब द्रुत लिखना। अगर शेष निकल जाय तो पहले की पद्धति से प्लुतादि लेना। इस प्रकार मात्रानुसार पूर्व-पूर्व (बाईं तरफ) लिखना, फिर संख्या न बचे तो द्रुतादि लिखना ॥ ६५–६६ ॥

उदाहरणम्—षड् द्रुतप्रस्तारे चतुर्थप्रस्तारे पृष्टे ऊनविंशतेश्चतुष्कं निष्कासयेत्। अवशिष्टाः पञ्चदशाङ्कात् द्रुताङ्के दशके शुद्धे ततो लघुं लिखेत्। अवशिष्टमात्राचतुष्टयस्य, द्रुताङ्के त्रये लध्वङ्के द्वये च शोधिते गुरुं लिखेत्। जातं चतुर्थं रूपम्।

अत्र पिङ्गलवनमेरु पताकादयः सन्ति, बाहुल्यभयान्नोक्ताः ॥ १०० ॥

उदाहरण—छः द्रुतवाले प्रस्तार में से, चौथे का स्वरूप पूछने पर उन्नीस संख्या में से चार घटाना। बची हुई संख्या पन्द्रह, उसमें से द्रुताङ्क दस घटने से लघु लिखना। शेष चार द्रुत अवयवों के लिए (अवयव चतुष्टस्य) द्रुताङ्क ३ और लध्वङ्क दो निकलने से गुरु लिखना। इससे चौथा रूप हो गया। पिंगलवनमेरू पताकादि प्रकार हैं, वे विस्तार बाहुल्य के भय से नहीं कहे ॥ १०० ॥

अथ प्लुतादि मात्राभेदेन तालघातनं यथा—

ताले निष्णातहस्तः प्लुतमनुघटयेद् घातमेकं सशब्दम्।
तत्पश्चाद्द्वौ च घातौ निनद विरहितौ दर्शयेदूर्ध्वतोऽधः ॥
शून्यत्वात् फक्कतालाविति जगति पुनः सुप्रसिद्धौ सुनद्धा-
वित्थं घातत्रयं यत् त्रिकलतनुवहे वर्णयेद् वर्णकारः[1] ॥
एकोघातः सशब्दो द्विकल इह गुरौ शब्दहीनस्तथान्यः
सोऽप्यूर्ध्वं याति लीलावलनवलयितोत्तालहस्ताङ्गुलीभिः ॥
किं चोच्चैरेकमात्रासमुदयिनि लघौ घात एको निनादी।
आद्ये मात्रार्धभाजि द्रुतवपुषि लघोरर्द्धनादेन घातः ॥
इति तालघातनप्रकारः ॥ १०१ ॥

---

१. (घातकारः)

प्लुतादि मात्रा भेद से तालघात कहते हैं। ताल में जो सिद्धहस्त है, प्लुत के बाद एक सशब्द तालघात करें। उसके बाद दो आघात शब्द रहित ऊपर से नीचे करना। ये आघात निःशब्द यानी शून्य होने से उनको फक्कताल कहते हैं। ये दोनों जगत में सुव्यवस्थित रूप से प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार प्लुत के तीन घात वर्णन करने चाहिए। द्विकल गुरु में एक घात सशब्द और दूसरा निःशब्द होना चाहिए। वह निःशब्द आघात भी हस्ताङ्गुलियों को उतान दशा में विलयित करके ऊपर ले जाना चाहिए। एक मात्रात्मक लघु में एक सशब्द घात ऊँचा किया जाता है। अर्धमात्रा रूप द्रुत में एक घात अर्धनाद से करना। ऐसा तालघात का प्रकार है ॥ १०१ ॥

अथ तालाः—

तालाः प्रयोगानर्हा ये नोक्ताः[1] सैकं शतं बुधैः।
तेऽप्यत्र तद्विदां प्रीत्यै लिख्यन्ते लक्ष्यलक्षणैः ॥ १०२ ॥
चञ्चत्पुटश्चाचपुटः षट्पितापुत्रकस्तथा।
सम्पक्वेष्टाक उद्घट्ट आदितालश्च दर्पणः ॥ १०३ ॥
चर्चरी सिंहलीलश्च कन्दर्पः सिंहविक्रमः।
श्रीरङ्गो रङ्गलीलश्च रङ्गतालः परिक्रमः ॥ १०४ ॥
प्रत्यङ्गो गजलीलश्च त्रिमल्लो[2] वीरविक्रमः।
हंसलीलो वर्णलीलो राजचूडामणिस्तथा ॥ १०५ ॥
रङ्गो द्योतो राजतालः सिंहविक्रीडितस्तथा।
वनमाली वर्णतालो मिश्रो रङ्गप्रदीपकः ॥ १०६ ॥
हंसनादः सिंहनादो मल्लिकामोदसंज्ञकः।
ततः शरभलीलश्च रङ्गाभरण एव च ॥ १०७ ॥
ततः तुरगलीलश्च तस्माच्च सिंहनन्दनः।
जयश्रीर्विजयानन्दः प्रतितालोऽद्वितीयकः ॥ १०८ ॥
मकरन्दः कीर्तितालो विजयो जयमङ्गलः।
राजविद्याधरो मण्ठो जयतालः सुदुर्बलः ॥ १०९ ॥
ततो निःसारुकः क्रीड़ा त्रिभङ्गी कोकिलप्रियः।
श्रीकान्तो बिन्दुमाली च समतालश्च नन्दनः ॥ ११० ॥
उदीक्षणो मण्ठिका च ढेङ्किका वर्णमण्ठिका।
अभिनन्दोऽन्तरक्रीडा लघुतालश्च दीपकः ॥ १११ ॥

---

१. (प्रोक्ताः)
२. त्रिभिन्नो

अनङ्गतालो त्रिषमो नान्दी कुन्दमुकुन्दकौ।
एकताली च कङ्कालश्चतुस्तालश्च खंखुडी ॥ ११२ ॥
अभङ्गो राजझङ्कारस्तथैव लघुशेखरः।
प्रतापशेखरश्चान्यो गजझम्पश्चतुर्मुखः ॥ ११३ ॥
झङ्कारः प्रतिमण्ठश्च तथा तालस्तृतीयकः।
तस्मादुपरि विज्ञेयो वसन्तोललितः शिवः ॥ ११४ ॥
करशाखा च षट्तालो वर्धनो वर्धकस्तथा।
राजनारायणस्तस्माद्विद्वद्भिः परिकीर्तितः ॥ ११५ ॥
मदनश्चैव विज्ञेयः पार्वतीलोचनस्तथा।
ततः सारङ्गतालः स्यात्ततः श्रीनन्दिवर्धनः ॥ ११६ ॥
लीलाविलोकितश्चान्यो ललितप्रिय एव च।
जनकश्चैव लक्ष्मीशो रागवर्धनसंज्ञकः ॥ ११७ ॥
उत्सवश्चेति तालानामेकेनैवाधिकं शतम्।
एषामुक्तक्रमेणैव कलाविन्यास उच्यते ॥ ११८ ॥

अब ताल कहते हैं—तालों में जो प्रयोगार्ह और प्रयोग के अयोग्य ताल हैं, वे भी यहाँ लक्ष्य-लक्षण सहित कहे जाते हैं। (१) चच्चत्पुट, (२) चाचपुट, (३) षट्-पितापुत्रक, (४) संपक्वेष्टाक, (५) उद्घट्ट, (६) आदिताल, (७) दर्पण, (८) चर्चरी, (९) सिंहलील, (१०) कन्दर्प, (११) सिंहविक्रम, (१२) श्रीरङ्ग, (१३) रङ्गलील, (१४) रङ्गताल, (१५) परिक्रम, (१६) प्रत्यङ्ग, (१७) गजलील, (१८) त्रिभिन्न, (१९) वीरविक्रम, (२०) हंसलील, (२१) वर्णलील, (२२) राजचूड़ामणि, (२३) रङ्गोद्योत, (२४) राजताल, (२५) सिंहविक्रीडित, (२६) वनमाली, (२७) वर्णताल, (२८) मिश्र, (२९) रङ्ग-दीपक, (३०) हंसनाद, (३१) सिंहनाद, (३२) मल्लिकामोद, (३३) शरभ-लील, (३४) रङ्गाभरण, (३५) तुरगलील, (३६) सिंहनन्दन, (३७) जयश्री, (३८) विजयानन्द, (३९) प्रतिताल, (४०) द्वितीयक, (४१) मकरन्द, (४२) कीर्तिताल, (४३) विजय, (४४) जयमंगल, (४५) राजविद्याधर, (४६) मण्ठ, (४७) जयताल, (४८) सुदुर्वल, (४९) निःसारुक, (५०) क्रीडा, (५१) त्रिभङ्गी, (५२) कोकिलप्रिय, (५३) श्रीकान्त, (५४) बिन्दु-माली, (५५) समताल, (५६) नन्दन, (५७) उदीक्षण, (५८) मण्ठिका, (५९) ढेङ्किका, (६०) वर्णमण्ठिका, (६१) अभिनन्द, (६२) अन्तरक्रीड़, (६३) लघुताल, (६४) दीपक, (६५) अनङ्गताल, (६६) विषम, (६७) नान्दी, (६८) कुन्द, (३९) मुकुन्द. (७०) एकताली, (७१) कङ्काल, (७२) चतु-

स्ताल, (७३) खंखुड़ी, (७४) अभङ्ग, (७५) राजझङ्कार, (७६) लघुशेखर, (७७) प्रतापशेखर; (७८) गजझम्प, (७९) चतुर्मुख, (८०) झङ्कार, (८१) प्रतिमण्ठ, (८२) तृतीयक, (८३) वसन्तललित, (८४) शिव, (८५) करशाखा, (८६) षट्ताल, (८७) वर्द्धन, (८८) वर्द्धक, (८९) राजनारायण, (९०) मदन, (९१) पार्वतीलोचन, (९२) सारङ्गताल, (९३) श्रीनन्दिवर्द्धन, (९४) लीला, (९५) नि(वि)लोकित, (९६) ललितप्रिय, (९७) जनक, (९८) लक्ष्मी, (९९) ईश, (१००) रागवर्द्धन, (१०१) उत्सव। [(९८) लक्ष्मी, (९९) ईश एक ही होगा, अतः कुल सौ ताल होते हैं, यद्यपि ऊपर १०१ लिखें हैं] ॥ १०२–११८ ॥

अथ ताललक्षणम्—

चञ्चत्पुटे तप्लुतौ च SSIऽ̇, भगौ चाचपुटे स्मृतौ SIIS
पलगागलपाश्चैव ऽ̇ISSIऽ̇ षट्पितापुत्रको मतः ॥ ११९ ॥
[1]गत्रयं सप्लुताद्यन्तं संपक्वेष्टाकनामनि ऽ̇SSSऽ̇
ताले गत्रयमुद्धट्टे SSS आदौ तुलघुरेककः । ॥ १२० ॥
[2]लदौ दोलौ सिंहलीले IOOOI कन्दर्पे दौ लघू गुरुः OOIIS
गुरु त्रयाल्पगलप्लुताः स्यात्सिंहविक्रमः SSSIऽ̇SIऽ̇ ॥ १२१ ॥
सलौ प्लुतौ च श्रीरङ्गः IISIऽ̇ऽ̇ रङ्गलीले तु लौ गुरू ॥ SS
रङ्गताले द्रुतौ गश्च OOS द्वौ द्रुतौ मः परिक्रमे OOSSS ॥ १२२ ॥

अब ताल का लक्षण बताते हैं। (१) चञ्चत्पुट में तगण और प्लुत = SSIऽ̇ (२) चाचपुट में भगण और गुरु = SIIS, (३) षट्पितापुत्रक में प्लुत, लघु, गुरु, गुरु, लघु, प्लुत = ऽ̇ISSIऽ̇, (४) संपक्वेष्टाक में आद्यन्त में प्लुत, बीच में तीन गुरु = ऽ̇SSSऽ̇, (५) उद्धट्ट ताल में तीन गुरु = SSS, (६) आदिताल में एक लघु = I; [यहाँ सातवाँ–दर्पण और आठवाँ-चर्चरी ताल छूट गया है। (७) दर्पण में दो द्रुत एक गुरु = OOS, (८) चर्चरी में १६ द्रुत होते हैं।] (९) सिंहलील में एक लघु, एक द्रुत, दो द्रुत, एक लघु = IOOOI; (१०) कंदर्प में दो द्रुत, दो लघु, एक गुरु = OOIIS; (११) सिंहविक्रम में तीन गुरु, लघु, प्लुत गुरु, लघु, प्लुत = SSSIऽ̇SIऽ̇; (१२) श्रीरङ्ग में सगण (दो लघु, गुरु), लघु, दो प्लुत = IISIऽ̇ऽ̇, (१३) रंगलील में दो लघु, दो गुरु = IISS; (१४) रंगताल में दो द्रुत, एक गुरु = OOS; (१५) परिक्रम में दो द्रुत, मगण = OOSSS; (श्लोक समाप्त होने से दो लघु होंगे।) ॥ ११९–१२२ ॥

---

१. 'गत्रयं स्थाप्लुताद्यन्तं संपक्वेष्टाकनामानि' इति पाठान्तरम्।

२. रासोऽयमुच्यते कैश्चिद्दर्पणे दद्व्याद्गुरुः।
एकान्तरविरामाद्यश्चर्चरी षोडशद्रुतैः ॥ (संगीतसारसंग्रह श्लोक २६०)

प्रत्यङ्गसंज्ञके ताले मगणात् स्याल्लघुद्वयम् SSSII
[1]गजलीले विरामान्तं ज्ञेयं लघुचतुष्टयम् ।ं।ं।ं।ं (SII) ॥१२३॥
ताले त्रिभिन्ने लपदा ।S̀० लो दौगो वीरविक्रमे ।००S
[2]विरामिलौ हंसलीले ।ं।ं वर्णलीले तु दौलगौ ००।S ॥१२४॥
राजचूड़ामणौ ताले द्रुतौलश्च द्रुतौलगौ ००।००।S
रङ्गद्योते मोलपौ च SSS।S̀ राज्ञि गौदौ गुरुर्लपौ SS००S।S̀ (॥१२५॥)
राज्ञि = राजतालः ॥

(१६) प्रत्यङ्ग नामक ताल में मगण दो लघु = SSSII; (१७) गजलील में चार लघु विराम ।ं।ं।ं।ं; [लेकिन ताल का स्वरूप ।।।। दिया हुआ है और । S̀ ।। यह रूप भी अतिरिक्त दिया गया है]; (१८) विभिन्न ताल में लघु, प्लुत, द्रुत = ।S̀ ०, (१९) वीरविक्रम में लघु, दो द्रुत, गुरु = ।००S, (२०) हंसलील में दो लघु-विराम = ।ं।ं; (२१) वर्णलील में दो द्रुत, लघु गुरु = ००।S; (आगे एक लघु = । अधिक है, जो श्लोक में नहीं है); राजचूड़ामणि ताल में दो द्रुत, लघु, दो द्रुत, लघु, गुरु = ००।००।S; (२३ रंगद्योत में मगण, लघु, प्लुत = SSS।S̀; (२४) राजताल में दो गुरु, दो द्रुत, गुरु, लघु, प्लुत = SS००S।S̀ (राज्ञि अर्थात् राजताल) ॥ १२३–१२५ ॥

ललपागो लगौलश्च सिंहविक्रीडिते लगौ ।।S̀S।S।।S
चतुर्द्रुतानिलौ दौ च गुरुः स्याद् वनमालिनि ००००।।००S ॥१२६॥
वर्णताले गलौ दौ गः S।००S मिश्रताले दलौ गपौ ०।SS̀
रङ्गप्रदीपे तगपाः SS।SS̀हंसनादे लपौददप् ।S̀००S̀ [१२७]
लतौगः सिंहनादे स्यात् ।SS।S लोदौ दौ मल्लिकादिके ।००००
लश्च दश्च लघू स्यातां तालेशरभलीलके ।०।। [१२८]

(२५) सिंहविक्रीडित में लघु, लघु, प्लुत, गुरु, लघु, लघु, गुरु, लघु, लघु, गुरु = ।।S̀S।S।।S (२६) वनमाली में चार द्रुत, दो लघु, दो द्रुत, गुरु (श्लोकानुसार) = ००००।।००S; [मूल रूप में शुरू में एक द्रुत कम दिया गया है, श्लोक में एक ज्यादा है। रूप के अन्त में एक लघु ज्यादा है]; (२७) वर्णताल में गुरु, लघु, दो द्रुत, गुरु=S।००S; (२८) मिश्रताल में श्लोकानुसार द्रुत, लघु, प्लुत, गुरु=०।S̀S [स्वरूप में ०।SS̀ है, जिसके अनुसार 'दलौ गपौ' होना चाहिए]; (२९) रंगप्रदीप में तगण, गुरु, प्लुत = SSSS̀; (३०) हंसनाद में लघु, प्लुत, दो द्रुत, प्लुत = ।S̀००S̀ [स्वरूप में प्रथम लघु नहीं दिया गया है]; (३१) सिंहनाद में लघु. तगण, गुरु = ।SS।S; (३२) मल्लिकादि में लघु, चार द्रुत = ।००००; [स्वरूप में प्रथम लघु नहीं दिया गया है]; (३३) शरभलील में लघु, द्रुत, दो लघु = ।०।। [॥ १२६–१२८ ॥]

१. मूले 'गननीले' २. मूले 'विरामे लो हंसनीले'

तो लपौ रङ्गाभरणे ऽऽ।।ऽ̇ दौलस्तुरगलीलके ००।
अयमेव हयलील उच्यते इति केचित् । तन्न हयलीले
विरामान्तद्रुतद्वन्द्वाद्द्रुतद्वयम् । इति हरिनायकोक्ते-
स्तालान्तरमसौ ॥ १२६ ॥ (०̇०̇००)
गुरुद्वयं लः प्लुतो लौ गुरुद्रुतौ प्लुतो लघुः
प्लुतो गुरुर्लौ निःशब्दाश्चत्वारः [1]सिंहनन्दने
ऽऽ।ऽ̇।।ऽ०० (ऽऽ) ऽ̇।ऽ̇ऽ।। × × × × [॥ २३० ॥]
जो लगौ च जय श्री ।ऽ।।ऽ; विजयानन्दे.लघुर्यगौ ।।ऽऽऽ
लौ द्रुतौ प्रतिताले च ।।०० द्रुतौलश्च द्वितीयके ००। [॥ १३१ ॥]
मकरन्दे द्रुतद्वन्द्वं ०० कीर्तौ लपगलप्लुताः ।ऽ̇ऽ।ऽ̇
प्लुताद्यन्तो गो विजये ऽऽऽ ललभाजयमंगले ।।ऽ।। [१३२]

(३४) रङ्गाभरण में तगण, लघु, प्लुत = ऽऽ।।ऽ̇; (३५) तुरगलील में दो द्रुत लघु = ००।;—व्याख्या = हय, तुरग शब्द पर्याय होने से यही हयलील है, ऐसा कोई कहते हैं। लेकिन यह ठीक नहीं है, क्योंकि हयलील में विरामान्त द्रुत द्वन्द्व और दो द्रुत, ऐसा हरिनायक ने कहा है इसलिए यह दूसरा ताल है। (३६) सिंह-नन्दन में दो गुरु, लघु, प्लुत, दो लघु, गुरु, दो द्रुत, दो गुरु, प्लुत लघु, प्लुत, गुरु, दो लघु = ऽऽ।ऽ̇।।ऽ००ऽऽऽ̇।ऽ̇ऽ।। [श्लोक में गुरु द्रुतः के स्थान पर 'गुरुद्रुतौ गौ' कहने से यह रूप आता है; श्लोक में फर्क न करें तो ८, ९, १० ०ऽऽ ज्यादा है। संगीत रत्नाकर में श्लोक २९५ में है = ऽऽ।ऽ̇।ऽ००ऽऽ।ऽ̇।ऽ̇ऽ।।]; (३७) जयश्री में जगण, लघु, गुरु = ।ऽ।।ऽ [अन्त में लघुसूचक रेखा है, वह श्लोक में नहीं है, वह समाप्ति सूचक रेखा भी हो सकती है]; (३८) विजयानन्द में लघु, यगण गुरु = ।।ऽऽऽ; (३९) प्रतिताल में दो लघु, दो द्रुत = ।।००; (४०) द्वितीयक ताल में दो द्रुत, लघु = ००।; (४१) मकरन्द में दो द्रुत = ००; (४२) कीर्ति में लघु, प्लुत, गुरु, लघु, प्लुत = ।ऽ̇ऽ।ऽ̇; (४३) विजयताल में प्लुत, गुरु, प्लुत = ऽ̇ऽऽ̇; (४४) जयमंगल में लघु, लघु, भगण = ।।ऽ।। [॥ १२९–१३२ ॥]

लघुर्गुरुद्रुतौ ताले राजविद्याधराभिधे ।ऽ००
सगणाल्लघवोऽशब्दाश्चत्वारो मण्ठके पुनः ।।ऽLLLL [॥ १३३ ॥]
जयताले तु भगणाद् द्वौलघू द्वौ द्रुतौ प्लुतौ ऽ।। ॥ ००ऽ̇ऽ̇
सुदुर्बले दौ लघू च ००।। निःसारे लाद् विरामिलः । ।̇ [॥१३४॥]
द्रुताद् विरामिदः क्रीडा ००̇ त्रिभङ्गिस्तुलघूगुरुः ।।ऽ
कोकिलप्रिये गलपाः ऽ।ऽ̇ श्रीकान्ते तगणाल्लघुः ऽऽ।। [१३५ ॥]

---

१. निःशब्दचत्वारः संगीतरत्नाकर में चार लघु निःशब्द कहा है। यहाँ चार निःशब्द कहा है वह चार काक पद होता है × × × ×।

चत्वारस्तु द्रुता गुर्वोर्मध्ये स्युर्बिन्दुमालिनि ऽ००००ऽ
समे लौ दौ दो विरामी ॥००ò नन्दने लौ द्रुतौ प्लुतः ॥००ऽ̀ ॥१३६॥

(४५) राजविद्याधर में लघु, गुरु, दो द्रुत = ।ऽ००; (४६) मण्ठ में सगण और चार निःशब्द लघु = ॥ऽ; चार निःशब्द LLLL (४७) जयताल में भगण, दो लघु, दो द्रुत, दो प्लुत = ऽ॥ ॥००ऽ̀ऽ̀; (४८) सुदुर्वल में दो द्रुत, दो लघु = ००॥; (४९) निःसार में लघु, लघुविराम = । ।̀; (५०) क्रीड़ा ताल में द्रुत, द्रुत विराम = ०ò; (५१) त्रिभङ्गी, में श्लोकानुसार दो लघु, गुरु = ॥ऽ; [उदाहरण में ऽ।ऽ॥ रूप में होने से 'राल्लघूमतौ' ऐसापाठ होना चाहिए], (५२) कोकिल प्रिय में गुरु लघु, प्लुत ऽ।ऽ̀; (५३) श्रीकान्त में तगण, लघु = ऽऽ॥; (५४) बिन्दुमाली में दो गुरु के बीच चार द्रुत = ऽ००००ऽ [उदाहरण में दो लघु ज्यादा है, उसके अनुसार श्लोक में 'स्युः' के स्थान पर 'लौ' होना चाहिए]; (५५) सम में दो लघु, दो द्रुत द्रुतगिराम = ॥००ò; (५६) नन्दन में दो लघु, दो द्रुत, प्लुत = ॥००ऽ̀ [॥१३३–१३६ ॥]

उदीक्षणे लौगुरुश्च ॥ऽ मल्लिका गद्वयात्प्लुतः ऽऽऽ̀
ढेङ्किकारगणो ऽ।ऽ वर्णमण्ठिकालदला द्रुतौ ।०।०० [॥ १३७ ॥]
लौ दौ गुरुश्चाभिनन्दे ॥००ऽ ऽन्तरक्रीड़ाविरामदाः òòò
लघुताले चतुर्लाः स्युः ॥॥ दौ लौ गौ दीपके स्मृतौ ००॥ऽऽ ॥१३८॥
लघू प्लुतोन्तः सगणो यत्र सोऽनङ्गईर्यते ॥ऽ̀॥ऽ
विषमेऽष्टौ द्रुता मध्ये प्रान्ते च सविरामकाः ò००००००००ò ॥१३९॥
लदौ दलौ गुरुर्नान्दीतालोऽयं भरतोदितः ।००।ऽ
लघुचतुष्काद् गुरुः कुन्दे ॥॥ऽ मुकुन्दे लददालघुः ।००। [॥ १४० ॥]

(५७) उदीक्षण में दो लघु, गुरु = ॥ऽ; (५८) मल्लिका में दो गुरु, प्लुत = ऽऽऽ̀; (५९) ढ़ेङ्कि में रगण = ऽ।ऽ; (६०) वर्णमण्ठक में लघु, द्रुत, लघु, दो द्रुत = ।०।००; (६१) अभिनन्दन में दो लघु, दो द्रुत, गुरु = ॥००ऽ (यहाँ उदाहरण में अन्त में गुरु के बदले लघु लिखा है); (६२) अन्तरक्रीड़ा में तीत द्रुतविराम = òòò; (६३) लघुताल में चार लघु = ॥॥; (६४) दीपक में दो द्रुत, दो लघु, दो गुरु = ००॥ऽऽ; (६५) अनङ्ग में दो लघु, प्लुत, सगण = ॥ऽ̀।।ऽ, (६६) विषम में आठ द्रुत और आद्यन्त में द्रुतविराम = ò००००००००ò, (६७) नान्दीताल में लघु, द्रुत, द्रुत, लघु, गुरु = ।००।ऽ; (६८) कुन्द में चार लघु, एक गुरु = ॥॥ऽ; (६९) मुकुन्दमें लघु, द्रुत, द्रुत; लघु = ।००। [॥ १३७–१४० ॥]

द्रुतेनैकेनैताली कथिता पूर्वसूरिभिः ०
चतुर्विधस्तु कङ्कालः पूर्णः खण्डः समोऽसमः ॥ १४१ ॥

त्रिद्रुतैर्दलगैः पूर्णः ००००।ऽ खण्डे दाभ्यां गुरुद्वयम् ००ऽऽ
समेलघुर्गुरुद्वन्द्वाद् ऽऽ। विषमे लाद् गुरुद्वयम् ।ऽऽ [॥ १४२ ॥]
चतुस्तालो दत्रयाल्लो ०००। केचिद् गदचतुष्टयम् ऽ००००
विरामादि विरामान्तं ल चतुष्कं च खंखुड़ी ᵕ।।।।ᵕ [॥ १४३ ॥]
अभङ्गेलप्लुतौ ।ऽ̀ राजझङ्कारे रगणाद् द्रुतौ ऽ।ऽ००
एकेन सविरामेण लघुना लघुशेखरः ।। [॥ १४४ ॥]

(७०) एकताली में एक द्रुत = ०; (७१) कंकाल ताल में चार प्रकार है—पूर्ण, खण्ड, सम, (असम) विषम—(१) पूर्ण में तीन द्रुत, द्रुत, लघु, गुरु = ००००।ऽ; (२) खण्ड में दो द्रुत, दो गुरु = ००ऽऽ; (३) सम में दो गुरु के बाद लघु = ऽऽ।; (४) विषम में लघु के बाद दो गुरु = ।ऽऽ; (७२) चतुस्ताल में तीन द्रुत के बाद लघु = ०००। (कुछ लोग इसका रूप गुरु के बाद चार द्रुत ऐसा मानते हैं = ऽ००००); (७३) खंखुड़ी में चार लघु और आद्यन्त में विराम = ᵕ।।।।ᵕ; (७४) अभङ्ग में लघु, प्लुत = ।ऽ̀; (७५) राजझङ्कार में रगण, दो द्रुत = ऽ।ऽ००; (७६) लघुशेखर में एक लघु और लघुविराम = ।। [॥ १४१–१४४ ॥]

प्लुतात् प्रतापशेखरे विरामान्तं द्रुतद्वयम् ऽ̀०̀०̀
[१]गजझम्पे गुरुस्त्वेको विरामान्तं द्रुतत्रयम् ऽ०̀०̀०̀ [॥ १४५ ॥]
चतुर्मुखाभिधे ताले जगणो लप्लुतो भवेत् ।ऽ।।ऽ̀
पौ लौ गौ लौ चतुर्व्योम प्लुतं तु यगणस्तथा [॥ १४६ ॥]
द्रुतद्वन्द्वं समुद्दिष्टं ताले झङ्कारके बुधैः ऽ̀ऽ̀।।ऽऽ।।००००ऽ̀।ऽऽ००
[प्रतिमण्ठे सभगणौ कैश्चिन्माल्ल इतीर्यते ।।ऽऽ।।, ऽऽऽ। [॥१४७॥]
स्यात् तृतीयाभिधे ताले विरामान्तं द्रुतद्वयम् ०̀०̀
वसन्ते नगणान्मः स्यात् ।।।ऽऽऽ ललिते दद्वयाल्लगौ ००।ऽ [॥१४८॥]
शिवताले लाद्गुरुश्च ।ऽ करशाखा चतुर्द्रुताः ००००][२]
षट्तालाख्ये बिन्दुषट्कं ०००००० वर्द्धने दद्वयाल्लपौ ००।ऽ̀ [॥१४९॥]
लौ दौ वर्णयतौ ।।०० राजनारायणे द्रुतौ जजौ ००।ऽ।।ऽ।
द्रुतद्वन्द्वं लघुश्चै को मदने परिकीर्त्तितः ००। [॥ १५० ॥]
पार्वतीलोचने दौ द्वौलददाभजजाः क्रमात् ००।००ऽ।।।ऽ।।ऽ।
सारङ्गतालः कथितो विरामान्तं चतुर्द्रुतम् ०̀०̀०̀०̀ [॥ १५१ ॥]

(७७) प्रतापशेखर में प्लुत, दो द्रुतविराम = ऽ̀०̀०̀; (७८) गजझम्प में एक गुरु, तीन द्रुतविराम = ऽ०̀०̀०̀; (७९) चतुर्मुख में जगण, लघु, प्लुत = ।ऽ।।ऽ̀; (८०) झङ्कार में दो प्लुत, दो लघु, दो गुरु, दो लघु, चार द्रुत, प्लुत, यगण, दो द्रुत = ऽ̀ऽ̀।।ऽऽ।।००००ऽ̀।ऽऽ००; (८१) प्रतिमण्ठ में सगण, भगण = ।।ऽऽ।। (मतान्तर

१. मूले जगझम्पे ।   २. संगीतसारसंग्रह में २८६–२८८

से मगण, एक लघु = SSSI), (८२) तृतीय नामक ताल में दो द्रुतविराम = ὀὀ; (८३) वसन्त में नगण, मगण = IIISSS; (८४) ललित में दो द्रुत, लघु, गुरु = ००IS; (८५) शिवताल में लघु, गुरु = IS; (८६) करशाखा में चार द्रुत = ००००; (८७) षट्ताल में छः द्रुत = ००००००; (८८) वर्धन में दो द्रुत, लघु, प्लुत = ००IS̀; (८९) वर्णयति में दो लघु, दो द्रुत = II००; (९०) राजनारायण में दो द्रुत, दो जगण = ००ISIISI; (९१) मदन में दो द्रुत, लघु = ००I; (९२) पार्वती लोचन में दो द्रुत, लघु, दो द्रुत, भगण, दो जगण = ००I००SIIISIISI; (९३) सारंगताल में चार द्रुतविराम = ὀὀὀὀ [॥ १४५–१५१ ॥]

श्रीनन्दीवर्धने भात्पः SIIS̀ लीलाताले दलप्लुताः ०IS̀
विलोकिते लगौ दौपः ISS००S̀ साह्लगौ ललितप्रिये IISIS [॥१५२॥]
जनकाभिधताले स्यान्नयसाश्च प्लुतो गुरुः IIIISSIISS̀S
द्रुतद्वयं विरामान्तं लक्ष्मीशोलौ प्लुतस्ततः ὀὀIIS̀ [॥ १५३ ॥]
बिन्दुद्वयं विरामान्तं दप्लुतो रागवर्द्धने ὀὀ०S̀[1]
उत्सवः कथितः प्राज्ञैर्लघोः पूर्वं प्लुतो यदा S̀I [॥ १५४ ॥]
एवमेकाधिकशतमुक्तास्ताला मनीषिभिः।
दामोदरादावेतेषां केषुचिद् दृश्यतेऽन्यथा ॥
ऋषीणां मतबाहुल्याद् विकल्पस्तेषु विद्यते [॥ १५५ ॥]

॥ इति तालार्णवाध्यायः समाप्तः ॥

(९४) श्रीनन्दीवर्धन में भगण, प्लुत = SIIS̀; लीलाताल में द्रुत, लघु, प्लुत = ०IS̀; (९६) विलोकित में लघु, दो गुरु, दो द्रुत, प्लुत = ISS००S̀ (मूल में लगौ है इसके अनुसार एक गुरु ज्यादा है, अगर वैसा इष्ट हो तो 'लो गौ' ऐसा पाठ होना चाहिए।); (९७) ललितप्रिय में सगण, लघु, गुरु = IISIS; (९८) जनकताल में नगण, यगण, सगण, प्लुत, गुरु = IIIISSIISS̀S; (९९) लक्ष्मीश में दो द्रुत विराम, दो लघु, प्लुत = ὀὀIIS̀ (लक्ष्मी में दो द्रुतविराम = ὀὀ, ईश में = IIS̀); (१००) रागवर्धन में दो द्रुतविराम, द्रुत, प्लुत = ὀὀ०S̀; (१०१) उत्सव में प्लुत, लघु = S̀I (पहले प्लुत होने से 'लघौ पूर्वं प्लुतो यदा' ऐसा लिखा है।) ॥

इस प्रकार एक सौ एक ताल विद्वानों ने कहे हैं। दामोदरादि ग्रन्थों में कुछ तालों के विषय में अन्य प्रकार भी हैं। ऋषियों के मतभेद से सबको वैकल्पिक प्रमाण्य है ॥

॥ तालार्णव अध्याय समाप्त ॥

---

१. मूले IS

अथ गीते तालोदाहरणम्—तत्र च

सर्वाश्रय श्रीनवद्वीपचन्द्र श्रीश व्रजाधीश शेषादिवन्द्य ।
श्रीमन्महाभक्तचित्तैकचोर प्रसीद हे नाथ गोविन्द गौर ॥

श्रीमद्गौरकृष्णलीलामृत ग्रंथस्त्वयं सदा ।
श्रूयतां परमानन्दवर्द्धनो श्रवणेच्छुक ॥
जयजय श्रीगौरगोविन्द सर्वाश्रय ।
गण सह मोरे कृपा कर कृपामय ॥
ओहे श्रोतागण एइ करि निवेदन ।
सदा गीतचन्द्रोदय करह श्रवण ॥
गीतचन्द्रोदये अष्टामृत अनुपाम ।
पूर्वे जानाइल अष्टामृते अष्टनाम ॥
ताहे गौर कृष्णलीलामृत एवे गाइ ।
इथे जे गायनक्रम संक्षेपे जानाइ ॥
प्रथमे श्रीगौरजन्मोत्सव जानाइव ।
तदुपरि नित्यानन्दाद्वैत जन्म गाव ॥
तदुपरि गौरांगेर होलिकादि लीला ।
क्रमेते गाइब जा शुनिया द्रवे शिला ॥
तदुपरि किछु वलदेव जन्म कैया ।
श्रीकृष्णेर जन्मोत्सव गाव विस्तारिया ॥
श्रीराधिका जन्मोत्सव गाव तारपर ।
तदुपरि होरिकादि यात्रा मनोहर ॥
श्रीकृष्णेर जन्मोत्सव आदिर प्रथमे ।
गाव गौरभावावेश संक्षेप-सुक्रमो ॥
नानाताले संयोग करिव गीतगण ।
तालार्णवे देख एइ तालेर लक्षण ॥
श्रीगुरु गौरांगकृष्ण पदध्यान करि ।
गौरकृष्णलीलामृत कहे नरहरि[1] ॥

अव गीत में ताल का उदाहरण—सबके आश्रयदाता श्रीनवद्वीपचन्द्र श्रीशव्रजाधीश को वन्दन करते हैं। हे श्रीमन्महाभक्त चित्तचोर, हे नाथ गोविन्द गौर प्रसन्न हों। इस ग्रंथ में श्रीमद् गौरकृष्णलीलामृत सदा रहे, जिससे सुनने के इच्छुक भक्त

१. अतः परं खण्डितम् ।

परमानन्द प्राप्त करें। सर्वाश्रय श्रीगौरगोविन्द की जय हो, हे कृपामय मुझ पर कृपा करो। हे श्रोतागण मैं यही निवेदन करता हूँ कि सर्वदा गीतचन्द्रोदय का श्रवण करिये। गीतचन्द्रोदय में अष्टामृत हैं, जिनके आठ नाम मैंने पहले बताये हैं। उनमें मैं गौरकृष्णामृत का गान करता हूँ, यहाँ गायनक्रम मैं संक्षेप में बताता हूँ। पहले मैं श्रीगौरजन्मोत्सव बताऊँगा, उसके बाद नित्यानन्दद्वैत का जन्म-गान करूँगा। उसके पश्चात् गौरांग की होलिकादि-लीला का क्रमशः गान करूँगा, जिसे सुनकर शिला भी पिघल जाती है। उसके पश्चात् बलदेव-जन्मकथा कहकर श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव का विस्तृत गान करूँगा। इसके पश्चात् श्रीराधिका जन्मोत्सव गान करूँगा, उसके बाद मनोहर होरिकादि-यात्रा होगी। श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव आदि के पहले क्रम से भावपूर्ण गौरगान करूँगा। गीत में नाना तालों का संयोग करूँगा। इन तालों के लक्षण तालार्णव में देखिये। श्रीगुरु गौरांगकृष्ण के चरणों का ध्यान कर नरहरि गौरकृष्णलीलामृत कहते हैं[1]।

१. इसके बाद खण्डित

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

श्रीश्रीभक्तिरत्नाकरः

पञ्चम तरंग
का
संगीतांश

श्रीश्रीभक्तिरत्नाकर के पञ्चम तरंग[1] का संगीतांश

तथाहि श्रीचैतन्यभागवते आदिखण्डे—

गोकुले नन्देर घर वसति देखिया।
विस्तर रोदन प्रभु करिला वसिया॥ २३४७॥

तवे प्रभु मदनगोपाले नमस्करि'।
चलिला हस्तिनापुर पाण्डवेर पुरी॥ २३४८॥

देखिया सकल वन आसि' वृन्दावने।
खेलये अद्‌भुत खेला यमुनापुलिने॥ २३४९॥

एइ जे अपूर्व वटवृक्षेर तलाते।
क्षणे बैसे क्षणे उठे लोटाय धुलाते॥ २३५०॥

क्षणे नाना पुष्पे वेश करे आपनार।
क्षणे कहे-कोथा प्राण कानाइ आमार॥ २३५१॥

नित्यानन्द भावावेशे करे टलमल।
अश्रुजले पूर्ण दीर्घ नयनयुगल॥ २३५२॥

ऐछे नित्यानन्द वृन्दावनेते विहरे।
नित्यानन्द-चेष्टा के बूझिते शक्तिधरे ?॥ २३५३॥

जानिलेन—श्रीगौरसुन्दर नवद्वीपे।
गुप्तरूपे विहरि' विहरे व्यक्तरूपे॥ २३५४॥

मने मने हासि' नित्यानन्द हलधर।
निरन्तर पुलके पूर्णित कलेवर॥ २३५५॥

हइला अधैर्य्य से प्रभूर आकर्षणे।
नवद्वीपे गमन करिला एथा हने॥ २३५६॥

विंशति वत्सर कैला तीर्थ-पर्य्यटन।
यथा जे विलास ताहा के करु वर्णन॥ २३५७॥

---

१. 'भक्तिरत्नाकर' विभिन्न तरङ्गों में विभाजित है। उनमें से पंचम तरंग का अंतिम संगीतांश यहाँ प्रस्तुत है। अतः शेष अंश वहीं देखना चाहिए।—संपादक।

एइ प्रभु श्रीनित्यानन्देर क्रीड़ास्थान।
जे करे दर्शन से परम भाग्यवान ॥ २३५८ ॥

अहे श्रीनिवास ! एइ 'चीरघाट' हय।
केह वा 'चयनघाट' इहारे कहय ॥ २३५६ ॥

एकदिन राधाकृष्ण सखीगणसने।
रासादि-विलास-अन्ते एथा आइला स्नाने ॥ २३६० ॥

वस्त्रादि राखि' एइ नीपवृक्षतले।
सूक्ष्म खर्व्व वस्तु परि' नामिलेन जले ॥ २३६१ ॥

हइयाछिलेन श्रान्त विविध विलासे।
श्रमशान्ति हैल स्निग्ध यमुनापरशे ॥ २३६२ ॥

वारि-विहरणे महारंग उपजिल।
सकलेइ गिया पद्मवने प्रवेशिल ॥ २३६३ ॥

कृष्ण कोन छलेते आसिया वृक्षतले।
करि' वस्त्र गोपन प्रवेशे पुनः जले ॥ २३६४ ॥

कत क्षण जलकेलि करि' उठे तीरे।
वस्त्र ना देखिया सवे चिन्तित अन्तरे ॥ २३६५ ॥

कृष्ण से समय अद्भुत शोभा हेरि'।
दिलेन सवारे वस्त्र परिहास करि' ॥ २३६६ ॥

श्रमशान्ति वस्त्रचौर्यादिक एथा हैल।
आर एइ स्थाने कृष्ण नाना क्रीड़ा कैल ॥ २३६७ ॥

अहे श्रीनिवास ! राधाकृष्ण सखीसने।
निधुवन-क्रीड़ा-रत एइ निधुवने ॥ २३६८ ॥

एइ केशीतीर्थ देख अहे श्रीनिवास।
इहार महिमा बहु पुराणे प्रकाश ॥ २३६६ ॥

भावार्थ—श्री चैतन्य भागवत के आदिखण्ड में कहा गया है—गोकुल में नन्द के घर में बैठे देखकर प्रभु ने काफी रुदन किया, फिर भी मदनगोपाल को नमस्कार कर प्रभु पाण्डवों की पुरी हस्तिनापुर को चले। वन-प्रान्तर देखकर वृन्दावन में आकर उन्होंने अद्भुत खेल देखा। इस अपूर्व वटवृक्ष के तले कभी बैठे रहते हैं, कभी धूल में लुटते हैं। क्षणभर में फूलों से शृंगार करते हैं और दूसरे क्षण कहते हैं—मेरे प्राण कान्हा कहाँ हैं। नित्यानन्द भावावेश में आ जाते हैं और उनकी दोनों बड़ी-बड़ी आँखों से आँसू बहने लगते हैं। इस प्रकार नित्यानन्द वृन्दावन में विहार

कर रहे हैं। कोशिश करके भी कोई नित्यानन्द की इस चेष्टा को समझ सकता है क्या ? उन्हें पता चला कि श्री गौरसुन्दर नवद्वीप में हैं। गुप्तरूप में एवं व्यक्त रूप में विचरण करते हैं। मन ही मन मुस्कराते हैं और खुल कर हँसते हैं। प्रभु के आकर्षण से अधीर होकर उन्होंने यहाँ से नवद्वीप के लिए प्रस्थान किया। बीस वर्षं तक तीर्थाटन किया और उस अवधि के विलास का मैं वर्णन करता हूँ। यही प्रभु नित्यानन्द का क्रीड़ास्थल है, जो दर्शन करता है, वह भाग्यवान है। ओ श्रीनिवास ! यह चीरघाट है, कोई इसे 'चयनघाट' भी कहते हैं। एक दिन राकाकृष्ण रास आदि के बाद सखियों के साथ आये। वस्त्रादि वृक्ष तल में रखकर एवं छोटा वस्त्र धारण कर जल में उतर गये। विविध विलास-क्रीड़ा से श्रान्त हुए और यमुना के स्पर्श से थकान दूर हुई। जल-विहरण से महारंग जाग्रत हुआ और सब ने पद्मवन में प्रवेश किया। किसी प्रकार के छल से वृक्ष-तल में आकर कृष्ण ने वस्त्र छिपा दिये और पुनः जल में प्रवेश किया। काफी समय तक जल में केलि करने के बाद तीर पर आकर वस्त्र न देखकर सभी चिन्तित हो उठीं। उस समय की अद्भुत शोभा देखकर कृष्ण ने परिहास के साथ सब को वस्त्र लौटाये। यहाँ श्रमशान्ति, वस्त्र चुराने आदि कई क्रीड़ाएँ श्रीकृष्ण ने की। हे श्रीनिवास ! राधाकृष्ण ने सखियों के साथ इस निधुवन में क्रीड़ा की। हे श्रीनिवास ! इस तीर्थ को देखो, इसकी महिमा का वर्णन कई पुराणों में किया गया है ॥ २३४७–२३६९ ॥

तथाहि आदिवाराहे—

गंगाशतगुणं पुण्यं यत्र केशी निपातितः।
तत्रापि च विशेषोऽस्ति केशीतीर्थे वसुन्धरे ॥ २३७० ॥
तस्मिन् पिण्डप्रदानेन गयापिण्डफलं लभेत् ॥ २३७१ ॥

अन्वय—यत्र (तीथे) केशी (केशिकनामकः दैत्यः) निपातितः (हतः कृष्णेनेत्यर्थः (तत्तीर्थं) गंगाशतगुणं (गंगायाः शतगुणाधिकं) पुण्यं (पुण्यप्रदं)। हे वसुन्धरे ! तत्र केशितीर्थे विशेषः च अस्ति अपि (एव)। तस्मिन् (केशितीर्थे) पिण्डप्रदानेन गयापिण्डफलं (गयायां विष्णुपदे पिण्डदानस्य फलं) लभेत् (लभेतेत्यर्थः) ॥ २३७०–७१ ॥

अनुवाद—आदिवराह पुराण में—जहाँ कृष्ण ने केशीदैत्य का वध किया था, वह गंगा की अपेक्षा शतगुण अधिक पुण्यप्रद केशीतीर्थ है। हे वसुन्धरे ! उस केशीतीर्थ का वैशिष्ट्य भी है। वहाँ पिण्डदान करने पर वही फल प्राप्त होता है। जो गया में पिण्डदान का फल मिलता है ॥ २३७०–७१ ॥

केशिवध कैला कृष्ण परम कौतुके।
यमुनाय हस्त पाखालिला महासुखे ॥ २३७२ ॥

अनुवाद—कृष्ण ने परम आमोद में ही केशीवध किया और परम सुख के साथ यमुना में हाथ धोये ॥ २३७२ ॥

तथाहि स्तवावल्यां व्रजविलासे ८५ तम-श्लोकः—

ह्रेषाभिर्जगतीत्रयं मदभरैरुत्कम्पयन्तं परैः
फुल्लनेत्रविघूर्णनेन परितः पूर्णं दहन्तं जगत्।
तं तावत्तृणवद्विदीर्य्य वकभिद्विद्वेषिणं केशिनं
यत्र क्षालितवान् करौ सरुधिरौ तत् केशितीर्थं भजे ॥ २३७३ ॥

अन्वय—परैः मदभरैः (अतिमदेन) ह्रेषाभिः (शब्दैः) जगतीत्रयं (त्रिभुवनं, चतुर्दशलोकान् वा) उत्कम्पयन्तं (तथा) फुल्लनेत्रविघूर्णनेन विकसितनेत्रघूर्णनेन परितः (सर्वदिक्षु) पूर्णं दहन्तं तं विद्वेषिणं (द्वेषकारिणं) केशिनं वकभित् (वकारिः कृष्णः) तावत् (तदानीं) तृणवत् विदीर्य्य (तृणवत् अनायासेन छित्त्वा) यत्र (तीर्थे) सरुधिरौ करौ क्षालितवान् तत् केशितीर्थं भजे (सेवे) ॥ २३७३ ॥

अनुवाद—स्तवावली में व्रजविलासस्तव के ८५ वें श्लोक में—अश्वाकार केशि-दैत्य अत्यन्त मदोन्मत्त होकर ह्रेषाध्वनि (अश्वध्वनि) से तीनों जगतको (या चतुर्दश लोक को) कम्पित कर रहा और अपने विस्फारित नयनों को चारों ओर घुमाकर जगत को मानो दग्ध कर रहा था। तब वकारि कृष्ण ने उस विद्वेषी केशी को तृण के समान विदीर्ण कर जहाँ रक्तरञ्जित दोनों हाथ धोये थे, मैं उसी केशितीर्थ को प्रणाम करता हूँ, उसका भजन करता हूँ ॥ २३७३ ॥

अहे श्रीनिवास ! एइ श्रीधीरसमीरे।
कृष्णेर निकुञ्जलीला अशेष प्रकारे ॥ २३७४ ॥

श्रीराधाकृष्णेर एथा अद्‌भुत मिलन।
महासुखे आस्वादये ताँर प्रियगण ॥ २३७५ ॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! इस मन्द पवन युक्त वातावरण में श्रीकृष्ण की अनन्त प्रकार की निकुञ्जलीलाएँ हुईं। यहाँ राधा और श्रीकृष्ण का अद्‌भुत मिलन हुआ और उनके प्रियगण इन लीलाओं से महासुख का अनुभव करते थे ॥२३७४-२३७५॥

तथाहि श्रीगीतगोविन्दे ५ मसर्गे २ यगीते श्रीराधिकां प्रति दूतीवाक्यम्—

पूर्व्वं यत्र समं त्वया रतिपतेरासादिताः सिद्धय-
स्तस्मिन्नेव निकुञ्जमन्मथमहातीर्थे पुनर्माधवः।
ध्यायंस्तामनिशं जपन्नपि तवैवालापमंत्राक्षरं
भूयस्त्वत्कुचकुन्तनिर्भरपरीरम्भामृतं वाञ्छति ॥ २३७६ ॥

अन्वय—यत्र (निकुञ्जे) पूर्व्वं त्वया समं (सह) रतिपतेः (कामस्य) सिद्धयः (कामवासनाचरितार्थताः) आसादिताः (लब्धाः कृष्णेनेत्यर्थः)। तस्मिन्नेव निकुञ्जमन्मथमहातीर्थे (निकुञ्जस्वरूपे मदनस्य महातीर्थे) माधवः त्वां अनिशं (सर्व्वक्षणं) ध्यायन् तव एव आलापमंत्राक्षरं (कथारूपं मंत्राक्षरं) (अनिशं) जपन्नपि (जपंश्च) त्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भामृतं (तव स्तनकुम्भयोः गाढ़ालिङ्गनामृतं) भूयः (अधिकं यथा स्यात्तथा) पुनः वाञ्छति ॥ २३७६ ॥

अनुवाद—श्रीगीतगोविन्द के पञ्चम सर्ग में द्वितीय गीत में श्रीराधिका के प्रति दूती का वाक्य—

जिस निकुञ्ज में माधव—भगवान् श्रीकृष्ण ने तुम्हारे साथ मदनक्रीड़ा के अनेक विहार और सिद्धियाँ चरितार्थ की थीं उसी निकुञ्जरूप मदन के महातीर्थ में ही माधव तुम्हारा ध्यान और तुम्हारा ही मंत्राक्षर जपता हुआ तुम्हारे विशाल स्तनद्वय के गाढ़ आलिगन में जो अमृत-स्वाद मिलता है, उसकी तीव्र कामना करता है ॥२३७६॥

तत्रैव गीतम्—

रतिसुखसारे गतमतिसारे मदनमनोहरवेशम् ।
न कुरु नितम्बिनि गमनविलम्बनमनुसरतं हृदयेशम् ॥
धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली ॥ २३७७ ॥ इति ।

अन्वय—रतिसुखसारे (सुरतसुखसर्व्वस्वे) अभिसारे (संकेतस्थाने) गतं मदनमनोहरवेशं (मदनवत् मनोहरवेशधारिणं) तं हृदयेशं (प्राणेश्वरं) अनुसर (अनुगच्छ), हे नितम्बिनि (प्रशस्तनितम्बे नितम्बभरेण मन्थरगमने इत्यर्थः) (तत्र) गमनविलम्बनं न कुरु (शीघ्रं याहीत्यर्थः) वनमाली (अधुना) धीरसमीरे (धीरसमीराख्यप्रदेशे) यमुनातीरे वने (कुञ्जवने) वसति) (अपेक्षते) ॥ २३७७ ॥

अनुवाद—गीतगोविन्द के पूर्वोक्त गीत में ही—तुम्हारे प्राणेश्वर कृष्ण मदन के समान मनोहर वेश में रतिसुखमय अभिसार के लिए गये हैं, हे नितम्बिनि ! तुम अधिक विलम्ब मत करो, उनका अनुगमन करो। जहाँ मधुर पवन मन्द-मन्द बह रहा है, यमुनातट पर निकुञ्ज वन में वनमाली तुम्हारी अपेक्षा कर रहे हैं ॥२४७७॥

देख श्रीराधिका-मानभञ्जन एखाने ।
ए मणिकर्णिका-कृष्ण विलसे ए-वने ॥ २३७८ ॥

अहे श्रीनिवास ! एइ यमुना निकट ।
परम अद्भुत-शोभामय 'वंशीवट' ॥ २३७९ ॥

वंशीवट-छाया जगतेर दुःख हरे ।
एथा गोपीनाथ सदा आनन्दे विहरे ॥ २३८० ॥

भुवनमोहन वेशे सुचारु भङ्गिते।
गोपीगणे आकर्षये वंशीर स्वनेते ॥ २३८१ ॥

अनुवाद—देखो, राधा का मानभञ्जन यहाँ हुआ। यह मणिकर्णिका है—कृष्ण इस वन में विलास करते हैं। हे श्रीनिवास ! इस यमुना के निकट परम अद्भुत शोभामय 'वंशीवट' है। इस वंशीवट की छाया संसार के दुःखों का हरण करती है। यहाँ गोपीनाथ सदा आनन्द से भुवनमोहन वेष में सुन्दर भंगिमा से विचरण करते हैं। वंशी की ध्वनि से गोपियाँ आकृष्ट होती हैं ॥ २३७८–८१ ॥

तथाहि श्रीचैतन्य चरितामृते आदिलीलायां १ म परिच्छेदे १७ शश्लोके—

श्रीमद्रासरसारम्भी वंशीवटतटस्थितः।
कर्षन् वेणुस्वनैर्गोपीनाथः श्रियेऽस्तु नः ॥ २३८२ ॥

अन्वय—श्रीमद्रासरसारम्भी (श्रीमन्तं परमचमत्कारपूर्णं रासरसं राससुखं आरभमानः) वंशीवटतटस्थितः (वंशीवटवृक्षस्य तले अवस्थितः) वेणुस्वनैः (वंशीध्वनिभिः) गोपीः कर्षन् गोपीनाथः नः (अस्माकं) श्रिये (प्रेमसम्पदे) अस्तु (भवतु) ॥ २३८२ ॥

अनुवाद—श्रीचैतन्यचरितामृत की आदि लीला में प्रथम परिच्छेद में १७वां श्लोक—परमचमत्कारपूर्ण राससुख उपभोगकारी, वंशीवट के तल में विहारशील, वंशीगान से गोपियों को आकृष्ट करने वाला गोपीनाथ कृष्ण हमारे प्रेमसम्पद का विधान करें ॥ २३८२ ॥

यमुना-प्लावित एइ वंशीवट स्थान।
वंशीवट यमुनाय हैला अन्तर्धान ॥ २३८३ ॥

तार एक डाल आनि' गोस्वामी आपने।
करिला स्थापन ए पूर्व्वेर सन्निधाने ॥ २३८४ ॥

देख श्रीनिवास ! परम रम्य स्थल।
सदा मन्द-मन्द बहे समीर शीतल ॥ २३८५ ॥

वंशीरवे सब छाड़ि' अधैर्य्य हियाय।
गोपीगण आसि' कृष्णे मिलये एथाय ॥ २३८६ ॥

गोपीगण कृष्ण-शोभासमुद्रे साँतारे।
कृष्ण गोपीगणे देखि' स्थिर हैते नारे ॥ २३८७ ॥

धैर्य्यावलम्बन करि' मनेर उल्लासे।
के बूझे मरम-जैछे कुशल जिज्ञासे ॥ २३८८ ॥

कृष्ण एथा कैला गोपी-प्रेमेर परीक्षा।
पुनः गृहे जाइते दिलेन बहु शिक्षा ॥ २३८६ ॥

रासारम्भे असमता देखि' गोपीगणे।
राधासह अन्तर्हित हैते हैल मने ॥ २३६० ॥

एइखाने कृष्णचन्द्र हैया अदर्शन।
गोपिकाविलाप सुखे करिला श्रवण ॥ २३६१ ॥

कृष्ण बिना गोपीगण ए वृक्ष-लताय।
जिज्ञासे कृष्णेर कथा व्याकुल हियाय ॥ २३६२ ॥

करि' कृष्ण-लीलानुकरण गोपीगण।
एथा कैल राधिकार सौभाग्य वर्णन ॥ २३६३ ॥

राधिकार मनोहित कृष्ण एथा कैला।
एइखाने ताँरे राखि' अदर्शन हैला ॥ २३६४ ॥

एथा अन्य गोपीगण देखि' राधिकारे।
कहिल अनेक अति अधैर्य्य अन्तरे ॥ २३६५ ॥

सवे एक हैया कृष्ण दर्शन-लालसे।
गाइल कृष्णेर गुण अशेष विशेषे ॥ २३६६ ॥

एइखाने श्रीकृष्ण दिलेन दरशन।
परम आनन्द मग्न हैला गोपीगण ॥ २३६७ ॥

यत्ने गोपीगण कृष्णे वसाइल एथा।
एइखाने परस्पर हैल वहुकथा ॥ २३६८ ॥

श्रीयमुना-पुलिन देखह श्रीनिवास।
एइखाने कृष्ण आरम्भिला महारास ॥ २३६६ ॥

शतकोटि अंगनावेष्टित कुतुहले।
विलसये कृष्णचन्द्र श्रीरासमण्डले ॥ २४०० ॥

हैल कल्पसम रात्रि श्रीरासविहारे।
वर्णिलेन व्यासादि कवि विविधप्रकारे ॥ २४०१ ॥

स्त्रीरत्ने वेष्टित कृष्ण रसिकशेखर।
सर्व्वचित्ताकर्षे रासक्रीड़ाय तत्पर ॥ २४०२ ॥

अनुवाद—यमुना-प्लावित वंशीवट यमुना में अन्तर्धान हो गया। उसकी एक डाल लाकर गोस्वामी ने पूर्व की ओर स्थापित की। देखो श्रीनिवास! यह परम

रम्य स्थल है, यहाँ मन्द-मन्द शीतल हवा बहती है। वंशी की ध्वनि सुनकर सभी गोपियाँ अधीर हो उठतीं और यहाँ आकर श्रीकृष्ण से मिलतीं। गोपियाँ कृष्ण की शोभा से आत्मविभोर हो उठती हैं और गोपियों को देखकर कृष्ण स्थिर नहीं रह पाते। मन में अपूर्व उल्लास है, पर सभी धैर्य धारण करती हैं। इस मर्म को कौन समझ सकता है, जो भी वह जिज्ञासा करता है। यहाँ कृष्ण ने गोपियों के प्रेम की परीक्षा की और पुनः घर लौटने के लिए बड़े उपदेश दिये। रास के आरम्भ में असमानता का अनुभव कर गोपीगण राधा के साथ अन्तर्हित हो गईं। यहाँ कृष्ण छिप गये और आनन्द से गोपिका का विलाप सुनने लगे। कृष्ण के न दिखाई देने पर गोपियों ने व्याकुल हृदय से वृक्ष और लताओं से कृष्ण की बात पूछी। कृष्ण-लीला का अनुकरण कर गोपियों ने राधिका के सौभाग्य का वर्णन किया। कृष्ण ने राधा के मन की बातें कही और उसे (राधिका को) यहाँ छोड़कर खुद छिप गये। अन्य गोपियों ने राधिका को देखकर बड़े अधीर मन से कहा। कृष्ण-दर्शन की लालसा में अधीर होकर सब गोपियों ने कृष्ण के अनन्त गुणों का गान किया। इसी स्थल पर श्रीकृष्ण ने दर्शन दिये। सभी गोपियाँ आनन्दमग्न हो उठीं। गोपियों ने श्रीकृष्ण को बड़े यत्न से बिठाया और यहीं पर आपस में कई बाते हुईं। हे श्रीनिवास ! यह यमुनातट देखो, यहीं पर श्रीकृष्ण ने महारास आरम्भ किया। शत-कोटि सौष्ठवशालिनी नारियों से घिरे श्रीकृष्ण श्रीरासमण्डल में कुतुहल से लीला करते हैं। श्रीरास विहार में रात्रि एक कल्प के समान हो गयीं। व्यास आदि कवियों ने इसका विविध प्रकार से वर्णन किया है। स्त्रीरत्न से वेष्टित कृष्ण रसिक-शिरोमणि हैं और रासक्रीड़ा में सबका चित्त आकृष्ट करते हैं २३८३–२४०२॥

तथाहि श्रीभागवते दशमे त्रयस्त्रिंशत्तमाध्याये—

तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः।
स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योऽन्याबद्धबाहुभिः॥ २४०३॥

रासोत्सवः संप्रवृत्तो गोपिमण्डलमण्डितः।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः॥ २४०४॥
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः।
यं मन्येरन् नभस्तावद्विमानशतसंकुलम्।
दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम्॥ २४०५॥

ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः।
जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम्॥ २४०६॥

वलयानां नूपुराणां किंकिणीनाञ्च योषिताम्।
सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमूलो रासमण्डले॥ २४०७॥

तत्राति शुशुभे ताभिर्भगवान् देवकीसुतः ।
मध्ये मणीनां हैमानां महामारकतो यथा ॥ २४०८ ॥

पादन्यासैर्भुजविधूतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै:—
र्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपुटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ।
स्विद्यन्मुख्यः कवररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो
गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥ २४०९ ॥

उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः ।
कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥ २४१० ॥

काचित् समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः ।
उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साध्विति ।
तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानञ्च वह्वदात् । इति ॥ २४११ ॥

अन्वय—तत्र (यमुनातटे) अनुव्रतैः (अनुगतैः) श्रीतैः (प्रीतियुक्तैः) अन्योऽन्याबद्धबाहुभिः (परस्परं धृतहस्तैः स्त्रीरत्नैः (रत्नभूताभिः गोपीभिः) अन्वितः (मिलितः) गोविन्दः रासक्रीड़ां (रासो नृत्यविशेषस्तमेव क्रीड़ां) आरभत । (अथ) गोपीमण्डलमण्डितः (गोपीनां मण्डलैः चक्रैः मण्डितः शोभितः) रासोत्सवः (रासनृत्यमित्यर्थः संप्रवृत्तः । (तत्र नृत्ये) द्वयोः द्वयोः (गोप्याः) मध्ये प्रविष्टेन (प्रत्येकगोपीद्वयमध्यस्थितेन इत्यर्थः) योगेश्वरेण (अचिन्त्यमहाशक्तिना) कृष्णेन कण्ठे गृहीतानां (उभयत आलिंगितानां) तासां (गोपीनां मध्ये सर्व्वाः) स्त्रियः यं (कृष्णं) स्वनिकटं (निजपार्श्वस्थितं) मन्येरन् (मन्तुं समर्था आसन्) । तावत् (तदानीं) नमः औत्सुक्यापहृतात्मनां (रासदर्शनकुतुहलाक्रान्तचित्तानां) सदाराणां (सपत्नीकानां) दिवौकसां (देवानां) विमानशतसंकुलं (शतशतविमानपरिपूर्णं बभूव) । ततः (तदनन्तरं) दुन्दुभयः नेदुः पुष्पवृष्टयः पेतुः, सस्त्रीकाः गन्धर्व्वपतय अमलं तद्यशः (कृष्णस्य यशः) जगुः (गीतवन्तः) । (तत्र) रासमण्डले (रासचक्रे) सप्रियाणां (प्रियेण कृष्णेन सहितानां) योषितां (गोपीनां कृष्णालिंगितानां नृत्यन्तीनां) वलयानां नूपुराणां किंकिणीनां च तुमुलः (मिश्रितः) शब्दः अभूत् (उत्थितः) । हैमानां (स्वर्णतुल्यकान्तीनां) रत्नानां मध्ये महामारकतः (अत्युज्ज्वलः मरकतमणिः) यथा (शोभते तथा) भगवान् देवकीसुतः (देवक्याः यशोदायाः इत्यर्थः नन्दनः) तत्र रासमण्डले) ताभिः (स्वर्णवर्णाभिः आश्लिष्टाभिः) अति शुशुभे (विशेषेण शोभितोऽभूत्) । ताः कृष्णवध्वः (कृष्णभोग्या गोप्यः) पादन्यासैः (नृत्ये पादविक्षेपैः भुजविधूतिभिः बाहुसञ्चालनैः) सस्मितैः (मधुरहास्ययुक्तैः) भ्रूविलासैः भ्रूभंगिभिः) भज्यन्मध्यैः भंगोन्मुखाभिः क्षीणाभिः कटिभिः) चलकुचपटैः (चञ्चलैः स्तनैः वस्त्रैश्च गण्डलोलैः (गण्डोपरि विलसद्भिः) कुण्डलैश्च (नृत्य-

काले एवंविधान् व्यापरान् प्रकटयन्त्यः) स्विद्यन्मुख्यः विगलद्घर्म्माक्तवदनाः) कवररशनाग्रन्थयः (शिथिलकवरीरशनाबन्धनाः) तं श्रीकृष्णं गायन्त्यः (कृष्णसौन्दर्य्य-माधुर्य्यादिकं कीर्त्तयन्त्यः मेघचक्रे (मेघमण्डले) तडितः (विद्युतः) इव विरेजुः शुशुभिरे)। रतिप्रियाः (कृष्णस्य रत्यां परमप्रीतियुक्ताः ता गोप्यः) नृत्यमानाः (नृत्यन्त्यः) रक्तकण्ठ्यः (नानारागैः गायन्त्य इत्यर्थः) कृष्णाभिमर्शमुदिताः (कृष्णस्य स्पर्शेण हृष्टाः सत्यः उच्चैः जगुः यद्गीतेन (येन कृष्णसम्बन्धिगीतेन) इदं (विश्वं) आवृतं (व्याप्तम्)। (गायन्तीनां तासां मध्ये) काचित् (गोपी) मुकुन्देन समं (सह) अमिश्रताः (कृष्णेन गीताभ्यः पृथगित्यर्थः) स्वरजातीः (स्वर-समूहान्) उन्निन्ये (मुख्यत्वेन गीतवती) (तदा तच्छ्रवणेन) प्रीयता (प्रीतिमापन्नेन) तेन कृष्णेन साधु साधु इति पूजिता (अभिनन्दिता अभवत्)। (अपरा काचित्) तदेव (स्वरजातं) ध्रुवं (ध्रुवपदं कृत्वा) उन्निन्ये (गीतवती);(कृष्णः) तस्यै मानञ्च (आदरं) बहु (प्रचुरं) अदात् ॥ २४०३–११ ॥

अनुवाद—गोविन्द ने यमुना तीर पर अपना अनुसरण करने वाली, प्रसन्नचित्त वाली, परस्पर कोमल हाथ पकड़े हुए रत्नों की भाँति शोभायमान श्रेष्ठ गोपियों के साथ मिलकर रासक्रीड़ा आरम्भ की। गोपियों ने कई मण्डल बनाकर रासोत्सव की शोभा बढ़ायी। उस रासनृत्य में योगेश्वर कृष्ण ने दो-दो गोपियों के बीच में प्रवेश कर कण्ठ में बाहुपाश में अपने को आबद्ध किया है अतः वे कृष्ण को अपने निकट अनुभव कर रही हैं। तब रासोत्सव के दर्शन के लिए जिज्ञासु सपत्नीक देवगण के सैकड़ों विमानों से आकाश भर गया। इसके बाद दुन्दुभि बजने लगी और पुष्पवृष्टि होने लगी, स्त्रियों सहित गन्धर्वगण श्रीकृष्ण का विमल यश गान करने लगे। रास-मण्डल में अपने प्रिय श्रीकृष्ण के आलिंगन में आबद्ध, नृत्यरत गोपियों के कंकणों, नूपुरों और किंकणियों (क्षुद्रघण्टों) की मिश्रित ध्वनि गुंजरित हो उठी। स्वर्ण कान्ति वाले रत्नों के बीच महामरकतमणि के समान भगवान यशोदानन्दन रास-मण्डल में गोपियों से वेष्ठित होकर परम शोभामण्डित हुए और कृष्णभोग्या (कृष्णप्रिया) गोपिकाएँ नृत्य में पदविक्षेप, हस्तसञ्चालन, सहास्य, भ्रू-नर्तन में रत हैं। उनका भंगोन्मुख क्षीण कटिदेश, चञ्चल स्तन और वस्त्र, गालों पर दोलायमान कुण्डल, घर्मविन्दु-युक्त वदन पर शिथिल वन्धन वेणी और कमर की काञ्ची पर छूटती ग्रंथियाँ हैं, ऐसी गोपिकाएँ कृष्ण का ही कीर्तन करते-करते मेघमण्डल में विद्युतराशि के समान सुशोभित हुईं। कृष्ण की रति में प्रीतियुक्ता, नृत्यपरायणा, कृष्ण के स्पर्श से आनन्दित गोपियाँ नाना रागों में उच्च स्वर से कृष्णगान करने लगीं, इस कृष्णगीत से समग्र जगत् भर गया। गीतपरायणा गोपियों में कोई गोपी कृष्ण के स्वर समूह से भिन्न रागिनी समूह मूल रागिनी रूप में गाने लगीं। उसे सुनकर कृष्ण प्रमुदित हुए और उन्होंने 'साधु-साधु' कहकर उसका अभिनन्दन किया। अन्य एक गोपी

उसी स्वर जाति व रागिनी को ध्रुवपद में परिणत कर गाने लगी। कृष्ण ने उसके प्रति भी बड़ा सम्मान प्रदर्शित किया॥ २४०३–११॥

श्रीगोपालचम्पूपूर्व्वप्रबन्धे २६ श पूरणे ३३ म अंकावधिः—

यथा रागः—

जय जय सद् गुणसार।
जगति विशिष्टं कलयितुमिष्टं गोकुलसदवतार॥ ध्रु॥
कमलभवेश्वर वैकुण्ठेश्वरपत्नीचिन्ततसेव ।
राजसि रासे वलितविलासे निजरमणीभिर्देव॥ २४१३॥

नटवत्परिकर निखिलकलाधर रचितपरस्परमोद।
आलिंगनमुखरिततममहासुखवल्लववधूहृततोद ॥ २४१४॥

व्यतिवीक्षणकृतसात्विकपरिवृत-मण्डलमनु बहुमूर्त्ते।
व्रजतरुणीगण-रचितनयनपण–सचितवशीकृतपूर्त्ते॥ २४१५॥

चरणकञ्जधृति-करपल्लवकृति–चिल्लीवलितविहारान्।
मध्यभंगतति–मणिकुण्डलगति–पुलकस्वेदविकारान्॥ २४१६॥

कलयति भवता घनसाम्यवता तडिदिव सर्व्वा ललना।
अपिवः परिमितितरतमतामिति सेयं ज्ञपयति तुलना॥ २४१७॥

सुमधुरकण्ठे नृत्योत्कण्ठे तव रतिमात्रप्रीते।
त्वत्स्पर्शामृतमदचयसंवृतचिते भावक्रीते॥ २४१८॥

युवतीजाते गीतजशा तेनावृतविश्वप्रभवे।
यस्त्वं राजसि तत्सुखभागसि नम एतस्मै प्रभवे॥ २४१९॥

या सहभवता विस्मयमवता स्वरजाती रतिशुद्धम्।
गायति सेयं निखिलैर्गेयं कलयति निजगुणरुद्धम्॥ २४२०॥

तत उत्कर्षं कलयति हर्षं वलयति येयं गाने।
सा श्रीराधावलिताराधा भवता कलिता माने॥ २४२१॥

येयं रासे श्रमजविलासे विगलन्मल्ली वलया।
सा भवदंसे लसदवतंसे धरति करं वरकलया॥ २४२२॥

या चांसोपरिभुजपरिघं परिचुम्बति सविनोदम्।
हृष्यति सेयं तत्त्वगणना यद्रोम च समोदम्॥ २४२३॥

चलकुण्डलधर–गण्डमुकुरवरसमिषस्पर्श–विधाने।
ताम्बुलद्रवपरिवर्त्तोद्द्रवमयसे चुम्बनदाने ॥ २४२४॥

एषा नर्त्तनकीर्त्तन-सिञ्चितजा-सुताला ।
तव रामानुज करमतुलाम्बुजमिषमाधाद्धृदि बाला ॥ २४२५ ॥

अथ रासक्रमपरिवलितश्रमवनितालक्षितदेह ।
परितोभ्रमणकगणविश्रमकणसमुदितपरमस्नेह ॥ २४२६ ॥

कविकृतनिश्चयशुभ्रयशश्चयमालासमुदयहारिन् ।
जय जय जय जय, जय जय जय जय, जय जय रासविहारिन् ॥२४२७॥

अन्वय—जगति विशिष्टं इष्टं कलयितुं (साधयितुं) लसदवतार (गोकुले लीलामयावतार) हे सद्‌गुणसार ! (त्वं) जय जय । हे कमलभवेश्वर वैकुण्ठेश्वर-पत्नीचिन्तितसेव (कमलभवः ब्रह्मा, ईश्वरः महादेवः, वैकुण्ठेश्वरपत्नी लक्ष्मीः—एभि चिन्तिता प्रार्थिता सेवा यस्य स तत्सम्बोधने) ! (त्वं) निजरमणीभिः (स्वप्रियाभि-र्गोपीभिः) वलितविलासे (वर्द्धितविलासे) रासे राजसि । हे नटवत्परिकर (नृत्य-शीलसहचरविशिष्ट) ! हे निखिलकलाधर (अशेषकलाविद्यानिपुण) ! हे रचित-परस्परमोद (परस्परानन्दविधायिन्) ! आलिंगनमुखरिततममहासुखवल्लववधूहृत-तोद (आलिंगनैः मुखरिततमं अतिशयेन प्रकटितं महासुखं यासां याभिर्वा तादृशीभिः गोपवधूभिः दूरीकृतमदनव्यथ) ! व्यतिवीक्षणकृतसात्विकपरिवृत्तमण्डलं (व्यतिवीक्ष-णेन भवता सह दृष्टिविनिमयेन कृतं आविर्भावितं यत् सात्विकं सात्विकभावा इत्यर्थः - तेन परिवृतं मण्डलं रासमण्डलं) अनु (मण्डलसमीपे अर्थात् तादृशे मण्डले) बहुमूर्त्ते (बहुरूपधारिन्) हे व्रजतरुणीगणरचितनयनपणसचितवशीकृतपूर्त्ते (व्रजयुवतिगणेन रचितेन नयनरूपेण धनेन सचिता सहायं प्राणिता) वशीकृता च पूर्तिः (वासना-पूरणं यस्य सः) तडित् इव सर्व्वा ललना (रासमण्डलस्थिताः सर्व्वा गोप्यः) घन-साम्यवता (नवनीरदनिभेन) भवता (सह) चरणकञ्जधृति-करपल्लवकृति-चिल्ली-वलितविहारान् (चरणपद्मधारणेन तथा करपल्लवसञ्चालनेन ये हावप्रकाशास्तैर्वलि-तान् मिश्रितान् विहारान्) मध्यभंगतति-मणिकुण्डलगति-पुलकस्वेदविकारान् (कटि-भंगाः मणिकुण्डलान्दोलनं रोमाञ्चस्वेदविकारान्) कलयति (प्रकटयति); सा इयं तुलना वः (युष्माकं) परिमितितरतमतां (परिमाणं ससीमत्वं तारतम्यञ्च) ज्ञप-यति (घोषयति) इति किं ? नहीत्यर्थः यः त्वं सुमधुरकण्ठे (अतिमधुरस्वरविशिष्टे) नृत्योत्कण्ठे (नृत्ये औत्सुक्यवति) तव रतिमात्रप्रीते (तवसुखेनैव सुखिते) त्वत्स्पर्शा-मृतमदचयसंवृतचित्ते (तव स्पर्शामृतस्य मदराशिना परिपूरितहृदये) भावक्रीते (प्रेम्णा क्रीते) गीतजशातेन (गीतजनितेन सुखेन) आवृतविश्वप्रभवे संप्लावितविश्व-कारणे) युवतीजाते (युवतीगणे राजसि, तत्सुखभाक् (रासमण्डलविहारेण सुखी) असि (च) एतस्मै प्रभवे नमः । या विस्मयं अवता (प्राप्तवता विस्मितेनेत्यर्थः) भवता सह स्वरजातीः (विविधा रागिणाः) अतिशुद्धं (सुविशुद्धभावेन) गायति सा

इयं निजगुणरुद्धं (स्वीयसंगीतप्रावीण्येन नियन्त्रितं स्वरमिति शेषः) निखिलैः (अपरैः सर्व्वैः) गेयं कलयति । या इयं (गोपी) गाने ततः (पूर्व्वकृतात्) उत्कर्षं (प्रावीण्याधिक्यं) वलयितहर्षं (वर्द्धितानन्दं यथास्यात् तथा) वलयति (प्रकटयति) श्रीराधान्नलिताराधा (श्रीराधया कृतपूजा) सा भवता (कृष्णेन) माने (आदर-प्रदर्शने) कलिता (पूजिता) । या इयं (गोपी) रासे (रासनृत्ये) श्रमजविलासे (यः श्रमः तज्जनिते विलासे सुखेन इत्यर्थः) विगलन्मल्ली वलया (जाता) सा लसदवतंसे (अवतंसशोभिते) भवदंसे (भवतः स्कन्धोपरि वरकलया (परम-वैदग्ध्येन) (निजं) करं धरति । या च (गोपी) अंसोपरि (स्वस्याः स्कन्धदेशे स्थितं) भुजपरिधं मुद्गरसदृशं बाहुं कृष्णस्येत्यर्थः) सविनोदं (सलीलं) परिचुम्बति (समाधिकं चुम्बति) सा इयं तन्वगणना (देहस्मृतिरहिता) हृष्यति यद्रोम (यस्याः रोम) च सामोदं (हृष्टं) । चलकुण्डलधरगण्डमुकुरवर-सामिषस्पर्शविधाने (चञ्चल-कुण्डलशोभितस्य गण्डमुकुरवरस्य सत्याजं स्पर्शव्यापारवति) चुम्बनदाने (चुम्बन-कर्म्मणि) ताम्बूलद्रवपरिवर्त्तात् (चार्व्विततताम्बूलविनिमयेन) द्रवं (द्रवीभावं) अयसे (गच्छसि त्वमितिशेषः) एषा नर्त्तनकीर्त्तनसिञ्जितजातसुताला (नर्त्तने गाने च अंगसञ्चालनेन यत्, सिञ्चितं भूषणध्वनिः तेन कृतसुताला) बाला तव अतुलाम्बुज-मिषं (रद्वितीयपद्मप्रतियोगिनं) रामाम्बुजकरं (सुन्दरं पद्महस्तं हृदि (वक्षसि) आधात् (स्थापितवती) । हे रासक्रमपरिवलितश्रमवनितालक्षितदेह (रासनृत्येन संजातक्लान्तिभिः गोपीभिः परिवेष्टितदेह) ! हे परितोभ्रमणकगणविश्रमकणसमु-दितपरमस्नेह (परितोभ्रमणकस्य नृत्ये अतिशयितं कृतभ्रमणस्य गणस्य गोपीसमूहस्य विश्रमकणैः श्रमाधिक्यजनितैः स्वेदबिन्दुभिः तद्दर्शनेनेत्यर्थः अतिकरुण) ! हे कविकृत-निश्चय शुभ्रयशश्चयमालासमुदयहारिन् (कविभिः सूरिभिरेव कृतनिश्चयानां तत्त्व-तोऽधिगतानां विमलमहिमराशीनां स्रक्पुञ्जान् अपि हरति यः स कविकृतामलगुण-गणगीतिमालाशोभन्) ! हे रासविहारिन् ! जय (त्वं दशमतत्त्वं दशदिक्षु दशधा सर्व्वो-त्कर्षेण विजयी भव इति जयपदस्य दशवारान् आवृत्तिः) ।। २४१२–२७ ।।

अनुवाद—श्रीगोपालचम्पू के पूर्वप्रबन्ध में २६ वें पूरण में (यथायोग्य रागिणी में गेय)—विशिष्ट अभीष्ट-पूरण के लिए भौमगोकुल में अवतीर्ण हे लीलामय अव-तार ! हे सद्गुणाधार ! आपकी पुनः पुनः जय हो। ब्रह्मा-शिव और लक्ष्मी आपकी सेवा की प्रार्थना करते हैं। हे देव ! हे भगवन् ! आप अपनी प्रियतम गोपियों के साथ विलासमय रास में विराज करें, सुशोभित हों। आप नृत्यशील सहचरगणों से वेष्टित, सम्पूर्ण कलाविद्यानिपुण, परस्पर आनन्द देने वाले हैं। हे देव ! आलिंगन के द्वारा गोपवधुओं को महासुख प्रदान किया है और उनके मन की व्यथा को दूर किया है। रासमण्डल में आपके साथ दृष्टि-विनिमय, आपके दर्शन से सात्विक भाव जाग्रत हुए हैं। ऐसे मण्डल में आप नाना रूप धारण कर प्रकट हुए हैं। व्रज की

तरुणियों ने नयनों से, नयन रूप धन से भर दी है, अपनी मनोकामना पूर्ण की है, उसे वश में कर लिया है। मेघ के साथ विद्युत् के समान नवनीरद सदृश आप के साथ गोपियों का चरण-कमल-धारण, विविध करभंगि प्रभृति हावभाव-मिश्रित विहार, कटिभंग, कपोल पर कुण्डल-संचलन, पुलक और स्वेद विकार से सात्विक भाव प्रकट होते हैं। किन्तु यह तुलना आपकी असीमता अतुलनीयता को कम कर सकती है क्या? अति मधुर कण्ठवाली गोपियाँ रासनृत्य के लिए उत्सुक हैं, आपके सुख में उनका आनन्द है, आपके स्पर्श रूपी अमृत की मादकता से उनका चित्त भरपूर है; उनके प्रेम-मूल्य में ही वे आपके समक्ष विक्रीत हैं, उन्होंने संगीत-जनित आनन्द द्वारा विश्व-कारण आपको भी प्लावित कर दिया है। आप इस प्रकार युवतियों के बीच विराजमान हो कर राससुख का उपभोग कर रहे हैं। ऐसे समर्थ प्रभु को नमस्कार। जो गोपी आपको आश्चर्यचकित कर विविध रागनियों से विशुद्ध रूप से गान करती हैं, उन्होंने अपने संगीत-नैपुण्य से अपनी रागिनी में अन्य सबके गान की रागिनी को बाँध दिया है। यही वह गोपी है जिसने गायन में उसकी अपेक्षा भी अधिक उत्कर्ष का प्रदर्शन कर आनन्द में वृद्धि कर रही है, श्रीराधा द्वारा सम्मानित इसे आप आदर प्रदर्शन से सम्मानित कर रहे हैं। रासनृत्य में परिश्रम के कारण आनन्द में जिस गोपी के कंकण और मल्लिकामाला शिथिल हो गये हैं, उसने भूषणों से शोभित आपके स्कन्ध पर अति सुन्दर भंगि से अपना हाथ स्थापित किया है। अन्य एक गोपी के स्कन्ध पर परिध सम बाहु रखा हुआ है, वह परम आनन्द से उस हस्त का विनोद्र से चुम्बन कर रही है, वह आनन्द से आत्मविस्मृत हो गयी है और उसकी देह में रोमाञ्च का सञ्चार हो रहा है। किसी गोपी के लोलकुण्डल शोभित कपोल छल से स्पर्श कर चुम्बन देते समय परस्पर चर्बितताम्बूल विनिमय से आप पिघल जाते हैं। इस गोपबाला के नृत्य और गीत में उनके अंगवलनजनित भूषणध्वनि सुन्दर ढंग से ताल रख रही है। यह आपके अतुलनीय पद्मसदृश करपद्म अपने वक्ष पर धारण कर रही है। रासनृत्य में क्लान्त गोपियों से आप परिवेष्टित हैं, नृत्य में अधिक घूर्णि के कारण गोपियों के श्रमाधिक्यजनित स्वेदबिन्दु-दर्शन से आप इनके प्रति अति स्नेहशील हो गये हैं। कवि अवधानपूर्वक आपकी यशोराशि की माला की रचना करते हैं, उससे आप शोभित हों। हे रासविहारी! आपकी जय हो, दशमतत्त्व जिसका दश दिशाओं में फैला हो, ऐसे तुम सर्वोत्कर्ष से विजयी हो। जय, जय ॥ २४१२–२७ ॥

अहे श्रीनिवास! रासविलास विस्तार।
यमुनापुलिने से शोभार नाहि पार ॥ २४२८ ॥
उज्ज्वल रजनी पूर्णचन्द्रेर किरणे।
यमुनासलिलशोभा वर्णिव कि आने ॥ २४२९ ॥

एइखाने कृष्णचन्द्र प्रियागण - संगे।
यमुनाय जलकेलि कैल नाना रंगे ॥ २४३० ॥

परमकौतुकी कृष्ण कुञ्जक्रीडारत।
कैल जैछे विश्राम ता' वर्णिबे के कत ? ॥ २४३१ ॥

रजनीप्रभाते कृष्ण प्रियागणसने।
गृहे गति जैछे ता' वर्णये विज्ञगणे ॥ २४३२ ॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! यमुनातट पर जैसा भव्य रासविलास हुआ, उसकी शोभा अवर्णनीय है। पूर्णचन्द्र की किरणों से भरपूर उज्ज्वल रजनी और यमुना सलिल की शोभा का मैं किस प्रकार वर्णन करूँ ? यही पर कृष्ण चन्द्र ने अपनी प्रिय गोपियों के साथ विविध रंग में यमुना में जलकेलि की। परम कौतुकी, अति उल्लासमय कृष्ण ने कुञ्जक्रीड़ा के पश्चात् जिस प्रकार विश्राम किया उसका मैं कितना वर्णन करूँ ? रजनी बीत जाने के बाद प्रभात में कृष्ण ने प्रिय गोपियों के साथ जिस गति से घर को प्रस्थान किया, उसका विज्ञजनों ने वर्णन किया है ॥ २४२८–३२ ॥

तथाहि तत्रैव २९ म पूरणे ६३ म श्लोकावधि ललितरागः—

जागरणारथ कुञ्जवरे।
वीक्षितभास्कररुचिनिकरे ॥ २४३३ ॥

कान्तानिद्राभंगकरे ।
अपि संकलितस्वपरिकरे ॥ २४३४ ॥

मम धीर्मज्जति कंसहरे।
मौलिशिखोपरि पिञ्छधरे ॥ ध्रु ॥ २४३५ ॥

मुहुरुल्लसितयुवतीनिकरे ।
सममनया बहिरनयचरे ॥ २४३६ ॥

घनगहनाध्वनि गमनपरे।
तत्र च बहुकृतसुखवितरे ॥ २४३७ ॥

आशास्तम्भितविरहगरे ।
धाम्नि सनातनशर्म्मंहरे ॥ २४३८ ॥

अन्वय—अथ (विश्रामानन्तरं) कुञ्जवरे जागरणात् (परिमिति शेषः) वीक्षितभास्कररुचिनिकरे (सूर्य्यालोकं दृष्टवति) कान्तानिद्राभंगकरे (श्रीराधायाः निद्राभंगं कुर्व्वति) संकलितपरिकरे (परिजनान् मेलयति) अपि (च) मौलिशिखोपरि

(शिरसि चूडायां) पिञ्छधरे (शिखिपुच्छधारिणि) कंसहरे (कंसारी कृष्णे) मम धीः (मतिः) मज्जति। मुहुरुल्लसितयुवतीनिकरे (युवतीसमूहं पुनः पुनः उल्लासयति) अनया (राधिकया) समं (सह) बहिः अनयचरे (पूर्व्वं कदापि अगतवति) घनगहनाध्वनि (निविड़वनपथे) गमनपरे (गमनकारिणि) तत्र च (वनमध्ये) बहुकृतसुखवितरे (प्रचुरसुखं वितरति) आशास्तम्भित विरहगरे (पुनर्मिलनाशया निवारितविरहविषप्रभावे) सनातनशर्म्महरे (नित्यसुखदायिनि) धाम्नि कृष्णविग्रहे मम धीः मज्जतीति शेषः ॥ २४३३—३८ ॥

अनुवाद—श्रीगोपालचम्पू के पूर्व प्रबन्ध में २६ वें पूरण में ललित राग में—विश्राम के बाद कुञ्ज में जागरण के बाद सूर्य-आलोक का दर्शन कर श्रीराधा की निद्रा भंग करने वाले, परिजन के मिलनकारी, मस्तक पर मयूरपुच्छधारी, कंस को मारने वाले श्रीकृष्ण में मेरी बुद्धि निमग्न होती है। जो युवती-समूह को बार-बार उल्लसित करते हैं, राधिका के साथ पहले कभी जिसने बाहर गमन नहीं किया, गहन वन में जाते समय जो नाना सुख बिखेर रहे हैं, पुनर्मिलन की आशा के कारण उत्पन्न वियोग-विरह जिन्होंने दूर कर दिया है, एवं जिनका सच्चिदानन्द विग्रह नित्य सुखप्रद है, उनमें मेरी बुद्धि निमग्न हो रही है ॥ २४३३—३८ ॥

महारासविलासे सकलगोपिकार।
कैल मनोरथ पूर्ण व्रजेन्द्रकुमार ॥ २४३९ ॥

श्रीरासविलासी महासुखेर आलय।
शुनिले ए सब—अभिलाषपूर्ण हय ॥ २४४० ॥

अहे श्रीनिवास! कृष्ण भुवनमोहन।
श्रीरासविलासी राधिकार प्राणधन ॥ २४४१ ॥

भुवनमोहिनी राधा रासविलासिनी।
कृष्णप्राणप्रिय रमणीर शिरोमणि ॥ २४४२ ॥

कृष्णसुख या' ते ताहा करये सदाय।
श्रीराधिका बिना कृष्ण अन्य नाहि भय ॥ २४४३ ॥

श्रीराधिका राधिकार सखीगण-सने।
सदा रासविलासे विह्वल वृन्दावने ॥ २४४४ ॥

एथा एक दिवस हइल महारंग।
कहिते बाढये साध से सब प्रसंग ॥ २४४५ ॥

वृन्दा मने कैल 'आजि विविध विधाने।
देखिव विलास राइ कानु सखीगणे' ॥ २४४६ ॥

एइ हेतु वृन्दा लैया अनुचरीगण।
रासलीलारम्भेर करये आयोजन ॥ २४४७ ॥

नृत्यस्थली विरचये जे सव विधाने।
से सकल भेद नाट्यशास्त्रे ओ न जाने ॥ २४४८ ॥

ऐछे चन्द्रकीरण निर्म्मल उजियार।
तैछे नृत्यस्थली शुभ्रशोभा चमत्कार ॥ २४४९ ॥

एइ कुञ्जालयेर अंजनपरिसरे।
चन्द्रेर किरण कि अद्भुत शोभा धरे ॥ २४५० ॥

चतुर्दिके शुभ्र पुष्पासन सर्व्वोपरि।
मध्ये शुभ्र सिंहासन राखे यत्न करि' ॥ २४५१ ॥

ताम्बूलवीटिका रत्नसम्पुटे राखय।
जाहार सौगन्ध सर्व्वचित्त आकर्षय ॥ २४५२ ॥

नाना पुष्पभूषा आदि अनेक प्रकार।
सुगन्धि चन्दन-आदि-लेखा नाइ तार ॥ २४५३ ॥

लक्ष लक्ष चामर शोभाय चित्त हरे।
मृदंगादि नाना यंत्र राखे थरे थरे ॥ २४५४ ॥

शुक कोकिलादि पद्यो करये आदेश।
गाउ कृष्णराधिकार चरित्र अशेष ॥ २४५५ ॥

मयूरगणेरे कहे नृत्य करिवार।
निदेशे भ्रमरगणे करिते झंकार ॥ २४५६ ॥

हेनइ समये से वृन्दार अनुचरी।
श्रीवृन्दादेवीर प्रति कहे धीरि धीरि ॥ २४५७ ॥

दुँहुँ-गति-विलम्बे चिन्तत हैया तुमि।
मोरे आज्ञा कैला—तथा गियाछिनु आमि ॥ २४५८ ॥

पौर्णमासी उपदेशे कृष्ण हर्ष हैया।
पुष्पवने छिला राइ-पथ निरखिया ॥ २४५९ ॥

श्रीराधिका गृह हैते आसि' सखीसने।
मिलिलेन कृष्ण एइ पुष्पेर कानने ॥ २४६० ॥

दोंहार मिलने पौर्णमासी हर्ष हैला।
तोमार जे क्रिया ताहा दोंहे जानाइला ॥ २४६१ ॥

एत कहितेइ हैल दोंहार गमन।
किवा पादपद्मेर विन्यास मनोरम॥ २४६२॥

दोंहे दुँहु स्कन्धे चारु भुज आरोपिया।
रसावेशे रहे दोंहे दोंहा निरखिया॥ २४६३॥

कहिते से शोभार अवधि नाहि हय।
निरखिते नयननिमिष दूरे रय॥ २४६४॥

दुँहु रूपछटा—आलो करे त्रिभुवन।
सजल-जलदघटा दामिनीदमन॥ २४६५॥

ललितादि-सखी-सुवेष्टित-शोभा अति।
झलमल करे से सबार अंगद्युति॥ २४६६॥

अद्भुत भँगिते चले कुञ्जर माझार।
मन्द मन्द नूपुरेर ध्वनि अनिवार॥ २४६७॥

राइ-कानु सखीसह कुञ्जे प्रवेशिया।
वृन्दाविरचित शोभा देखे हर्ष हैया॥ २४६८॥

दोंहे हासि' बैसे से विचित्र सिंहासने।
चतुर्दिके सखी सुखे आपना ना जाने॥ २४६९॥

लक्ष लक्ष दासी करे चामर व्यजन।
शुक कोकिलादि गाय दुँहु गुणगण॥ २४७०॥

सुमधुर वाद्यप्राय भ्रमर गुञ्जतरे।
चतुर्दिके मयूर-मयूरी नृत्य करे॥ २४७१॥

वृन्दादेशे सब निजगुण प्रकाशिल।
एइ छले वृन्दा मनोरथ जानाइल॥ २४७२॥

परम सुगड़ कृष्ण रसेर मूरति।
हासि नेत्रकोणे कि कहिल वृन्दाप्रति॥ २४७३॥

वृन्दा चन्दनादि पुष्पभूषा समर्पिते।
जे कौतुक बाढ़े—ताहा के पारे वर्णिते॥ २४७४॥

ललिता से ताम्बूलसम्पुट उघाड़िया।
हैल हर्ष राइहस्ते ताम्बूल अर्पिया॥ २४७५॥

श्रीराधिका ताम्बूलवाटिका लैया सुखे।
दिलेन सुभंगीते कृष्णेर चाँदमुखे॥ २४७६॥

मन्द मन्द हासे कृष्ण अधैर्य्यहृदय।
ताम्बूलभक्षणे नाना रंग प्रकाशय ॥ २४७७ ॥

श्रीरावििलास करिवेन—एइ मने।
अपूर्व्व भंगिते चाय राइमुखपाने ॥ २४७८ ॥

आनन्देर मूर्त्ति कृष्ण रसेर निधान।
कोटि कोटि कन्दर्प जिनिया भंगी तान ॥ २४७६ ॥

मयूरचन्द्रिका माथे शोभये अशेष।
वंशी न्यस्त अधरे—कि सुमधुर वेश ॥ २४८० ॥

वृन्दामनोरथसिद्धि करिवार तरे।
श्रीराधिकासह कृष्ण एथाइ विहरे ॥ २४८१ ॥

असंख्य प्रेयसी—तार मध्ये श्रेष्ठ राधा।
जेह श्रीकृष्णेर पूर्ण करे सव साधा ॥ २४८२ ॥

राधिकार वेश जैछे—के पारे कहिते।
ललितादि—वेशेर उपमा नाहि दिते ॥ २४८३ ॥

राधिकार गण जतो लेखा नाइ तार।
ललितादि सखीर यूथेर नाइ पार ॥ २४८४ ॥

लक्ष लक्ष अंगनाते वेष्टित हइया।
विलसये कृष्ण राइस्कन्धे बाहु दिया ॥ २४८५ ॥

श्रीरासविलासे शोभा व्यापिल भुवन।
हईलेन संगीत गिमग्न सर्व्वजन ॥ २४८६ ॥

कहिते कि—संगीतेर रीत चमत्कार।
सर्व्वचित्ताकर्षक—ए सर्व्वत्र प्रचार ॥ २४८७ ॥

अहे श्रीनिवास! पूर्व्व ब्रह्मा वेद हैते।
प्रकाशे संगीतवेद—विदित जगते ॥ २४८८ ॥

अनुवाद—व्रजेन्द्रकुमार ने महारास – विलास में सभी गोपियों का मनोरथ पूर्ण किया। श्रीरासविलासी कृष्ण महासुख के भाण्डाररूप हैं—यह सब सुनने पर सकल अभिलाषा पूर्ण होती है। हे श्रीनिवास! श्रीकृष्ण विश्व को मोहित करने वाले, श्रीरासविलासी और राधिका के प्राणधन हैं। विश्वविमोहिनी राधा रासविलासिनी, कृष्णप्राणप्रिय और रमणियों में शिरोमणि हैं। जिससे कृष्ण को सदा सुख मिलता हैं, ऐसी राधिका के बिना कृष्ण को और कुछ नहीं भाता।

श्रीराधिका अपनी सखियों के साथ वृन्दावन में रासविलास के लिये सदा विह्वल रहती हैं। यहाँ एक दिन महारंग हुआ, इन सब प्रसंगों का वर्णन करने की इच्छा उत्कट होती है। वृन्दा (राधिका की दूती) ने आज मन से विविध विधान किये कि राधिका, कृष्ण और सखियों का विलास देखूँगी। इसी उद्देश्य से वृन्दा ने अनुचर-सखियों को लेकर रासलीला आरम्भ करने का आयोजन किया। नृत्यस्थल में जैसे विधान किये गये, उनका रहस्य नाट्यशास्त्र में भी नहीं है। जिस प्रकार चन्द्रकिरण निर्मल और उज्ज्वल है, वैसी ही नृत्यस्थल की शुभ्रशोभा चमत्कारपूर्ण है ! इस कुञ्जालय के आंगन-परिसर में चन्द्रमा की किरणों की क्या अद्‌भुत शोभा हैं ! चारों ओर शुभ्र प्रकाश है और सबसे ऊपर पुष्पासन है, बीच में बड़े यत्न से शुभ्र सिंहासन रखा गया है। रत्नसम्पुट की ताम्बूलवीटिका है, जिसकी सुगन्ध सबके चित्त को आकृष्ट करती है। नाना प्रकार के पुष्प-अलंकार आदि विविध भाँति के हैं, सुगन्धि चन्दन आदि बिखरे हैं, जिनका पार नहीं है। लाखों चँवर चित्त हरण करते हैं, मृदंगादि वाद्ययंत्र श्रेणीबद्ध ढंग से रखती है। शुक, कोकिलादि को आदेश करती है कि कृष्ण-राधिका के महान चरित्र का गान करो। मयूर को नृत्य करने को कहती है और भ्रमरों को गुंजन करने को। इसी समय वृन्दा की अनुचरी श्रीवृन्दादेवी को धीरे-धीरे कहती है। दोनों के आने में विलम्ब के कारण चिन्तित होकर आपने मुझे आदेश दिया—इसलिए मैं गयी थी।

पूर्णिमा थी, अतः कृष्ण हर्षित मन से पुष्पवन में राधा की प्रतीक्षा कर रहे थे। श्रीराधिका सखियों के साथ घर से आकर इस पुष्प कानन में श्रीकृष्ण से मिलीं। दोनों के मिलन से पूर्णमासी हर्षित हो गयी। तुम्हारे कार्यक्रम के बारे में उन दोनों को बताया। इतना कहते ही दोनों ने गमन किया। उनके कमलरूप पावों की क्या शोभा थी। दोनों के स्कन्ध पर दोनों के हाथ रखे हुए थे। भाव मुग्ध होकर दोनों एक दूसरे को देख रहे थे। वह शोभा अवर्णनीय है, उनकी ओर से दृष्टि हटती नहीं। दोनों की रूपछटा त्रिभुवन को आलोकित करती है। जल से भरे हुए बादलों में जैसे बिजली चमक रही हो। ललिता आदि सखियों से वेष्टित श्रीकृष्ण शोभायमान हैं। उन सब की अंगद्युति झलमल कर रही है। अद्‌भुत भंगिमा से कुञ्ज में वे चल रहे हैं और नूपुर की मन्द-मन्द ध्वनि अनवरत आ रही है। राधिका और श्रीकृष्ण ने सखियों के साथ कुञ्ज में प्रवेश किया और वृन्दा द्वारा रचित शोभा को देखकर हर्षित हुए। दोनों विहंस कर उस विचित्र सिंहासन पर बैठ गये। चारों ओर देखकर सखियाँ सुख से भावविभोर होकर अपने को भूल गयीं।

लाखों दासियाँ चँवर डुला रही हैं और शुक-कोकिलादि दोनों का गुणगान कर रहे हैं। सुमधुर वाद्य के समान भ्रमर गुंजायमान हैं, चारों ओर मयूर-मयूरी नृत्य

कर रहे हैं। वृन्दा के आदेश से सब ने अपने गुणों का वर्णन किया और इस बहाने वृन्दा का मनोरथ प्रकट किया। परम चतुर रस की प्रतिमूर्ति श्रीकृष्ण ने नयनों की कोर से विहँस कर वृन्दा से कुछ कहा। वृन्दा द्वारा चन्दनादि पुष्प-अलंकार समर्पण से जैसा कौतुक बढ़ा-इसका वर्णन कौन कर सकता है। ललिता ने इस ताम्बूल सम्पुट को खोलकर राधिका के हाथ में ताम्बूल दिया जिसमें वह प्रमुदित हो उठीं। श्रीराधिका ने बड़े आनन्द से वह ताम्बूलवाटिका लेकर सुन्दर भंगिमा के साथ श्री कृष्ण के चन्द्र सम मुख में ताम्बूल दिया। श्रीकृष्ण अधीर भाव से मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं और ताम्बूल-भक्षण से नाना रंग प्रकट हो रहे हैं। श्रीरासविलास करेंगे—इसी भाव से अद्भुत भंगिमा में वे राधिका के मुँह की ओर देखते हैं। आनन्द की मूर्ति श्रीकृष्ण रस-निधान हैं, कोटि-कोटि मदन की भंगिमा भी जीत ली है। सिर पर मयूर चन्द्रिका शोभायमान है। अधर पर वंशी है—क्या सुन्दर वेश है।

वृन्दा का मनोरथ पूर्ण करने के लिए श्रीराधिका के साथ श्रीकृष्ण यहीं विहार कर रहे हैं। असंख्य प्रेयसियाँ हैं, जिनमें श्रेष्ठ श्रीराधा है, जो श्रीकृष्ण की साध पूर्ण करती हैं। राधिका का जैसा वेश है—उसका वर्णन कौन कर सकता है, ललिता आदि इस वेश की उपमा नहीं दे सकतीं। राधिका की जितनी सहचारी गोपियाँ हैं, उनकी सीमा नहीं है। ललितादि सखियों के दल का पार नहीं है। लाखों अंगनाओं से वेष्टित श्रीकृष्ण श्रीराधा के स्कन्ध पर हाथ रख कर विलास करते हैं। श्रीरास-विलास की शोभा चारों ओर फैल गयी और सभी संगीत में निमग्न हो गये। संगीत की चमत्कारपूर्ण रीति का क्या वर्णन करें। यही कहा जा रहा है कि वह सबके चित्त को आकृष्ट करने वाला है। हे श्रीनिवास! पहले ब्रह्मा ने वेद से संगीद की सृष्टि कर उसे प्रकाशित किया—यह जग-प्रसिद्ध है॥ २४३६–८८॥

तथाहि—

पुरा चतुर्णां वेदानां सारमाकृष्य पद्मभूः।
इमन्तु पञ्चमं वेदं संगीताख्यमकल्पयत्॥ २४८६॥

अन्वय—पुरा पद्मभूः (पद्मयोनिर्ब्रह्मा) चतुर्णां वेदानां सारम् आकृष्य संगीताख्यम् इमं पञ्चमं वेदम् अकल्पयत् (निर्मितवान्)। २४८६॥

अनुवाद—पूर्वकाल में ब्रह्मा ने चार वेदों का सार ग्रहण कर संगीत वेद नामक इस पञ्चम वेद की रचना की थी॥ २४८६॥

साम-ऋक्-अथर्व्वादि वेदचतुष्टय।
इथे जन्मे गीत-पाठ्य-रस-अभिनय॥ २४९०॥

अनुवाद—साम, ऋक्, अथर्व आदि चार वेदों से गीत, पाठ्य, रस एवं अभिनय की उत्पत्ति हुई॥ २४९०॥

तथाहि—

ऋग्भ्यः पाठ्यमभूद् गीतं सामभ्यः समपद्यत।
यजुर्भ्योऽभिनया जाता रसाश्चाथर्व्वणाः स्मृताः ॥ २४६१ ॥

अन्वय—ऋग्भ्यः (ऋङ्मन्त्रेभ्यः) पाठ्यं (आवृत्तिः) अभूत्, सामभ्यः (सामगानात्) गीतं समपद्यत (समुत्पन्नं), यजुर्भ्यः (यजुर्वेदात्) अभिनयाः जाताः, रसाः च आथर्व्वणा, (अथर्व्ववेदोत्पन्नाः) स्मृताः (कथिता इत्यर्थः) ॥ २४९१ ॥

अनुवाद—ऋक्सूत्रसकल की आवृत्ति से पाठ्य व आवृत्ति, सामगान से गान, यजुर्वेद से अभिनय एवं अथर्ववेद से रस की उत्पत्ति हुई, ऐसा कहा जाता है ॥ २४९१ ॥

ब्रह्मा-शिव आदि ए संगीत प्रचारक।
ए महामधुर सर्व्वजगते व्यापक ॥ २४६२ ॥

अनुवाद—ब्रह्मा, शिव आदि संगीत के प्रचारक हैं, यह बात सकल जगत् में प्रख्यात है ॥ २४९२ ॥

तथाहि—

ब्रह्मेश-नन्दि-भरत—दुर्गा-नारद-कोहलाः ।
दशास्य-वायु-रम्भाद्याः संगीतस्य प्रचारकाः ॥ २४६३ ॥

अन्वय—ब्रह्मा, ईश (महादेवः), नन्दी, भरत, दुर्गा, नारदः, कोहलः दशास्यः (रावणः), वायु, रम्भा—एतत् प्रभूतयः संगीतस्य प्रचारकाः (विदिता इत्यर्थः) ॥

अनुवाद—ब्रह्मा, शिव, नन्दी, भरत, दुर्गा, नारद, कोहल, रावण, वायु, रम्भा प्रभृति संगीत के प्रचारक माने जाते हैं ॥ २४९३ ॥

संगीत-स्वरूप—गीत—वाद्य—नृत्यत्रय।
गीत—वाद्यद्वये केह संगीत कहय ॥ २४६४ ॥

गीत—नृत्य—वाद्येर प्रभाव अतिशय।
देवमनुष्यादि सर्व्वचित्त आकर्षय ॥ २४६५ ॥

अनुवाद—संगीत का स्वरूप—गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों की समष्टि को संगीत कहा जाता है। गीत और वाद्य इन दोनों की समष्टि को भी कुछ गुणी संगीत कहते हैं। गीत-नृत्य-वाद्य बहुत प्रभावकारी है और यह देवता व मनुष्य का समान रूप से चित्त आकृष्ट करता है ॥ २४९४–९५ ॥

तथाहि संगीतपारिजाते—

गीत-वादित्र-नृत्यानां त्रयं संगीतमुच्यते।
गीतस्यात्र प्रधानत्वात्तत् संगीतमितीरितम् ॥ २४६६ ॥

अन्वय—गीतवादित्रनृत्यानां त्रयं (गीतं वादित्रं नृत्यं एतत्त्रयं) संगीतम् उच्यते। अत्र (एषु) गीतस्य प्रधानत्वात् तत् (त्रयं) संगीतम् इति ईरितम् (कथितम् भवति) ॥२४९६॥

अनुवाद—संगीत-पारिजात में कहा गया है—गीत-वाद्य-नृत्य इन तीनों की समष्टि को संगीत कहा जाता है। इनमें गीत की प्रधानता होने के कारण इन तीनों को संगीत कहा जाता है॥ २४९६॥

संगीत-शिरोमणौ—

गीतं वाद्यञ्च नृत्यञ्च त्रयं संगीतमुच्यते।
गीतवाद्ये उभे एव संगीतमिति केचन।
तत्तिर्य्यङ् नरदेवादिमनोहारि प्रकीर्त्तितम्॥ २४९७॥

अन्वय—गीतं वाद्यञ्च नृत्यञ्च (एतत्) त्रयं संगीतम् उच्यते। उभे गीतवाद्ये एव संगीतं इति केचन (वदन्ति)। तत् (संगीतं) तिर्य्यङ् नरदेवादिमनोहारि (पशुपक्षिणां नराणां देवादिनां चित्तहारकं) प्रकीर्त्तितं (प्रसिद्धम्)॥ १४९७॥

अनुवाद—संगीत-शिरोमणि में हैं—गीत, वाद्य, नृत्य ये तीनों मिलकर संगीत कहलाता है। कुछ गुणी गीत और वाद्य इन दोनों की समष्टि को भी संगीत कहते हैं। यह संगीत पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता प्रभृति का चित्त हरण करने वाला है॥

'मार्ग'—'देशी'-भेदे से संगीत द्वि-प्रकार।
स्वर्गे मार्गाश्रित-ब्रह्मा आचार्य्य जाहार॥ २४९८॥
नानादेश-भेदे देशी भूतल- आश्रित।
मार्ग-देशीद्वय ऐछे शास्त्रे सुविदित॥ २४९९॥

अनुवाद—मार्ग और देशी भेद से संगीत दो प्रकार का है। मार्ग आश्रित संगीत स्वर्ग में अवस्थित है, जिसके आचार्य ब्रह्मा हैं और विभिन्न प्रदेशों के भेदानुसार देशी संगीत भूतल पर है। मार्ग और देशी ये दोनों प्रकार शास्त्र में सुविदित है॥ २४९८–९९॥

तथाहि संगीतसारे—

मार्ग-देशीविभेदेन संगीतं भवति द्विधा।
स्वर्गे मार्गाश्रितं देश्याश्रितं भूतलरञ्जितम्॥ २५००॥

अन्वय—मार्ग-देशीविभेदेन (मार्गश्च देशी च इति भेदात्) संगीतं द्विधा (द्विप्रकारं) भवति। मार्गाश्रितं (संगीतं) स्वर्गे (विद्यते), देश्याश्रितं (संगीतं) भूतलरञ्जितं (भूतलस्य रञ्जकं भवति)॥ २५००॥

अनुवाद—संगीतसार में—मार्ग और देशी भेद से संगीत दो प्रकार का होता है। मार्ग-भेदानुसार संगीत स्वर्ग में अवस्थित है, देशी भेदानुसार संगीत इस भूलोक में आनन्ददायी है ॥ २५०० ॥

संगीत-पारिजाते—

मार्ग-देशीविभेदेन द्वेधा संगीतमुच्यते।
वेधा मार्गाख्यसंगीतं भरतयाब्रवीत् स्वयम् ॥ २५०१ ॥

ब्रह्मणोऽधीत्य भरतः संगीतं मार्गसंज्ञितम्।
अप्सरोभिश्च गन्धर्वैः शम्भोरग्रे प्रयुक्तवान् ॥ २५०२ ॥

तद्देशीयमिति प्राहुः संगीतं देशभेदतः ॥ २५०३ ॥

अन्वय—मार्गदेशीविभेदेन संगीतं द्विधा. उच्यते। वेधाः (ब्रह्मा) मार्गाख्यसंगीतं भरताय स्वयम् अब्रवीत् (उपदिष्टवान्), भरतः ब्रह्मणः (ब्रह्मसकाशात्) मार्गसंज्ञितं (मार्गाख्यं) संगीतम् अधित्य अप्सरोभिः गन्धर्वैः शम्भोः अग्रे तत् प्रयुक्तवान्। तत् संगीतं देशभेदतः (देशभेदात्) देशीयं इति प्राहुः (कथयन्ति) ॥२५०१-०३॥

अनुवाद—संगीत पारिजात में कहा गया है—मार्ग और देशी भेद से संगीत दो प्रकार का है। ब्रह्मा ने स्वयं भरत को मार्ग संगीत का उपदेश दिया था। भरत ने ब्रह्मा से मार्ग संगीत की शिक्षा ग्रहण कर अप्सराओं और गन्धर्वों के द्वारा महादेव के सम्मुख इसका प्रयोग करवाया था। वही संगीत भेद से देशीय कहा जाता है ॥ २५०१—०३ ॥

गीतादिर उत्पत्ति कारण नाद हय।
नाद-स्वयं हरि, नादतत्त्व के जानय ॥ २५०४ ॥

अनुवाद—गीतादि का उत्पत्ति-कारण नाद होता है। नाद स्वयं हरि है, नाद-तत्त्व को कौन जान सकता है? ॥ २५०४ ॥

तथाहि—

न नादेन विना गीतं न नादेन विना स्वरः।
न नादेन विना रागस्तस्मान्नादात्मकं जगत् ॥ २५०५ ॥

अन्वय—नादेन विना गीतं न (भवति), नादेन विना स्वरः (षड्जादि) (तथा) नादेन विना रागः न (भवति), तस्मात् जगत् नादात्मकं (नादमयं भवति) २५०५ ॥

अनुवाद—नाद के बिना गीत, षड्जादि स्वर और राग-रागिनी नहीं होती। अतः यह जगत् नादमय है ॥ २५०५ ॥

संगीतदामोदरे—

न नादेन विना ज्ञानं न नादेन विना शिवः।
नादरूपं परं ज्योतिर्नादरूपा स्वयं हरिः॥ २५०६॥

अन्वय—नादेन (अर्थात् नादतत्त्वं) विना ज्ञानं न (भवति), नादेन (नादज्ञानं) विना शिवः न (ज्ञायते), परं ज्योतिः (ज्योतिः स्वरूपं ब्रह्म) नादरूपं (भवति), स्वयं हरिः (च) नादरूपी (भवति) ॥ २५०६ ॥

अनुवाद—संगीत दामोदर में है—नादतत्त्व के बिना तत्त्वज्ञान की पृथक् सत्ता नहीं है, नादज्ञान के बिना शिव को जाना नहीं जाता, ज्योति स्वरूप ब्रह्म नादमय है, स्वयं हरि भी नादरूपी व शब्दब्रह्म-स्वरूप है ॥ २५०६ ॥

आञ्जनेयः—

नादाब्धेस्तु परं पारं न जानाति सरस्वती।
अद्यापि मज्जनभयात्तुम्बं वहति वक्षसि॥ २५०७॥

अन्वय—सरस्वती तु (अपि) नादाब्धेः (नादसमुद्रस्य) परं पारं (सामग्र्येण नादतत्त्वमित्यर्थः) अद्यापि न जानाति (न गता इत्यर्थः) । (अतः कारणात्) सा (तत्समुद्रे) मज्जनभयात् वक्षसि तुम्बं (वीणाया एव) वहति ॥ २५०७ ॥

अनुवाद—हनुमन्मत से—सरस्वती की नाद-समुद्र के पार अभीतक पहुँच नहीं पायी। इसलिए समुद्र में डूबने के भय से वीणा की तुम्बी वक्ष पर वहन करती है ॥ २४०७ ॥

नादेर उत्पत्ति अग्नि-वायु हैते हय।
आकाशादि-वायुते उ से नाद जन्मय॥ २५०८॥

नादेर उत्पत्तिस्थान नाभि-अधोदेशे।
नाभि-ऊर्ध्वे भ्रमि' मुखे व्यक्त हय शेषे॥ २५०९॥

नादोत्पत्ति-प्रकारेर रीत बहु हय।
केह केह नादोत्पत्ति अल्पे निरूपय॥ २५१०॥

अनुवाद—नाद की उत्पत्ति अग्नि वायु से होती है। आकाश-अग्नि-वायु से भी नाद की उत्पत्ति होती है। नाद का उत्पत्ति-स्थान नाभि है। नाभि के ऊर्ध्वस्थान में विचरण कर अन्त में वह मुँह में व्यक्त होता है। नाद की उत्पत्ति के कई प्रकार हैं। कोई-कोई नाद उत्पत्ति का संक्षेप में निरूपण करते हैं ॥ २५०८—१० ॥

तथाहि संगीतसारे—

नकारः प्राणवायुः स्याद्दकारो हव्यवाहनः।
ताभ्यामुत्पद्यते यस्मात्तस्मान्नादोऽयमुच्यते ॥ २५११ ॥
ताभ्यां प्राणाग्निभ्यां जातो नाद इत्यर्थः ॥ २५१२ ॥

अन्वय—प्राणवायुः नकारः स्यात्, हव्यवाहनः (जाठराग्निः) दकारः (स्यात्)। यस्मात् अयं (नाद इत्यर्थः) ताभ्यां (प्राणाग्निभ्याम्) उत्पद्यते तस्मात् नादः उच्यते ॥ २५११-१२ ॥

अनुवाद—संगीतसार में—न-कार का अर्थ है प्राणवायु, द-कार का अर्थ है अग्नि, इन दोनों से उत्पन्न होने के कारण इसे नाद कहा जाता है अर्थात् नाद प्राण और अग्नि से उत्पन्न है ॥ २५११-१२ ॥

संगीतमुक्तावल्यां—

आकाशाग्निमरुज्जातो नाभेरूर्ध्वं समुच्चरन्।
मुखेऽभिव्यक्तिमायाति यः स नादः प्रकीर्त्तितः । २५१३ ॥

अन्वय—यः (ध्वनिरित्यर्थः) आकाशाग्निमरुज्जातः (देहाभ्यन्तर-स्थितेभ्यः आकाशाग्निमरुद्भ्यः उत्पन्नः सन् ततः) नाभे ऊर्ध्वम् (उपरिभागेन (हृत्कण्ठदेशे) समुच्चरन् (उद्गच्छन्) मुखे अभिव्यक्ति (प्रकाशं) आयाति सः नादः प्रकीर्त्तितः ।

अनुवाद—संगीतमुक्तावली में—जो आकाश-अग्नि-वायु से उत्पन्न होकर नाभि के ऊर्ध्वस्थान में विचरण कर मुख से प्रकट होता है, उसे नाद कहा जाता है ॥२५१३॥

नाद त्रिधा-प्राणीते अप्राणीते उ हय।
प्राणि-अप्राणि-योग उ सम्भव ए त्रय ॥ २५१४ ॥
प्राणिदेहोद्भव बिना अप्राणी निर्द्धार।
प्राणि-अप्राणि वंशादि सम्भव प्रचार ॥ २५१५ ॥
मुख-नासास्पर्शे वायुयोगे ध्वनि हय।
एइ हेतु प्राणि-अप्राणि-सम्भव कय ॥ २५१६ ॥

अनुवाद—नाद तीन प्रकार का होता है—प्राणीजात और अप्राणीजात अर्थात् जड़पदार्थ से उत्पन्न भी होता है। प्राणी व अप्राणि के योग से भी नादोत्पत्ति सम्भव है। ये तीन प्रकार हैं। प्राणी-देहोद्भव न होने पर अप्राणीजात है। प्राणी व अप्राणी यानि वंशी आदि के योग से उत्पन्न नाद है। मुख-नासिका के स्पर्श से निसृत वायु के योग से ध्वनि की सृष्टि होती है। इसी हेतु प्राणी-अप्राणी-सम्भव कहा जाता है ॥ २५१४-१६ ॥

तथाहि—

स च प्राणि-भवोऽप्राणिभवश्चोभयसम्भवः।
आद्यः कायभवो वीणासम्भवस्तु द्वितीयकः।
तृतीयश्चापि वंशादिसम्भवः स त्रिधा मतः॥ २५१७॥

अन्वय—स च (नादः) प्राणिभवः अप्राणिभवः उभयसम्भवः च (भवति)। आद्यः (प्रथमः) कायभवः (जीवदेहे जातः), द्वितीयकः वीणासम्भवः, तृतीयश्च वंशादिसम्भवः (एवं) स (नादः) त्रिधा (त्रिप्रकारः) मतः॥ २५१७॥

अनुवाद—वह नाद प्राणीजात, अप्राणीजात और उभयजात होता है। प्रथम जीवदेहजात (कामना से स्वदेह से), द्वितीय वीणाजात एवं तृतीय वंशादि-जात है, इस प्रकार नाद तीन प्रकार का है॥ २६१७॥

व्यवहारे नाद त्रिधा-'मन्द्र' 'मध्य' 'तार'।
हृदि, कण्ठे, मूर्ध्नि स्थान क्रमे-ए प्रचार॥ २५१८॥
'मन्द्र' हइते द्विगुण उच्च 'मध्य' हय।
'मध्य' हैते द्विगुण 'ताराख्य' एइ त्रय॥ २५१९॥

अनुवाद—व्यवहार में नाद तीन प्रकार के हैं—मन्द्र, मध्य और तार। हृदय में मन्द्र, कण्ठ में मध्य और मस्तक में तार का स्थान है। मन्द्र से द्विगुण उच्च मध्य, मध्य से द्विगुण उच्च तार है। ये ही तीन प्रकार हैं॥ २५१८–१९॥

तथाहि—

व्यवहारे त्वसौ नादः प्रोच्यते त्रिविधो बुधैः।
मन्द्रो हृदि स्थितः कण्ठे मध्यस्तारश्च मूर्द्धनि।
द्विगुणः किल मानेन पूर्व्वस्मादुत्तरोत्तरः॥ २५२०॥

अन्वय—असौ नादस्तु बुधैः व्यवहारे (प्रयोगव्यापारे) त्रिविधः प्रोच्यते (कथ्यते) (एकः) मन्द्रः हृदि स्थितः (द्वितीयः) मध्यः कण्ठे (स्थितः) (अपरः) तारश्च मूर्द्धनि (स्थितः)। उत्तरोत्तरः (यः परवर्ती सः) पूर्व्वस्मात् (तत् पूर्व्वस्थितात्) मानेन (कालपरिमाणेन) द्विगुणः किल (कथ्यते)॥ २५२०॥

अनुवाद—पण्डितगण प्रयोग में इस नाद को तीन प्रकार का कहते हैं। 'मन्द्र' हृदय में, 'मध्य' कण्ठ में एवं 'तार' तालु में (मस्तक में) अवस्थित हैं। इनमें पूर्व से परवर्ती द्विगुण प्रमाण का है॥ २५२०॥

ऐछे नादोत्पत्ति नाद ज्ञानेर प्रकार।
रासे गोपीगण गीत करये प्रचार॥ २५२१॥

कृष्णेर आह्लाद गोपी मुखोद्गत गीते।
संगीत-प्रभाव व्यक्त सकल शास्त्रेते॥ २५२२॥

अनुवाद—नादोत्पत्ति और नाद-ज्ञान का यह प्रकार है। रास में गोपियों ने गाकर इसका प्रचार किया। कृष्ण के आह्लाद से गोपियों के मुँह से निसृत संगीत का प्रभाव सभी शास्त्रों में व्यक्त किया गया है॥ २५२१–२२॥

तथाहि—

श्रुतिस्मृत्यादिसाहित्यनानाशास्त्रविदोऽपि च।
संगीतं ये न जानन्ति ते द्विपादो मृगाः स्मृताः॥ २५२३॥

त्रिवर्गफलदाः सर्व्वे ज्ञानयज्ञस्तवादयः।
एकं संगीतविज्ञानं चतुर्व्वर्गफलप्रदम्॥ २५२४॥

अन्वय—ये श्रुति-स्मृत्यादि-साहित्य-नानाशास्त्रविदः अपि संगीतं न जानन्ति तेन द्विपादः (पदद्वयवन्तः) मृगाः (पशवः) स्मृताः (कथ्यन्ते)। सर्व्वे ज्ञान-यज्ञ-स्तवादयः त्रिवर्गफलदाः (भवन्ति); एकं (एकलं) संगीतविज्ञानं चतुर्व्वर्गफलप्रदं (भवति)॥ २५२३–२४॥

अनुवाद—जो श्रुति, स्मृति प्रभृति साहित्य और नाना शास्त्रों में अभिज्ञ होते हुए भी संगीतविद्या नहीं जानते, वे दो पैरों वाले पशु हैं। ज्ञान, यज्ञ, स्तव प्रभृति सभी साधन धर्म-अर्थ-काम-रूप त्रिवर्गफल प्रदान करते हैं। एकमात्र संगीत-विज्ञान धर्मार्थकाममोक्ष रूप चतुर्वर्ग-फल प्रदान करता है॥ २५२३–२४॥

विशेषमाह संगीतदामोदरे—

संगीतकेन रम्येण सुखं यस्य न चेतसि।
मनुष्यवृषभो लोके विधिनैव स वञ्चितः॥ २५२५॥

गीतेन हरिणा बन्धं प्राप्नुवन्त्यपि पक्षिणः।
बलादायान्ति फणिनः शिशवो न रुदन्ति च॥ २५२६॥

परमानन्दविवर्द्धनमभिमतफलदं वशीकरणम्।
सकलजनचित्तहरणं विमुक्तिबीजं परं गीतम्॥ २५२७॥

अन्वय—रम्येण (मनोहरेण) संगीतकेन यस्य (जनस्य) चेतसि सुखं न (भवति) स लोके (संसारे) मनुष्यवृषभः (मनुष्येषु गो-सदृशः) विधिना (विधात्रा) वञ्चित एव। हरिणाः, फणिनः अपि गीतेन बलात् बन्धं प्राप्नुवन्ति (बन्धनं गच्छन्ति) शिशवः च न रुदन्ति। गीतं परं (अतिशयितं) परमानन्दविवर्द्धनं, वशीकरणं सकलजन-चित्तहरणं विमुक्तिबीजं (मुक्तिकारणं भवति)॥ २५२५–२७॥

अनुवाद—संगीत-दामोदर में विशेष रूप से कहा गया है—सुरम्य-मनोहर संगीत से जिसके चित्त में सुख का उदय नहीं होता, वह इस संसार में मनुष्यों में वृषभ-सदृश है एवं विधाता से वञ्चित ही है। हरिण, पक्षी, एवं सर्प भी गीत से बलपूर्वक बंध जाते हैं, शिशु भी रोते नहीं। संगीत परमानन्दवर्द्धक है, अभीष्ट फलदायक, वशीकरण सबका चित्त हरण करने वाला और मुक्ति का बीज स्वरूप है ॥ २५२५–२७ ॥

अहे श्रीनिवास ! कृष्ण रसेर आलय।
गीतज्ञेर शिरोमणि रासे विलसय ॥ २५२८ ॥
परम अद्‌भुत शोभा श्रीरास-मण्डले।
परस्पर गीत प्रकाशये कुतूहले ॥ २५२६ ॥
गीतेर लक्षण हय अनेक प्रकार।
धातु–मातु–सह गीत प्रसिद्ध प्रचार । २५३० ॥
अनुरागजनक ए धातु-मातु हय।
गीत – अवयव धातु–मातु रागादय ॥ २५३१ ॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! रस की प्रतिमूर्ति, गीतज्ञों में शिरोमणि श्रीकृष्ण रास में विलसित हैं, शोभायमान हैं। श्रीरास-मण्डल की अद्‌भुत शोभा है। परस्पर गीत से कुतूहल जाग्रत होता है। गीत के अनेक प्रकार के लक्षण हैं। धातु-मातु सहित गीत प्रसिद्ध हैं। ये धातु-मातु अनुरागजनक होते हैं। धातु गीत का अवयव हैं और रागादि मातु है ॥२५२८–३१ ॥

संगीतसारे—

गीतं रञ्जकं धातुमातुसहितमिति ॥ २५३२ ॥
गीतस्यावयवो धातु रागादिर्मातुरुच्यते ॥ २५३३ ॥

अन्वय—धातु-मातु सहितं गीतं रञ्जकं (विनोदकं भवति) इति। गीतस्य अवयवः धातुः (उच्यते) रागादिः (गीतस्येत्यर्थः) मातुः उच्यते ॥ २५३२–३३ ॥

अनुवाद—संगीतसार में—धातु मातु सहित गीत चितरञ्जक होता है। गीत के अयवय को 'धातु' एवं गीत के रागादि को 'मातु' कहते हैं ॥ २५३२–३३ ॥

धातु नादात्मक—इथे अनेक विचार।
नादात्मक—नाद 'आत्मा स्वरूप' जाहार ॥ २५३४ ॥

अनुवाद—धातु नादात्मक है—इस सम्बन्ध में भिन्न मत हैं। नादात्मक यानी जिसका नाद आत्मा स्वरूप है ॥ २५३४ ॥

नारदसंहितायाम्—

धातु-मातुसमायुक्तं गीतमित्यभिधीयते।
तत्र नादात्मकं गेयं धातुरित्यभिधीयते ॥ २५३५ ॥

अन्वय—धातु-मातु समायुक्तं गीतं (भवति) इति अभिधीयते (कथ्यते)। तत्र (तन्मध्ये) नादात्मकं गेयं (गीतं) धातुः (भवति) इति अभिधीयते ॥२५३५॥

अनुवाद—नारदसंहिता में कहा गया है—गीत धातु-मातु विशिष्ट (युक्त) होता है। उसमें नादात्मक गीत को धातु कहा जाता है ॥ २५३५ ॥

एथा नादपरे नादजन्य श्रुति, स्वर।
मूर्च्छना, तालाख्य ग्राम-प्रकार विस्तर ॥ २५३६ ॥
नाद हैते अनेक श्रुतिर जन्म हय।
श्रुति हइतेइ जन्मे स्वर-षड्जादय ॥ २५३७ ॥
स्वर हैते मूर्च्छना जन्मे, मूर्च्छना हइते।
तालाख्य ग्राम-सम्भव—विदित जगते ॥ २५३८ ॥

अनुवाद—नादपद में नादजात श्रुति, स्वर, मूर्छना, ग्रामसम्भूत ताल व तान आदि कई प्रकार हैं। नाद से कई श्रुतियों का जन्म होता है, श्रुति से षड्जादि स्वर, स्वर से मूर्छना और मूर्छना से ग्रामसम्भूत ताल व तान की उत्पत्ति है—यह जग-प्रसिद्ध है ॥ २५३६–३८ ॥

तथाहि—

नादाच्च श्रुतयो जातास्ताभ्यः षड्जादयः स्वराः।
तेभ्यः स्युर्मूर्च्छनास्ताभ्यस्तालाख्या ग्रामसम्भवाः ॥ इति ॥२५३९॥

अन्वय—नादाच्च श्रुतयः जाताः, ताभ्यः (श्रुतिभ्यः) षड्जादयः स्वराः (जाताः) तेभ्यः (स्वरेभ्यः) मूर्च्छनाः स्युः, ताभ्यः (मूर्च्छनाभ्यः) ग्रामसम्भवाः (ग्रामोत्थाः) तालाख्याः (भवन्ति) ॥ २५३९ ॥

अनुवाद—नाद से श्रुतियों का जन्म होता है, श्रुति से षड्जादि स्वर, ईन सब स्वरों से मूर्छना एवं मूर्छना से ग्रामसम्भूत ताल व तान की उत्पत्ति है ॥ २५३९ ॥

अहे श्रीनिवास ! एइ प्रसंगानुसारे।
कहिब ये क्रम ताहा कहि अल्पाक्षरे ॥ २५४० ॥
नादश्रुति–स्वरग्राम–मूर्छना–प्रचार ।
ताल–वर्ण–ग्रहस्वर–अंशस्वर आर ॥ २५४१ ॥
न्यासस्वर,जाति—ए सकल–ए – क्रमेते।
अल्पे जानाइब—ऐछे विस्तार अन्येते ॥ २५४२ ॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! इसी प्रसंगानुसार में संक्षेप मैं क्रमिक रूप से बता रहा हूँ कि नाद, श्रुति, स्वरग्राम, मूर्छना, ताल, वर्ण, ग्रहस्वर, अंशस्वर, न्यासस्वर और जाति का विस्तार है ॥ २५४०–४२ ॥

तथाहि—

नाद्-श्रुति-स्वरग्राम-मूर्छना-ताल-वर्णकाः ।
स्वरा ग्रहांशन्यासाख्या जातिश्चेति क्रमादिह ॥ २५४३ ॥

अन्वय—इह (शास्त्रे) नाद-श्रुति-स्वरग्राम-मूर्च्छना-तालवर्णकाः (नाद-श्रुतिश्च स्वरग्रामश्च मूर्च्छनाश्च तालश्च वर्णश्च) ग्रहांशन्यासाख्याः (ग्रहश्च अंशश्च न्यासश्च इत्येते आख्या येषां ते) स्वराः जातिश्च इति क्रमात् (कथिता इत्यर्थः) ॥

अनुवाद—नाद, श्रुति, स्वरग्राम, मूर्छना, ताल, वर्ण, ग्रहस्वर, न्यासस्वर, अंशस्वर और जाति—इस क्रम से शास्त्र में उपदिष्ट हुए हैं ॥ २५४३ ॥

नाद जानाइल, एवे जान श्रुत्यादय ।
रासे कृष्ण प्रिया-सह गीते प्रकाशय ॥ २५४४ ॥
अहे श्रीनिवास ! एइ श्रीरासमण्डले ।
कि वलिव—मूर्त्तिमन्त हैला ए-सकले ॥ २५४५ ॥
नाद हैते श्रुति यैछे प्रकट प्रकार ।
ताहा प्रकाशिते कृष्ण कौतुक अपार ॥ २५४६ ॥
से नाद मारुताहत श्रुति द्वाविंशति ।
द्वाविंशति नाड़ी वक्र उर्ध्व हृदे स्थिति ॥ २५४७ ॥
यत नाड़ी तत—सर्व्वत्र विदित ।
क्रमे उच्च उच्च-युक्त वीणादि-लक्षित ॥ २५४८ ॥
कफादिके दुष्ट कण्ठे श्रुति व्यक्त नहे ।
एइरूप अनेक प्रकार सवे कहे ॥ २५४९ ॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! नाद के सम्बन्ध में मैंने बताया, अब, श्रुतियों के बारे में जानिये । रासमण्डल में श्रीकृष्ण ने उन्हें प्रकट किया । मैं क्या कहूँ, इन सबके वे प्रतिमूर्ति हैं । नाद से कई प्रकार की श्रुतियाँ प्रकट होती हैं । वह नाद वायु से आहत होकर बाईस श्रुतियों में परिणत होता है । हृदय में वक्र और ऊर्ध्व बाईस नाड़ियाँ हैं । यह सर्वविदित है कि जितनी नाड़ियाँ हैं, उतनी ही श्रुतियाँ हैं । ये क्रमशः उच्च और उच्चतर हैं जो वीणादि वाद्ययंत्रों में परिलक्षित होती हैं । कफ आदि दोषयुक्त कण्ठ में श्रुतियाँ व्यक्त नहीं होतीं । सभी ऐसा ही कहते हैं ॥ २५४४-४९ ॥

तथाहि श्रुतयः—

स नादः श्रुतयो द्वाविंशतिः स्यान्मारुताहतः।
द्वाविंशतिस्तिर्य्यगूद्ध्र्वानाड्यो हृदयमाश्रिताः ॥ २५५० ॥

ता यावत्यस्तु तावत्यः श्रुतयः परिकीर्त्तिताः।
क्रमादुच्चोच्चतायुक्ता वीणादावेव लक्षिताः।
कफादिदुष्टे कण्ठे यत्तासां व्यक्तिर्न जायते ॥ २५५१ ॥

अन्वय—स नादः मारुताहतः (वायुना प्रेरितः सन्) द्वाविंशति श्रुतयः (भवन्ति) तिर्य्यगूद्ध्र्वा (वक्रगतयः ऊद्ध्र्वगतयश्च) द्वाविंशतिः नाडयः हृदयं आश्रिताः (हृदये वर्त्तन्ते); यावत्यः तु ताः नाड्यः (सन्ति) तावत्यः श्रुतयः परिकीर्तिताः (ताः श्रुतयः) क्रमात् उच्चोच्चतायुक्ताः वीणादौ एव लक्षिताः (भवन्ति) यत् (यतः) तासां (श्रुतीनां) कफादि दुष्टे कण्ठे अभिव्यक्तिः (प्रकाशः) न जायते ॥ २५५०–५१ ॥

अनुवाद—अब श्रुतियों का विवेचन कहते हैं—वह नाद वायु द्वारा संचालित होकर बाईस श्रुतियों में परिणत होता है। हृदय में वक्र और ऊर्ध्व रूप में नाड़ियाँ स्थित हैं अथवा नाड़ियाँ हृदय को आश्रित किये हुए हैं। नाड़ियाँ बाईस हैं। कहा जाता है कि जितनी नाड़ियाँ हैं उतनी ही श्रुतियाँ हैं। ये श्रुतियाँ क्रमशः उच्च-उच्चतर हैं और वीणादि वाद्ययंत्रों पर ही ये परिलक्षित होती हैं; क्योंकि कफ आदि दोषयुक्त कण्ठ से इनको प्रकट नहीं किया जा सकता ॥ २५५०–५१ ॥

द्वाविंशति श्रुति षड्जादिक सप्त स्वरे।
विभाग व्यवस्था ऐछे कहे विज्ञवरे ॥ २५५२ ॥

मध्यमे, पञ्चमे, षड्जे श्रुतिचतुष्टय।
ऋषभ-धैवत स्वरे हय श्रुतित्रय ॥ २५५३ ॥

गान्धारे, निषादे द्वय-एइ द्वाविंशति।
श्रुति हैते जन्मे स्वर-ए प्रसिद्ध अति ॥ २५५४ ॥

अनुवाद—विज्ञजनों के अनुसार सात स्वरों में बाईस श्रुतियों का विभाजन इस प्रकार है। मध्यम, पञ्चम और षड्ज की चार-चार, ऋषभ और धैवत की तीन-तीन तथा गान्धार और निषाद की दो-दो श्रुतियाँ हैं। इस प्रकार बाईस श्रुतियाँ हैं। यह प्रसिद्ध है कि श्रुतियों से स्वर की उत्पत्ति है ॥ २५५२–५४ ॥

तथाहि—

चतस्रः पञ्चमे षड्जे मध्यमे श्रुतयो मताः।
ऋषभे धैवते तिस्रो द्वे गान्धारे निषादके ॥ २५५५ ॥

अन्वय—षड्जे, मध्यमे (च) पञ्चमे (स्वरे प्रत्येकं) चतस्रः श्रुतयः मताः

(कथ्यन्ते); ऋषभे धैवत (च) तिस्रः (श्रुतयो मताः); गान्धारे निषादके (च) द्वे (श्रुतिमते) ।। २५५५ ।।

अनुवाद—षड्ज, मध्यम और पञ्चम प्रत्येक स्वर में चार श्रुतियाँ, ऋषभ और धैवत में तीन-तीन एवं गान्धार और निषाद में दो-दो श्रुतियाँ हैं ।। २५५५ ।।

श्रुतिनाम भिन्न भिन्न देशविशेषेते।
कहि बहु सम्मत-षड्जादि जन्मे जाते ॥ २५५६ ॥
नान्दी, विशाला, सुमुखी विचित्रा–ए चारि।
इथे जन्मे षड्ज स्वर (१) सर्व्व मनोहारी ॥ २५५७ ॥
चित्रा, घना, चालनिका-ऋषभे (२) ए-त्रय।
गान्धारे (३) सरसा, माला-श्रुतिनामद्वय ॥ २५५८ ॥
मध्यमस्वरे (४) माधवी, शिवा, मातंगिका।
मैत्रेयी—ए –चतुष्टय सर्व्वांशे अधिका ॥ २५५९ ॥
बाला, कला, कलरवा, शाङ्गरवी नाम।
पञ्चमे (५) ए–चतुष्टय श्रुति अनुपम ॥ २५६० ॥
जाया, रसा, अमृता—धैवते (६) एइ त्रय।
निषादेते (७) मात्रा, मधुकरो श्रुतिद्वय ॥ २५६१ ॥

अनुवाद—कई गुणीजनों का यह मत है कि देश विशेष में श्रुतियों के नाम भिन्न-भिन्न हैं, जिनसे षड्जादि स्वरों की उत्पत्ति होती है। नान्दी, विशाला, सुमुखी एवं विचित्रा इन चार श्रुतियों से सर्वमनोहारी स्वर षड्ज का जन्म है। ऋषभ में तीन श्रुतियाँ हैं—चित्रा, घना और चालनिका। गान्धार में हैं दो श्रुतियाँ—सरसा और माला। मध्यम स्वर में हैं चार श्रुतियाँ—माधवी, शिवा, मातंगिका और मैत्रेयी। पञ्चम स्वर में हैं चार अनुपम श्रुतियाँ—बाला, कला, कलरवा और शार्ङ्गरवी। धैवत में हैं तीन श्रुतियाँ—जाया, रसा और अमृता। निषाद में हैं दो श्रुषियाँ—मात्रा और मधुकरी ।। २५५६–६१ ।।

तथाहि—

नान्दी विशाला सुमुखी विचित्रा षड्जाः स्मृताः।
(षड्जा इति–षड्जं जनयन्तीति षड्जाः)।
चित्रा, घना, चालनिका ऋषभे तिस्र ईरिताः ॥ २५६२ ॥
गान्धारे सरसा, माला मध्यमे माधवी शिवा।
मातंगिका च मैत्रेयी चतस्रः परिकीर्त्तिताः ॥ २५६३ ॥
बाला, कला, कलरवा, शार्ङ्गरव्यपि पञ्चमे।

जाया, रसामृता चेति तिस्रो धैवतनामनि ॥ २५६४ ॥
निषादनामनि द्वे च मात्रा मधुकरी तथा।
इति स्वराणां श्रुतयो द्वाविंशतिरुदीरिताः ॥ २५६५ ॥

(स्वराणामित्यत्र पुत्राणां पिता इतिवत् जन्यजनकसम्बन्धे षष्ठी। स्वराणां जनिका इत्यर्थः ॥)

अन्वय—नान्दी, विशाला सुमुखी, विचित्रा (च) षड्जा (षड्जस्वरजनिकाः स्मृताः)। चित्रा, घना, चालनिका (एताः) तिस्रः ऋषभे (ऋषभस्वरे) ईरिताः (कथिताः)। सरसा, माला (इति द्वे) गान्धारे (कथ्येते)। माधवी, शिवा, मातंगिका, मैत्रेयी च (इति) चतस्रः मध्यमे परिकीर्तिताः। बाला, कला, कलरवा, शार्ङ्गरवी अपि (च इति चतस्रः) पञ्चमे (कथिताः)। जाया, रसा अमृता च इति तिस्रः धैवतनामनि (धैवतनामके कथिताः) मात्रा तथा मधुकरी (इति) द्वे निषादनामनि (निषादाख्ये स्वरे) (कथिते)। इति (उक्तक्रमेण) स्वराणां (षड्जादिस्वरोत्पादिकाः) द्वाविंशतिः श्रुतयः उदीरिताः (कथ्यन्ते) ॥ २५६२–६५ ॥

अनुवाद—षड्ज स्वर में—नान्दी, विशाला, सुमुखी, विचित्रा ये चार; ऋषभ में—चित्रा, घना, चालनिका ये तीन, गान्धार में—सरसा, माला ये दो; मध्यम में—माधवी, शिवा, मातंगिका, मैत्रेयी ये चार; पञ्चम में—बाला, कला कलरवा, शार्ङ्गरवी ये चार; धैवत में—जाया, रसा; अमृता ये तीन; निषाद में—मात्रा, मधुकरी ये दो श्रुतियाँ हैं, इस प्रकार बाईस श्रुतियाँ स्वरों की उत्पादिका कहलाती हैं या निर्माण करने वाली हैं ॥ २५६२–६५ ॥

श्रुतिनाम भिन्न सिद्धि प्रभावत्यादय।
इहाते अनेक आरो प्रकार आछय ॥ २५६६ ॥

अनुवाद—इन श्रुतिनामों के अलावा सिद्धि, प्रभावती आदि भी हैं इनमें और भी अनेक प्रकार होते हैं ॥ २५६६ ॥

तथाहि कोहलीये—

सिद्धिः प्रभावती कान्ता सुभद्रा च मनोहराः।
साधयन्ती स्वरं षड्जं प्रजापतिमुखोद्गताः।
इत्यादयः ॥ २५६७ ॥

अन्वय—सिद्धिः, प्रभावती, कान्ता, सुभद्रा च (एताः) प्रजापति-मुखोद्गताः (ब्रह्ममुखनिःसृताः) मनोहराः (चित्ताकर्षिण्यः श्रुतयः) षड्जं स्वयं साधयन्ति (सम्पादयन्ति) ॥ २५६७ ॥

अनुवाद—कोहलीय में है—प्रजापति (ब्रह्मा) के मुख से विनिर्गत चार मनोहारिणी श्रुतियाँ—सिद्धि, प्रभावती, कान्ता, सुभद्रा—षड्ज स्वर का निर्माण करती हैं ॥ २५६७ ॥

श्रुतिस्थाने स्वर यैछे ब्रह्माओ ना जाने ।
संगीतज्ञगण मात्र लक्षण वाखाने ॥ २४६८ ॥

अनुवाद—ब्रह्मा भी श्रुतिस्थान के अभ्यन्तर से उत्पन्न स्वर के तत्त्व को नहीं जानते । संगीतज्ञगण तो उसके लक्षण मात्र का वर्णन करते हैं ॥ २५६८ ॥

तथाहि—

श्रुतिस्थाने स्वरान् वक्तुं नालं ब्रह्मापि तत्त्वतः ।
जलेषु चरतां मार्गो मीनानां नोपलभ्यते ॥ २५६६ ॥

अन्वय—ब्रह्मा अपि श्रुतिस्थाने (हृदभ्यन्तरे उत्पन्नान् इत्यर्थः) स्वरान् तत्त्वतः (स्वरूपतः साकल्येन) वक्तुं न अलं (समर्थः) । जलेषु (गभीरे जलमध्ये) चरतां मीनानां मार्गः (गतिः) न उपलभ्यते ॥ २५६९ ॥

अनुवाद—ब्रह्मा भी श्रुति स्थान पर हृदयाभ्यन्तर में उत्पन्न सकल स्वरों के तत्त्व को बताने में असमर्थ हैं । गहरे जल में विचरण करने वाली मछली की गति को जानना अशक्य है ॥ २५६९ ॥

अहे श्रीनिवास ! श्रुतिस्वरूप के जाने ?
केवल व्यक्त रासे रम्य जाने ॥ २५७० ॥
यैछे कृष्णचन्द्र श्रुति करये प्रचार ।
तैछे श्रीराधिका व्यक्त करे चमत्कार ॥ २५७१ ॥
ललितादि सखीर आनन्द अतिशय ।
देवे पुष्पवृष्टि करे हइया विस्मय ॥ २५७२ ॥
श्रुतिगण निज-निज भाग्य प्रशंसये ।
स्वरसह श्रुति सर्व्वचित्त आकर्षये ॥ २५७३ ॥

अथ स्वराः—

श्रुतिस्थाने हृदयरञ्जक जे—से 'स्वर' ।
किम्वा स्वर सकल श्रोतार मनोहर ॥ २५७४ ॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! श्रुतिस्वरूप को कौन जान सकता है ? रास के सुरम्य गान में ही श्रुतियाँ व्यक्त होती हैं । जिस प्रकार श्रीकृष्ण श्रुतियों का प्रदर्शन करते हैं, श्रीराधिका उसी प्रकार चमत्कार पूर्ण ढंग से व्यक्त करती हैं । ललिता आदि

सखियों को परम आनन्द की अनुभूति होती है। देवगण विस्मित होकर पुष्पवृष्टि करते हैं। श्रुतियाँ अपने-अपने भाग्य को सराहती हैं और स्वरों के साथ श्रुतियाँ सबका चित्त आकृष्ट करती हैं। अब स्वरों के सम्बन्ध में कहते हैं—श्रुतिस्थान पर ध्वनित होकर जो चित्तरञ्जक हैं वे 'स्वर' यानी सभी स्वर श्रोताओं का मन हरण करने वाले हैं॥ २५७०–७४॥

तथाहि—

स स्वरो यः श्रुतिस्थाने स्वनन् हृदयरञ्जकः।
एतेन स्वरशब्दस्य योगरूढ़त्वमुच्यते॥ २५७५॥
किम्वा श्रोतुर्म्मनो यस्मादरञ्जयन्ती ततः स्वराः॥ इति॥

अन्वय—यः (ध्वनिरित्यर्थः) श्रुतिस्थाने (हृदयाभ्यन्तर इत्यर्थः) स्वनन् (ध्वनितः सन्) हृदयरञ्जकः (भवति) स स्वरः (ख्यातः)। एतेन (व्याख्यानेन) स्वरशब्दस्य योगरूढत्वं (योगिकत्वेऽपि पारिभाषिकत्वं) उच्यते। किम्वा यस्मात् (एते) श्रोतुः मनः रञ्जयन्ति ततः (तस्मात्) स्वराः (कथ्यन्ते)॥ २५७५॥

अनुवाद—जो श्रुतिस्थान पर हृदयाभ्यन्तर में ध्वनित होकर चित्त को आनन्दित करता है, उसका नाम स्वर है। इस व्याख्या के अनुसार स्वरशब्द का योगरूढ़त्व निर्दिष्ट होता है। व्युत्पत्तिजन्य अर्थ के साथ संकेत भी है, इसलिये योगरूढ़ है। अथवा—ये श्रोताओं के मन को आनन्दित करते हैं, मनोरञ्जन करते हैं, इसलिए इन्हें 'स्वर' की संज्ञा दी गयी है अथवा स्वर कहा जाता है॥ २५७५॥

सप्तस्वर-संज्ञा—षड्ज, ऋषभ, गान्धार।
मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद आर॥ २५७६॥
स रि ग म प ध नि—अपर संज्ञा हय।
सप्तस्वरे मन्द्र मध्य-तार भावत्रय॥ २५७७॥
क्रमे-ए तिनेर हृत-कण्ठे-मस्तक स्थान।
मन्द्र हैते द्विगुण द्विगुण उच्च गान॥ २५७८॥

अनुवाद—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद सात स्वर हैं और इनकी अन्य संज्ञाएँ अथवा नामान्तर हैं—स रि ग म प ध नि। मन्द्र-मध्य-तार भाव आश्रय से ये तीन प्रकार के हैं। उनका उत्पत्ति-स्थल क्रमशः हृदय, कण्ठ और मस्तक हैं। मन्द्र से मध्य द्विगुण उच्च तथा मध्य से तार द्विगुण उच्च है॥ २५७६–७८॥

तथाहि—

षड्जर्षभौ च गान्धारो मध्यमः पञ्चमस्तथा।
धैवतश्च निषादश्च स्वराः सप्तात्र कीर्तिता॥ २५७९॥

सरिगमपधनिश्चेत्येतेषामपराभिधा ।
ते त्रिधा स्युर्मन्द्रमध्यतारभावं समाश्रिताः ॥ २५८० ॥
त्रीणि स्थानानि तेषां हि हृदि मन्द्रोऽभिजायते ।
कण्ठे मध्यो मूर्ध्नि तारो द्विगुणश्चोत्तरोत्तरः ॥ २५८१ ।

अन्वय—अत्र (स्वरप्रस्तावे) षड्जर्षभौ (षड्जश्च ऋषभश्च) गान्धारः च मध्यमः तथा पञ्चमः धैवतः च निषादः च (इति) सप्त स्वराः कीर्त्तिताः एतेषां (स्वराणां) स-रि ग-म-प-ध-निः इति अपरा च अभिधा (संज्ञा अस्ति) । मन्द्र-मध्य-तारभावं समाश्रिताः ते (स्वराः) त्रिधा (त्रिविधाः) स्युः । तेषां (मन्द्र-मध्य-ताराणां) हि त्रीणि स्थानानि (सन्ति, यथा); मन्द्रः हृदि अभिजायते, मध्यः कण्ठे (अभिजायते) तारः मूर्ध्नि (मस्तके अभिजायते) । उत्तरोत्तरः (यः परं परम् आयाति स पूर्व्वपूर्व्वस्मात्) द्विगुणः च (भवति) ॥ २५७६–८१ ॥

अनुवाद—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद—ये सात स्वर प्रसिद्ध हैं । इन स्वरों की अन्य संज्ञाएँ अथवा नामान्तर है—स-रि-ग-म-प-ध-नि । मन्द्र-मध्य-तार भावाश्रित ये तीन प्रकार के हैं। मन्द्र-मध्य-तारस्वरों के उत्पत्ति स्थान तीन हैं—जैसे मन्द्र स्वरों का हृदय में, मध्य का कण्ठ में और तार का मस्तक में । प्रत्येक क्रमशः द्विगुण है—मन्द्र से मध्य द्विगुण उच्च तथा मध्य से तार द्विगुण उच्च ॥ १५७६–८१ ॥

षड्जादि सप्त स्वरेण उत्पत्ति-प्रकार ।
संगीतज्ञ कैल अति कौतुके प्रचार ॥ २५८२ ॥

तत्र षड्जस्वरः—

वक्ष, नासा, कण्ठ, तालु, रसना, दशन ।
एइ स्थाने षड्जस्वरेर जनम ॥ २५८३ ॥

अनुवाद—षड्जादि सात स्वरों की उत्पत्ति के बारे में संगीतज्ञों ने बड़े कौतुक से प्रचार किया । अब षड्जस्वर के बारे में कहते हैं—वक्ष, नासिका, कण्ठ, तालु, जिह्वा और दाँतों—इन छः स्थानों के स्पर्श से षड्ज स्वर का जन्म है ॥२५८२-८३॥

तथाहि—

नासां कण्ठमुरस्तालु जिह्वां दन्तांश्च संस्पृशन् ।
षड्भ्यः संजायते यस्मात्तस्मात् षड्ज इति स्मृतः ॥ २५८४ ॥

अन्वय—यस्मात् (अयं स्वरः) नासा कण्ठं उरः (वक्षः स्थलं) तालुं जिह्वां दन्तान् च संस्पृशन् षड्भ्यः (स्थानेभ्यः) संजायते तस्मात् (स स्वरः) षड्जः इति स्मृतः (कथितः भवति) ॥ २५८४ ॥

अनुवाद—यह स्वर नासिका, कण्ठ, वक्ष, तालु, जिह्वा, दन्त—इन छः स्थानों का स्पर्श करके उत्पन्न होता है, अतः इसे षड्ज स्वर कहा जाता है ॥ २५८४ ॥

दामोदरस्त्वन्यथाह—

वायुसम्मुर्च्छितो नाभेर्नाड्याश्च हृदयस्य च।
पार्श्वयोर्मस्तकस्यापि षण्णां षड्जः प्रजायते ॥ इति ॥२५८५ ॥

अन्वय—नाभेः, नाड्याः च हृदयस्य च पार्श्वयोः मस्तकस्यापि (इति) षण्णां (षट्स्थानानां) वायुः संमूर्च्छितः (प्रवृद्धः सन्) षड्जः प्रजायते (भवति) ।।२५८५।।

अनुवाद—किन्तु दामोदर का मत भिन्न प्रकार का है, जैसे—मूलाधार से वायु नाभि, हृदय, दो पार्श्वभाग, नाड़ी और मस्तक इन छः स्थानों पर मूर्च्छित होकर षड्ज स्वर उत्पन्न करती है ॥ २५८५ ॥

षड्ज-स्वरोत्पत्ति ऐछे शास्त्रे सुनिर्धार।
ऋषभादि-स्वरोत्पत्ति सुगमप्रचार ॥ २५८६ ॥

अनुवाद—षड्ज स्वर की उत्पत्ति के बारे में शास्त्र में इसी प्रकार निर्धारित है। ऋषभादि स्वरों की उत्पत्ति के विषय में सुगम प्रचार है ॥ २५८६ ॥

अथ ऋषभस्वरः—

नाभिमूलाद् यदावायुरुत्थितः कुरुते ध्वनिम्।
वृषभस्येव निर्याति हेलया ऋषभः स्मृतः॥ २५८७ ॥

अन्वय—यदा वायुः नाभिमूलात् उत्थितः (सन्) वृषभस्य ध्वनिम् इव (ध्वनिं) कुरुते हेलया निर्याति च तदा स ऋषभः स्मृतः ॥ २५८७ ॥

अनुवाद—अब ऋषभस्वर—जब वायु नाभि के मूलभाग से उठ कर वृषभ के समान ध्वनि उत्पन्न करता है और सहज ही मुँह से निकलता है तब उसे ऋषभ स्वर कहा जाता है ॥ २५८७ ॥

अथ गान्धारस्वरः—

नाभेःसमुद्गतो वायुर्गन्धं श्रोत्रे च चालयन्।
सशब्दं येन निर्याति गान्धारस्तेन कथ्यते ॥ २५८८ ॥

अन्वय—नाभेः समुद्गतः वायुः गन्धं श्रोत्रे (नासिकां कर्णे) च चालयन् येन (यतः) सशब्दं निर्याति तेन (हेतुना) गान्धारः कथ्यते ॥ २५८८ ॥

अनुवाद—अब गान्धार स्वर—नाभि से उठा हुआ वायु नासिका और कर्ण को सञ्चालित कर सशब्द बाहर आता है, इसलिए उसे गान्धार कहा जाता है ।।२५८८।।

अथ मध्यमस्वरः—

मध्यमो मध्यमस्थानात् शरीरस्योपजायते।
नाभिमूलाच्च गम्भीरः किञ्चित्तारः स्वभावतः॥ २५८६॥

अन्वय—स्वभावतः गम्भीरः किञ्चित्तारः (स्वल्पोच्चः) मध्यमः शरीरस्य मध्यमस्थानात् (वक्षोदेशात्) नाभिमूलात् च उपजायते ।। २५८६ ।।

अनुवाद—मध्यम स्वर स्वभावतः गम्भीर और कुछ उच्च होता है। यह शरीर के नाभिमूल और मध्यस्थान से उत्पन्न होता है ।। २५८६ ।।

अथ पञ्चमस्वरः—

प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ तथैव च।
एतेषां समवायेन जायते पञ्चमः स्वरः॥ २५६०॥

अन्वय—प्राणः अपानः समानः च तथा उदानव्यानौ एव च (इति पञ्च प्राणाः) एतेषां समवायेन पञ्चमः स्वरः जायते ।। २५६० ।।

अनुवाद—प्राण; अपान, समान, उदान और व्यान—ये पञ्च प्राण हैं, इनके सम्मिलन से पञ्चम स्वर की उत्पत्ति होती है ।। २५६० ।।

एतेषां स्थान-नियममाह—

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमध्यगः।
उदानःकण्ठदेशस्थो व्यानः सर्व्वशरीरगः॥ २५६१॥

अन्वय—एतेषां (पञ्चप्राणानां) स्थाननियमं (देहे नियतस्थानं) आह यथा—हृदि प्राणः (तिष्ठति), गुदे अपानः (तिष्ठति); समानः नाभिमध्यगः (नाभिस्थान-स्थितः भवति); उदानः कण्ठदेशस्थः (तथा) व्यानः सर्व्वशरीरगः (सर्व्वदेहव्यापी भवति) ।। २५६१ ।।

अनुवाद—इन पञ्चप्राण के स्थानों का निर्देश इस प्रकार कहा गया है, जैसे हृदय में प्राण गुह्यदेश (गुदद्वार) में अपान, नाभिस्थल में समान, कण्ठदेश में उदान एवं सर्वशरीर में व्यान अवस्थित है ।। २५६१ ।।

अथ धैवतस्वरः—

गत्वा नाभेरधोभागं वस्तिं प्राप्तोर्ध्वगः पुनः।
धावन्निव च यो याति कण्ठदेशं स धैवतः॥ २५६२॥

अन्वम—यः (स्वरः) नाभेः अधोभागं गत्वा वस्तिं प्राप्य पुनः ऊर्ध्वगः सन् धावन् इव कण्ठदेशं च याति (प्राप्नोति) स धैवतः स्वरः ।। २५६२ ।।

अनुवाद—जो स्वर नाभि के अधोभाग में जाकर वस्तिदेश का स्पर्श करता है एवं पुनः ऊर्ध्व गति लेकर तीव्र वेग से कण्ठदेश में उपस्थित होता है, वह धैवत स्वर है ॥ २६६२ ॥

अथ निषादस्वरः—

षड्जादयः षड़ेतेऽत्र स्वराः सर्व्वे मनोहराः ।
निषीदत्ति यतो लोके निषादस्तेन कथ्यते ॥ २५६३ ॥

अन्वय—यतः एते षड्जादय सर्व्वे मनोहराः स्वराः अत्र (स्वरे) निषीदन्ति (अवतिष्ठन्ते) तेन (हेतुना अयं) लोके (जगति) निषादः कथ्यते ॥ २५६३ ॥

अनुवाद—सभी षड्जादि छः मनोहर स्वर इस स्वर में अवस्थान करते हैं अथवा समाविष्ट हैं, इसी कारण इस स्वर को विश्व में निषाद कहा जाता है ॥ २५६३ ॥

सप्तस्वर-रूप जान साम्यध्वनि-मते ।
शिखी कहे षड्ज–स्वर-विख्यात जगते ॥ २५६४ ॥
चातक ऋषभ कहे, छाग गान्धार ।
क्रौञ्च मध्यमाख्या, पिक पञ्चम प्रचार ॥ २५६५ ॥
भेक धैवत, हस्ती निषाद-स्वर कय ।
स्वररूप ऐछे-केह अन्यमत कय ॥ २५६६ ॥

अनुवाद—ब्रह्मा प्रभृति के ध्वनिमत-साम्य के अनुसार सात स्वरों के रूप को जानिये—मयूर षड्ज, चातक ऋषभ, छाग (बकरा-शिशु) गान्धार, क्रौञ्च मध्यम, कोकिल पञ्चम, मण्डूक धैवत और हस्ती निषाद स्वर कहता है, यह जग प्रसिद्ध है। ये स्वररूप हैं। कुछ गुणियों का भिन्न मत भी है ॥ २५६४–६६ ॥

तथाहि—

मयूरः षड्जमाख्याति ऋषभं व्यक्ति चातकः ।
छागो गान्धारमाचष्टे क्रौञ्चो वदति मध्यमम् ॥ २५६७ ॥
कोकिलः पञ्चमं ब्रूते, भेको वदति धैवतम् ।
निषादं भाषते हस्तीत्येतद्ब्रह्मादिसम्मतम् ॥ २५६८ ॥

दामोदरस्तु—

मयूर-वृषभच्छाग-क्रौञ्च-कोकिल-वाजिनः ।
मातंगश्च क्रमेणाहुः स्वरानेतान् सुदुर्गमान् ॥ २५६६ ॥ इति ।

अन्वय—मयूरः षड्जम् आख्याति (कथयति), चातकः ऋषभं व्यक्ति (शब्दायते), छागः गान्धारः आचष्टे (कथयति), क्रौञ्चः (बकः) मध्यमं वदति; कोकिलः

पञ्चमं ब्रूते, भेकः धैवतं वदति, हस्ती निषादं भाषते। इत्येतत् स्वररूपं ब्रह्मादिसम्मतम् दामोदरः तु (किञ्चित् अन्यथा निर्दिशति) यथा-मयूरः—वृषभच्छाग—क्रौञ्च-कोकिल-वाजिनः मातंगः च क्रमेण (षड्जादिक्रमेण) एतान् सुदुर्गमान् (अतिदुर्लभान्) स्वरान् आहुः (कथयन्ति) ॥ २५९७—९९ ॥ इति।

अनुवाद—मयूर षड्ज, चातक ऋषभ, छाग, गान्धार, क्रौञ्च (वक) मध्यम, कोकिल पञ्चम, भेक (मण्डूक) धैवत, हस्ती निषाद् स्वर प्रकाश करते हैं। यह ब्रह्मादि को मान्य है। दामोदर ने कहा है—मयूर, वृषभ, छाग, कोकिल, अश्व और हस्ती क्रमशः सा-रि-ग-म-प-ध-नि का उच्चारण करते हैं। इन सबकी उपलब्धि दुःसाध्यः है ॥ २५९७—९९ ॥

पुनः एइ सप्तस्वर-संज्ञा चतुष्टय।
वादी, सम्वादी, विवादी, अनुवादी हय ॥ २६०० ॥
सप्तस्वरमध्ये वादी स्वर कहि तारे।
बहुप्रयोगेते जे रागादि निर्णय करे ॥ २६०१ ॥
पञ्चमेर तुल्य श्रुति सम्वादिक हय।
क्वचित् मध्यमस्वर सम्वादी ना हय ॥ २६०२ ॥
गान्धार, निषाद आर ऋषभ, धैवत।
ए चारि विवादी शत्रु शास्त्र-सुसम्मत ॥ २६०३ ॥
पक्षान्तरे ऋषभ-धैवत-स्वर आर।
गान्धार निषाद विषादी-ए हय प्रचार ॥ २६०४ ॥
एइ सब स्वरेर अवशिष्ट येइ स्वर।
अनुवादी स्वर सेइ कहे विज्ञवर ॥ २६०५ ॥

अनुवाद—ये सात स्वर चार प्रकार के हैं—वादी, सम्वादी, विवादी और अनुवादी। सप्तस्वरों में वादी स्वर उसे कहते हैं जो बहु-प्रयोग से राग के स्वरूप का निर्णय करता है। पञ्चम का समश्रुति विशिष्ट स्वर सम्वादी है, मध्यम स्वर कभी भी संवादी नहीं होता। गान्धर-निषाद और ऋषभ-धैवत ये विवादी हैं अतः शत्रु हैं, ऐसा शास्त्र-सम्मत है। अन्य मत से ऋषभ-धैवत और गान्धार-निषाद विवादी हैं। इन सब स्वरों से अवशिष्ट सब स्वर अनुवादी हैं, विज्ञजनों का यह मत है ॥

तथाहि—

ते वादि-सम्वादि-विवाद्यनुवाद्यभिधाः पुनः।
स्वराश्चतुर्विधाः प्रोक्तास्तत्र वादी स कथ्यते ॥ २६०६ ॥
प्रचुरो यो प्रयोगेषु वक्ति रागादिनिश्चयम्।
समश्रुतिश्च सम्वादी पञ्चमस्य न स क्वचित् ॥ २६०७ ॥

ग-नी विवादिनौ स्यातां रिधयोर्वापि तौ तयोः ।
अनुवादी भवेच्छेष इति दन्तिल-सम्मतम् ॥ २६०८ ॥

अन्वय—ते स्वराः पुनः वादि-सम्वादि-विवाद्यनुवाद्यभिधाः (वादि सम्वादि प्रभृतिसंज्ञाभिः) चतुर्विधाः (भवन्ति); तत्र (तेषां वादि प्रभृतीनां मध्ये) यः (स्वरः) प्रयोगेषु प्रचुरः (सन्) रागादिनिश्चयं (रागादिनिरूपम्) वक्ति (कथयति) स वादी कथ्यते । पञ्चमस्य समश्रुतिः (स्वरः) सम्वादी (कथ्यते); स (तादृशः पञ्चमसमश्रुतिः) क्वचित् न (सम्वादी भवति) । ग-नी (गान्धारनिषादौ) रिधयोः विवादिनौ स्यातां तयोः (गान्धारनिषादयोः) तौ (ऋषभधैवतौ) वापि (विवादिनौ) स्याताम् । शेषः अनुवादी भवेत् इति (एतत्) दन्तिलसम्मतं (भवति) ॥ २६०६–०८ ॥

अनुवाद—ये स्वर वादी, सम्वादी, विवादी एवं अनुवादी—चार प्रकार के हैं। इनमें जिस स्वर का अधिक मात्रा में प्रयोग हो एवं जो राग के स्वरूप का निर्देश करता है, वह वादी स्वर है। पञ्चम का समान श्रुतिविशिष्ट स्वर सम्वादी है, वैसा स्वर कभी सम्वादी नहीं होता। गान्धार और निषाद ऋषभ-धैवत के विवादी है एवं ऋषभ-धैवत भी इनके विवादी हैं। (ग्रामद्वयबोधक श्रुतिमण्डल प्रस्तार से यह स्पष्ट है कि ऋषभ 'गान्धार' से और धैवत 'निषाद' से बीसवीं श्रुति पर स्थित हैं, इसीलिए 'गान्धारऋषभ' परस्पर विवादी हैं और 'निषाद-धैवत' भी।) शेष स्वर अनुवादी है। यह दन्तिलाचार्य का अभिमत है ॥ २६०६–०८ ॥

राजा–वादी स्वर, पात्र–सम्वादी निर्धार ।
विवादी स्वर–शत्रु, ए सर्व्वत्र प्रचार ॥ २६०९ ॥
अनुवादी ए राजा पात्रेर अनुचर ।
ए सब स्वरूप हय अन्य अगोचर ॥ २६१० ॥

अनुवाद—वादी स्वर राजा, सम्वादी स्वर पात्र, विवादी स्वर शत्रु और अनुवादी स्वर राजा एवं पात्र के अनुचर हैं। यही स्वरूप होता है और अन्य अगोचर रहते हैं। इसी का सर्वत्र प्रचार है ॥ २६०९–१० ॥

तथाहि—

वादी नृपस्तथा पात्रं सम्वाद्यथ विवाद्यरिः ।
अनुवादी त्वनुचरो राज्ञः पात्रस्य चेरितः ॥ २६११ ॥

अन्वय—वादी (स्वरः) नृपः ईरितः तथा सम्वादी पात्रं (कथ्यते); विवादी अरिः (कथितः) अनुवादी तु राज्ञः पात्रस्य अनुचरः ईरितः ॥ २६११ ॥

अनुवाद—वादी स्वर राजा, सम्वादी स्वर पात्र (योग्य); विवादी स्वर शत्रु एवं अनुवादी स्वर राजा और पात्र का अनुचर कहा जाता है ॥ २६११ ॥

अहे श्रीनिवास ! ए सकल रम्य स्वर ।
गीते प्रकाशये कृष्ण रसिकशेखर ॥ २६१२ ॥
कृष्ण आगे ललिता गायेन लये वीणा ।
स्वर-स्वरूपादि व्यक्त करिते प्रवीणा ॥ २६१३ ॥
शुनिया गन्धर्व्वगण लज्जित अन्तरे ।
के बूझिवे से सवे जे अभिलाष करे ॥ २६१४ ॥
स्वरगण सुकृति मानये आपनारा ।
स्वरेर अद्भुत गति ग्रामेते प्रचारा ॥ २६१५ ॥

अथ ग्रामाः—

स्वर-सूक्ष्मभाव-संयोजन कहि ग्राम ।
षड्ज-मध्यम-गान्धारत्रय ग्राम-नाम ॥ २६१६ ॥
षड्ज-मध्यमद्वय विदित पृथिवीते ।
देवलोके गान्धार प्रशस्त सर्व्वमते ॥ २६१७ ॥
ग्रामत्रय मध्ये षड्जग्राम श्रेष्ठ हय ।
मूर्च्छना-आधार ग्राम-शास्त्रे निरूपय ॥ २६१८ ॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! रसिकशेखर श्रीकृष्ण ने इन सभी रम्य स्वरों को गीत में प्रकाश किया । स्वर-रूप व्यक्त करने में प्रवीण ललिता वीणा लेकर कृष्ण के समक्ष इन स्वरों को प्रकट करती हैं । यह सुनकर गन्धर्वगण भी मन ही मन लज्जित होते हैं । इन सब को कौन समझ सकता है, जो इसकी अभिलाषा करते हैं वे ही समझ सकते हैं । इसमें स्वर भी अपनी सुकृति मानते हैं, अपने को धन्य मानते हैं । अब ग्राम के बारे में कहते हैं—स्वरों का सूक्ष्म भाव से संयोजन ग्राम है । ग्राम तीन प्रकार के हैं—षड्ज, मध्यम और गान्धार । षड्ज और मध्यम दो ग्राम पृथ्वीलोक में विदित हैं । सभी गुणियों के अनुसार गान्धार का प्रचलन देवलोक में है । तीनों ग्रामों में षड्जग्राम श्रेष्ठ है । शास्त्र में कहा गया है कि मूर्च्छना का आधार ग्राम है ॥ २६१२–१८ ॥

तथाहि—

ग्रामः स्वराणामतिसूक्ष्मभावं
संयोजनं स्थान-कुलं त्रिधा सः ।
षड्जस्तथा मध्यम एव भूम्यां
गान्धारनामा किल देवलोके ॥ २६१९ ॥

अन्वय—स्वराणां अति सूक्ष्मभावं संयोजनं ग्रामः (भवति) सः (ग्रामः) स्थानकुलं (स्थानभेदेन) श्रेणीभेदेन (च) त्रिधा (भवति)। षड्जः तथा मध्यमः (ग्रामः) भूम्यां (पृथिव्यां एव (दृश्यते इत्यर्थः), गान्धारः देवलोके (विद्यते) किल (एवं श्रुयते) ॥ २६१९ ॥

अनुवाद—सकल स्वरों के अतिसूक्ष्म भाव से संयोजन का नाम ग्राम है। ये स्थान और श्रेणी भेद से तीन प्रकार के हैं। षड्ज और मध्यम ग्राम पृथ्वीलोक में और गान्धारग्राम देवलोक में प्रचलित हैं ॥ २६१९ ॥

अपरञ्च—

स्वराणां सुव्यवस्थानां समूहो ग्राम इष्यते ॥ २६२० ॥

अनुवाद—सुव्यवस्थित स्वरसमूह को ग्राम कहा जाता है ॥ २६२० ॥

संगीत-पारिजाते—

अथ ग्रामस्त्रयः प्रोक्ताः स्वरसन्दोहरूपिणः।
षड्जमध्यम-गान्धारसंज्ञाभिस्ते समन्विताः।
मूर्च्छनाधारभूतास्ते षड्जग्रामस्त्रिषूत्तमः ॥ २६२१ ॥ इति।

अन्वय—अथ स्वरसन्दोहरूपिणः (स्वरसमूहात्मकाः) त्रयः ग्रामाः प्रोक्ताः। ते (ग्रामाः) षड्जमध्यमगान्धारसंज्ञाभिः समन्विताः (भवन्ति)। ते मूर्च्छनाधारभूताः (मूर्च्छनोत्पत्तिहेतवः) त्रिषु (ग्रामेषु) षड्जग्रामः उत्तमः (भवति) ॥ २६२१ ॥

अनुवादसंगीत-पारिजात में कहा गया है—स्वर समूहात्मक तीन ग्राम कहे गहे हैं। ये हैं षड्ज, मध्यम और गान्धार। ये मूर्छना के आवारस्वरूप हैं। तीनों ग्रामों में षड्जग्राम उत्तम है ॥ २६२१ ॥

ग्रामत्रये सप्त स्वर मूर्च्छना प्रचार।
षड्ज-ग्रामे स-रि-ग-म-प-ध-नि निर्धार ॥ २६२२ ॥
म-प-ध-नि-स-रि-ग मध्यमग्रामे हय।
ग-म-प-ध-नि-स-रि गान्धारे सुनिश्चय ॥ २६२३ ॥
स-रि-ग-म-प-ध-नि-च-म-प-ध-नि-स-रि-ग च।
ग-म-प-ध-नि-स-रि— च ग्रामत्रितयमूर्च्छना ॥ २६२४ ॥

अनुवाद—तीनों ग्रामों में सप्त स्वरों का प्रस्तार है। षड्जग्राम में स-रि-ग-म-प-ध-नि, मध्यम ग्राम में म-प-ध-नि-स-रि-ग एवं गान्धार ग्राम में ग-म-प-ध-नि-स-रि है। संगीत-पारिजात में है—सरिगमपधनि, मपधनिसरिग एवं गमपधनिसरि क्रमशः तीनों ग्रामों की मूर्छना है ॥ २६२२–२४ ॥

अन्येऽपि—

सरिगमपधनीति षड्जग्रामस्य मूर्च्छना।
मपधनिसरिगेति मध्यमग्राममूर्च्छना ॥ २६२५ ॥
गमपधनिसरीति गान्धारग्राममूर्च्छना।

अनुवाद—अन्य गुणी भी कहते हैं—षड्जग्राम की मूर्छना है—सरिगमपधनि, मध्यमग्राम की मूर्छना है—मपधनिसरिग एवं गान्धार ग्राम की मूर्छना है—गमपधनिसरि ॥ २६२५ ॥

प्रतिग्रामे ऐछे सप्त स्वर सुविस्तार।
सर्व्वभेद-क्रमे एकविंशति प्रकार ॥ २६२६ ।
ए सब विदित–भरतादि निरूपय।
जाति-श्रुति-स्वर-आदि ग्राम प्राप्त हय ॥ २६२७ ॥

अनुवाद—प्रत्येक ग्राम में सप्त स्वरों का सुविस्तार है, यानी सात मूर्छनाएँ हैं, इस क्रम से मूर्छनाओं की संख्या इक्कीस (२१) हैं। यह सर्वविदित है जिसका निरूपण भरतादि ऋषियों ने किया है। जाति, श्रुति, स्वर आदि से ग्राम प्राप्त होता है ॥ २६२७ ॥

कोहलोऽपि—

जातिभिः श्रुतिभिश्चैव स्वरा ग्रामत्वमागताः ॥ २६२८ । इति ॥

अनुवाद—जाति और श्रुति प्रभृति के आश्रय से स्वरों के ग्राम का संगठन होता है ॥ २६२८ ॥

अहे श्रीनिवास ! एइ मधुर वृन्दावने।
परम आनन्दे रासे कृष्ण प्रियासने ॥ २६२९ ॥
विविध प्रकारे प्रकाशये ग्रामत्रय।
शिव-ब्रह्मादि जा' ते जन्मये विस्मय ॥ २६३० ॥
प्राणनाथे राधिका प्रशंसि' बार-बार।
ग्राम सञ्चारये–जा' ते कृष्ण चमत्कार ॥ २६३१ ॥
अधैर्य हइया कृष्ण राइ आलिंगय।
ललितादि सखीर उल्लास अतिशय ॥ २६३२ ॥
जे कौतुक गाने-ताहा कहि कि शकति।
ग्रामत्रय मूर्च्छना नाना भवति ॥ २६३३ ॥

अथ मूर्च्छना:—

मूर्च्छना ग्राम-सम्भव-भरत कहय।
स्वर सम्मूर्च्छित ग्रामे राग प्राप्त हय ॥ २६३४ ॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! इस मधुर वृन्दावन में परम आनन्द के साथ श्रीकृष्ण अपनी प्रिय सखियों के साथ रास में तीन ग्रामों की विविध प्रकार से प्रकाश करते हैं। इसे देखकर शिव, ब्रह्मादि को भी विस्मय होता है। श्रीराधिका प्राणनाथ की बार-बार प्रशंसा करती है, जिससे श्रीकृष्ण चमत्कारपूर्ण ढंग से ग्राम का प्रदर्शन करते हैं। ललितादि सखियों के मन में उल्लास जाग्रत होता है। इस गान में जैसा कौतुक था, उसके वर्णन की किसमें शक्ति है। तीनों ग्रामों की मूर्छनाओं को विविध प्रकार से प्रकाश करते हैं। अब मूर्छना के विषय में कहते हैं—ग्राम से मूर्छना की उत्पत्ति सम्भव है, ऐसा भरत का कहना है। जब स्वर सम्मूर्छित होता है तब ग्रामोत्पन्न राग की प्राप्ति होती है ॥ २६२६–३४ ॥

तथाहि—

स्वरः सम्मूर्च्छितो यदा रागतां प्रतिपद्यते।
नाम्ना तां मूर्च्छनामाहुर्भरता ग्रामसम्भवाम् ॥ २६३५ ॥

अन्वय—यदा स्वरः सम्मूर्च्छितः (सम्मिलितः सन्) रागतां प्रतिपद्यते (रागरूपेण परिणमति) भरताः ग्रामसम्भवां (ग्रामोत्पन्नां) तां (रागतां) नाम्ना (नामतः) मूर्च्छनाम् आहुः कथयन्ति ॥ २४३५ ॥

अनुवाद—जब स्वर सम्मूर्छित होकर, सम्मिलित होकर राग में परिणत हो जाते हैं, भरतादि मुनिगण इस ग्रामोत्पन्न राग को मूर्छना नाम से अभिहित करते हैं २६३५ ॥

अपरञ्च—

यत्र स्वरो मूर्च्छित एव रागतां
प्राप्तश्च तामाह मुनिश्च मूर्च्छनाम्।
ग्रामोद्भवास्ताः स्वरसप्तसंयुताः
ग्रामत्रये स्युः पुनरेकविंशतिः ॥ २६३६ ॥

अन्वय—यत्र स्वरः मूर्च्छित एव रागतां च प्राप्तः मुनिः तां च मूर्च्छनाम् आह (कथयति)। ग्रामोद्भवाः (ग्रामे समुत्पन्नाः) स्वरसप्तसंयुताः (सप्तस्वरविशिष्टाः) ताः (मूर्च्छनाः) ग्रामत्रये (त्रिषु ग्रामेषु) पुनः एकविंशतिः (भवति) ॥ २६३६ ॥

अनुवाद—जहाँ स्वर मूर्छित (सम्मिलित होकर राग की अवस्था अथवा रागरूप धारण करते हैं, उसी को भरत मुनि मूर्छना कहते हैं। ग्रामोत्पन्न, सप्तस्वर विशिष्ट मूर्छनाओं की तीन ग्रामों में कुल इक्कीस हैं ॥ २६३६ ॥

ग्रामत्रये त्रि-सप्त स्वर मूर्च्छना हय।
मूर्च्छनाख्या-ललिता, मध्यमा, चित्रादय ॥ २६३७ ॥

अनुवाद—तीनों ग्रामों में इक्कीस स्वर-मूर्छनाएँ होती हैं. जिनके नाम ललिता मध्यमा, चित्रा आदि हैं ॥ २६३७ ॥

तथाहि—

ललिता मध्यमा चित्रा रोहिणी च मतंगजा।
सौवीरा वर्णमध्यमा च षड्जमध्या च पञ्चमी ॥ २६३८ ॥
मत्सरी मृदुमध्या च शुद्धान्ता च कलावती।
तीव्रा रौद्री तथा ब्राह्मी वैष्णवी खेचरी वरा ॥ २६३९ ॥
नादवती विशाला च त्रिषु ग्रामेषु विश्रुता।
एकविंशतिरित्युक्तं मूर्च्छनाश्चन्द्रमौलिना ॥ २६४० ॥

अन्वय—त्रिषु ग्रामेषु ललिता-मध्यमा-प्रभृतयः विश्रुताः (प्रसिद्धाः) एकविंशतिः मूर्च्छना; (भवन्ति) इति चन्द्रमौलिना (चन्द्रशेखरेण शिवेन) उक्तम् ॥२६३८–४०॥

अनुवाद—तीन ग्रामों में इक्कीस मूर्छनाएँ हैं, यथा—ललिता, मध्यमा, चित्रा, रोहिणी, मतंगजा, सौवीरा, वर्णमध्या, षड्जमध्या, पञ्चमी, मत्सरी, मृदुमध्या; शुद्धान्ता, कलावती, तीव्रा, रौद्री, ब्राह्मी, वैष्णवी, खेचरी, वरा, नादवती, विशाला। चन्द्रमौली (शिव) ने इसी प्रकार बताया है ॥ २६३८–४० ॥

मूर्च्छना-ज्ञानेते सुख बाढ़े अनुक्षण।
भरतादि कहये मूर्च्छना प्रयोजन ॥ २६४१ ॥

अनुवाद—भरतादि ऋषियों ने मूर्च्छना का प्रयोजन बताते हुए कहा है कि मूर्च्छना-ज्ञान से सुख मिलता है ॥ २७४१ ॥

तथाहि—

शिवाग्रे मूर्च्छनां कृत्वा ब्रह्महापि विमुच्यते ॥ २६४२ ॥

अन्वय—शिवाग्रे (महादेवस्य सम्मुखे) मूर्च्छनां कृत्वा (गीत्वा इत्यर्थः) ब्रह्महा (ब्राह्मणघातकः) अपि विमुच्यते (तस्मात् पताकादित्यर्थः) ॥ २६४२ ॥

अनुवाद—भगवान शिव के सम्मुख मूर्च्छना का गान करने से ब्रह्मघाती भी पाप से विमुक्त हो जाता है ॥ २६४२ ॥

ओहे श्रीनिवास ! ग्रामसम्भव मूर्च्छना।
इथे जे प्रकार—ता' ना जाने अन्य जना ॥ २६४३ ॥

प्रियागण सङ्गे कृष्ण मनेर उल्लासे।
अद्भुत भङ्गीते रासविलासे प्रकाशे॥ २६४४॥
कि वलिव—कृष्ण महारसिक शेखर।
विस्तारये नाना ताल गान मनोहर॥ २६४५॥

अथ तालाः (तानाः)—

मूर्च्छना हयेन तालशुद्धादि-निश्चय।
सप्तस्वरोद्भव ताल-एहो निरूपय॥ २६४६॥
ताल ऊनपञ्चाशत् शास्त्रेते प्रचार।
पृथक् पृथक् कूट ताल सुविस्तार॥ २६४७॥
पञ्चम सहस्र त्रयस्त्रिंशत् ए हय।
ताल-संज्ञा अनेक प्रभाव अतिशय॥ २६४८॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! ग्रामसम्भूत मूर्छना के जितने प्रकार हैं, उन्हें कोई अन्य नहीं जान सकता। श्रीकृष्ण ने रासविलास में अद्भुत संगीत में मन के उल्लास के साथ उन्हें प्रकाश किया। महारसिकशेखर श्रीकृष्ण ने मनोहर गान में विविध तालों (तानों) का विस्तार किया। अब हम तानों के बारे में बताते हैं—मूर्छना से सप्त स्वरों की शुद्धादि ताने होती हैं। शास्त्र के अनुसार उनचास ताने हैं और पृथक् पृथक् कूटतानों का भी विस्तार है। तानों की संख्या पाँच हजार तैंतीस हैं, जो काफी प्रभावकारी हैं॥ २६४६४८॥

तथाहि—

मूर्च्छना एव तालाः स्युः शुद्धाः आरोहणाश्रिताः॥ २६४९॥

दामोदरस्तु—

विस्तार्य्यन्ते प्रयोगा यैर्मूर्च्छनाशेषसंश्रयाः।
तानास्तेऽप्यूनपञ्चाशत् सप्तस्वरसमुद्भवाः॥२६५०॥
तेभ्य एव भवन्त्यन्ये कूटतानाः पृथक् पृथक्।
भेदा बहुतरास्तेषां कस्तान् कार्त्स्न्येन वक्ष्यति॥ २६५१॥
ग्रामाणां मूर्च्छनानाञ्च तानानां बहवो भिदाः।
प्रकृतानुपयोगित्वादज्ञेयत्वाच्च नेरिताः॥ २६५२॥

अन्वय—आरोहणाश्रिताः (आरोहणक्रमेण इत्यर्थः) मूर्च्छना एव शुद्धाः तालाः स्युः। दामोदरः तु (एवं कथयति) यैः मूर्च्छनाशेषसंश्रयाः (मूर्च्छनाशेषसमाश्रयेण इत्यर्थः) प्रयोगाः (स्वरप्रयोगाः) विस्तार्य्यन्ते ते सप्तस्वरसमुद्भवाः ऊनपञ्चाशत् तानाः (भवन्ति)। तेभ्यः (तानेभ्यः) एव अन्ये पृथक् पृथक् कूटतानाः भवन्ति।

तेषां (कूटतानानां) बहुतराः भेदाः (सन्ति), कः तान् कात्स्न्येन (समग्रतया) वक्ष्यति (न कोऽपीत्यर्थः ।) ग्रामाणां मूर्च्छनानां तानानां च बहवः भिदाः (भेदाः) प्रकृतानुपयोगित्वात् (अत्र स्थले अप्राकरणिकत्वात्) अज्ञेयत्वात् (सम्यक् ज्ञातुमशक्यत्वात् च न ईरिताः (कथिताः) ॥ २६४९–५२ ॥

अनुवाद—स्वरों के आरोहण-क्रम से बनी सभी मूर्च्छनाएँ शुद्ध 'ताल' (तान) होती हैं। इस विषय में दामोदर ने अन्य ढंग से कहा है—जिनके द्वारा मूर्छना के शेषभाग के आश्रय से स्वर प्रयोग का विस्तार होता है, वे ही सात स्वरों के उत्पन्न होने वाली 'तानें' हैं, जिनकी संख्या उनपश्चास (४९) हैं। तानों से अलग कूटतानों की उत्पत्ति है। इन सभी कूटतानों के कई भेद हैं। उनका पूर्ण विवरण कौन कर सकता है? ग्राम, मूर्च्छना और तान के कई भेदों का विवरण यहाँ अप्रासंगिक एवं अज्ञेय हैं, अतः नहीं दिया गया है ॥ २६४९–५२ ॥

तदुक्तं तालाधिकारे—

तालाः पञ्च सहस्राणि त्रयस्त्रिंशद्भवन्त्यमी । इति ॥ २६५३ ॥
अग्निष्टोमिकतालेन शिवं स्तुत्वा शिवो भवेत् ।
तालानामिह शुद्धानामग्निष्टोमादिका भिदाः ॥ २६५४ ॥
सन्ति प्रयोगवैधुर्य्यान्न मया ताः प्रकीर्तिताः ॥ २६५५ ॥

अन्वय—तत् (तस्माद्धेतोः तालाधिकारे उक्तं)—अमी तालाः पञ्चसहस्राणि त्रयत्रिंशत् भवन्तीति । अग्निष्टोमिकतालेन शिवं स्तुत्वा शिवः भवेत् (जन इति शेषः)। इह (शास्त्रे) शुद्धानां तालानां अग्निष्टोमादिकाः भिदाः सन्ति, प्रयोगवैधुर्य्यात् (प्रयोगाभावात्) न मया प्रकीर्त्तिताः (कथिताः) ॥ २६५३–५५ ॥

अनुवाद—उपर्युक्त कारण से तालाधिकार में कहा गया है कि, इन सब तालों (तानों) की संख्या पाँच हजार तैंतीस हैं। अग्निष्टोमिक ताल (तान) में शिव की स्तुति करने से शिवत्व की प्राप्ति होती है। शास्त्र में शुद्ध ताल (तान) को अग्निष्टोमादि भेद बताया गया है। किन्तु प्रयोग-अभाव के कारण मैंने यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया है ॥ २६५३–५५ ॥

ए सकल तालेर सौभाग्य अतिशय ।
मूर्तिमन्त हैया कृष्ण-आगे विलसय ॥ २२५६ ॥
ललितादि जुथेश्वरी सखी राधिकार ।
पृथक् पृथक् ताल करये सञ्चार ॥ २६५७ ॥
राइ-कानु परम आनन्दे सखी सने ।
प्रकाशये वर्ण गान विचित्र सन्धाने ॥ २६५८ ॥

अथ वर्णमाह—

गानक्रिया-आरम्भ प्रयुक्त स्वर "वर्ण"।
से चारि प्रकार—जाते गायक प्रसन्न ॥ २६५९ ॥
स्थायी वर्ण, आरोहावरोही वर्ण आर।
सञ्चारी—ए चतुष्टय लक्षण प्रचार ॥ २६६० ॥
एक एव स्वर रहि' रहि' प्रयोगेते।
स्थायी वर्ण हय-ए विदित सर्व्वमते ॥ २६६१ ॥
आरोहावरोही स्वर स्थायानुतार्थ।
ए त्रयमिश्रित वर्ण सञ्चारी सम्मत ॥ २६६२ ॥

अनुवाद—ये सब तालें (तानें) सौभाग्यशाली हैं, जो मूर्तिमन्त होकर (श्रीकृष्ण के समक्ष विलसती (प्रकाशित होती) हैं। राधिका की ललिता इत्यादि सखियाँ एकत्र होकर अलग-अलग तानों का संचार करती हैं। राधिका और कृष्ण सखियों के साथ परम आनन्द के साथ विचित्र ढंग से गान के वर्ण प्रकट करते हैं। अब हम वर्ण के विषय में कहते हैं—गान क्रिया के आरम्भ में प्रयुक्त स्वर "वर्ण" है। वर्ण चार प्रकार के हैं। स्थायी वर्ण, आरोही वर्ण, अवरोही वर्ण और सञ्चारी वर्ण—इन चार लक्षणों का प्रचार है। एक ही स्वर के रुक-रुक कर प्रयोग की क्रिया स्थायी वर्ण है, जो सर्वविदित है। आरोही अवरोही वर्ण उनके अर्थ के अनुरूप हैं और इन तीनों का मिश्रित वर्ण सञ्चारी है ॥ २६५९–६२ ॥

तथाहि—

स्वरो गानक्रियारम्भप्रयुक्तो वर्ण उच्यते।
स्थाय्यारोहावरोही च सञ्चारीति चतुर्विधः ॥ २६६३ ॥

प्रत्येकं लक्षणमाह—

स्थायं स्थायं प्रयोगः स्यादेकस्यैव स्वरस्य चेत्।
स्थायी वर्णः स विज्ञेयः परावन्वर्थसंज्ञकौ ॥
परौ आरोहिस्वरोऽवरोहिस्वरश्च तौ अन्वर्थसंज्ञकौ अनुगतार्थनामानौ।
अर्थस्तु आरोहतीत्यर्थआरोही, अवरोहतीति अवरोहीत्यर्थः ॥ २६६४ ॥

अन्वय—गानक्रियारम्भप्रयुक्तः (गानक्रियायाः प्रारम्भे प्रयुक्तः) स्वरः "वर्णः" उच्यते। (स च वर्णः) स्थायी, आरोही, अवरोही, सञ्चारी च इति चतुर्विधः स्यात् ॥ २६६३ ॥

प्रत्येकं (तेषां वर्णनामित्यर्थः) लक्षणम् आह एकस्य एव स्वरस्य स्थायं स्थायं (स्थित्वा स्थित्वा) चेत् प्रयोगः स्यात् (तर्हि) स स्थायी वर्णः विज्ञेयः। परौ (अन्यौ द्वौ) अन्वर्थसंज्ञकौ (यथार्थनामानौ अर्थात् नाम्मैव गतार्थौ भवतः) ॥२६६४॥

अनुवाद—गान क्रिया के सम्पादन में व प्रारम्भ में व्यवहृत स्वर को 'वर्ण' कहते हैं। वर्ण चार प्रकार के हैं—स्थायी, आरोही, अवरोही और सञ्चारी। इनमें से प्रत्येक के लक्षण बताते हैं—एक ही स्वर के रुक-रुक कर प्रयोग का नाम स्थायी है। आरोही-अवरोही नामों के अनुरूप अर्थविशिष्ट वर्ण है अर्थात् जो आरोहण करते हैं वे आरोही और जो अवरोहण करते हैं वे अवरोही वर्ण हैं ॥ २६६३–६४ ॥

संगीतपारिजाते—

स्थित्वा स्थित्वा प्रयोगः स्यादेकैकस्मिन् स्वरे पुनः ।
स्थायी वर्णः स विज्ञेयः परावन्वर्थनामकौ ।
एतत्संमिश्रणाद्वर्णः सञ्चारी परिकीर्तितः ॥ २६६५ ॥

अन्वय—एकैकस्मिन् स्वरे स्थित्वा स्थित्वा पुनः प्रयोगः स्यात् (चेत् तदा) स स्थायी वर्णः विज्ञेयः, परो परवर्तिनौ द्वौ अन्वर्थनामकौ (भवतः)। एतत्संमिश्रणात् (एतेषां स्थाय्यारोह्यवरोहिस्वराणां मिश्रणात्) वर्णः सञ्चारी परिकीर्त्तितः (कथितः) ॥ २६६५ ॥

अनुवाद—एक-एक स्वर पर ठहर-ठहर कर उसका पुनः-पुनः प्रयोग किया जाता है, वह स्थायी वर्ण कहा जाता है। परवर्ती दोनों—आरोही-अवरोही अन्वर्थक यानी सार्थकनामा है। इन तीनों—स्थायी, आरोही एवं अवरोही के मिश्रण से बनने वाला वर्ण सञ्चारी है ॥ २६६५ ॥

स-रि-ग-म-प-ध-नि—ए वर्ण सप्त स्वर ।
रचनाविशेषे अलंकार बहुतर ॥ २६६६ ॥

अनुवाद—सरिगमपधनि ये वर्ण सप्तस्वर हैं और रचनावैशिष्टय से कई प्रकार के अलंकार बनते हैं ॥ २६६६ ॥

तथाहि—

वर्णा भवन्त्यलंकारा रचनाया विशेषतः ॥ २६६७ ॥

अनुवाद—विशिष्ट प्रकार की रचना से वर्ण अलंकार बनते हैं ॥ २६६७ ॥

स्थायी षड्विंशति, द्वादश आरोह निश्चय ।
द्वादश अवरोह, सञ्चारी द्वादश हय ॥ २६६८ ॥
सबे मिल द्विषष्टि प्रकार अलंकार ।
इथे बहु भेद—ताहा शास्त्रेते प्रचार ॥ २६६९ ॥

अनुवाद—स्थायी वर्ण छब्बीस, आरोही वर्ण बारह, अवरोही वर्ण बारह और सञ्चारी वर्ण बारह हैं, अतः कुल मिलाकर बासठ (६२) अलंकार हैं। इसमें कई भेद हैं, जिनका शास्त्रों में उल्लेख है ॥ २६६८–६९ ॥

तथाहि—

षड्विंशतिः स्थायिनः स्युरारोहिणन्तु द्वादश ।
सञ्चारिणो द्वादशैव द्वादशैवावरोहिणः ॥
इति प्रसिद्धालंकाराः द्विषष्टिः परिकीर्त्तिताः ॥ २६७० ॥

अन्वय—स्थायिनः (वर्णस्य) षड्विंशतिः अवरोहिणः तु द्वादश, सञ्चारिणः द्वादश एव, अवरोहिणः द्वादश एव (अलंकारसंख्याः) स्युः । इति (एवं) द्विषष्टिः प्रसिद्धालंकाराः परिकीर्त्तिताः ॥ २६७० ॥

अनुवाद—स्थायी वर्ण के छब्बीस, आरोही के बारह, अवरोही बारह और सञ्चारी के बारह, इस प्रकार कुल बासठ (६२) प्रसिद्ध अलंकार बताये गये हैं ॥२६७०॥

अलंकारा-प्रयोजन बहुविध हय ।
स्वरज्ञाने दृढ़ाभ्यासादिक शास्त्रे कय ॥ २६७१ ॥

अनुवाद—अलंकारों का कई प्रकार से प्रयोजन होता है । स्वरज्ञान होने पर अभ्यास दृढ़ होता है, ऐसा शास्त्र में कहा गया है ॥ २६७१ ॥

तथाहि—

स्वरज्ञाने दृढ़ाभ्यासो रंगलाभश्च जायते ।
वर्णज्ञानविचित्रत्वमलंकारप्रयोजनम् ॥ २६७२ ॥

संगीत-पारिजाते—

अलंकाराद्विना रागा विस्तारं नाप्नुवन्ति हि ॥ २६७३ ॥

अन्वय—स्वरज्ञाने (सति) दृढ़ाभ्यासः, रंगलाभः (आनन्दप्राप्तिः) च जायते । वर्णज्ञानविचित्रत्वं (विविधवर्णानां ज्ञानं) अलंकारप्रयोजनं (अलंकारः प्रयोजनं यस्य तादृशं भवति) । (अत उक्तं) संगीतपारिजाते—हि अलंकाराद् विना रागाः विस्तारं न प्राप्नुवन्ति ॥ २६७२–७३ ॥

अनुवाद—स्वरज्ञान होने पर अभ्यास दृढ़ होता है और आनन्द की प्राप्ति होती है । अलंकार के प्रयोजन में विविध वर्णों का ज्ञान प्रयोजनीय (उपयोगी) है । अतः संगीतपारिजात में कहा गया है—अलंकारों के बिना रागों का विस्तार नहीं हो सकता ॥ २६७२–७३ ॥

स्थायिवर्णमाह—

स्थायिवर्णे अलंकारदिशा ऐछे कय ।
जे वर्णे आरम्भ ताहा अन्ते पुनः हय ॥ २६७४ ॥
इथे जानाइये 'भद्र' नाम अलंकार ।
एक-एक स्वरे हानि-क्रम ए प्रस्तार ॥ २६७५ ॥

अनुवाद—स्थायी वर्ण कहते हैं—स्थायी वर्ण में अलंकार का स्वरूप इस प्रकार कहा गया हैं। जिस वर्ण से रचना आरम्भ होती है; उसी पर पुनः अन्त में वह लिया जाता है। एक-एक स्वर की क्षति कर क्रम से विस्तार किया जाता है। उसे 'भद्र' नामक अलंकार कहा जाता है॥ २६७४–७५॥

तथाहि पारिजाते—

यत्रारभ्याग्रिमं गत्वा पुनः पूर्व्वस्वरं वदेत्।
भद्रं नाम ह्यलंकारमाञ्जनेयोऽब्रवीत् सुधीः।
एकैकस्य स्वरस्यात्र हानादेव क्रमो भवेत्॥ २६७६॥

अन्वय—यत्र (एकं स्वरम्) आरभ्य अग्रिमं (अग्रेस्थितम् अर्थात् परवर्त्तिनं स्वरं) गत्वा पुनः पूर्व्वस्वरं वदेत् (तं) हि सुधीः (महासंगीतज्ञः) आञ्जनेयः (हनुमान्) भद्रं नाम अलंकारम् अब्रवीत् (कथितवान्)। अत्र (भद्रालंकारे) एकैकस्य स्वरस्य हानात् (लाघवात्) एव क्रमः भवेत्॥ २६७६॥

अनुवाद—संगीत परिजात में कहा गया है—जिसमें एक स्वर से आरम्भ करके उसके आगे के स्वर पर जाकर पुनः पूर्व स्वर लेकर आलाप किया जाता है, उसे संगीत विशारद हनुमान ने भद्र नामक अलंकार कहा है। इस अलंकार में एक-एक स्वर को छोड़कर क्रम सम्पादित किया जाता है॥ २६७६॥

उदाहरणम्—

सरिस, रिगरि, गमग, मपम, पधप,
धनिध, निसनि, सरिस॥

आरोहवर्णमाह—

ऐछे दिक् दर्शाइये आरोहालंकारे।
विस्तीर्णाख्या—दीर्घ वर्ण हय सप्त स्वरे॥ २६६७॥

अनुवाद—आरोही वर्ण कहते हैं—आरोही अलंकार में प्रत्येक स्वर को दीर्घ कर क्रमशः सप्त स्वरों का आरोहण करने को विस्तीर्ण कहा जाता है॥ २६७७॥

पारिजाते—

मूर्छनादेः स्वराद् यत्र क्रमेणारोहणं भवेत्।
स्थित्वा स्थित्वा स्वरैर्दीर्घैः स विस्तीर्णोऽभिधीयते॥ २६७८॥

अन्वय—यत्र (अलंकारे) मूर्च्छनादेः स्वरात् (मूर्च्छनायः) आदिस्वरात् (आरभ्येत्यर्थः) स्थित्वा स्थित्वा दीर्घैं (विलम्बितैः) स्वरैः क्रमेण आरोहणं भवेत् स विस्तीर्णः (अलंकारः) अभिधीयते (कथ्यते)॥ २६७८॥

अनुवाद—संगीत परिजात में है—जिसमें मूर्छना के आदिस्वर से आरम्भ कर प्रत्येक स्वर का रुक-रुक कर दीर्घ यानी विलम्बित कर क्रम से आरोहण होता है, वह विस्तीर्ण नामक अलंकार है ॥ २६७८ ॥

उदाहरणम्—

सा री गा मा पा धा नी सा ॥
आदिद्वय ह्रस्व, दीर्घ तृतीय अक्षर।
'प्रच्छादन' नाम अलंकार मनोहर ॥ २६७९ ॥

अनुवाद—आदि के दो स्वरों को ह्रस्व और तृतीय को दीर्घ करने पर 'प्रच्छादन' नामक मनोहर अलंकार होता है ॥ २६७९ ॥

पारिजाते—

ह्रस्वमाद्यद्वयं कृत्वा दीर्घं कृत्वा तृतीयकम्।
हनुमानाह सर्व्वज्ञः सन्धिप्रच्छादनः परम् ॥ २६८० ॥

अन्वय—सर्व्वज्ञः (सर्व्वसंगीतविशारदः) हनुमान् आद्यद्वयं ह्रस्वं कृत्वा तृतीयकं (स्वरं) दीर्घं कृत्वा सन्धिप्रच्छादनं (नाम) परं (अपरम् अलंकारम्) आह ॥ २६८० ॥

अनुवाद—संगीत-पारिजात में है—सर्वज्ञ हनुमान ने कहा है कि पहले दो स्वर ह्रस्व करके तीसरे स्वर को दीर्घ करें तो सन्धिप्रच्छादन नामक दूसरा अलंकार होता है ॥ २६८० ॥

उदाहरणम्—

सरिगा, रिगमा, गमपा, मपधा, पधनी, धनिसा ॥
'उद्वाहित' नाम—आद्य उक्त चतुर्ब्बार।
द्वितीयं द्विबार, त्रि-चतुर्थ एक बार ॥ २६८१ ॥

अनुवाद—आद्यस्वर चार बार, द्वितीय स्वर दो बार एवं तृतीय और चतुर्थ एक-एक बार आलाप करने का नाम 'उद्वाहित' अलंकार है ॥ २६८१ ॥

पारिजाते—

आद्यं स्वरं चतुर्व्वारं द्विवारञ्च द्वितीयकम्।
सकृदुक्त्वा तृतीयन्तु तथा सकृच्चतुर्थकम्।
उद्वाहितस्त्वलंकारो हनुमता प्रकीर्त्तितः ॥ २६८२ ॥

अन्वय—हनुमता तु आद्यं स्वरं चतुर्व्वारं उक्त्वा, द्वितीयकं द्विवारं (उक्त्वा) तृतीयं तु सकृत् (उक्त्वा) तथा चतुर्थकं सकृत् (उक्त्वा) उद्वाहितः अलंकारः प्रकीर्त्तितः ॥ २६८२ ॥

अनुवाद—संगीतपारिजात में है—आदिस्वर चार बार, द्वितीय स्वर दो बार, तृतीय स्वर एक बार और चतुर्थ स्वर एक बार आलाप करने को हनुमान ने 'उद्वाहित' अलंकार कहा है ॥ २६८२ ॥

उदाहरणम्—

स स स स रि रि ग म, रि रि रि रि ग ग म प,
ग ग ग ग म म पध, म म म म प प ध नि,
प प प प ध ध नि स ॥

अवरोहवर्णमाह—

अवरोह—अलंकार एइरूप हय।
कहिते बाहुल्य-इहा अन्ये ओ ना कय ॥ २६८३ ॥

अनुवाद—जिस प्रकार आरोही अलंकार होते हैं, उसी के अवरोही अलंकार होते हैं। विस्तार के भय से यहाँ इन (अवरोही) अलंकारों का उल्लेख नहीं किया गया है ॥ २६८३ ॥

पारिजाते—

अवरोहक्रमादेते द्वादशाप्यवरोहिणः।
गौरवादवरोहस्य लेखनं न कृतं मया ॥ २६३४ ॥

अन्वय—एते द्वादश (पूर्वोक्ता द्वादश आरोहालंकाराः) अवरोहक्रमात् (अवरोहभावेन) अवरोहिणः, (अवरोहवर्णस्य स्युः) गौरवात् (बाहुल्यात् हेतोः) अवरोहस्य लेखनं (पुनरुल्लेख इत्यर्थः) न मया कृतम् ॥ २६८४ ॥

अनुवाद—पारिजात में है—जो बारह अलंकार आरोही क्रम के पहले कहे गये हैं, उन्हें ही अवरोह क्रम से लेने पर अवरोही वर्ण के अलंकार होते हैं। विस्तार के भय से मैंने अवरोह-अलंकार का पुनरुल्लेख नहीं किया है ॥ २६८४ ॥

सञ्चारिवर्णमाह—

सर्व्वत्र सञ्चरे एइ—सञ्चारी इहाते।
दिक् दर्शाइये—गायकेर सुख जाते ॥ २६८५ ॥
आद्यवर्णद्वय त्रिरावृत्ति, तार पर।
तृतीय वर्णेर पर द्वितीय अक्षर ॥ २६८६ ॥
ऐछे उक्त प्रसाद—नामेते अलंकार।
ए सकल ज्ञाने सुख—शास्त्रेते प्रचार ॥ २६८७ ॥

अनुवाद—सर्वत्र सञ्चारित होने के कारण इसे सञ्चारी कहा जाता है। इससे एक दिशा मिलती है जिससे गायकों को सुख मिलता है। दो आद्य स्वरों की तीन

बार आवृत्ति के बाद तृतीय स्वर लेकर द्वितीय स्वर लेने को प्रसाद अलंकार कहा जाता है। इस प्रकार के सकल ज्ञान से सुख मिलता है—इसका शास्त्र में उल्लेख है ॥ २६८५–२६८५ ॥

पारिजाते—

सञ्चारिताश्च सर्व्वत्र यतः सञ्चारिणस्ततः ॥ २६८८ ॥
आद्यं द्वयं त्रिरावृत्त्य तृतीयञ्च द्वितीयकम् ।
उक्त्वा ततः प्रसादं तमलंकारं जगुर्बुधाः ॥ २६८६ ॥

अन्वय—यतः सर्व्वत्र सञ्चारिताः ततः सञ्चारिणः (कथिताः) आद्यं द्वयं (स्वरद्वयं) त्रिः (वारत्रयं) आवृत्त्य (उक्त्वा) ततः तृतीयं च (स्वरं ततः) द्वितीयकं (स्वरं) उक्त्वा बुधाः तं प्रसादं अलंकारं जगुः (कथितवन्तः) ॥२६८८–८६॥

अनुवाद—पारिजात में कहा गया है—सर्वत्र सञ्चारित होने से यह सञ्चारी कहा जाता है। पहले दो स्वरों की तीन बार आवृत्ति कर, उसके बाद तीसरा और उसके बाद दूसरा स्वर लेने को पण्डितों ने प्रसाद नामक अलंकार कहा है ॥२६८८-८६॥

उदाहरणम्—

सरि सरि सरि गरि, रिग रिग रिग मग,
गम गम गम पम, मप मप मप धप,
पध पध पध निध, धनि धनि धनि सनि ॥
इथे एक अलंकार 'आक्षेप' नाम हय।
क्रमे उक्त प्रथम हइते स्वरत्रय ॥ २६६० ॥

अनुवाद—क्रमशः प्रथम से तीन स्वरों का उच्चारण करने को 'आक्षेप' अलंकार कहा जाता है ॥ २६६० ॥

पारिजाते—

क्रमात् स्वरत्रयं यत्र जगुराक्षेपकं बुधाः ॥ २६६१ ॥

अनुवाद—पारिजात में है—जिसमें क्रम से प्रथम से तीन स्वरों का उच्चारण किया जाता है, उसे पण्डितों ने आक्षेप अलंकार कहा है ॥ २६६१ ॥

उदाहरणम्—

सरिग, रिगम, गमप, मपध, पधनि, धनिस ॥
कोकिलाख्या वर्ण सिंहावलोकन प्राय।
सरिग सरिगम—ए प्रकार इहाय ॥ २६६२ ॥

अनुवाद—सरिग, सरिगम—इस प्रकार के स्वर-विन्यास को कोकिल वर्ण कहा जाता है ॥ २६६२ ॥

पारिजाते—

सरीगश्च सरी गो म इत्येतैः कोकिलो भवेत् ॥ २६६३ ॥

अनुवाद—पारिजात में है—सरिग, सरिगम—इस प्रकार क्रमपूर्वक स्वरविन्यास से कोकिल अलंकार होता है।॥ २६६३ ॥

उदाहरणम्—

सरिग सरिगम, रिगम रिगमप, गमप गमपध,
मपध मपधनि, पधनि पधनिस ॥
ए सकल स्वर वर्णालंकार मधुर ।
ऐछे उच्चारये जाते दुःख जाय दूर ॥ २६६४ ॥
श्रीकृष्णचन्द्रेर चार, मुखचन्द्र हैते ।
झरे जेन सुधा वर्णालंकाररूपेते ॥ २६६५ ॥
श्रीराधिका ललितादि सखीगण संगे ।
गाय वर्णालंकार परमाद्भुत रंगे ॥ २६६६ ॥
गन्धर्व्वादिगणेर हइलो दर्प चूर ।
जगते उपमा नाइ—ऐछे सुमधुर ॥ २६६७ ॥
सभा प्रशंसिया कृष्ण उल्लासित मने ।
अनिमिष नेत्रे चाहे राइमुख-पाने ॥ २४६८ ॥
ग्रह-स्वर, अंश-स्वर, न्यास-स्वर त्रय ।
प्रकाशये रंगे कृष्ण रसेर आलय ॥ २६६६ ॥

अथ ग्रहस्वरमाह—

सप्त स्वरे जे स्वर गीतादौ समर्पय ।
सेई 'गृहस्वर' मुनि भरतादि कय ॥ २७०० ॥

अनुवाद—ये सब मधुर वर्णालंकार हैं जिनके उच्चारण से दुःख दूर होते हैं। श्रीकृष्ण के सुन्दर मुँह से वर्णालंकार सुधा के समान झरते हैं। श्रीकृष्ण श्रीराधिका तथा ललिता आदि सखियों के साथ परम अद्भुत आनन्द से वर्णालंकार का गान करते हैं जिससे गन्धर्वों का भी दर्प चूर्ण हो जाता है। इस सुन्दर गान की संसार में कोई उपमा नहीं है। सभा में प्रशंसाप्राप्त श्रीकृष्ण उल्लसित चित्त से राधिका के मुँह की ओर अनिमेष देखते हैं। रसशेखर श्रीकृष्ण रास में ग्रहस्वर, अंश स्वर और न्यासस्वर प्रकाश करते हैं। अब मैं ग्रहस्वर कहता हूँ—सप्त स्वरों में जिस स्वर से गीत आरम्भ होता है वह 'ग्रहस्वर' है, भरत आदि मुनियों ने ऐसा कहा है ॥ २६६४–२७०० ॥

तथाहि—

स ग्रहस्वर इत्युक्तो यो गीतादौ समर्पितः ॥ २७०१ ॥

संगीत-परिजाते च—

गीतादौ स्थापितो यस्तु स ग्रहस्वर उच्यते ॥ २७०२ ॥

अनुवाद—जो स्वर गीत के आरम्भ में प्रयुक्त होता है, उसे 'ग्रहस्वर' कहा जाता है। संगीत-पारिजात में है—गीत के प्रारम्भ में स्थापित स्वर का नाम 'ग्रह-स्वर' है ॥ २७०१–०२ ॥

अथ अंशस्वरमाह—

अंशस्वर अनुराग प्रकाशक गाने।
भरतादि ऐछे बहु प्रभाव बाखाने ॥ २७०३ ॥

अनुवाद—अब मैं अंशस्वर कहता हूँ—गान में जो स्वर राग का प्रकाशक है वह अंशस्वर है। भरतादि मुनियों ने इसके प्रभाव का बहुत वर्णन किया है ॥ २७०३ ॥

तथाहि—

यो रक्तिव्यञ्जको गेये यस्य सर्व्वेऽनुगामिनः।
यः स्वयं ग्रहतां यातो न्यासादीनां प्रयोगतः।
यस्य सर्व्वत्र बाहुल्यं स वाद्यंशो नृपोपमः ॥ २७०४ ॥
वादी रागादि निश्चयकर्त्तेति गीतप्रकाशकारः।
यः स्वयं ग्रहतां यात इत्यनेन अंशस्वरस्य ग्रहस्वरकारणत्वमित्यर्थः।

अन्वय—गेये (गीते) यः (स्वरः) रक्तिव्यञ्जकः (रागप्रकाशकः) सर्व्वे (अपरे) यस्य (स्वरस्य) अनुगामिनः, यः स्वयं ग्रहतां यातः (ग्रहस्वरकारणं) न्यासादीनां प्रयोगतः (प्रयोगापेक्षया) यस्य सर्व्वत्र बाहुल्यं स नृपोपमः अंशः वादी (भवति) ॥ २७०४ ॥

अनुवाद—जो स्वर गान में राग प्रकाशक है, अन्य सभी स्वर जिसके अनुगामी हैं, जो ग्रहस्वर का कारण है, न्यासादि स्वरों के प्रयोग की अपेक्षा सर्वत्र जिसका आधिक्य है, वह राजा तुल्य स्वर अंश और वादी है। वादी-अर्थात् रागादि का निरूपक। जो स्वयं ग्रहभाव प्राप्त है—इस कारण वह ग्रह स्वर का कारणत्व सूचित करता है ॥ २७०४ ॥

संगीत-पारिजाते—

रागाणां जीवभता ये प्रोक्तास्तेंऽशस्वरा बुधैः ॥ २७०५ ॥

अपरञ्च—

बहुलत्वं प्रयोगेषु स अंशस्वर उच्यते ॥ २७०६ ॥

अनुवाद—संगीत-पारिजात में कहा गया है–सभी रागों में जीवभूत या जीवन-स्वरूप जो स्वर है, उसे गुणीजनों ने अंशस्वर कहा है। अन्यत्र भी कहा गया है—प्रयोग में जिसका बाहुल्य व आधिक्य है उसे अंशस्वर कहा जाता है ॥२७०५–०६॥

अथ न्यासस्वरमाह—

न्यासस्वर गीतादिक समाप्त करय।
से पाय आनन्द यार इथे ज्ञान हय ॥ २७०७ ॥

अनुवाद—जिस स्वर पर गीत की समाप्ति होती है, या जो गीत-समापक है वह न्यासस्वर है ॥ २७०७ ॥

तथाहि—

न्यासस्वरस्तु संप्रोक्तो यो गीतादिसमाप्तिकृत् ॥ २७०८ ॥

तथा संगीत-पारिजाते—

न्यासस्वरस्तु विज्ञेयो यस्तु गीतसमापकः ॥ २७०९ ॥

अनुवाद—जो स्वर गीत की समाप्ति करने वाला है वह न्यास-स्वर कहलाता है। संगीत-पारिजात में भी है—गीत समापक स्वर को न्यास स्वर समझिये ॥ २७०८–०९ ॥

ओहे श्रीनिवास ! कृष्ण रसेर आवेशे।
ग्रह-अंश-न्यासस्वर-विन्यास प्रकाशे ॥ २७१० ॥
शिवब्रह्मादिर जाते हय चमत्कार।
ऐछे स्वरज्यात्यादिक करये प्रचार ॥ २७११ ॥

अथ जातिमाह—

याहा हैते जन्मे राग तारे जाति कय।
से रागेर माता पुनः जातिभेदत्रय ॥ २७१२ ॥
शुद्धा·विकृताख्या हय, ए द्वय मिलने।
संकीर्णाख्या,–एइ त्रय कहे बुधगणे ॥ २७१३ ॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! श्रीकृष्ण रस के उद्रेक में ग्रह—अंश-न्यासस्वर का विन्यास प्रकट करते हैं जिससे शिव-ब्रह्मा भी चमत्कृत हो जाते हैं। इसी के माध्यम से वे स्वरजाति आदि का प्रचार करते हैं। अब हम जाति कहते हैं—जिनसे राग का जन्म होता है उसे जाति कहा जाता है, वह रागमाता है। जातियों के तीन भेद हैं—शुद्ध, विकृत और इन दोनों के मिश्रण से उत्पन्न संकीर्ण। गुणीजन ये तीन जातियाँ कहते हैं ॥ २७१०–१३ ॥

तथाहि—

यस्याः रागजनिस्तु जातिरिह सा रागस्य मातापि सा।
शुद्धाख्या विकृता द्वयोश्च मिलनात् संकीर्णका च त्रिधा॥ २७१४॥

अन्वय—यस्याः रागजनिः (रागजन्म भवति) सा तु इह (संगीतशास्त्रे) रागस्य जातिः (भवति) सा मातापि (भवति रागस्य)। (तस्याः) शुद्धा, विकृता च (एतयोः) द्वयोः मिलनाद् संकीर्णका (संकीर्णा च इति) त्रिधा आख्या (भवति)॥ २७१४॥

अनुवाद—जिससे राग का जन्म होता है, संगीतशास्त्र में उसे राग की जाति कहा गया है, वह राग की माता भी है। ये जातियाँ तीन प्रकार हैं—शुद्ध, विकृत और इन दोनों के मिलन से उत्पन्न संकीर्ण॥ २७१४॥

शुद्धा-जाति सप्तकेर षड्जादि-स्वराख्यान।
शुद्धा-जाता विकृता-कहये विद्यावान्॥ २७१५॥
विकृताख्या एकादश-शास्त्रे निरूपय।
शेष संकीर्णाख्या,-से विकृतजाता हय॥ २७१६॥
शुद्धा, विकृता-ए अष्टादश प्रकार।
ए द्वये आचार्य्यगण कैला अंगीकार॥ २७१७॥
शुद्धा जाति षड्जर्षभा-आदि संज्ञा कय।
विकृता-षड्जकैशिकी-आदि नाम हय॥ २७१८।
षड्जकैशिकी षड्ज-गान्धार-योगे जात।
ऐछे विकृताख्या हय सर्व्वत्र विख्यात॥ २७१९॥

अनुवाद—षड्जादि सात स्वरों के नामों के अनुसार शुद्ध जातियाँ (सात) हैं। गुणीजनों का कहना है कि शुद्ध से ही विकृत जातियों की उत्पत्ति है। शास्त्र में कहा गया है कि विकृत जातियाँ ग्यारह हैं। शेष संकीर्ण हैं, जो विकृत जातियों से उत्पन्न हैं। आचार्यों ने यह स्वीकार किया है कि शुद्ध और विकृत जातियाँ अठारह हैं। शुद्ध जातियों के नाम षाड्जी, आर्षभी आदि हैं, जबकि विकृत के नाम षड्जकैशिकी आदि हैं। षाड्जी और गान्धारी के योग से षड्जकैशिकी जाति बनती है। ये विकृत जातियाँ सर्वत्र विख्यात हैं॥ २७१५–१९॥

तथाहि—

शुद्धाः स्युर्जातयः सप्त ताः षड्जादिस्वराभिधाः।
ताः एव विकृताः शेषा जाता विकृतिसंकरात्॥ २७२०॥
इति द्विधेत्येन्ये॥

अन्वय—शुद्धाः (अवमिश्राः) जातयः सप्त स्युः, ताः (सप्तशुद्धजातयः) षड्जादि-स्वराभिधाः (षड्जादिनामवत्यः स्युः)। ताः (शुद्धाः) एव विकृताः (जातयः भवन्ति), शेषाः (संकीर्णाः) विकृतिसंकरात् (विकृतस्वरमिश्रणात् भवन्ति) इति (एवं प्रकारेण (जातिः) द्विधा (भवति) इति अन्ये (केचन वदन्ति) ।।२७२०।।

अनुवाद—शुद्धा यानि अमिश्रित जातियाँ सात हैं, षड्जादि स्वरों के अनुरूप उनके नाम हैं। शुद्धा जाति ही विकृता जाति होती है। शेष जातियाँ विकृत जाति के मिश्रण से उत्पन्न होती हैं, जो संकीर्ण जातियाँ हैं। इस प्रकार जातियाँ दो ही प्रकार की हैं, ऐसा भी किसी किसी का मत है ।। २७२० ।।

तदुक्तं हरिनायकेन—

शुद्धाभिर्विकृताभिश्च मिलिता जातयः पुनः।
अष्टादश समुद्दिष्टास्ता रागाणाञ्च मातरः। इति ।। २७२१ ।।
अयमेव पक्षः प्रधान इव प्रतिभाति, यतः
प्राचीनाचार्य्यै रङ्गीकृतः।

अन्वय—तत् (तस्मात्) हरिनायकेन उक्तं—जातयः पुनः शुद्धाभिः विकृता-भिश्च मिलिताः (सत्यः) अष्टादश समुदिष्टाः (कथिताः) ताः (जातयः) रागाणां मातरश्च (उत्पत्तिभूमयः भवन्ति) इति ।। अयं पक्षः (मतं) एव प्रधान इव प्रति-भाति (प्रतीयते) यतः (एषः) प्राचीनचार्य्यैः अंगीकृतः ।। २७२१ ।।

अनुवाद—हरिनायक ने ऐसा ही कहा है—शुद्ध और विकृत जातियाँ मिलकर अठारह होती हैं एवं ये जातियाँ ही रागमाताएँ हैं यानी सभी रागों की उत्पत्ति कारण हैं। यही मत प्रधान प्रतीत होता है क्योंकि प्राचीन आचार्यों ने इसे स्वीकार किया है ।।२७२१।।

तदुक्तं निबन्धान्तरे—

षाड्जार्षभी च गान्धारी माध्यमी पाञ्चमी तथा।
धैवती चाथ नैषादी सप्तैताः शुद्धजातयः ।। २७२२ ।।
स्यात् षड्ज-कैशिकी षड्ज-मध्यमा च ततः परम्।
गान्धारपञ्चमान्ध्री च षड्जापि धैवती तथा ।। २७२३ ।।
कार्म्मारवी नन्दयन्ती गान्धारोदीच्चरापि च।
मध्यमोदीच्चरा रक्तगान्धारी कैशिकीत्यपि ।। २७२४ ।।
एवमेकादश प्रोक्ता विकृता भरतादिभिः।
शुद्धा-सिद्धा-विकृतानामथ हेतून् प्रचक्ष्महे ।। २७२५ ।।

षड्जगान्धारिका योगाज्जायते षड्जकैशिकी।
षाड्जिकामध्यमाभ्यान्तु जायते षड्जमध्यमा॥
गान्धारीपञ्चमीभ्यान्तु जाता गान्धार पञ्चमी। इत्यादयः॥२७२६॥

अन्वय—षाड्जी आर्षभी च गान्धारी माध्यमी, पाञ्चमी, थथा धैवती अथ नैषादी—एताः सप्त शुद्धजातयः (भवन्ति) षड्जकैशिकी ततः परं षड्जमध्यमा, गान्धारपञ्चमान्ध्री, अपि च षड्जा तथा धैवती, कार्म्मारवी, नन्दयन्ती, गान्धारोदीच्चरा, अपि च मध्यमोदीच्चरा, रक्तगान्धारी, कैशिकी इति अपि—एवं एकादश विकृताः (जातयः) भरतादिभिः प्रोक्ताः अथ शुद्धा-सिद्धा विकृतानां (जातीनां) हेतून् प्रचक्ष्महे (कथयामः) षड्जगान्धारिकायोगात् षड्जकैशिकी जायते, षाड्जिकामध्यमाभ्यां तु षड्जमध्यमा जायते, गान्धारपञ्चमीभ्यां तु गान्धारपञ्चमी जाता। इत्यादयः (हेतवः भवन्ति)॥ २७२२–२६॥

अनुवाद—अन्य निबन्धों में इस प्रकार कहा गया है—षाड्जी, आर्षभी, गान्धारी, माध्यमी (मध्यमा), पाञ्चमी (पञ्चमी), धैवती, नैषादी—ये सात शुद्ध जातियाँ हैं। षड्जकैशिकी, षड्जमध्यमा, गान्धारपञ्चमान्ध्री, षड्जा, धैवती, कार्म्मारवी, नन्दयन्ती, गान्धारोदीच्चरा (गान्धारोदीच्य वा), मध्यमोदीच्चरा (मध्यमोदीच्य वा) रक्तगान्धारी, कैशिकी—भरत आदि गुणियों ने ये ग्यारह विकृत जातियाँ बतायी हैं। अब शुद्ध, सिद्ध और विकृत जातियों की उत्पत्ति का कारण कहते हैं। षाड्जी और गान्धारी के योग से षड्जकैशिकी, षाड्जी और मध्यमा के योग से षड्जमध्यमा तथा गान्धारी और पञ्चमी के योग से गान्धारपञ्चमी की उत्पत्ति है। इस प्रकार कारण निर्दिष्ट है॥ २७२२–२६॥

ए अष्टादशेर ग्राम-सम्बन्ध-प्रकार।
विस्तारि' वर्णिला भरतादि ग्रंथकार॥ २७२७॥
श्रुति-आदि-अन्ते जाति कहिल अल्पेते।
ए सब किञ्चित् व्यक्त जानह वीणाते॥ २७२८॥

अनुवाद—इन अठारह ग्राम-सम्बन्ध-प्रकारों का भरतादि ग्रन्थकारों ने विस्तार से वर्णन किया है। श्रुति से आरम्भ कर जाति तक मैंने संक्षेप में बताया है। इन सब को कुछ-कुछ वीणा पर जाना जा सकता है॥ २७२७–२८॥

तथाहि—

श्रुतिमारभ्य जात्यन्तं मया यद् यद् समीरितम्।
तत्तत् वीणास्वेव किञ्चित् बुधैर्ज्ञेयं न चान्यतः॥ २७२९॥

अन्वय—श्रुतिम् आरम्य जात्यन्तं (जातिपर्य्यन्तं) यत् यत् मया समीरितं (कथितं) तत् तत् (सर्व्वं) बुधैः, वीणासु एव किञ्चित् ज्ञेयं, न च अन्यतः (ज्ञातुं शक्यत इत्यर्थः) ॥ २७२९ ॥

अनुवाद—श्रुति से लेकर जाति तक जो कुछ मैंने कहा है, पण्डितों के लिए यह सब कुछ-कुछ वीणा पर ही जाना जा सकता है, अन्य वाद्य पर नहीं ॥२७२९॥

रागेर जननी—जाति रासे मूर्त्तिमन्त।
माने निज सुकृति, कहिते नाइ अन्त ॥ २७३० ॥
अहे श्रीनिवास ! रासक्रीड़ा सर्व्वोपरि।
के कहिते जाने यैछे गानेर माधुरी ॥ २७३१ ॥
राइ-कानु कण्ठध्वनि जिनि' वीणानाद।
प्रकाशये जाति–याते सखीर आह्लाद ॥ २७३२ ॥
पृथक्-पृथक् रागगणे प्रकाशिते।
ये कौतुक बाढ़े-ताहा के पारे वर्णिते ॥ २७३३ ॥

अथ रागमाह—

भरतादि कहे, एइ रागेर लक्षण।
त्रिजगद् वर्त्तिचित्त रंगे रागगण ॥ २७३४ ॥
षोडश सहस्र राग शास्त्रे निरूपय।
से सकल मेरू-चतुष्पार्श्वे विलसय ॥ २७३५ ॥
से सकल रागमध्ये राग षट्त्रिंश।
जगते विश्रुत-एइ कहे विज्ञ यत ॥ २७३६ ॥

अनुवाद—राग की जननी-जाति रास में मूर्तिमन्त होती हैं और इसी में वे अपनी सुगति अनुभव करती हैं। यह वर्णनातीत है। हे श्रीनिवास ! रासक्रीड़ा सर्वोपरि है और वहाँ के गान-माधुर्य का कौन वर्णन कर सकता है। राधा-कृष्ण की कण्ठध्वनि जैसे वीणानाद हैं और उससे जातियाँ प्रकाशित होती हैं जिससे सखियाँ आह्लादित होती हैं। पृथक्-पृथक् रागों के प्रकाश से जैसा कौतुक बढ़ता है, उसका वर्णन कौन कर सकता है। अब हम राग के सम्बन्ध में कहते हैं—भरतादि गुणियों ने कहा है--राग के लक्षण ये हैं कि वे त्रिकाल के लोगों का चित्त रञ्जित करते हैं। शास्त्र में सोलह हजार बताये गये हैं। वे सभी मेरू के चारों ओर वर्तमान हैं--विलसित हैं। इनमें छत्तीस राग में विश्रुत है--विज्ञजन ऐसा कहते हैं ॥ २७३०–३६ ॥

तथाहि—

यैस्तु चेतांसि रज्यन्ते जगत्रितयवर्त्तिनाम् ।
ते रागा इति कथ्यन्ते मुनिगिर्भरतादिभिः ॥ २७३७ ॥

अन्वय—यैः तु जगत्त्रितयवर्त्तिनां (जगत्त्रयवासिनां जीवानां) चेतांसि रज्यन्ते (रागयुक्तानि क्रियन्ते) ते भरतादिभिः मुनिभिः रागा इति कथ्यन्ते ॥ २७३७ ॥

अनुवाद—तीनों लोकों में रहने वाले प्राणियों के चित्त जिनके द्वारा रागयुक्त होते हैं, रमते हैं, भरतादि मुनियों ने उन्हें 'राग' कहा है ॥ २७३७ ॥

नारदपञ्चमसारसंहितायां—

संगीतमारभत् कृष्णो मुरलीनादमोहितम् ।
गोपीभिर्गीतमारब्धमेकैकं कृष्णसन्निधौ ।
तेन जातानि रागाणां सहस्राणि तु षोडश ॥ २७३८ ॥

अपरञ्च—

एषु रागेषु षट्त्रिंशत् जगति विश्रुताः ।
सन्ति मेरुचतुर्द्दिक्षु सर्व्वे तेऽपीति केचन ॥ २७३९ ॥

अन्वय—कृष्णः मुरलीनादमोहितम् (मुरलीध्वनिना मोहमुत्पाद्य) संगीतम् आरभत् (आरभत) । (तदानीं) कृष्णसन्निधौ आरब्धम् । तेन (गोपीनां गानेन) तु रागाणां षोड़शसहस्राणि जातानि । एषु रागेषु (षोड़श सहस्रसंख्या मध्ये) षट्त्रिंशत् रागाः जगति विश्रुताः (प्रसिद्धाः सन्ति) सर्व्वे अपि ते (रागा) मेरु-चतुर्द्दिक्षु सन्ति वर्त्तन्ते इति केचन (वदन्ति) ॥ २७३८–३९ ॥

अनुवाद—नारदपञ्चम संहिता में है— श्रीकृष्ण ने रास में मुरली के नाद से सबको मोहित करने वाला संगीत आरम्भ किया । तब श्रीकृष्ण के पास स्थित सोलह हजार गोपियों में प्रत्येक ने एक-एक गान आरम्भ किया । उन गान से सोलह हजार रागों की उत्पत्ति हुई । उनमें से छत्तीस राग इस जगत में प्रसिद्ध हैं । ये सभी मेरु के चारों ओर वर्तमान है, ऐसा कोई-कोई कहते हैं ॥ २७३८–३९ ॥

षट्त्रिंशते राग छय, रागिनी त्रिंशत् ।
प्रतिरागे पञ्चभार्य्या—एहो सुसम्मत ॥ २७४० ॥
भैरवादि रागछय, एइ छय क्रमेते ।
भैरवी-आदि रागिनी विदित शास्त्रेते ॥ २७४१ ॥

अनुवाद—छत्तीस में छः और तीस रागिनियाँ हैं । प्रतिराग पाँच भार्याएँ हैं, यह भी सर्वसम्मत है । भैरव आदि छः राग और भैरवी आदि रागनियाँ हैं, जिनका शास्त्र में उल्लेख है ॥ २७४०–४१ ॥

तथाहि संगीतदामोदरे—

भैरवोऽथ वसन्तश्च रागो मालवकौशिकः ।
श्रीरागो मेघरागश्च नटनारायणस्तथा ॥ २७४२ ॥
एते पुमांसः षड्रागाः क्रमात्तद्रागिणीर्ब्रुवे ।
भैरवी चाथ कौशिकी विभाषा च वेलावली ॥ २७४३ ॥
बंगाली चेति रागिण्यो भैरवस्येह वल्लभाः ।
आन्दोलिता च देशाख्या लोला प्रथममञ्जरी ।
मल्लारी (मन्दारी) चेति रागिण्यो वसन्तस्य सदानुगाः ॥ २७४४ ॥
गौरी गुण्डकरी (गुणकरी) चैव वराडी च क्षमावती ।
कर्णाटी चेति रागिण्यः प्रिया मालवकौशिके ॥ २७४५ ॥
गान्धारी देवगान्धारी मालवश्रीश्च आशावरी ।
रामकिर्य्यपि रागिण्यः श्रीरागस्य प्रिया इमाः ॥ २७४६ ॥
ललिता मालसी गौरी नाटी देवकिरी तथा ।
मेघरागस्य रागिण्यो भवन्तीमाः सुवल्लभाः ॥ २७४७ ॥
तारामणी सुधाभीरो कामोदी गुर्ज्जरी तथा ।
कुकुभा चेति रागिण्यो नटनारायणप्रियाः ॥ २७४८ ॥

अनुवाद—संगीत दामोदर में हैं—भैरव, वसन्त, मालवकौशिक, श्रीराग, मेघ, नटनारायण, ये छः राग पुरुष हैं । अब क्रम से रागनियाँ कहते हैं—भैरवी, कौशकी, विभाषा, वेलावली, बंगाली—ये रागिनियाँ भैरव-वल्लभा (पत्नियाँ) हैं । आन्दोलिता, देशाख्या, लोला, प्रथमञ्जरी, मल्लारी—ये रागिनियाँ वसन्त की अनुगत रागिनियाँ हैं । गौरी, गुणकरी, वराड़ी, क्षमावती, कर्णाटी—ये रागिनियाँ मालवकौशिक की प्रिया हैं । गान्धारी, देवगान्धारी, मालवश्री, आशावरी (आसावरी), रामकिरी—ये रागिनियाँ श्रीराग की प्रिया हैं । ललिता, मालसी, गौरी, नाटी, देवकिरी—ये मेघराग की प्रियतमा रागिनियाँ हैं । तारामणी (तारामणि), सुधाभीरी (सुधाभिरी), कामोदी, गुर्ज्जरी, ककुभा—ये रागिनियाँ नटनारायण की प्रियतमा हैं ॥ २७४२–४८ ॥

केह कहे—षट्राग, रागिणी षट्त्रिंशत् ।
प्रतिरागे भार्य्या छय, एहो सुसंगत ॥ २७४९ ॥

अनुवाद—कुछ गुणी कहते हैं कि छः राग और छत्तीस रागिनियाँ है तथा प्रत्येक राग की छः-छः भार्याएँ हैं । यह भी सुसंगत है ॥ २७४९ ॥

तथाहि नारदपञ्चमसंहितायां—

रागः षडथ रागिण्यः षट्त्रिंशच्चारुविग्रहाः ।

शिवशक्तिमयो रागः परप्रेमरसार्णवः।
यस्य श्रवणमात्रेण विष्णुराद्रवितो भवेत्॥ २७५०॥

अन्वय—षट् रागाः अथ षट्त्रिंशत् रागिण्यः चारुविग्रहाः (स्युः)। रागः शिवशक्तिमयः (शिवशक्त्योर्मिलितरूपः) परप्रेमरसार्णवः (परमप्रेमरसस्य सागरः भवति) यस्य (रागस्य) श्रवणमात्रेण विष्णुः (श्रीहरिः) आद्रवितः (सम्यक् विगलितः) भवेत्॥ २७५०॥

अनुवाद—नारदपञ्चमसंहिता में है—छः राग और छत्तीस रागिनियाँ सुन्दर स्वरूप वाली हैं। शिव-शक्ति का मिश्रित रूप ही राग है। ये परम प्रेम रूपी रस के सागर हैं। इनके श्रवणमात्र से श्रीहरि प्रेम विगलित हो जाते हैं॥ २७५०॥

तत्र रागः—

मालवश्चैव मल्लारः श्रीरागश्च वसन्तकः।
हिन्दोलश्चाथ कर्णाटः षट् पुंरागाः प्रकीर्त्तिताः॥ २७५१॥
धानसी मालसी रामकेरी च सिन्धुडा तथा।
आशावरी भैरवी च मालवस्य प्रिया इमाः॥ २७५२॥
वेलवाली च पूरवी कानडा माधवी तथा।
कोड़ा केदारिका चैव मल्लारस्य प्रिया इमाः॥ २७५३॥
वेलोयारी च गौरी च गान्धारी सुभगा तथा।
कौमारी चैव वैरागी श्रीरागस्य प्रिया इमाः॥ २७५४॥
तोडी च पञ्चमी चैव ललिता पटमञ्जरी।
गुर्ज्जरी च विभाषा च वसन्तस्य प्रिया इमाः॥ २७५५॥
मायूरी दीपिका चैव देशकारी च पाहिड़ा।
बराडी मारहट्टा च एता हिन्दोलयोषितः॥ २७५६॥
नाटिका चाथ भूपाली रामकेरी गडा तथा।
कामोदी चाथ कल्याणी कर्णाटस्य प्रिया इमाः॥ २७५७॥

अनुवाद—मालव, मल्लार, श्रीराग, वसन्त, हिन्दोल, कर्णाट—ये छः पुरुष राग कहे गये हैं। धानसी (धन्याश्री व धनासी) मालसी, रामकेरी (रामक्री), सिन्धुड़ा, आशावरी (आसावरी), भैरवी—ये मालव की पत्नियाँ हैं। वेलावली; पूरवी, कानड़ा, माधवी, कोड़ा, केदारिका—ये मल्लारराग की पत्नियाँ हैं। वेलोयारी, गौरी, गान्धारी, सुभगा, कौमारी, वैरागी—ये श्रीराग की प्रियतमा है। तोड़ी, पञ्चमी, ललिता, पठमञ्जरी, गुर्ज्जरी, विभाषा—ये वसन्त राग की प्रियाएँ हैं। मायूरी, दीपिका, देशकारी, पाहिड़ा, (पहाड़ी), वराड़ी, मारहट्टा—ये

हिन्दोलराग की स्त्रियाँ हैं। नाटिका, भूपाली, रामकेरी, गड़ा, कामोदी, कल्याणी ये कर्णाट राग की प्रियतमा हैं ॥ २७५१—५७ ॥

ऐछे नाना प्रकार करये विद्यावान्।
कल्पान्तराभिप्राये ए होय समाधान ॥ २७५८ ॥
देशे देशे रागगण नाम भिन्न हय।
केह ना करिते पारे रागेर निर्णय ॥ २७५६ ॥

अनुवाद—भिन्न-भिन्न प्रदेशों में राग भिन्न-भिन्न नामों से जाने जाते हैं और गुणीजनों ने इनका नाना प्रकार से वर्णन किया है। इसका समाधान कल्पान्तर के अभिप्राय से हो सकता है। रागों का निर्णय कोई नहीं कर सकता ॥२७५८—५६॥

तथाहि—

देशे देशे भिन्ननाम्नां रागाणां तत्त्वनिर्णयम्।
कोऽपि कर्त्तुं न शक्नोति न वीणया न तन्मया ॥ २७६० ॥

अन्वय—देशे देशे भिन्ननाम्नां (पृथक् संज्ञानां) रागाणां तत्त्वनिर्णयं (तत्त्वतो निरूपणं) कर्त्तु कः अपि न शक्नोति। न वीणया (वीणापाण्या) न (च) मया तत् (निरूपणं कर्त्तुं शक्यत इत्यर्थः) २७६० ॥

अनुवाद—भिन्न-भिन्न प्रदेश में पृथक्-पृथक् नामों से राग प्रसिद्ध हैं। उनका यथार्थ निरूपण-निर्णय कोई नहीं कर सकता, वीणापाणि और मैं भी असमर्थ हैं ॥

रागभेद त्रिधा-संगीतज्ञ निरूपय।
सम्पूर्ण, षाडव, आर औडव ए त्रय ॥ २७६१ ॥

अनुवाद—संगीतज्ञों ने निरूपण किया है कि राग के तीन भेद हैं—सम्पूर्ण, षाडव और औडव ॥ २७६१ ॥

तथाहि—

सम्पूर्णाः षाडवास्तत्र औडवाश्चेति ते त्रिधा ॥ २७६२ ॥
ते रागाः ॥

अनुवाद—राग के तीन प्रकार के हैं—सम्पूर्ण, षाडव और औडव ॥२७६२॥

ये ये राग सप्तस्वरे करये गायन।
'सम्पूर्ण' कहये तारे गीतविज्ञगण ॥ २७६३ ॥

अनुवाद—जिन रागों का गायन सातों स्वरों के प्रयोग से होता है, उन्हें संगीतज्ञगण 'सम्पूर्ण' कहते हैं ॥ २७६३ ॥

तथाहि—

सम्पूर्णास्ते ये तत्र जायन्ते सप्तभिः स्वरैः ॥ २७६४ ॥

अनुवाद—जो राग सातों स्वरों के प्रयोग से बनते हैं, उन्हें 'सम्पूर्ण' कहा जाता है ॥ २७६४ ॥

सप्तस्वरे 'सम्पूर्ण'—ए पूर्ण राग कय।
श्रीराग, नट, कर्णाट आनि बहु हय ॥ २७६५ ॥

अनुवाद—सात स्वरों के 'सम्पूर्ण' राग हैं, उन्हें पूर्ण राग कहा जाता है और श्रीराग, नट, कर्णाट आदि कई ऐसे राग हैं ॥ २७६५ ॥

तथाहि—

श्रीरागनटकर्णाटा एते गुप्तवसन्तका।
शुद्धभैरव-बङ्गाल-सोमरागाम्रपञ्चमाः ॥ २७६६ ॥
कामोदो मेघरागश्च तथा द्राविडगौडकः।
वराटो गुर्ज्जरी तोडी मालवश्रीश्च सैन्धवी ॥ २७६७ ॥
(मालवश्रीः मालसी, सैन्धवी सिन्धुडेत्यर्थः)।
देवक्री चैव रामक्री तथा प्रथममञ्जरी।
नाटा वेलावली गौरीत्याद्याः सम्पूर्णकाः मता ॥ २७६८ ॥
(आदि पदेन अन्येऽपि नाटाद्या गृह्यन्ते)।

अनुवाद—श्रीराग, नट, कर्णाट, गुप्तवसन्त, शुद्धभैरव, बंगाल, सोमराग, आम्रपञ्चम, कामोद, मेघराग, द्रविड़, गौड़, वराटी, गुर्ज्जरी, तोड़ी, मालवश्री (मालसी), सैन्धवी (सिन्धुड़ा), देवक्री, प्रथममञ्जरी (पठमञ्जरी), नाट, वेलावली, गौरी—इत्यादि राग सम्पूर्ण हैं। आदि पद से और भी नाट आदि लिये जाते हैं ॥ २७६६–६८ ॥

तदुक्तं संगीतसारे—

नाटो घण्टारागो नट्टनारायणकभूपतिः।
शङ्कराभरणश्चेति पूर्णरागा इमे मताः ॥ २७६९ ॥

अनुवाद—संगीतसार में कहा गया है—नाट, घण्टाराग, नटनारायण, भूपति (भूपाली), शंकराभरण—ये पूर्ण रागों के रूप में प्रसिद्ध हैं ॥ २७६९ ॥

ए सम्पूर्ण राग-गानफल अतिशय।
सर्व्वत्र विदित, संगीतज्ञ निरूपय ॥ २७७० ॥

अनुवाद—संगीतज्ञों का कहना है कि यह सर्व्वविदित है कि सम्पूर्ण रागों के गायन से भारी फल मिलता है ॥ २७७० ॥

तथाहि कोहलीये—

आयुर्धर्म्मो यशः कीर्तिर्बुद्धिसौख्यधनानि च ।
राज्याभिवृद्धिसन्तानः पूर्णरागेषु जायन्ते ॥ २७७१ ॥

अन्वय—पूर्णरागेषु (गीतेष्वित्यर्थः) आयुः (आयुर्वृद्धिः) धर्म्मः (पुण्यं) यशः कीर्त्तिः (यशोगानं) बुद्धिसौख्यधनानि (ज्ञानं सुखं धनं) राज्याभिवृद्धिसन्तानः (राज्यस्य पूर्णवृद्धिप्रसारः) जायन्ते ॥ २७७१ ॥

अनुवाद—कोहल कहते हैं—पूर्ण राग गाने से आयुष्य, धर्म, यश-कीर्ति, बुद्धि, सुख, धन, राज्य की सतत वृद्धि होती है ॥ २७७१ ॥

सम्पूर्णादिरागमूर्त्ति-रसादि-प्रकार ।
कहिते कि·ए सकल शास्त्रेते प्रचार ॥ २७७२ ॥

सम्पूर्णादि मध्ये कोन कोन राग केह ।
गाय विपर्य्यय कल्पभेदे सत्य सेह ॥ २७७३ ॥

अथ षाडवाः—

षट्स्वरे उत्थित ये सकल राग हय ।
संगीतज्ञगण ताहे षाडव कहय ॥ २७७४ ॥

अनुवाद—सम्पूर्णादि रागों की मूर्ति, रस आदि के बारे में शास्त्रों में वर्णन है, इस सम्बन्ध में क्या कहा जाय । सम्पूर्णादि रागों में कोई-कोई राग इससे पृथक् ढंग से भी गाये जाते हैं, कल्पभेद से यह भी सत्य है । अब षाड़व राग कहते हैं—छः स्वरों से गठित सभी रागों को संगीतज्ञगण षाड़व राग कहते हैं ॥ २७७२–७४ ॥

तथाहि—

षाडवस्तेऽभिधीयन्ते जे रागाः षट्स्वरोत्थिताः ॥ २७७५ ॥

अनुवाद—जो सकल राग छः स्वरों से बने हैं अथवा जिनमें छः स्वरों का प्रयोग है, उन्हें 'षाडव' राग कहा जाता है ॥ २७७५ ॥

गौडकर्णाट गौडादि राग षाडवेते ।
संगीतज्ञ कहे—गानफल बहु इथे ॥ २७७६ ॥

अनुवाद—गौड़, कर्णाटगौड़ आदि षाड़व राग हैं । संगीतज्ञों का कहना है कि इनके गायन से बड़ा फल मिलता है ॥ २७७६ ॥

तथाहि—

गौडः कर्णाटगौडश्च देशी धन्नासिका तथा ।
कोलाहला च वल्लाली देशाख्याशावरी तथा ॥ २७७७ ॥

खम्बावती हर्षपुरी मल्लारी हुञ्चिका ततः ।
इत्याद्याः षाडवाः प्रोक्ता हरिनायकसम्मताः ॥ २७७८ ॥
(आदिपदेनान्येऽपि श्रीकण्ठाद्या गृह्यन्ते)

अनुवाद—हरिनायक के मतानुसार गौड़, कर्णाटगौड़, देशी, धन्नासिका (धानश्री), कोलाहला, वल्लाली, देश, शावरी (आशावरी), खम्बावती (क्षमावती), हर्षपुरी, मल्लारी, हुंचिका—इत्यादि राग षाडव हैं। आदि पद से और दूसरे भी श्रीकण्ठ इत्यादि लिये जाते हैं ॥ २७७८–७८ ॥

तदुक्तं संगीतसारे—

श्रीकण्ठश्चैव भौली च ताराषालगगौडवाः ।
शुद्धाभीरी मधुकरी छाया नीलोत्पलापि च ॥ २७७६ ॥
इति षाडवगणने ॥

अनुवाद—संगीतसार में षाडव रागों में श्रीकण्ठ, भौली, तारा, षालग, गौड़, शुद्धाभीरी, मधुकरी, छाया, नीलोत्पला—का उल्लेख है ॥ २७७६ ॥

फलमाह कोहलः—

संग्रामे वीरता रूपलावण्यगुणकीर्तनम् ।
गाने षाडवरागाणां गदितं पूर्व्वसूरिभिः ॥ २७८० ॥

अन्वय—षाडवरागाणां गाने (फलरूपेण) संग्रामे वीरता (वीरत्वं) रूपलावण्यगुणकीर्तनं (इत्यादि) पूर्व्वसूरिभिः (पूर्व्वाचार्य्यैः) गदितं कथितम्) ॥

अनुवाद—पूर्वाचार्यों ने षाड़वराग गाने के संग्राम में वीरता, रूप, लावण्य और गुणों की ख्याति के फल बताये हैं ॥ २७८० ॥

अथ औडवा—

पञ्चस्वरे ये राग उत्थित—से औड़व ।
औड़वे अनेक राग कहे विज्ञ सब ॥ २७८१ ॥

अनुवाद—पाँच स्वरों के प्रयोग से जो राग बनते हैं, वे औड़व है। गुणीजनों का कहना है कि औड़व राग अनेक हैं ॥ २७८१ ॥

तथाहि—

ते ख्याता औडवा ये हि जायन्ते पञ्चभिः स्वरैः ॥ २७८२ ॥

अनुवाद—जो राग पाँच स्वरों के प्रयोग से उत्पन्न हैं, वे औडव कहे जाते हैं।

मध्यमादि मल्लारादि राग औड़वेते ।
बहु फल मिले एइ औड़व गानेते ॥ २७८३ ॥

अनुवाद—औडव-श्रेणी में मध्यमादि, मल्लार आदि राग हैं। औड़व रागों के गायन से बहुत फलप्राप्ति होती है ॥ २७८३ ॥

तथाहि—

मध्यमादिश्च मल्लारो देशपालश्च मालवः।
हिन्दोलो भैरवो नागध्वनिर्गोण्डकृतिस्तथा ॥ २७८४ ॥
ललिता च ततश्छाया तोडी वेलावली तथा।
प्रतापपूर्व्विका प्रोक्ता सैन्धवी द्वितीया तथा।
इत्याद्या औडवाः प्रोक्ता रागा जनमनोहराः ॥ २७८५ ॥
(आदिपदेन तुरस्कगौडादयोऽपि गृह्यन्ते)।

अनुवाद—मध्यमादि, मल्लार, देशपाल, मालव, हिन्दोल, भैरव, नागध्वनि, गोण्डकृति (गुणकिरी), ललिता, छाया, तोड़ी वेलावली, प्रतापसिन्धु—इत्यादि लोक चित्तरञ्जक राग औड़व हैं (आदि पद से तुरस्क, गौड़ प्रवृत्ति भी समझना होगा) ॥२७८४-२७८५ ॥

तदुक्तं संगीतसारे औडवगणने—

तुरस्क-गौडौ गान्धारपुलिन्दमेघरञ्जकाः ॥ इति ॥ २७८६ ॥

अनुवाद—संगीतसार में औडव रागों की गणना में तुरस्क, गौड़, गान्धार, पुलिन्द, मेघरञ्जक इत्यादि बताये गये हैं ॥ २७८६ ॥

फलमाह—

व्याधिनाशे शत्रुनाशे भयशोकविनाशने।
औड़वास्तु प्रगातव्या ग्रहशान्त्यर्थकर्म्मणि ॥ २७८७ ॥

अन्वय—व्याधिनाशे (रोगनाशकार्य्ये शत्रुनाशे, भयशोकविनाशने (भयशोक-दूरीकरणे) ग्रहशान्त्यर्थकर्म्मणि (ग्रहशान्तिप्रयोजनवति कार्य्ये) औड़वाः (रागाः) तु प्रगातव्याः (प्रधानतः गेयाः) ॥ २७८७ ॥

अनुवाद—इनके फल के विषय में कोहल कहते हैं—व्याधिनाश-कार्य, शत्रुनाश भय-शोक दूर करने, ग्रहशान्ति-अनुष्ठान में प्रधानतः औड़व रागों का गान किया जाता है ॥ २७८७ ॥

अथ सङ्कीर्णाः—

कहिलो ये राग—ए अन्योऽन्य संसर्गेते।
'संकीर्ण' कहये विज्ञ, श्रुति-शोभा याते ॥ २७८८ ॥

अनुवाद—परस्पर मिश्रण से जो राग उत्पन्न होते हैं, उन्हें विज्ञजनों ने 'संकीर्ण' राग कहा है। वे श्रुतिमधुर होते हैं ॥ २७८८ ॥

अत्र हरिनायकः—

एषामन्योऽन्य संसर्गात् रागाणां बहुशोऽभिधाः ।
तत्र केचित्तु संकीर्णाः कथ्यन्ते श्रुतिशोभनाः ॥ २७८६ ॥

अन्वय—एषां (पूर्व्वोक्तानां सम्पूर्णषाडव-औडवनां) रागाणाम् अन्योऽन्यसंसर्गात् (परस्परमिश्रणात्) बहुशः (बहुप्रकाराः) अभिधाः (संज्ञा भवन्ति) तत्र (तेषां मध्ये) तु श्रुतिशोभनाः (श्रवणे मधुराः) केचित् (मिश्रिता रागाः) सङ्कीर्णा कथ्यन्ते ॥ २७८६ ॥

अनुवाद—इस विषय में हरिनायक कहते हैं—पूर्वोक्त—सम्पूर्ण, षाड़व और औड़व—तीन श्रेणियों के रागों के परस्पर मिश्रण से कई प्रकार के राग बनते हैं। उनके कई प्रसिद्ध हैं। इनमें कुछ श्रुतिमधुर राग 'सङ्कीर्ण' कहलाते हैं ॥ २७८६ ॥

पौरवी कल्याणी–आदि सङ्कीर्णाख्य हय ।
सङ्कीर्णार्थ–राग द्वित्र्यादिसंयोगमय ॥ २७६० ॥

तत्र पौरवी—

देशी–मल्लारी अंशे 'पौरवी संज्ञा हय ।
ऐछे ए सुगम राग विज्ञे प्रकाशय ॥ २७६१ ॥

अनुवाद—दो या तीन रागों के संयोग से बनने वाले राग संकीर्ण हैं। पौरवी, कल्याणी आदि संकीर्ण राग हैं। अब पौरवी–देश और मल्लारी के अंगों के मिश्रण से पौरवी राग बमता है। विज्ञजनों का कहना है कि यह सुगम राग है ॥२७६०-६१॥

तथाहि—

देशाख्यायाश्चाथ मल्लारिकायाः ।
स्यादंशाभ्यां पौरवीयं प्रदिष्टा ॥ २७६२ ॥

अनुवाद—दो राग—देश और मल्लारी—के अंगों के मिश्रण से 'पौरवी' राग बना है ॥ २७६२ ॥

कल्याणी—

वाराट्याख्यानाटकर्णाटकेश्यः ।
सम्भूतेयं मञ्जुः कल्याणीकाख्या ॥ २७६३ ॥

अनुवाद—वाराटी और नाटकर्णाट से यह मधुर कल्याणी नाम उत्पन्न हुआ है।

सारङ्गः—

सारङ्गः स्यात्तोडीधन्नासिकाभ्याम् ॥ २७६४ ॥

अनुवाद—तोड़ी और धन्नासी में 'सारङ्ग' उत्पन्न हुआ है ॥ २७९४ ॥

गौरी—

श्रीरागात् स्याद्गौडरागाच्च गौरी ॥ २७९५ ॥

अनुवाद—श्रीराग और गौड़राग से गौरी की उत्पत्ति है ॥ २७९६ ॥

नटमल्लारिका—

जाता नाटस्याथ-मल्लारकस्य ।
स्यादंशाभ्यां नटमल्लारिका च ॥ २७९६ ॥

अनुवाद—नाट और मल्लार—दोनों के अंशों के मिश्रण से नटमल्लारिका की उत्पत्ति है ॥ २७९६ ॥

वल्लरी—

देशाख्याशावरीयोगाद्वल्लरी परिकीर्त्तिता ॥ २७९७ ॥

अनुवाद—देश और शावरी के योग से वल्लरी की उत्पत्ति है ॥ २७९७ ॥

कर्णाटिका—

कर्णाटतो भैरवतोंऽशकाभ्याम् ।
कर्णाटिकाख्या कथिता सकम्पा ॥ २७९८ ॥

अनुवाद—कर्णाट और भैरव के अंशों के मिश्रण से कर्णाटिका का उद्भव है ॥ २७९८ ॥

सुखावरी—

सैन्धवीतौड़िकायोगात् समुत्पन्ना सुखावरी ॥ २७९९ ॥

अनुवाद—सैन्धवी और तोड़ी के योग से सुखावरी की उत्पत्ति है ॥ २७९९ ॥

आशावरी—

मल्लार-सैन्धवी-तौडी-योगादाशावरी भवेत् ॥ २८०० ॥

अनुवाद—मल्लार, सैन्धवी और तोड़ी के योग से आशावरी की उत्पत्ति है ॥ २८०० ॥

रामकेलि—

गुज्जरीदेशिकासङ्गाद्रामकेलिरजायत ॥ २८०१ ॥

अनुवाद—गुर्जरी और देशी के योग से रामकेलि की उत्पत्ति है ॥ २८०१ ॥

अन्येऽपि सन्ति भूयांसो रागाः सङ्कीर्ण-लक्षणाः ।
ये ये यथाश्रुता देशे ज्ञेयास्ते ते तथा बुधैः ॥ २८०२ ॥

अन्वय—अन्ये अपि भूयांसः (बहवः) सङ्कीर्णलक्षणाः (मिश्राः) रागाः सन्ति। (यत्र) देशे ये ये (सङ्कीर्णाः) यथाश्रुताः (विद्यन्ते) ते ते तथा (तादृशाः) बुधैः ज्ञेयाः ॥ २८०२ ॥

अनुवाद—संकीर्ण लक्षण के और भी बहुत से राग हैं। जिस प्रदेश में जो सकल संकीर्ण राग जिस रूप में हैं, उन्हें विज्ञजन उसी रूप में जानें ॥ २८०२ ॥

ए सकल रागेर ये ये काले गान युक्त।
से सकल समय संगीतशास्त्रे उक्त ॥ २८०३ ॥
असमय गाने गायकेर दोष हय।
गुर्ज्जरी-रागादि गाने से दोष नाशय ॥ २८०४ ॥

अनुवाद—इन सब रागों के गायन का जो समय है, उसका निर्देश शास्त्र में है। असमय गायन दोषकारक है, किन्तु गुर्जरी आदि रागों के गायन से यह दोष दूर होता है ॥ २८०३–०४ ॥

तथाहि—

समयोल्लङ्घनं गाने सर्व्वनाशकरं ध्रुवम्।
श्रेणीबन्धे नृपाज्ञायां रङ्गभूमौ न दोषदम् ॥ इति ॥ २८०५ ॥
लोभान्मोहाच्च ये केचिद् गायन्ति च वियोगतः।
सुरसा गुर्ज्जरी तेषां दोषं हन्तीति कथ्यते ॥ २८०६ ॥

अन्वय—गाने समयोल्लङ्घनं (कालनियमस्य उपेक्षणं) ध्रुवं सर्वनाशकरं (भवति किन्तु) श्रेणीबन्धे (श्रेणीकृत्य बहुभिः गाने) (तथा) नृपाज्ञायां) (तथा) रंगभुमौ (रङ्गमञ्चे) (तादृशम् उल्लङ्घनं) दोषदं न (भवति) ये केचिद् (गायकाः) लोभात् मोहात् (अज्ञानात्) वियोगतः (विरहात्) च (समयमुल्लङ्घ्य) गायन्ति, सुरसा गुर्ज्जरी तेषां दोषं हन्ति (विनाशयति) इति कथ्यते ॥ २८०५–०६ ॥

अनुवाद—राग-रागिनियों के गायन का समय निश्चित है, निर्दिष्ट समय का उल्लंघन होने यानी असमय गान से सर्वनाश होता है। किन्तु सम्मिलित रूप से गायन राजा की आज्ञा से गायन और रंगमञ्च पर गायन में इस प्रकार का व्यतिक्रम दोषदायक नहीं है। जो अर्थलाभ, अज्ञान से और शोककाल में समय-नियम का उल्लंघन करते हैं तो सुरसा गुर्जरी के गायन से उनका दोष नष्ट हो जाता है ॥२८०५–०६ ॥

वसन्त, रामकेलि, गुर्ज्जरी—एइ त्रय।
सर्व्वकाल गाने कोन दोष ना जन्मये ॥ २८०७ ॥

अनुवाद—तीन राग—वसन्त, रामकेलि और गुर्जरी—सब समय गाये जा सकते हैं, इससे किसी प्रकार का दोष नहीं होता ॥ २८०७ ॥

तथाहि रत्नमालायां—

वसन्तो रामकेलिश्च गुर्ज्जरी सुरसापि च।
सर्व्वस्मिन् गीयते काले नैव दोषोऽभिजायते ॥ २८०८ ॥

अन्वय—वसन्तः रामकेलि च, अपि सुरसा गुर्ज्जरी च सर्व्वस्मिन् काले गीयते। (तत्र) दोषः न अभिजायते एव ॥ २८०८ ॥

अनुवाद—रत्नमाला में कहा गया है—वसन्त, रामकेलि और सुरसा गुर्जरी का गायन सब समय किया जा सकता है। इससे किसी प्रकार का दोष नहीं होता ॥ २८०८ ॥

नारदस्तु विशेषमाह—

दशदण्डात् परे रात्रौ सर्व्वेषा गानमीरितम् ॥ २८०९ ॥

अनुवाद—नारद ने इस विषय में एक विशेष बात कही है—दस घडी रात्रि हो जाने पर सभी रागों के गायन की विधि है ॥ २८०९ ॥

एक सकल राग मूर्त्ति धरि' सावहिते।
आपना मानये धन्य रासमण्डलेते ॥ २८१० ॥
कि वलिव श्रीनिवास! श्रीरासमण्डले।
नाना राग गाने सुख-समुद्र उथले ॥ २८११ ॥
गानेर तुलना नाइ भुवन-भितर।
परम अद्भुत सुधा वर्षे परस्पर ॥ २८१२ ॥
कृष्ण-राइ-मुखपद्म निरीक्षण करि'।
प्रकाशये गीते कत अद्भुत चातुरी ॥ २८१३ ॥
गीतेर लक्षण किछु पूर्व्वे उक्त हैल।
एवे जानो यैछे गीतभेद प्रकाशिल ॥ २८१४ ॥
'अनिवद्ध'-'निवद्ध'-द्विविध गींत हय।
अनिवद्ध रात्रालाप रूपी निरूपय ॥ २८१५ ॥
बन्धहीन ये गीत से 'अनिवद्ध' हन।
रागालाप कहि—राग प्रकटीकरण ॥ २८१६ ॥

अनुवाद—रासमण्डल में ये सभी राग मूर्त हो उठते हैं, जिससे राग अपने को धन्य मानते हैं। हे श्रीनिवास! मैं क्या कहूँ, रासमण्डल में नाना रागों के गायन से सुख-समुद्र उथल रहा है। संसार में इस गान की तुलना नहीं है, परम अद्भुत

सुधा की वर्षा हो रही है। कृष्ण राधा का कमल रूपी मुख देखकर अद्‌भुत चातुर्य से कितने ही गीतों को प्रकाश करते हैं। गीत के कुछ लक्षण ऊपर कहे गये हैं। अब गीत-भेद बताते हैं। गीत के दो भेद हैं—'अनिबद्ध' और 'निबद्ध'। अनिबद्ध का निरूपण रागालाप के रूप में होता है। जो गीत बन्धहीन हैं वे 'अनिबद्ध' हैं। रागालाप कर राग प्रकट किया जाता है ॥ २८१०-१६ ॥

तथाहि—

अनिबद्धं निबद्धञ्च द्विधा गीतमुदीरितम् ।
आलप्तिर्बन्धहीना स्याद्रागालापनरूपिणी ॥ २८१७ ॥

अन्वय—गीतम् अनिबद्धं निबद्धं च (इति) द्विधा (द्विप्रकारेण) उदीरितं (कथितं) (भवति)। रागालापनरूपिणी आलप्तिः (आलापः) बन्धहीना (अनिबद्धा) स्यात् ॥ २८१७ ॥

अनुवाद—इसी प्रकार—गीत दो प्रकार के हैं—अनिबद्ध और निबद्ध। बन्धहीन राग-आलाप-मात्र को अनिबद्ध कहा जाता है ॥ २८१७ ॥

तदुक्तं—

आलप्तिर्बन्धहीनस्वादनिबद्धमितीरितम् ॥ इति ॥ २८१८ ॥

अनुवाद—अतः इस विषय में ऐसा कहा जाता है—बन्धन व रचनाहीन आलाप को अनिबद्ध कहा जाता है ॥ ३८१८ ॥

रागस्य आलापनं प्रकटीकरणमित्यर्थः ॥ २८१९ ॥

अनुवाद—राग के प्रकाश व प्रकटीकरण को 'आलाप' कहा जाता है ॥२८१९॥

'आलाप' वर्णालङ्कार'–दुइ मत हय।
'आतानारि'–एक,तार–'सरिगमादय ॥ २८२० ॥
हुङ्कारमात्र ए 'आ-ता-ना-रि चतुष्टये।
हरि गौरी हर ब्रह्मा—क्रमे निरूपये ॥ २८२१ ॥

अनुवाद—'आलाप' और 'वर्णालङ्कार' दो प्रकार हैं—एक 'आतानारि' से और दूसरा 'सारिगमादि' से गाया जाता है। हुंकार मात्र से 'आ-ता-ना-रि' चतुष्टय की उत्पत्ति है जो क्रमशः हरि, गौरी, हर और ब्रह्मा के परिचायक हैं ॥२८२०-२१॥

तथाहि नारदसंहितादौ —

हुंकारात् प्रसवश्चैव यथा वेदस्य ओमिति।
ताशब्देनोच्यते गौरी ना-शब्देनोच्यते हरः।
तानेति शब्दहुङ्कारात् प्रोत्थाप्यन्ते शनैः शनै॥ २८२२ ॥

तत्र च—

आकारेण हरिः प्रोक्तो रिकारेण पितामहः।
आ-ता-ना-रीति शब्देन सर्व्वेषामेव सम्भवः॥ २८२३॥

अन्वय—यथा हुङ्कारात् वेदस्य ओमिति (ओङ्काररूपेण) प्रसवः (प्रकाशः भूत इत्यर्थः) तथा तानेति (ता-ना-प्रभृतयः) शब्दाः हुङ्कारात् शनैः शनैः प्रोत्थाप्यन्ते (प्रकाश्यन्ते) ता-शब्देन गौरी उच्यते, ना-शब्देन हरः उच्यते; अकारेण हरिः प्रोक्तः, रि-कारेण पितामहः (ब्रह्मा) (प्रोक्तः)। (एवं) 'आ-ता-ना-रि'—इति शब्देन सर्व्वेषां (हरादीनां) एव सम्भवः (प्रकाश उद्दिश्यते)॥ २८२२–२३॥

अनुवाद—नारद संहिता में है–जिस प्रकार हुंकार से ओंकार रूप में वेद का प्रकाश है, उसी प्रकार हुंकार से ता-ना-प्रभृति शब्द धीरे-धीरे उत्थित होते हैं—निकलते हैं। ता-शब्द में गौरी, ना-शब्द में हर (शंकर), आ-शब्द में हरि और रि-शब्द में पितामह (ब्रह्मा) का बोध होता है। इस प्रकार 'आ-ता-ना-रि' शब्दों से हरि-गौरी-हर-ब्रह्मा सकल का ही प्रकाश उद्दिष्ट है॥ २८२२–२३॥

स-रि-ग-म-प-ध-नि—सप्त वर्णालङ्कार।
षड्जादिक स्वर-वर्णालाप, ए प्रचार॥ २८२४॥
आलापे गमक-स्थान अति विचित्रित।
इथे नानाभंगि मनोहर—ए विदित॥ २८२५॥
यतेक अताल ताहा आलापे प्रवेश।
गीतज्ञ आलाप-भेद कहये अशेष॥ २८२६॥

अनुवाद—सरिगमपधनि—वर्णालंकार हैं और यह सर्वविदित है कि षड्जादि स्वरों से वर्णालाप होता है। आलाप में विचित्र गमक का स्थान है और इसे विभिन्न प्रकार से प्रकाश किया जाता है। आलाप में अताल के विभिन्न प्रकारों का समावेश है। गीतज्ञों ने आलाप के अनेक भेद कहे हैं॥ २८२४–२६॥

हरिनायकस्तु—

वर्णालङ्कारसंयुक्ता गमजस्थानचित्रिता।
आलप्तिरुच्यते तज्ज्ञैर्भूरिभङ्गिमनोहरा॥ इति॥ २८२७॥

अन्वय—तज्ज्ञैः (संगीतज्ञैः) वर्णालंकारसंयुक्ता (सरिगमादिवर्णयुक्ता) गमकस्थानचित्रिता। भूरिभङ्गिमनोहरा (नानाभङ्गिभिर्मनोहरा) आलप्ति उच्यते॥ २८२७॥

अनुवाद--हरिनायक ने कहा है--संगीतज्ञगण सरिगमादि समन्वित, गमक की विचित्रता युक्त और नाना भंगिमाओं द्वारा मनोहर राग-प्रकाश को 'आलाप' कहते हैं ।। २८२७ ।।

वर्णालङ्कारास्तु निरर्थकहुङ्कारादिशब्द ।
सङ्गीतोक्तसरिगमेत्यादिवर्णालङ्काराश्च ।। २८२८ ।।

अनुवाद--वर्णालङ्कार दो प्रकार के हैं--अर्थहीन हुंकारादि शब्द एवं संगीत-शास्त्रोक्त 'सरिगम' प्रभृति वर्णालंकार ।। २८२८ ।।

आलाप्तेर्बहुधा भेदा न प्रपञ्चभियेरिताः ।। २८२९ ।।

अनुवाद--आलाप के कई प्रकार के भेद हैं । विस्तार के भय से यहाँ नहीं कहे गये हैं ।। २८२९ ।।

अहे श्रीवास ! श्रीरासमण्डली-माझारे ।
करये आलाप सवे अशेष प्रकारे ।। २८३० ।।
से आलाप कारे वा चमक नाहि लागे ।
कि छार कोकिल से कण्ठेर ध्वनि आगे ।। २८३१ ।।
आलाप-समये अति अद्भुत विलास ।
निज निज चतुरता करये प्रकाश ।। २८३२ ।।
रसिकशेखर कृष्ण आलापे वंशीते ।
जगत् माताय-तार उपमा कि दिते ।। २८३३ ।।
वीणायंत्रे आलापये वृन्दावनेश्वरी ।
के वर्णिते पारे तार आलाप माधुरी ।। २८३४ ।।
ललितादि सखी नानायंत्रे आलापय ।
आमेर का कथा-शुनि' पाषाण गलय ।। २८३५ ।।
एकमुखे के कहिवे आलाप प्रसंग ।
उथलये येन सुधासमुद्रतरङ्ग ।। २८३६ ।।
अनिवद्ध गाने मग्न हैया परस्परे ।
गायेन निवद्ध-गीत त्रिविध प्रकारे ।। २८३७ ।।

अथ निबद्धमाह—

धातु-अङ्के वद्ध हैले 'निवद्धाख्या' हय ।
शुद्धा, छायालग, क्षुद्र-निवद्ध ए त्रय ।। २८३८ ।।

अनुवाद--हे श्रीनिवास ! रासमण्डल में सभी विभिन्न प्रकार से आलाप कर रहे हैं । वह आलाप किसे आश्चर्यचकित नहीं करता । इस कण्ठध्वनि के सामने कोकिल की ध्वनि भी तुच्छ है । आलाप के समय अद्भुत विलास है और सभी

अद्भुत चतुरता से उसे प्रकट करते हैं। रसिकशेखर कृष्ण वंशी पर आलाप करते हैं जिससे संसार मंत्रमुग्ध हो उठता है—इसकी क्या उपमा दी जा सकती है? वृन्दावनेश्वरी (राधिका) वीणा पर आलाप कर रही है। उस आलाप-माधुर्य का कौन वर्णन कर सकता है। ललितादि सखियाँ विभिन्न यंत्रों पर आलाप करती हैं। अन्यों की तो क्या कहें—इसे सुनकर पत्थर भी पिघल जाता है। इस आलाप-प्रसंग में मैं क्या वर्णन कर सकता हूँ, जैसे सुधा रूपी समुद्रतरंग भी उथल रही है। अनिबद्ध-गान में सभी आपस में मगन हैं। निबद्धगीत का विभिन्न प्रकार से गान हो रहा है। अब मैं निबद्ध गान के विषय में कहता हूँ—धातु और अङ्ग में निबद्ध होने पर वह गान 'निबद्ध' कहलाता है। निबद्ध गान तीन प्रकार के हैं—शुद्धा, छायालग और क्षुद्र ॥ २८३०–३८ ॥

तथाहि—

बद्धं धातुभिरङ्गैश्च निबद्धमभिधीयते।
शुद्धं छायालगं क्षुद्रामति तच्च त्रिधा मतम् ॥ २८३९ ॥

अन्वय—धातुभिः अङ्गैः च बद्धं (गीतं) निबद्धं अभिधीयते। तत् (निबद्धं) च शुद्धं छायालगं क्षुद्रम् इति त्रिधा (त्रिविधं) मतम् ॥ २८३९ ॥

अनुवाद—धातु और अंग से बद्ध गीत को 'निबद्ध' कहा जाता है। निबद्ध गीत तीन प्रकार के हैं—शुद्ध, छायालग और क्षुद्र ॥ २८३९ ॥

तत्र शुद्धमाह—

आलाप-धातु अङ्ग- संयुक्त शुद्ध हय।
आलाप—सार्थकपदे, एथा निरूपय ॥ २८४० ॥

अनुवाद—आलाप, धातु और अंग के संयोग से 'शुद्ध' होता है। गुणीजनों ने ऐसा निरूण किया है कि आलाप का अर्थ सार्थक पद है ॥ २८४० ॥

तथाहि—

तालापैर्धातुभिश्चाङ्गैः संयुक्तं शुद्धमुच्यते।
(आलापैरत्र सार्थकपदैरेवेति साम्प्रदायिकाः) ॥ २८४१ ॥

अनुवाद—आलाप, धातु और अंग के संयोग से बनने वाला गीत शुद्ध कहलता है। (साम्प्रदायिकगण कहते हैं कि आलाप का अर्थ सार्थक पद है) ॥ २८४१ ॥

हरिनायकस्तु—

आलोपो गमकालप्तिरक्षरैर्वर्जिता मतेत्याह ॥ २८४२ ॥

अनुवाद—हरिनायक ने अक्षर-वर्जित गमक के आलाप को आलाप कहा है ॥

निरूपिल निवद्ध-गीतेर भेदत्रय ।
शुद्ध, शालग, संकीर्ण–ऐछे केह कय ॥ २८४३ ॥

अनुवाद--निबद्ध गीत के तीन भेदों का निरूपण किया गया । कुछ गुणी कहते हैं कि ये तीन भेद हैं--शुद्ध, सालग (शालग) और संकीर्ण ॥ २८४३ ॥

संगीतसारे—

शुद्ध-शालग-सङ्कीर्णभेदाद्गीतं त्रिधा मतम् ।
तत्र क्षुद्रगीतमेव सङ्कीर्णशब्देनोच्यते ॥ २८४४ ॥
तच्च स्यात्रिविधन्तु शुद्धकं छायालगं क्षुद्रकमित्येवं तेनैवोक्तत्वात् ॥२८४५॥

अन्वय—शुद्ध-शालग-सङ्कीर्णभेदात् गीतं त्रिधा (त्रिविधं) मतं (कथितम्) । तत्र (तेषु) क्षुद्रगीतम् एव सङ्कीर्णशब्देन उच्यते । उच्च (निबद्धगीतं) त्रिविधं स्यात् शुद्धकं छायालगं क्षुद्रम् इति । एवं तेनैव उक्तत्वात् ॥ २८४४–४५ ॥

अनुवाद—शुद्ध, शालग (सालग) और संकीर्ण भेद से गीत के तीन प्रकार हैं, ऐसा संगीतसार में कहा गया है । यहाँ क्षुद्र गीत संकीर्ण शब्द से निर्दिष्ट किया गया है, क्योंकि आगे तीन प्रकार इस प्रकार बताये गये हैं—शुद्ध, छायालग और क्षुद्र ॥ २८४४–४५ ॥

केहो कहे—निबद्धगीतेर संज्ञात्रय ।
प्रबन्ध, वस्तु, रूपक–ए प्रसिद्ध हय ॥ २८४६ ॥
धातुचतुष्टय आर षडङ्ग इहाय ।
हइले प्रकृष्टबद्ध 'प्रबन्ध' कहाय ॥ २८४७ ॥
'शुद्ध' गीते 'प्रबन्ध' कहये विज्ञगण ।
एवे जान 'वस्तु' 'रूपक'-लक्षण ॥ २८४८ ॥
धातुत्रयादि पञ्चाङ्गे 'वस्तु' निरूपय ।
द्विधातुक अङ्गद्वये 'रूपक' कहय ॥ २८४९ ॥

अनुवाद—कुछ गुणी कहते हैं—निबद्ध गीत की तीन प्रकार की संज्ञा हैं—प्रबन्ध, वस्तु और रूपक । चार धातुओं और छः अंगों से युक्त तथा प्रकटबद्ध गीत 'प्रबन्ध' कहा जाता है । इनमें 'शुद्ध' गीत को विज्ञगण 'प्रबन्ध' गीत कहते हैं । अब 'वस्तु' और 'रूपक के लक्षण जानिये । तीन धातुओं और पाँच अंगों से रचित को 'वस्तु' कहा जाता है और दो धातुओं तथा दो अंगों से रचित को 'रूपक' कहा जाता है ॥ २८४६–४९ ॥

हरिनायकस्तु—

संज्ञात्रयं निबद्धस्य प्रबन्धो वस्तुरूपकम् ॥ २८५० ॥

चतुर्भिर्धातुभिर्बद्धस्त्वङ्गैः षड्भिश्च कल्पितः।
प्रकृष्टो यश्च बन्धः स्यात् स प्रबन्धो निगद्यते ॥ २८५१ ॥
(एतेन शुद्ध गीतमेव प्रबन्ध इत्युच्यते)
त्र्यादिभिर्धातुभिश्चाङ्गैः पञ्चभिर्वस्तु कथ्यते।
द्विधातुकं तथा द्व्यङ्गं रूपकं परिकीर्त्तितम्। इति ॥ २८५२ ॥

अन्वय—निबद्धस्य (निबद्धाख्य-गीतस्य) प्रबन्धः, वस्तु, रूपकम् इति संज्ञात्रयं (भवति)। यः च बन्धः (रचना) चतुर्भिः धातुभिः बद्धः षड्भिः अङ्गैः च कल्पितः (सन्) प्रकृष्टः स्यात् स (बन्धः) प्रबन्धः निगद्यते। एतेन शुद्धगीतम् एव प्रबन्ध इति उच्यते। त्र्यादिभिः धातुभिः पञ्चभिः अङ्गैः च (रचितः) वस्तु कथ्यते। (यत्) द्विधातुकं (धातुद्वयनिर्म्मितं) तथा द्व्यङ्गं (अङ्गद्वयविशिष्टं) (तत्) रूपकं परिकीर्त्तितम् ॥ २८५०–५२ ॥

अनुवाद—हरिनायक ने कहा है—निबद्ध के तीन प्रकार के नाम (संज्ञा) हैं—प्रबन्ध, वस्तु और रूपक। जो चार धातुओं और छः अंगों से रचित होकर प्रकृष्ट होता है उसे 'प्रबन्ध' कहते हैं। (इसमें 'शुद्ध' गीत ही 'प्रबन्ध' कहा गया है।) तीन धातुओं और पाँच अंगों से रचित बन्ध को 'वस्तु' एवं दो धातुओं और दो अंगों से रचित बन्ध को 'रूपक कहा जाता है ॥ २८५०–५२ ॥

अथ धातुमाह—

प्रबन्धेर अवयव—'धातु' निरूपय।
'अवयव' जान—भागविशेष कहय ॥ २८५३ ॥
केहो कहे—धातु चारि उद्ग्राहक आर।
मेलापक ध्रुवाभोग—क्रमे ए प्रचार ॥ २८५४ ॥
'उद्ग्राह' प्रथम 'मेलापक' तदुपरि।
तारपर 'ध्रुव' अन्ते 'आभोग'-ए चारि ॥ २८५५ ॥

अनुवाद—प्रबन्ध का अवयव 'धातु' है। 'अवयव' को प्रबन्ध का भागविशेष जानिये। धातु चार प्रकार के कहे जाते हैं जो क्रमशः इस प्रकार हैं—उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग। प्रथम भाग उद्ग्राह है, उसके बाद मेलापक, उसके बाद ध्रुव और अन्त में आभोग है ॥ २८५३–५५ ॥

तथापि—

प्रबन्धावयवो धातुः स चतुर्द्धा प्रकीर्त्तितः।
उद्ग्राहक-मेलापक-ध्रुवाभोग इति क्रमात् ॥ २८५६ ॥

उद्ग्राहः प्रथमोभागस्ततो मेलापकः स्मृतः।
ध्रुवत्वाच्च ध्रुवः पश्चादाभोगस्त्वन्तिमो मतः॥ २८५७॥

अन्वय—प्रबन्धावयवः (गीतस्य अङ्गं) धातुः (कथ्यते), स (धातुः) उद्ग्राहक-मेलापक-ध्रुवाभोग इति क्रमात् चतुर्द्धा (चतुर्व्विधः) प्रकीर्त्तितः। (तत्र) प्रथमः भागः उद्ग्राहः, ततः (द्वितीयभाग इत्यर्थः, मेलापकः स्मृतः (कथितः)। पश्चात् (तदनन्तरं) ध्रुवत्वाच्च (स्थिरत्वेन हेतुना) ध्रुवः, (तदनन्तरं) अन्तिमः (भागः) आभोगः मतः (उक्तः)॥ २८५६-५७॥

अनुवाद—प्रबन्ध अर्थात् गीत के अवयव को धातु कहा जाता है। धातु चार प्रकार के हैं—उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव और आभोग। प्रथम भाग है उद्ग्राह, उसके बाद है मेलापक, उसके पश्चात् स्थिरता के लिए ध्रुव है और अन्तिम भाग आभोग है॥ २८५६-५७॥

प्रबन्ध लक्षणे केहो ऐछे निरुपय।
उद्ग्राह, ध्रुव, आभोग—धातु एइ त्रय॥ २८५८॥
गीतेर प्रथम पाद—उद्ग्राह' कहये।
'ध्रुव'—मध्ये, अन्तेते—'आभोग' निरूपये॥ २८५९॥

अनुवाद—प्रबन्ध के लक्षणों का इस प्रकार निरूपण किया गया है। उद्ग्राह, ध्रुव और आभोग—ये तीन धातु हैं। गीत का प्रथम पाद 'उद्ग्राह' है, बीच में 'ध्रुव' और अन्त में आभोग है॥ २८५८-५९॥

तथाहि शिरोमणौ—

उद्ग्राहः प्रथमः पादः कथितः पूर्व्वसूरिभिः।
ध्रुवत्वाच्च ध्रुवो मध्य आभोगश्चान्तिमः स्मृतः॥ २८६०॥
(ध्रुवत्वात् निश्चलत्वात् पुनः पुनरुपादानादित्यर्थः)

अन्वय—पूर्व्वसूरिभिः (पूर्व्वाचार्य्यैः गीतस्य) प्रथमः पादः उद्ग्राहः कथितः, मध्यः (मध्यपादः) ध्रुवत्वां च (पुनः पुनः ग्रहणाद्धेतोः) ध्रुवः, अन्तिमः च (पादः) आभोगः स्मृतः॥ २८६०॥

अनुवाद—शिरोमणि में है—पूर्वाचार्यों ने गीत के प्रथम पाद को उद्ग्राह, निश्चलता हेतु या ध्रुव (नित्य) होने से मध्यपाद को ध्रुव एवं अन्तिम भाग को आभोग कहा है॥ २८६०॥

ध्रुव आर आभोगेर मध्ये ये चरण।
अन्तराख्या धातु तारे कहे विज्ञगण॥ २८६१॥

अनुवाद—ध्रुव और आभोग के बीच में जो चरण होता है, उसे विज्ञगण अन्तरा नामक धातु कहते हैं ॥ २८६१ ॥

तथाहि हरिनायकेनोक्तम्—

ध्रुवाभोगान्तरे जातो धातुरन्योऽन्तराभिधः । इति ॥ २८६२ ॥

अनुवाद—हरिनायक ने कहा है—ध्रुव और आभोग के बीच में अवस्थित अन्य धातु का नाम है—अन्तरा ॥ २८६२ ॥

आभोगेते कवि नायकेर नाम हय।
एइ हेतु गीतज्ञ 'आभोग' संज्ञा कय ॥ २८६३ ॥

अनुवाद—आभोग में कवि और नायक का नाम होता है, इसीलिए गीतज्ञ ने इसे 'आभोग' की संज्ञा दी है ॥ २८६३ ॥

तथाहि—

आभोगे कविनाम स्यात्तथा नायकनाम च ॥ २८६४ ॥

अनुवाद—आभोग में कवि और नायक के नाम का उल्लेख होता है ॥२८६४॥

प्रबन्धे ये धातु से-लक्षण ऐछे हय।
गीतविज्ञगण नानागीते प्रकाशय ॥ २८६५ ॥

अनुवाद—प्रबन्ध में जो धातु हैं, उनके लक्षण इस प्रकार हैं, जिन्हें गीतविज्ञगण विभिन्न गीतों में प्रकाश करते हैं ॥ २८६५ ॥

गीते यथा—पठमञ्जरी

उदितपूरण निशि निशाकर, किरण करु तम दूरि।
भानुनन्दिनी पुलिन परिसर, शुभ्र शोभत भूरि ॥ उद्ग्राह ॥
मन्द मन्द सुगन्ध शीतल, चलत मलयसमीर।
भ्रमरगण घन झँकरु, कत कुहरे कोकिल कीर ॥ मेलापक ॥
विहरे वरज किशोर।
मधुर वृन्दाविपिन-माधुरी
पेखि' परम विभोर ॥ ध्रुव ॥
देवदुलह सुरासमण्डले विपुल कौतुक आज।
वंशीकर गाहि' अधर परशत, मोदभरु हियामाझ ॥
राधिकागुणचरितमय वर विरचिव बहुविध गीत।
गानरत रतिनाथ-मदभरहरण निरुपम नीत ॥ अन्तरा ॥

कञ्जलोचने ललित अभिनय वरिषे रस जनु मेह।
भणव कि ए घनश्याम प्रकटत जगते अतुलित लेह ॥ आभोग
॥ २८६६–२८७१ ॥

अनुवाद—रात्रि के समय पूर्णचन्द्र के उदय के साथ उसकी किरणें अन्धेरा दूर करती हैं। भानुनन्दिनी (राधिका) यमुनातट पर शोभायमान है। मलय समीर बह रहा है और मन्द-मन्द शीतल सुगन्ध फैल रही है। भ्रमर गुंजायमान हैं एवं कोकिल व शुक गान कर रहे हैं। व्रजकिशोर विहार कर रहे हैं और मधुर वृन्दावन की शोभा देखकर भाव-विभोर हो रहे हैं। देवदुर्लभ सुरासमण्डल में आज भारी कौतुक हैं। वंशी हाथ में लेकर श्रीकृष्ण होठों से लगाते हैं। उनके हृदय में अपार आनन्द है। राधिका के गुणों को लेकर वे कई प्रकार के गीतों की रचना करते हैं। इस कारण गीतरत रतिनाथ-मदभरहरण अनुपम लग रहे हैं। कमल-सम लोचन ललित अभिनय से रस की जैसे वर्षा कर रहे हैं। घनश्याम इस जगत में अतुलित स्नेह प्रकट कर रहे हैं, इस सम्बन्ध में (घनश्याम) क्या कहूँ ॥ २८६६–७१ ॥

अथाङ्गान्याह—

प्रबन्धेर धातु पञ्च–शास्त्रे ए निर्द्धार।
षड़ङ्ग प्रबन्धगीत–सर्व्वत्र पचार ॥ २८७२ ॥
स्वर, विरुद, पद, तेनक, पाठ, ताल।
एइ छय अङ्गे गीत परम रसाल ॥ २८७३ ॥
स्वर–सरिगमपधादिक निरूपय।
गुणनामयुक्तमते 'विरुद' कहय ॥ २८७४ ॥
पद-शब्द वाचक प्रकार बहु इथे।
तेना–तेनादिक शब्द मङ्गलनिमित्ते ॥ २८७५ ॥
पाठ–वाद्योद्भवाक्षर धा धा धिलङ्गादि।
ताल–चच्चत्पुट यत्यादिक यथाविधि ॥ २८७६ ॥
ए षड़ङ्ग प्राचीन आचार्य्य निरूपय।
वाक्य, स्वर, ताल, तेना–चारि केह कय ॥ २८७७ ॥

अनुवाद—शास्त्र में प्रबन्ध के पाँच धातु निर्धारित किये गये हैं। षड़ंग प्रबन्धगीत का सर्वत्र प्रचार है और ये छः अंग हैं—स्वर, विरुद, पद, तेनक, पाठ और ताल। इन छः अंगों से युक्त गीत परम रसोदीपक होता है। 'स्वर' सरिगमपधनि हैं, गुणनाम युक्त 'विरुद' कई प्रकार के शब्दवाचक 'पद' मंगलबाचक तेन आदि शब्दवाचक 'तेना' वाद्याक्षर धा धा छिलांग आदि के समूह 'पाठ', चच्चतपुट, यति

प्रभृति 'ताल' है। प्राचीन आचार्यों ने इस षड़ंग प्रबन्धगीत का निरूपण किया है। कुछ गुणी चार अंग बताते हैं—वाक्य, स्वर, ताल और तेना ॥ २८७२–७७ ॥

तथाहि—

प्रबन्धस्य षडङ्गानि स्वरश्च विरुदं पदम्।
तेनकः पाठतालौ च स्वराः सरिगमादयः॥ २८७८॥
गुणोल्लेखतया यत्तत् विरुदं परिकीर्त्तितम्।
ततोऽन्यवाचकं यत्तु तत् पदं समुदाहृतम्॥ २८७९॥
तेनेति शब्दस्तेनः स्यान्मङ्गलार्थेऽवधारितः।
धां धां धुग-धुगेत्याद्या पाठा वाद्याक्षरोत्कराः॥ २८८१॥

अन्वय—प्रबन्धस्य (गीतस्य) षट्अङ्गानि (अवियवाः भवन्ति) (तानि च यथा) स्वरः, विरुदं, पदं, तेनकः, पाठश्च, तालश्च। स्वराःसरिगमादयः, गुणोल्लेखतया (गुणोल्लेखेन) यत् (भवति) तत् विरुदं परिकीर्त्तितं (कथितं स्यात्); ततः (गुणात्) अन्यवाचकं यत् तत् पदं समुदाहृतं (कथितं); तेनेति (तेना इति) तेनः शब्दः मङ्गलार्थे अवधारितः (निरूपितः स्यात्), धां धां धुग-धुगेत्याद्याः (धुग इत्यादयः) वाद्याक्षरोत्कराः (वाद्याक्षरसमूहाः) पाठाः (कथ्यन्ते), आदि-यत्यादिकाः तालाः (कथ्यन्ते), स (च) तालः कथियिष्यते (पश्चादित्यर्थः) ॥ २८७८–८१ ॥

अनुवाद—प्रबन्ध व गीत के छः अंग हैं—स्वर, विरुद, पद, तेनक, पाठ और ताल। सरिगम आदि को 'स्वर' कहते हैं, जो गुण का उल्लेख करता है उसे 'विरुद' कहते हैं, गुणों से इतर वर्णन करता है वह 'पद' है, 'तेन' शब्द ही 'तेना' है—यह मंगलवाचक निरूपित है; धां धां धुग धुग आदि वाद्याक्षरों के समूह को 'पाठ' कहते हैं, आदि यति इत्यादि को 'ताल' कहते हैं। इस ताल के विषय में बाद में कहा जायगा ॥ २८७८–७१ ॥

संगीतपारिजाते—

पदतालस्वराः पाठास्तेनो विरुदनामकः।
इति गीते षडङ्गानि कथितानि मनीषिभिः॥ २८८२॥
पदानि वाचकाः शब्दास्तालाश्चचत्पुटादयः।
स्वराः षड्जादयस्ते स्युः पाठो वाद्योद्भवाक्षरम्॥ २८८३॥
तेनः स्यान्मङ्गले शब्दो विरुदं गुणनामयुक्॥ २८८४॥

अन्वय—पदतालस्वराः (पदं तालः स्वरः) पाठाः तेनः विरुदनामकः (नाम्ना विरुदं) इति षट् अङ्गानि गीते मनीषिभिः कथितानि। (तत्र) वाचकाः शब्दाः

पदानि, चच्चत्पुटादयः तालाः, ते षड्जादयः स्वराः, वाद्योद्भवाक्षरं (वाद्यात् उद्भूतम् अक्षरं) पाठः मङ्गलं (मङ्गलवाचकः शब्दः) तेनः गुणनामयुक् णब्दः विरुदं स्युः ॥ २८८२–८४ ॥

अनुवाद—संगीत पारिजात में है—मनीषियों ने गीत के छः अंग बताये हैं, यथा पद, ताल, स्वर, पाद, तेन और विरुद। याचक शब्द अथवा सार्थक शब्द 'पद', चच्चत्पुट आदि 'ताल', षड्ज प्रभृति 'स्वर', वाद्यों से उत्पन्न अक्षर 'पाठ', मंगलार्थ व मंगलवाचक शब्द 'तेन' एवं गुणनाम युक्त शब्द 'विरुद' है ॥ २८८२–८४ ॥

प्रबन्धे जाति पञ्च—मेदिनी, नन्दिनी।
दीपनी, पावनी, तारावली—कहे मुनि ॥ २८८५ ॥
षड़ङ्ग मेदिनी नाम, पञ्चाङ्ग नन्दिनी।
चारि अङ्ग दीपनी ए त्रयाङ्ग पावनी ॥ २८८६ ॥
अङ्गद्वय तारावली—गीतविज्ञ कहे।
इथे जान एकाङ्ग प्रबन्ध सिद्ध नहे ॥ २८८७ ॥

अनुवाद—मुनि भरत के मतानुसार प्रबन्ध की पाँच जातियाँ हैं, जो इस प्रकार हैं—मोदिनी, नन्दिनी, दीपनी, पावनी और तारावली। छः अंग युक्त मेदिनी, पाँच अंग युक्त नन्दिनी, चार अंगयुक्त दीपनी, तीन अंग युक्त पावनी और दो अंगयुक्त तारांवली है। गीत विज्ञगण ने ऐसा कहा है। यह भी जानिये कि एकांग युक्त प्रबन्ध सिद्ध नहीं है ॥ २८८५–८७ ॥

तथाहि—

जातयः स्युः प्रबन्धानां पञ्चैव मुनिसम्मताः।
मेदिनी नन्दिनी दीपन्यथ स्यात् पावनी तथा ॥ २८८८ ॥
तारावली तथैतासां लक्षणं प्रतिपाद्यते।
षडङ्गा मेदिनी प्रोक्ता, पञ्चाङ्गा नन्दिनी तथा ॥ २८८९ ॥
दीपनी चतुरङ्गा स्यात् पावनी त्र्यङ्गिका मता।
द्व्यङ्गा तारावली प्रोक्ता पुराणैर्गीतवेदिभिः ॥ २८९० ॥

(एतेन एकाङ्गप्रबन्धो न भवतीति प्रतिपादितम्)

अन्वय—प्रबन्धानां (गीतानां) मुनिसम्मताः (भरतकथिताः) पञ्च एव जातयः स्युः—मेदिनी, नन्दिनी, दीपनी, पावनी तथा तारावली। तथा एतासां (जातीनां) लक्षणं प्रतिपाद्यते (कथ्यते)। पुराणैः गीतवेदिभिः मेदिनी जातिः षडङ्गा (षडङ्गयुक्ता) तथा नन्दिनी पञ्चाङ्गा प्रोक्ता, दीपनी चतुरङ्गा स्यात्, पावनी त्र्यङ्गिका मता, तारावली द्व्यङ्गा (अङ्गद्वययुक्ता) प्रोक्ता ॥ २८८८–९० ॥

अनुवाद—भरत मुनि के अनुसार प्रबन्ध गीत की मात्र पांच जातियां होती हैं—मेदिनी, नन्दिनी, दीपनी, पावनी और तारावली। इन जातियों के लक्षण इस प्रकार हैं। प्राचीन संगीतज्ञगण ने छः अंग युक्त गीत को मोदिनी, पांच अंगयुक्त को नन्दिनी, चार अंगयुक्त को दीपनी, तीन अंगयुक्त को पावनी एवं दो अंगयुक्त को तारावली कहा है। (इससे यह प्रतिपन्न हुआ कि एक अंगयुक्त प्रबन्धगीत नहीं होता) ॥ २८८८–६० ॥

संगीतपारिजाते—

प्रबन्धजातयः पञ्च वर्त्तन्ते ताः क्रमेण च।
षड्भिरङ्गैर्मेदिनी स्यान्नन्दिनी पञ्चभिर्भवेत् ॥ २८६१ ॥
चतुर्भिर्दीपनी प्रोक्ता त्रिभिरङ्गैस्तु पावनी।
द्वाभ्यां तारावली जातिरङ्गाभ्यामुपजायते ॥ २८६२ ॥

अन्वय—प्रबन्धजातयः पञ्च (भवन्ति), ताश्च (एवं) क्रमेण वर्त्तन्ते—षड्भिः अङ्गैः मेदिनी स्यात्, पञ्चभिः (अङ्गैः) नन्दिनी भवेत्, चतुर्भिः (अङ्गैः) दीपनी प्रोक्ता, त्रिभिः अङ्गैः तु पावनी (भवति), द्वाभ्यां अङ्गाभ्यां तारावली जातिः उपजायते ॥ २८६१–६२ ॥

अनुवाद—संगीतपारिजात में भी है—प्रबन्ध की जातियां पांच हैं, जो क्रमशः इस प्रकार व्यवस्थित हैं। छः अङ्गों से मेदिनी जाति होती है, पांच अंगों से नन्दिनी, चार अंगों से दीपनी, तीन अंगों से पावनी और दो अंगों से तारावली जाति उत्पन्न होती है ॥ २८६१–६२ ॥

शुद्ध प्रबन्धेर भेद अन्त नाहि हय।
विविध प्रकारे संगीतज्ञ निरूपय ॥ २८६३ ॥

अनुवाद—शुद्ध प्रबन्ध के अनन्त भेद हैं, जिनका संगीतज्ञ विविध प्रकार से निरूपण करते हैं ॥ २८६३ ॥

तथाहि—

भेदः शुद्धप्रबन्धानामानन्त्यादेक एव हि ॥ २८६४ ॥

अनुवाद—शुद्ध प्रबन्ध की अनन्तता के कारण इसका एक ही प्रकार स्वीकृत है ॥ २८६४ ॥

तथाहि—

तालेनैकेन वाद्याभ्यां त्रिभिर्वा बहुभिस्तथा।
प्रबन्धान् सुकविर्नूनं यथेच्छमुपकल्पयेत् ॥ २८६५ ॥

अन्वय—सुकविः एकेन तालेन (तथा) वाद्याभ्यां त्रिभिः बहुभिः वा वाद्यैः यथेच्छं (इच्छानुरूपं) प्रवन्धान् (गीतानि) नूनं (निःसन्देहं उपकल्पयेत् (रचयितुं शक्नुयात्) ॥ २८९५ ॥

अनुवाद—ऐसा होने पर भी उत्तम कवि एक ताल में दो, तीन या कई वाद्यों के साथ इच्छानुरूप निश्चय ही सकल गीतों की रचना कर सकते हैं ॥ २८९५ ॥

किञ्च—

बहुतालाः प्रवन्धास्तु रागैर्बहुभिरेव च ।
एकरागेण वा कल्प्याः पाठादीनां विधानतः ॥ २८९६ ॥
भेदा बहुतरास्तेषां कस्तान् कात्स्न्र्येन वक्ष्यति ॥ २८९७ ॥

अन्वय—बहुतालाः (अनेकतालविशिष्टाः) प्रवन्धाः तु एकरागेण (एकनैव रागेण) बहुभिः रागैः वा पाठादीनां विधानतः (वाद्याक्षरादीन् सन्निवेश्य) कल्प्याः (कर्त्तव्याः) । तेषां (बहुतालप्रवन्धानां) बहुतराः भेदाः सन्ति), कः (जनः) तान् (भेदान्) कार्त्स्न्येन (सम्पूर्णभावेन) वक्ष्यति ॥ २८९६–९७ ॥

अनुवाद—ऐसा भी वर्णन है—अनेक तालविष्ट प्रवन्ध की एक या अनेक रागों में वाद्याक्षर प्रभृति के विधान से रचना की जा सकती है । उनके अनेक भेद हैं । इन सब भेदों का सम्पूर्ण भाव से कौन वर्णन कर सकता है ।। २८९६–९७ ॥

तदुक्तम्—

न रागाणां न तालानां न वाद्यानां विशेषतः ।
नापि प्रबन्धगीतानामन्तो जगति विद्यते । इति ॥ २८९८ ॥

अन्वय—तत् (अतः कारणात्) उक्तं (यत्) जगति रागाणां अन्तः न विद्यते, (तथा) तालानां वाद्यानां (च) न, विशेषतः प्रबन्धगीतानां (अपि) च नान्तो (विद्यते) इति ॥ २८९८ ॥

अनुवाद—अतः कहा गया है कि राग, ताल, वाद्य विशेषतः प्रबन्धगीत का इस जगत् में अन्त नहीं है ॥ २८९८ ॥

अहे श्रीनिवास ! कृष्णप्रियासह रासे ।
ब्रह्मादि-अगम्य शुद्ध प्रबन्ध प्रकाशे ॥ २८९९ ॥
गाने मग्न राइ कानु-शोभा निरखिया ।
वृन्दादेवी आनन्दे धरिते नारे हिया ॥ २९०० ॥
श्रीकृष्ण–राधिका-गुण–महिमा वर्णने ।
करये निदेश शुक-शारी–पिकगणे ॥ २९०१ ॥

वृन्दादेशे हर्षे शुक-शारी-पिकगण।
श्रीकृष्ण-राधिका-गुण करये वर्णन ॥ २९०२ ॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! रास में श्रीकृष्ण राधिका के साथ शुद्ध प्रबन्ध प्रकाश करते हैं, जो ब्रह्मादि के लिए भी अगम्य है। गायन में मग्न राधाकृष्ण को देखकर वृन्दादेवी के भी आनन्द का अन्त नहीं है। श्रीकृष्ण-राधा की गुण-महिमा का वर्णन करने का निर्देश शुक-सारी-पिक आदि को देती है। वृन्दावन में शुक-सारी-पिक हर्षित होकर श्रीकृष्ण-राधिका के गुणों का वर्णन करते हैं ॥ २८९९–२९०२ ॥

शुकः प्राह—षडङ्गमेदिनी गीते यथा—

जय जनरञ्जन कञ्जनयन
घन अञ्जननिभ नव नागर ऐ ऐ
गोकुलकुलजाकुलधृति–मोचन
चन्द्रवदन गुणसागर ऐ ऐ ॥ २९०३ ॥
नन्दतनुज व्रजभूषण रसमय।
मञ्जुलभुज मुदवर्द्धन ऐ ऐ।
श्रीवृषभानुतनयाहृदिसम्पद।
मदनार्बुदमदमर्दन ऐ ऐ ॥ २९०४ ॥
गीतनिपुण निधुवन-नयनन्दित।
निरुपम ताण्डवपण्डित ऐ ऐ।
भानुतनयापुलिनाङ्गनपरिसर–
रमणीनिकर–मणिमण्डित ऐ ऐ ॥ २९०५ ॥
वंशीधर धरणीधरकृत बन्धुर
अजरारुण सुन्दर ऐ ऐ।
कुन्दवदन कमनीयकृशोदर
वृन्दाविपिनपुरन्दर ऐ ऐ ॥ २९०६ ॥
कृष्ण केलिकलहैकधुरन्धर धा धा धि धि त ग धेन्न ऐ ऐ ॥
स-सरिगरि नरहरिनाथ एइ अ इति
अइ अइ अतेन्ना ऐ ऐ ॥ २९०७ ॥

शारिका प्राह—

मेदिनी गीते यथा—

जय जगतवन्दिनी विदित नृपनन्दिनी,

राधिका चन्द्रवदनी दुःखमोचनी ।
श्याममनोरञ्जिनी धैर्यभरभञ्जिनी कञ्ज-खञ्जन-
मीनगञ्जिमृगलोचनी ॥ २६०८ ॥
कान्तिजितदामिनी परम अभिरामिणी, भामिनी
सिन्धुकन्यादिमदमर्द्दिनी ।
मञ्जुमृदुहासिनी ललितकलभाषिणी भुवनमोहिनी
ललितादिमुदवर्द्धिनी ॥ २६०९ ॥
सुभगश्रृङ्गारिणी, नव नव विहारिणी वृन्दविपिन-
विनोदिनी, गजगामिनी ।
रासरसरङ्गिणी मधुरतरङ्गिणी सकलरमणीमणि
नरहरिस्वामिनी ॥ २६१० ॥

झान्ता झां झान्ता तात्था रितकतो घुन्ना द्दमिकि
त्रिगओ तकता ता थैया ।
सरि रिगम पमग मम्म गरि सास् साति अइ
तेन्ना तेन्ना तेनां ति अइ ऐ आ ॥ २६११ ॥

पिकः आह—

पञ्चाङ्गनन्दिनी-गीते यथा–
जय जय कृष्ण कृपामय केशव
कमलेक्षण जनरञ्जनु आ ।
युवति कञ्जवन-कुञ्जर मञ्जुप्रिया-
हृदिपञ्जर खञ्जनु आ ॥ २६१२ ॥
बन्धुरवदनचन्द्रमधुरस्मित राधा-
धृतिभरभञ्जनु आ ।
सुन्दर नटवर नन्दतनुज नव
नवतरुणीनयनाञ्जनु आ ॥ २६१३ ॥
सरि गम गम पम मम्मम गरिस
तेन्ना तेन्नति अति अइ इया ।
अइ नरहरि मुदवर्द्धन ऐ ऐ
आइ अति अइ तिया ॥ २६१४ ॥

भावार्थ—इस शुक-सारिकापिक गीत में श्रीकृष्ण एवं श्रीराधिका के रूप लावण्य एवं गुणों का वर्णन है । षड्ग मोदिनी गीत में शुक कहता है कि जनरञ्जन, कञ्ज सम नयन वाले, नवनागर, गुणसागर, नन्दतनुज, व्रजभूषण, गीतनिपुण, निरुपम

ताण्डवपण्डित, वंशीधर श्रीकृष्ण की जय हो, जो वृन्दावन में केलि करते हैं। सारिका ने जगवन्दिनी, नृपनन्दिनी, चन्द्रवदनी, दुःखमोचिनी, श्याममनोरञ्जिनी, मृगलोचनी, मृदुहासिणी, शृंगारिणी, वृन्दाविपिनविनोदिनी, गजगामिनी नरहरि-स्वामिनी श्रीराधा की कीर्ति गायी है। पिक ने कृपामय केशव, जनरञ्जन, सुन्दर नटवर का गुणगान किया है॥ २९०३–१४॥

अहे श्रीनिवास ! पक्षीगण नाना मते।
गाय राधाकृष्णेर सुयश शुद्ध गीते॥ २९१५॥
गीत-प्रबन्धेर भेद कहिल ना हय।
शान्ति, वर्ण, विशेषादि शास्त्रे निरुपय॥ २९१६॥
एलादि दुष्कर ताहे गीत षड़्विंशति।
सुगम दुर्गम शास्त्रे प्रकाशिल इथि॥ २९१७॥
प्रथमेइ पञ्चतालेश्वर नाम हय।
तदुपरि वर्ण-स्वरे भेद चतुष्टय॥ २९१८॥
स्वरादि-वर्ण-स्वर, पाठादि वर्णस्वर।
पदादि वर्णस्वर, तेनादि वर्णस्वर॥ २९१९॥
तदुपरि स्वरार्थमातृका गीत कय।
गीतविज्ञ ऐछे षड्विंशति निरूपय॥ २९२०॥

अनुवाद—हे निवास ! पक्षीगण भिन्न-भिन्न ढंग से राधा-कृष्ण का सुयश-गान शुद्ध गीत में करते हैं। गीत प्रबन्ध का भेद अवर्णनीय है। शास्त्रों में शक्ति, वर्ण विशेष आदि बताये गये हैं। एला आदि दुःसाध्य प्रबन्ध हैं, जिनमें से छब्बीस प्रकार के गीत बताये गये हैं। शास्त्रों में सुगम और दुःसाध्य भेद बताये गये हैं। प्रथम पञ्चतालेश्वर होता है, उसके बाद वर्णस्वर के चार भेद हैं—स्वरादि वर्णस्वर, पाठादि वर्णस्वर, पदादि वर्णस्वर और तेनादि वर्णस्वर। इसके पश्चात् स्वरार्थ-मातृका गीत कहा जाता है। गीतज्ञों ने इस प्रकार छब्बीस (२६) भेद बताये हैं॥ २९१५–२०॥

तथाहि—

एलाद्या दुष्कराः सन्ति प्रबन्धा मुनिभाषिताः।
तेभ्यः षड्विंशतिः प्रोक्ता हरिनायकसूरिणा॥ २९२१॥
कथ्यन्ते क्रमशस्ते च नाममात्रेण केवलम्।
पञ्चतालेश्वरो वर्णस्वरश्चैवाङ्गचारिणी॥ २९२२॥
स्वरार्थमातृका चैव तथा रागकदम्बकः।
स्वराद्यकरणं वर्त्मन्यथ तालार्णवस्तथा॥ २९२३॥

श्रीरङ्गः श्रीविलासश्च पञ्चभङ्गिस्ततः परम् ।
पञ्चाननो मातिलको सिंहनीलस्तथापरः ॥ २६२४ ॥

त्रिभङ्गिर्हंसनीलश्च तथा हरिविलासकः ।
सुदर्शनः स्वराङ्गः श्रीवर्द्धनो हर्षवर्द्धनः ॥ २६२५ ॥

वीरः श्रीमङ्गलश्चैव लाहड़ी च प्रकीर्त्तिता ।
नवरत्नाभिधः प्रोक्तस्तथा सरभनीलकः ॥ २६२६ ॥

कण्ठाभरणनामा चेन्येते षड्विंशतिर्मताः ।
चन्द्रप्रकाशकाद्याश्च विद्यन्ते षट् तथापरे ॥ २६२७ ॥

अनुवाद—भरत मुनि के अनुसार एला प्रभृति दुःसाध्य प्रबन्ध हैं । पण्डित हरिनायक ने इनमें से छब्बीस कहे हैं । इन सब का केवल नामोल्लेख क्रम से किया गया है । यथा—पञ्चतालेश्वर, वर्णस्वर, अङ्गचारिणी, स्वरार्थमातृका, रागकदम्बक, स्वराद्यकरण, तालार्णव, श्रीरङ्ग, श्रीविलास, पञ्चभङ्गि, पञ्चानन, मातिलक, सिंहनील. त्रिभङ्गि, हंसनील, हरिविलास, सुदर्शन, स्वराङ्ग, श्रीवर्धन, हर्षवर्धन, वीर, श्री मङ्गल, लाहड़ी, नवरत्न, सरभनील, कण्ठाभरण । चन्द्रप्रकाशक प्रभृति और भी अन्य छः प्रकार हैं ॥ २६२१–२७ ॥

ए सकल प्रबन्ध-लक्षण सुविदित ।
वर्णे कविगण याते सर्व्वमनोहित ॥ २६२८ ॥

वृन्दादेशे भ्रमर परम कुतुहले ।
स्वरार्थ-प्रबन्ध गाय गुञ्जनेर छले ॥ २६२९ ॥

स्वरार्थ–प्रबन्धाक्षर—सरिगमादय ।
शुद्ध, मिश्र–द्विभेदे यथेच्छा निरूपय ॥ २६३० ॥

अनुवाद—इन सब प्रबन्धों के लक्षण सुविदित हैं, जिनका वर्णन कविगण करते हैं जिससे सबके चित्त को आनन्द मिलता है । वृन्दावन में भ्रमर गुञ्जन के बहाने बड़े कुतुहल से स्वरार्थ-प्रबन्ध गाते हैं । स्वरार्थ-प्रवन्धाक्षर-सरिगमादि हैं, इनके दो भेद हैं—शुद्ध और मिश्र ॥ २६२८–३० ॥

तथाहि—

यत्र स्वराक्षरैरेव वाञ्छितार्थोऽभिधीयते ।
स स्वरार्थो भवेद्द्वेधा शुद्धमिश्रप्रभेदतः ॥ २६३१ ॥
(स्वराक्षरैः सरिगमपधनिभिर्यथेच्छं वाञ्छितार्थोऽभिधीयते चेत्तदा स्वरार्थ इत्यर्थः) ।

अन्वय—यत्र (प्रबन्धे) स्वराक्षरैः (सरिगमादिभिः) एव वाञ्छितार्थः (इष्टार्थः) अभिधीयते (कथ्यते) स स्वरार्थः (भवति) । (स) शुद्ध मिश्रप्रभेदतः द्विधा (द्विप्रकारः) भवेत् ।। २६३१ ।।

अनुवाद—जिस प्रबन्ध में सरिगम प्रभृति स्वराक्षरों द्वारा ही इच्छित अर्थ व्यक्त किया जाता है, उसे स्वरार्थ कहा जाता है। इसके दो प्रकार हैं—शुद्ध और मिश्र। (सरिगमपधनि—इन सकल स्वराक्षरों द्वारा यदि वांछित अर्थ अभिहित होता है तो स्वरार्थ है।) ।। २६३१ ।।

स्वरार्थ प्रबन्ध रङ्गे भृङ्ग प्रकाशय।
शुनि' श्रीललितादि-सखीर सुखोदय ।। २६३२ ।।

अनुवाद—भ्रमर स्वरार्थ-प्रबन्ध में गान करता है, गुञ्जन करता है, जिसे सुनकर ललितादि सखियाँ सुख अनुभव करती हैं ।। २६३२ ।।

तद्यथा--रागः केदारः--

जय रसिकशेखर कृष्ण कोमल अङ्ग अञ्जनघन-त्विषा।
स्मित-अमृतम्रक्षितमुख-मृगाङ्कसुकिरणनिर्म्मलकृतदिशा ।। २६३३ ।।
जित जलज मञ्जु विशाल लोचन तरुणीगणधृतिधनहरा।
व्रजविजयी नव युवराज नटवर वंशीधर अरुणाधरा ।। २६३४ ।।
रतिनाथमदहर मधुरासविलासी सुन्दर निरुपमा।
व्रजरमणीमणि-मुखपद्मपरिमललुब्ध वङ्क रतनसमा ।। २६३५ ।।
नवकुञ्जभूप भुजङ्गदमन मनोज्ञवेश विविधविधा।
घनश्याम-मुदवर्द्धन पमगमम्मगरि मपधनिपधनिधा ।। २६३६ ।।

भावार्थ—राग केदार में स्वरार्थ प्रबन्ध—रसिकशेखर श्रीकृष्ण की जय हो, जिनके मुँह पर स्मित हास्य है और जिससे अमृत की वर्षा हो रही है। निर्मल देह है, विशाल नयन हैं, और वे तरुणियों से घिरे हैं। व्रजविजयी नव युवराज नटवर अरुण अधर पर वंशी लिये हुये हैं, मदन-मद हरण करने वाले, सुन्दर, व्रजरमणियों के मणि नवकुञ्जभूषण, भुजंग-दमनकारी मनोज्ञ वेश धारण किये हुये हैं ।।२६३३–३६।।

ऐछे नाना पक्षिगणे वृन्दा निदेशय।
विविध प्रबन्ध गाने सवे सन्तोषय ।। २६३७ ।।
अहे श्रीनिवास! कृष्णप्रियासह रासे।
शुद्ध गीत प्रबन्धेर सीमा परकाशे ।। २६३८ ।।

शुद्धमध्ये केह शूड़ प्रबन्ध कहय।
केह छायालगमध्ये शूड़ प्रकाशय ॥ २६३६ ॥

अनुवाद—इस प्रकार नाना पक्षी वृन्दावन में विविध प्रबन्ध का गान करते हैं जिससे सबको सन्तोष मिलता है। हे श्रीनिवास ! रास में श्रीकृष्ण राधा के साथ शुद्धगीत प्रबन्ध की सीमा बताते हैं। कोई शुद्ध गीत में शूड़ प्रबन्ध का गान करते हैं और कोई छायालग में शूड़ पेश करते हैं ॥ २६३७–३६ ॥

अथ छायालगः—

शुद्ध-छायालग्नहेतु 'छायालग' कय।
इथे तालवाद्यादि कल्पित 'शूड़' हय ॥ २६४० ॥
बहुताले गुम्फन-ए शूड़ मनोहर।
छायालग-संज्ञा, 'रसालग' नामान्तर ॥ २६४१ ॥

अनुवाद—अब छायालग के विषय में कहते हैं—शुद्ध प्रबन्ध की छाया से संलग्न होने के कारण 'छायालग' कहलाता है। ताल, वाद्य आदि के संयोग से 'शूड़' की कल्पना की जाती है। कई तालों के गुम्फन से 'शूड़' होता है। छायालग 'रसालग' का नामान्तर है ॥ २६४०–४१ ॥

तथाहि—

शुद्धस्य लगति छायां यत्तु छायालगं विदुः।
रञ्जकं तद्भवेत्तालैर्वाद्याद्यैः शूडकल्पितम् ॥ २६४० ॥

(बहुतालानामेकत्र गुम्फनं शूड इत्यर्थः। छायां लगतीत्यनेन शुद्धस्य यत्किञ्चिल्लक्षणेनेदं भवतीत्युक्तमित्यर्थः)।

अन्वय—यत् तु शुद्धस्य (प्रबन्धस्य) छायां (आभासं) लगति (स्पृशति) तत् छायालगं विदुः (कथयन्ति)। तत् (छायालगं) तालैः वाद्याद्यैः शूडकल्पितं (शूड़ेन गुम्फितं) रञ्जकं भवेत् ॥ २६४२ ॥

अनुवाद—जो शुद्ध प्रबन्ध की छाया (आभास से संलग्न रहता है, उसे 'छायालग' कहा जाता है। ताल वाद्य आदि के योग से शूड़ की रचना होती है और वह चित्तरञ्जक होता है। (कई तालों के एकसाथ गुम्फन को शूड़ कहा जाता है। छाया से संलन्न होता है अर्थात् प्रबन्ध के कुछ लक्षण समन्वित होने से इसकी उत्पत्ति होती हैं—यही इसका तात्पर्य है।) ॥ २६४२ ॥

तदुक्तम्—

उक्तानामेव भावानां छायामात्रं भवेद् यदि।
छायालगः स विज्ञेयो मुनिभिर्भरतादिभिः ॥ २६४३ ॥

अन्वय—उक्तानां (शुद्धप्रबन्धस्य) भावानां छायामात्रं यदि भवेत् (यत्र प्रबन्धे) सः भरतादिभिः मुनिभिः छायालगः विज्ञेयः (भवति) ।। २९४३ ।।

अनुवाद—इसीलिए कहा है—पूर्वोक्त शुद्ध प्रबन्ध के रूप की छाया मात्र भी यदि किसी प्रबन्ध में रहे तो उसे भरत आदि मुनियों ने छायालग कहा है ।। २९४३ ।।

अस्य सालगमिति नामान्तरमप्यस्ति ।

तदुक्तं हरिनायकेन—

अथ छायालगो यस्तु शूड़ः स एव सालगः ।। २९४४ ।।

अनुवाद—छायालग का ही दूसरा नाम सालग है। इसलिए हरिनायक ने कहा है, जो छायालग शूड़ है, वही सालग है २९४४ ।।

मतभेदे सालग-शूड़ बहुत्व हय ।
तथा च ध्रुवकादि प्रशस्त निरूपय ।। २९४५ ।।

अनुवाद—ध्रुवक आदि कई भेद सालग-शूड़ के बताये गये हैं ।। २९४५ ।।

तथाहि दामोदर-पञ्चमसारसंहितयोः—

ध्रुवको मण्ठकश्चैव प्रतिमण्ठो निशारुकः ।
वासकः प्रतितालश्च तथान्या चैकतालिका ।
यतिश्च झुमरिश्चेति सालगं शूड ईरितः ।। २९४६ ।।

अनुवाद—संगीत-दामोदर और पञ्चसारसंहिता में है—ध्रुवक, मण्ठक, प्रतिमण्ठ, निशारुक, वासक, प्रतिताल, एकताली, यति, झुमरी—ये सालग-शूड़ के भेद हैं ।। २९४६ ।।

ध्रुवकादीनां भेदमाह—

ध्रुवकाः षोडश प्रोक्ता मण्ठकाः षट् प्रकारकाः ।
प्रतिमण्ठश्च पञ्चैव सप्त ख्याता निशारुकाः ।। २९४७ ।।
चत्वारो वासकाः प्रोक्ताश्चत्वारः प्रतितालकाः ।
एकताली च त्रिविधा चतस्रो यतयो मताः ।। २९४८ ।।
एकैव झुमरिश्चेति सालगाः कथिता इमे ।। २९४९ ।।
केऽप्याहुश्चर्चरीकाद्याः सन्त्यन्ये दश सालगाः ।
ऊनविंशतिरेवं ते भवन्ति भुवि सालगाः ।। २९५० ।।

अनुवाद—ध्रुवक आदि के भेद कहे गये हैं, यथा—ध्रुवक सोलह प्रकार, मण्ठक छः प्रकार, प्रतिमण्ठ पाँच प्रकार, निशारुक सात प्रकार, वासक चार प्रकार, प्रतिताल चार प्रकार, एकताली तीन प्रकार, यति चार प्रकार एवं झुमरी एक प्रकार

है—इस प्रकार सालग वर्णित हैं। कुछ गुणी कहते हैं—चर्च्चरीकादि अन्य दस प्रकार शालग हैं। इस प्रकार उन्नीस प्रकार के सालग हैं ॥ २६४७–५० ॥

ध्रुवकादि-लक्षण दुष्कर अतिशय।
नय ताले शूड़—ए सर्व्वार्थे सुखोदय ॥ २६५१ ॥

अनुवाद—ध्रुवक आदि के लक्षण अत्यन्त दुःसाध्य हैं। नौ तालों में रचित शूड़ सब प्रकार से सुखकारक हैं ॥ २६५१ ॥

तथाहि—

आदिर्यतिर्नसारुश्चाज्ञतालस्त्रिपुटस्तथा ।
रूपको झम्पको मण्ठ एकतालीति कीर्तिताः ॥ २६५२ ॥
एभिस्तु नवभिस्तालैः कथितः शूड़ उच्यते ।
इत्येष रञ्जकः शूड़ो गाने वाद्ये च नर्त्तने ॥ २६५३ ॥

अनुवाद—आदि, यति, नसारु, अज्ञ, त्रिपुट, रूपक, झम्पक, मण्ठ और एकताली—ये नौ प्रकार के ताल कहे गये हैं। इन नौ तालों में रचित होने पर 'शूड़' कहलाता है। इस प्रकार का शूड़—गान, वाद्य और नृत्य में चित्तरञ्जक होता है ॥ २६५२–५३ ॥

शूड़ादि प्रबन्ध भेद विविध प्रकार।
लक्षणोदाहरणादि शास्त्रेते प्रचार ॥ २६५४ ॥
गीते ताल युक्त, ताल बिना शुद्धि नय।
यैछे कर्णधार बिना नौका, तैछे हय ॥ २६५५ ॥
तालशब्द-व्युत्पत्ति अनेक परकार।
आचार्यगणेते ताहा करिला प्रचार ॥ २६५६ ॥

अनुवाद—शूड़ादि प्रबन्ध के विविध प्रकार हैं, जिनके लक्षणों और उदाहरणों का शास्त्रों में उल्लेख है। तालयुक्त होने पर गीत शुद्ध होता है। ताल के बिना गीत शुद्ध नहीं होता और वह उसी प्रकार है जिस प्रकार कर्णधार के बिना नौका। ताल शब्द की व्युत्पत्ति आचार्यों ने कई प्रकार से बतायी है ॥ २६५४–५६ ॥

तथाहि—

विना तालेन गीतादेर्गतिशुद्धिर्न जायते।
कर्णधारं विना नाव इवातस्तान् प्रचक्ष्महे ॥ २६५७ ॥
तथाचार्य्यैस्तालशब्दे व्युत्पत्तिर्बहुधेरिता ॥ २६५८ ॥

अन्वय—तालेन विना गीतादेः (संगीतादेः) गतिशुद्धिः (गानक्रियाविशुद्धिः) न जायते, कर्णधारं विना नाव इव (यथा नावः न शुद्धं गच्छन्तीत्यर्थः)। अतः तान्

(तालान्) प्रचक्ष्महे (कथयामः) । तत्र तालशब्दे बहुधा व्युत्पत्तिः आचार्य्यैः ईरिता (कथिता) ॥ २९५७–५८ ॥

अनुवाद—जिसप्रकार कर्णधार के बिना नौका की गति ठीक नहीं रहती, उसी प्रकार ताल के बिना गीतादि की गति शुद्ध नहीं रहती। अतः ताल के विषय में कहते हैं। आचार्यों ने तालशब्द की व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से कही है ॥ २९५७-५८ ॥

तत्र हरिनायकः—

समयस्य समत्वेन रञ्जकत्वेन चाधिकम् ।
तालयत्येष सङ्गीतं मत्ततालो निगद्यते । इति ॥ २९५९ ॥
(तालयति प्रतिष्ठापयति, तल-धातुः प्रतिष्ठायाम्)

अन्वय—यत् (यस्मात्) एषः (तालः) समयस्य समत्वेन (समताद्वारा) अधिकं रञ्जकत्वेन (रञ्जको भूत्वा) च सङ्गीतं तालयति (प्रतिष्ठापयति), तत् (तस्माद्धेतोः तालः निगद्यते (कथ्यते) ॥ २९५९ ॥

अनुवाद—ताल के सम्बन्ध में हरिनायक ने कहा है—यह समय की समता विधानपूर्वक और अधिक रञ्जकता द्वारा संगीत की स्थिरता सम्पादन करता है, अतः इसे ताल कहा जाता है। ताल धातु का अर्थ प्रतिष्ठा कहा गया है—यह गायन को सुप्रतिष्ठित करता है ॥ २९५९ ॥

संगीतसारे तु—

तकारः ईशो गिरिजा लकार-
स्तालस्ततः स्यात् शिवशक्तियोगात् ।
तलेस्तु धातोर्घञि वेह ताल-
स्तालोऽथवा स्यात्तलयोऽस्तु योगात् ॥ २९६० ॥

अन्वय—तकारः ईशः (शिवः भवति), लकारः गिरिजा (शक्तिः कथ्यते), ततः (तस्मात्) शिवशक्तियोगात् तालः स्यात् । तलेः तु धातोः (परे) घञि (प्रत्यये सति) वा इह तालः (निष्पद्यते), अथवा त-लयोः (शिवशक्त्योः) तु योगात् तालः स्यात् ॥ २९६० ॥

अनुवाद—संगीतसार में है—त-शब्द से शिव और ल-शब्द से शक्ति (गिरीजा) का बोध होता है। अतः शिव-शक्ति के योग से ताल की उत्पत्ति होती है। तल्-धातु में घञ् प्रत्यय जोड़ने से भी ताल शब्द निष्पन्न हो सकता है। अथवा त-कार और ल-कार के योग से ताल शब्द हुआ है ॥ २९६० ॥

रत्नमालायाम्—

तकारः शरजन्मा स्यादकारो विष्णुरुच्यते।
लकारो मारुतः प्रोक्तस्ताले देवा वसन्त्यमी ॥ २६६१ ॥

अन्वय—तकारः शरजन्मा (कार्तिकेयः) स्यात्, अकारः विष्णुः उच्यते, लकारः मारुतः (पवनः) प्रोक्तः, (अतः) ताले अमी देवाः वसन्ति ॥ २६६१ ॥

अनुवाद—रत्नमाला में है—तकार कार्तिकेय, अकार विष्णु, लकार वायु का निर्देश करता है। अतः ताल में सभी देवता अवस्थित हैं ॥ २६६१ ॥

वाचस्पतिस्तु—

हस्ताङ्गुलिप्रसरणाकुञ्चनादिक्रिया हि या।
तया कालस्य मानं यत् स ताल इह कथ्यते ॥ २६६२ ॥

अन्वय—या हि हस्ताङ्गुलिप्रसरणाकुञ्चनादिक्रिया (हस्तयोः अङ्गुलीनां प्रसरणं आकुञ्चनञ्च इत्यादिक्रिया भवति, तया कालस्य मानं परिमाणं यत् (यतः भवेत् ततः) स इह तालः कथ्यते ॥ २६६२ ॥

अनुवाद—वाचस्पति का कहना है—हस्तांगुलियों के प्रसरण और आकुञ्चन की जो क्रिया है, उसके द्वारा काल परिमाण निर्धारित होता है, अतः उसे शास्त्र में ताल कहा गया है ॥ २६६२ ॥

अथ तालानाह—

ताल-चच्चत्पुट, चाचपुटादि प्रधान।
एकाधिक शत ताल सर्व्वत्र प्रमाण ॥ २६६३ ॥

अनुवाद—चच्चत्पुट, चाचपुट आदि एक सौ एक (१०१) तालों की सर्वत्र प्रचार है ॥ २६६३ ॥

तथाहि—

चच्चत्पुटश्चाचपुटः, षट्पितापुत्रकस्तथा।
सम्पक्वेष्टाक, उद्घट्ट आदितालश्च, दर्पणः ॥ २६६४ ॥
चर्चरी सिंहलीलश्च, कन्दर्पः, सिंहविक्रमः।
श्रीरङ्गो, रङ्गलीलश्च, रङ्गतालः, परिक्रमः ॥ २६६५ ॥
प्रत्यङ्गो गजलीलश्च, त्रिभिन्नो वीरविक्रमः।
हंसलीलो, वर्णलीलो, राजचूडामणिस्तथा ॥ २६६६ ॥
रङ्गो द्योतो, राजतालः सिंहविक्रीडितस्तथा।
वनमाली, वर्णतालो, मिश्रो रङ्गप्रदीपकः ॥ २६६७ ॥

हंसनादः, सिंहनादो, मल्लिकामोदसंज्ञकः ।
ततः शरभनीलश्च, रङ्गाभरण एव च ॥ २९६८ ॥
ततः तुरगलीलश्च तस्माच्च सिंहनन्दनः ।
जयश्रीर्विजयानन्दः, प्रतितालोऽद्वितीयकः ॥ २९६९ ॥
मकरन्दः कीर्तितालो, विजयो, जयमङ्गलः ।
राजविद्याधरो, मण्ठो, जयतालः कुडुक्वकः (सुदुर्बलः) ॥ २९७० ॥

ततो निःशारुकः, क्रीडा त्रिभङ्गी कोकिलप्रियः ।
श्रीकान्तो, बिन्दुमाली च, समतालश्च, नन्दनः ॥ २९७१ ॥
उदीक्षणो, मल्लिका (मण्ठिका) च, ढेङ्किका, वर्णमण्ठिका ।
अभिनन्दोऽन्तरक्रीडा, लघुतालश्च, दीपकः ॥ २९७२ ॥

अनङ्गतालो, विषमो, सान्दी (नान्दी) कुन्दमुकुन्दकौ ।
एकताली च, कङ्कालश्चतुस्तालश्च खङ्खुड़ी ॥ २९७३ ॥
अभङ्गो राजझङ्कारस्तथैव लघुशेखरः ।
प्रतापशेखरश्चान्यो, गजझम्पश्चतुर्मुखः ॥ २९७४ ॥

झङ्कारः, प्रतिमण्ठश्च तथा तालस्तृतीयकः ।
तस्मादुपरि विज्ञेयो [वसन्तो ललितः शिवः ॥
करशाखा च षट्तालो वर्धनो वर्धकस्तथा ।
राजनारायणस्तस्माद्विद्धिः परिकीर्त्तितः ॥
मदनश्चैव विज्ञेयः] पार्वतीलोचनस्तथा ॥ २९७५ ॥

ततः सारङ्गतालः, स्यात्ततः श्रीनन्दिवर्धनः ।
लीलाविलोकितश्चान्यो ललितप्रिय एव च ॥ २९७६ ॥
जनकश्चैव, लक्ष्मीशो, रागवर्द्धनसंज्ञकः ।
उत्सवश्चेति तालानामेकेनैवाधिकं शतम् ॥ २९७७ ॥
दामोदरादिष्वेतेषां केषुचिद्दृश्यतेऽन्यथा ।
ऋषीणां मतबाहुल्याद्विकल्पे तेषु का क्षतिः ॥ २९७८ ॥

अनुवाद—एक सौ एक (१०१) तालोंके नाम—चच्चत्पुट, चाचपुट, षट्पिता-पुत्रक, सम्पक्वेष्टाक, उद्घट्ट, आदिताल, दर्पण, चर्चरी, सिंहलील, कन्दर्प, सिंहविक्रम, श्रीरङ्ग, रङ्गलील, रङ्गताल, परिक्रम, प्रत्यङ्ग, गजलील, त्रिभिन्न, वीरविक्रम, हंसलील, वर्णलील, राजचूड़ामणि, रङ्गोद्योत, राजताल, सिंहविक्रीड़ित, वनमाली, वर्णताल, मिश्र, रङ्गप्रदीप, हंसनाद, सिंहनाद, मल्लिकामोद, शरभलील, रङ्गाभरण, तुरगलील, सिंहनन्दन, जयश्री, विजयानन्द, प्रतिताल, द्वितीयक, मकरन्द, कीर्तिताल, विजय, जयमङ्गल, राजविद्याधर, मण्ठ, जयताल, कुड़क्वक (सुदुर्बल), निःशारुक,

क्रीड़ा, त्रिभङ्गी, कोकिलप्रिय, श्रीकान्त, बिन्दुमाली, समताल, नन्दन, उदीक्षण, मल्लिका (मण्ठिका), ढ़ेङ्किका, वर्णमण्ठिका, अभिनन्द, अन्तरक्रीड़ा, लघुताल, दीपक, अनङ्गताल, विषम, सान्दी (नान्दी), कुन्द, मुकुन्द, एकताली, कङ्काल, चतुस्ताल, खंखुड़ी, अभङ्ग, राजझंकार, लघुशेखर, प्रतापशेखर, गजझम्प, चतुर्मुख, झंकार, प्रतिमण्ठ, तृतीयक, ['गीतचन्द्रोदय' के अनुसार—वसन्तललित, शिव, करशाखा, षट्ताल, वर्धन, वर्धक; राजनारायण, मदन) पार्वतीलोचन, सारङ्ग, श्रीनन्दिवर्धन, लीला, विलोकित ललितप्रिय, जनक, लक्ष्मी, ईश, रागवर्धन, एवं उत्सव। संगीत-दोमोदर आदि किसी-किसी ग्रंथ में अन्य रूप में नाम दिये दिखायी देते हैं। ऋषियों के भिन्न मतों के अनुसार नामों से विकल्प होने में क्या क्षति है ॥ २९६४–७८ ॥

ए सकल तालेर लक्षणोदाहरण।
करिलो प्रचार सुखे सङ्गीतज्ञगण ॥ २९७९ ॥
तालाङ्ग पञ्चधा—अनुद्रुतादिक कय।
आर लघुमात्रादि नियम निरूपय ॥ २९८० ॥

अनुवाद—संगीतज्ञों ने इन सब तालों का प्रचार किया है। ताल के अनुद्रुत आदि पाँच अंग हैं और लघुमात्रादि नियम हैं ॥ २९७९–८० ॥

तथाहि—

अनुद्रुतो द्रुतश्चैव लघुर्गुरुस्ततः परम्।
प्लुतश्चैव क्रमेणैवं तालाङ्गानि तु पञ्चधा।
अनुद्रुतं विनान्येषां संज्ञा द-ल-ग-पात्मिका ॥ २९८१ ॥
लध्वेकमात्रञ्च गुरुर्द्विमात्रः, प्लुतस्त्रिमात्रो द्रुतमर्द्धमात्रम्।
अनुद्रुतन्तु द्रुतकार्द्धमात्रं, विराम इत्यस्य भवेच्च नाम ॥ २९८२ ॥
अनुद्रुत—द्रुत—लघु—गुरु—प्लुता इत्याकराः।
एषामाकारो यथा;—लघु (।), गुरु (ऽ) प्लुत (॥। या ऽ)॥२९८३॥

अन्वय—अनुद्रुतः, द्रुतः, लघुः, ततः परं गुरुः प्लुतः च—एवंक्रमेण तालाङ्गानि पञ्चधा (पञ्चविधानि भवन्ति)। अनुद्रुतं विना (परिहाय) अन्येषां (द्रुतादीनां) द-ल-ग-पात्मिकाः (द-ल प्रभृत्याद्याक्षरात्मिकाः) संज्ञाः (भवन्ति)। (तत्र) लघुः एकमात्रः, गुरुः द्विमात्रः, प्लुतः त्रिमात्रः, द्रुतं अर्द्धमात्रं, अनुद्रुतं द्रुतकार्द्धमात्रं (चतुर्थांशमात्रं भवन्ति)। अस्य (अनुद्रुतस्य) विराम इति नाम च भवेत् ॥ २९८१–८३ ॥

अनुवाद—अनुद्रुत, द्रुत, लघु, गुरु, प्लुत—क्रमशः ये ताल के पाँच अंग हैं। अनुद्रुत को छोड़कर अन्य सब की सांकेतिक संज्ञा क्रमशः द, ल, ग और प है।

इनमें लघु एक मात्रा का, गुरु दो मात्रा का, प्लुत तीन मात्रा का, द्रुत अर्धमात्रा का, अनुद्रुत द्रुत की अर्धमात्रा का होता है। अनुद्रुत का अन्य नाम विराम है। अनुद्रुतादि के आकार-चिह्न इस प्रकार हैं—लघु = (।), गुरु = (ऽ), प्लुत(।।। या ऽ̍) ॥ २९८१–८३)

एषां सावधिकघातस्थानमाह—

> द्रुत—हस्ताघात उच्चाङ्गुलिचतुष्टय।
> ल–ग–प–अष्ट, षोल, चतुर्विंशति ए हय ॥ २९८४ ॥

अनुवाद—अब सावधिक घात स्थान के विषय में कहते हैं—चार अंगुलियाँ ऊँची करना द्रुत हस्तक्रिया है। आठ अंगुलियों पर लघु, सोलह अंगुलियों पर गुरु और चौबीस अंगुलियों पर प्लुत होता है ॥ २९८४ ॥

तथाहि—

> द्रुताश्रयन्तु कथितं चतुरङ्गुलमुच्छ्रितम्।
> (उच्छ्रितमुच्चमित्यर्थः)
>
> लघुरष्टाङ्गुलः प्रोक्तो गुरुः स्यात् षोडशाङ्गुलः।
> प्लुतस्त्र्यष्टाङ्गुलश्चानुद्रुतः किञ्चित्करक्रिया ॥ २९८५ ॥

अन्वय—उच्छ्रितं चतुरङ्गुलं द्रुताश्रयं कथितम्। लघुः अष्टाङ्गुलः प्रोक्तः गुरुः षोडशाङ्गुलः स्यात्, प्लुतः त्र्यष्टागुलः (प्रोक्तः) अनुद्रुतः किञ्चित् करक्रिया (करसञ्चालनम्) ॥ २९८५ ॥

अनुवाद—चार अंगुलियाँ ऊँची करने पर द्रुत होता है। आठ अंगुलियों पर लघु, सोलह अंगुलियों पर गुरु, चौबीस अंगुलियों पर प्लुत होता है। किञ्चित् कर-सञ्चालन पर अनुद्रुत होता है ॥ २९८५ ॥

अथैषां धरणप्रकारमाह—

> 'सशब्द' 'निःशब्द' ताल-द्विविधधरण।
> गुरु-प्लुत-द्वयेते 'निःशब्द' प्रयोजन ॥ २९८६ ॥
> तालैक 'सशब्द,' एक 'निःशब्द'-गुरुते।
> प्लुते–एक सशब्द, द्वय निःशब्द, ता' ते ॥ २९८७ ॥
>
> निःशब्दरहित ताल लघु द्रुतद्वय।
> उच्च हस्ताघाते ताल 'सशब्द' कहय ॥ २९८८ ॥

अनुवाद—ताल के दो प्रकार के धरण हैं—'सशब्द' और 'निःशब्दः'। गुरु और प्लुत दोनों में 'निःशब्द' का प्रयोजन है। गुरु में एक सशब्द और एक निःशब्द

होता है। प्लुत में एक सशब्द और दो निःशब्द होते हैं। निःशब्द रहित ताल लघु और दो द्रुत का है। उच्च हस्ताघात को 'सशब्द' कहा जाता है॥ २९८६–८८॥

तथाहि—

सशब्दं शब्दहीनञ्च तालस्य धरणं द्विधा।
उच्चैर्घातः सशब्दः स्यादेक एव लघोः परः॥ २९८९॥
गुरुर्घातद्वयं प्रोक्तमेको नादः परोऽस्वनः।
सोऽप्यार्द्धं याति च लघोर्द्धरनादाद्द्रुत इति॥ २९९०॥
प्लुते घातः सशब्दः स्यादेको घातद्वयं ततः।
तन्निःशब्दमेक ऊर्द्ध्वं प्रपतेदपरस्त्वधः॥ २९९१॥

अन्वय—सशब्दं शब्दहीनञ्च (इति) तालस्य द्विधा (द्विप्रकारं) धरणं (भवति)। (तत्र) उच्चैः घातः सशब्दः स्यात्। लघोः (लघुनामक-तालाङ्गस्य) एक एव परः (निःशब्दो भवति)। गुरोः गुरुनामकतालाङ्गस्य) घातद्वयं प्रोक्तं (तत्र) एकः नादः (सशब्दः) परः (अन्यः) अस्वनः (निःशब्दः स्यात्)। लघोः सः (निःशब्दः) अपि अर्द्धं याति (भवतीत्यर्थः) (ततः) अर्द्धनादात् (सः) द्रुतः इति (भवति) प्लुते एकः घातः सशब्दः स्यात्, ततः (परं) घातद्वयं (निःशब्दं भवति) तत् (तस्मात्) एक ऊद्ध्वंम् अपरः तु अधः प्रपतेत्॥ २९८९–९१॥

अनुवाद—ताल के दो प्रकार के 'धरण' (धारण करना) हैं—सशब्द और निःशब्द। उच्च आघात को सशब्द कहते हैं। लघु तालांग में मात्र एक 'निःशब्द' है। गुरु-तालांग के दो आघात हैं—एक सशब्द और दूसरा निःशब्द। लघु का वही निःशब्द आधा होता है, तब अर्धनाद के कारण उसे 'द्रुत' कहते हैं। प्लुत-तालांग में एक आघात 'सशब्द' और उसके बाद दो आघात 'निःशब्द' हैं। इनमें एक ऊर्ध्व में और दूसरा निम्नपतित होता है॥ २९८९–९१॥

तालेर प्रभेद यत तार नाइ अन्त।
श्रीरासमण्डले सबे हैला मूर्त्तिमन्त॥ २९९२॥
कृष्ण हस्तद्वययोगे मधुर भङ्गिते।
ऐछे ताल धरे, तार उपमा कि दिते॥ २९९३॥
श्रीराधिका अद्भुत भङ्गिमा प्रकाशिया।
हस्ते हस्त संयोजये ईषत् हासिया॥ २९९४॥
हस्ताघात–वलयादिध्वनि–सम्मिलने।
ये अपूर्व हय ताहा वर्णिव कुन (कोन) जने॥ २९९५॥
नानाभाति हस्ताघात नाना ताल गीते।
लक्ष्मी-आदि विस्मय—से उपमा कि दिते?॥ २९९६॥

राधिकार गण यत-सबे चमत्कार।
केह कून (कोन) ताले गीते करये प्रचार ॥ २६६७ ॥
छायालगे गीत ये दुष्कर अतिशय।
ललितासुन्दरी ताहा सुखे प्रकाशय ॥ २६६८ ॥
परम कौतुकी कृष्ण ललितादि प्रति।
'क्षुद्र' गीत गाइते दिलेन अनुमति ॥ २६६९ ॥

अनुवाद—ताल के प्रभेद का अन्त नहीं है। श्रीरासमण्डल में वे सब मूर्त हो उठे हैं। कृष्ण दोनों हाथों से सुन्दर भंगिमा के साथ ताल रख रहे हैं, उसकी क्या उपमा दी जा सकती है। श्रीराधिका अद्भुत भंगिमा का प्रदर्शन कर हाथ से हाथ मिलाकर स्मित हास्य कर रही है। हस्ताघात एवं हस्तवलय से जो अपूर्व रूप बनता है, उसका कौन वर्णन कर सकता है। विविध प्रकार के हस्ताघात और विविध ताल में प्रस्तुत गीत से लक्ष्मी आदि भी विस्मित होती-हैं—इसकी क्या उपमा दी जा सकती है ? राधिका की सखियाँ भी चमत्कृत हैं कि कौन किस ताल में गीत गा रही हैं। छायालग में गान अत्यन्त दुःसाध्य है जिसे सुन्दरी ललिता सहजभाव से प्रस्तुत कर रही हैं। परम कौतुकी कृष्ण ने ललिता आदि सखियों को 'क्षुद्र' गीत गाने की अनुमति प्रदान की ॥ २९९२–९९ ॥

अथ क्षुद्रगीतमाह—

ताल-धातुयुक्त वाक्यमात्र-'क्षुद्र' गीत।
धातुपूर्व्व उक्त, उद्ग्राहादि यथोचित ॥ ३००० ॥

अनुवाद—अब क्षुद्र गीत के विषय में कहते हैं—ताल और धातु से युक्त वाक्य मात्र को 'क्षुद्र' गीत कहा जाता है। धातु के विषय में पहले कहा गया है, उद्-ग्रहादि यथोचित होते हैं ॥ ३००० ॥

तथाहि—

तालधातुयुतं वाक्यमात्रं क्षुद्रमितीर्य्यते ॥ ३००१ ॥

अनुवाद—ताल-धातु युक्त वाक्य मात्र को क्षुद्र गीत कहा जाता है ॥ ३००१ ॥

शुद्ध सालगेर प्राय 'क्षुद्र'-गीत हय।
अन्त्यानुप्रास-प्रशस्त शास्त्रेते कहय ॥ ३००२ ॥
क्षुद्र-गीत भेद-चारि—(१) चित्रपदा आर।
(२) चित्रकला, (३) ध्रुवपदा, (४,पञ्चाली प्रचार ॥ ३००३ ॥

अनुवाद—प्रायः शुद्ध सालग के 'क्षुद्र' गीत होते हैं, और शास्त्रों में कहा गया है कि इनमें अन्त्यानुप्रास होता है। क्षुद्र गीत के चार भेद होते हैं—(१) चित्रपदा, (२) चित्रकला, (३) ध्रुवपदा और पञ्चाली ॥ ३००२–०३ ॥

तथाहि—

तच्चतुर्व्विधमेव स्यात्तत्र चित्रपदाग्रिमा।
चित्रकला ध्रुवपदा पञ्चालीति प्रभेदतः ॥ ३००४ ॥

अन्वय—तत् (क्षुद्रगीतं) चतुर्व्विधं स्यात्, तत्र प्रभेदतः (भेदेषु) चित्रपदा अग्रिमा (प्रथमा भवति), चित्रकला, ध्रुवपदा, पञ्चाली इति (क्रमशः भवन्ति) ॥३००४॥

अनुवाद—क्षुद्रगीत चार प्रकार के हैं। इनमें चित्रपदा प्रथम है, उसके बाद क्रमशः चित्रकला, ध्रुवपदा और पञ्चाली हैं ॥ ३००४ ॥

ए सकल गीतेर लक्षण सुविस्तार।
पद-वैचित्रीते 'चित्रपदाख्या' प्रचार ॥ ३००५ ॥

अनुवाद—इन सब गीतों के लक्षण विस्तृत रूप से कहते हैं। 'चित्रपदा' में पद-वैचित्र्य है ॥ ३००५ ॥

तथाहि—

केवलं पदमात्रेण वैचित्र्यं यत्र दृश्यते।
न धात्वादौ विचित्रत्वं ज्ञेया चित्रपदेति सा ॥ ३००६ ॥
(पदवैचित्र्यन्तु अकठोरानुप्रासप्रसादादिगुण-युक्तत्वम्)
इति चित्रपदा ॥

अन्वय—यत्र (क्षुद्रगीते) केवलं पदमात्रेण वैचित्र्यं दृश्यते, धात्वादौ विचित्रत्वं न (भवेत्) सा चित्रपदा इति (नाम्ना) ज्ञेया ॥ ३००६ ॥

अनुवाद—जिस क्षुद्रगीत में केवल पद का ही वैचित्र्य दिखायी देता है, धातु आदि की विचित्रता नहीं, उसे चित्रपदा जानिये। (यहाँ पदवैचित्र्य शब्द का अर्थ कोमल अनुप्रास और प्रसादादि गुण-वैशिष्ट्य समझना होगा।) इति चित्रपदा ॥

अथ चित्रकला—

चित्रकला—ध्रुवे मात्रा न्यून, अन्य सम।
पादत्रय-अष्टावधि-ए गीत-नियम ॥ ३००७ ॥

अनुवाद—अब चित्रकला के विषय में कहते हैं—चित्रकलागायन का नियम यह है कि ध्रुवपद में मात्रा न्यून हो, अन्य में समान हो और तीन से आठ तक पाद हो तो चित्रकला गीत जानिये ॥ ३००७ ॥

तथाहि—

उद्ग्राहाभोगयोर्मात्रा समा न्यूना ध्रुवे यदि।
त्र्याद्याष्टावधिपादाढ्या ज्ञेया चित्रकला हि सा ॥ ३००८ ॥

अन्वय—यदि उद्ग्राहाभोगयोः मात्रा समा, ध्रुवे न्यूना (स्यात्) तथा त्र्यधाष्टावधिपादाढ्या (त्रिभिरारभ्य अष्टभिः पादैः युक्ता स्यात्) सा हि चित्रकला ज्ञेया ॥ ३००८ ॥

अनुवाद—यदि उद्ग्राह और आभोग मात्रा समान हों, किन्तु ध्रुवपद में न्यून हों एवं तीन से आठ तक पाद-संख्या हो तो उसे चित्रकला जानिये ॥ ३००८ ॥

ध्रुवपदादि-लक्षण सर्व्वत्र विदित।
भाषा, संस्कृते गाय नानाविध गीत ॥ ३००९ ॥
गीत संस्कृत-भाषादि प्रसिद्ध हय।
दिव्यादि-प्रकार संगीतज्ञ निरूपय ॥ ३०१० ॥

अनुवाद—ध्रुवपद आदि के लक्षण सर्वविदित हैं। प्राकृत और संस्कृत में विविध प्रकार के गीत गाये जाते हैं। संस्कृत-प्राकृत मिश्रित भाषा में गीत प्रसिद्ध है। संगीतज्ञ दिव्य आदि प्रकारों का निरूपण करते हैं ॥ ३००९–१० ॥

तदुक्तम्—

दिव्यञ्च मानुषञ्चैव गीतं स्याद्दिव्यमानुषम्।
दिव्यं संस्कृतसम्पन्नं मानुषं प्राकृतोत्थितम् ॥ ३०११ ॥
संस्कृत-प्राकृतोत्थञ्च दिव्यमानुषमुच्यते।
केचिद्देशविशेषोत्थभाषाया मानुषं विदुः ॥ ३०१२ ॥
अङ्गबङ्गकलिङ्गाद्याः देशभाषादिहेतवः।
येषु येषु च देशेषु या भाषाश्चैकवल्लभाः।
तास्तु तत्तज्जनालापादाहृत्य प्रतियोजयेत् ॥ ३०१३ ॥

अन्वय—गीतं दिव्यं, मानुषं, दिव्यमानुषञ्च (इति त्रिप्रकारं भवति)। संस्कृतसम्पन्नं (संस्कृतभाषाया निबद्धं यद्गीतं तत्) दिव्यं (कथ्यते), प्राकृतोत्थितं (प्राकृतभाषया निबद्धं गीतं) मानुषं (उच्यते), संस्कृतप्राकृतोत्थं (संस्कृतेन प्राकृतेन च निबद्धं गीतं) दिव्यमानुषम् उच्यते। केचित् (संगीतज्ञाः) देशविशेषोत्थभाषाया (देशविशेषजातभाषाया निबद्धं गीतं) मानुषं विदुः (कथयन्ति)। अङ्गबङ्गकलिङ्गाद्याः (अङ्ग-बङ्ग-कलिङ्गप्रभृतयोः देशाः) देशभाषादिहेतवः (देशभाषादेरुत्पत्तिस्थानं भवन्ति)। येषु येषु च देशेषु याः भाषाः एकवल्लभाः (एकान्त-प्रियाः अर्थात् प्रचलिताः भवन्ति) तत्तज्जनालापान् (तत्तद्देशवासिजनैरालापक्रमेण) ताः (भाषाः) आहृत्य (ज्ञात्वा गीतेषु) प्रतियोजयेत् ॥ ३०११–१३ ॥

अनुवाद—गीत तीन प्रकार के हैं–दिव्य, मानुष और दिव्य-मानुष। संस्कृत भाषा में रचित गीत-दिव्य हैं, प्राकृत भाषा में रचित गीत—मानुष है, संस्कृत-प्राकृत

मिश्रित भाषा में रचित गीत—दिव्य-मानुष हैं। कुछ गुणी देश विशेषजात भाषा में रचित गीत को 'मानुष' कहते हैं। अंग, बंग, कलिंग आदि देशी भाषाओं के उत्पत्ति स्थल हैं। जिस-जिस देश में जो भाषा सबको विशेष प्रिय हो, उसी में वहाँ के लोग जनकथा से संग्रह कर उनका गीत में संयोजन करें ॥ ३०११–१३ ॥

केह गीत रचनादि-विशेष निरूपय।
सम, अर्द्धसम, विषमाख्या भेदत्रय ॥ ३०१४

अनुवाद—कुछ गुणी गीत की विशेष रचना बताते हैं। गीत के तीन भेद हैं:—सम, अर्धसम और विषम ॥ ३०१४ ॥

तथाहि कोहलीये—

सममर्द्धसमञ्चेति विषमं गीतकं त्रिधा।
पादैः समानमात्रैस्तु चतुर्भिः सममुच्यते ॥ ३०१५ ॥
तृतीयप्रथमौ पादौ समौ तु द्वि-चतुर्थकौ।
जायेते यस्य गीतस्य तदर्द्धसममीरितम् ॥ ३०१६ ॥
चत्वारोऽपि पृथक् पादा यस्य मात्रानुसंख्यया।
यद्गीतं विषमं प्राहुर्मुनयो भरतादयः ॥ ३०१७ ॥

अन्वय—गीतकं (गीतं) समं अर्द्धसमं विषमं च इति त्रिधा (त्रिविधं भवति) समानमात्रैः (समान-संख्यकमात्राविशिष्टैः) चतुर्भिः पादैः (यद्गीतं तत्) समम् उच्यते। यस्य गीतस्य तृतीयप्रथमौ द्विचतुर्थकौ तुः (च) पादौ समौ जायेते तद् (गीतं) अर्द्धसमम् ईरितम्। यस्य (गीतस्य) चत्वारः पादाः अपि (एव) मात्रानु-संख्यया (मात्रा संख्यानेन) पृथक् (भवन्ति) तद्गीतं भरतादयः मुनयः विषमं प्राहुः (कथयन्ति) ॥ ३०१५–१७ ॥

अनुवाद—कोहलीय में है—सम, अर्धसम और विषम—ये गीत के तीन प्रकार हैं। जिसके चारों पाद (चरण) समान मात्राओं के हों, वह गीत सम कहलाता है। जिसमें प्रथम और तृतीय एवं द्वितीय और चतुर्थ पाद (चरण) समान हो, उसे अर्धसम गीत कहते हैं। जिसमें चारों चरणों (पादों) की मात्रा-संख्या पृथक्-पृथक् हो उसे विषम गीत कहते हैं, ऐसा भरत आदि मुनियों ने कहा है ॥३०१५-१७॥

गीते ये विशेष आर अन्ये कि जानय।
श्रीरासविलासे कृष्ण सब प्रकाशय ॥ ३०१८ ॥
सखीगण-गाने कृष्ण उल्लसित मने।
कत प्रशंसिया आलिङ्गये सखीगणे ॥ ३०१९ ॥

सखी-आलिङ्गने राधिकार महासुख।
आने कि जानिबे—गीते बाढ़े ये कौतुक ॥ ३०२० ॥
कहिते कि—गीत-गुण बहुविध हय।
ये सकल श्रीरासमण्डले विलसय ॥ ३०२१ ॥

अनुवाद—गीत में क्या विशेषता है और अन्य में क्या है, इसे श्रीकृष्ण श्रीरासमण्डल में प्रकट करते हैं। सखियों के गायन से उल्लसित मन से श्रीकृष्ण प्रशंसा करते हैं और सखियों का आलिंगन करते हैं। सखियों के आलिंगन से राधिका को जो महासुख होता है, इसे कौन जान सकता है—गीत में कौतुक में वृद्धि होती है। गीत के कई प्रकार के गुण हैं, जो अवर्णनीय है। ये सब श्रीरासमण्डल में विलसित हैं ॥ ३०१८–२१ ॥

अथ गीतगुणाः—

गीत-गुण गीतज्ञ ए करिला प्रचार।
ग्रह, लय, यति, मान विचित्र प्रकार ॥ ३०२२ ॥
धातु-पुनरुक्तताऽत्र, ए नवनवता।
मातुवाक्ये नैकार्थता, राग-सुरम्यता ॥ ३०२३ ॥
गमक, अर्थ-नैर्मल्य, तेन्ना, पाठ स्वर।
विविध आकारे संयोजन मनोहर ॥ ३०२४ ॥
गीतगुण जान एई ग्रहादिक नय।
इथे आर विविध प्रकार भेद हय ॥ ३०२५ ॥

अनुवाद—अब गीत-गुण के विषय में कहते हैं—संगीतज्ञों ने गीत के गुणों का प्रचार किया है जो इस प्रकार है—ग्रह, लय, यति, मान की विचित्रिता, धातु की पुनरुक्ति, नवीनता, मातु-अनेकार्थता, राग-सुरम्यता, गमक, अर्थ की निर्मलता व विशुद्धता, तेन्ना, पाठ और स्वरों का विविध प्रकार से संयोजन। गीत-गुण ग्रहादि ही नहीं, बल्कि इसके और भी विविध प्रकार के भेद होते हैं ॥ ३०२२–२५ ॥

तथाहि—

गीतस्याथ गुणाग्रहोलययती मानस्य वैचित्र्यकं
स्याद्धातोः पुनरुक्तता नवनवत्वं चेति नैकार्थता।
मातो रागसुरम्यताथ गमकश्चार्थस्य नैर्म्मल्यकं
तेन्नानां स्वरपाठयोश्च विविधाकारेण संयोजनम् ॥ ३०२६ ॥

अन्वय—अथ गीतस्य गुणाः (कथ्यन्ते)—ग्रहः, लययती (लयश्च यतिश्च) मानस्य वैचित्र्यकं (विचित्रता), धातोः षड्जादिः पुनरुक्तता, नवनवत्वं च, मातो नैकार्थता, रागसुरम्यता, गमकः च अर्थस्य नैर्म्मल्यकं (निर्म्मलता), तेन्नानां

स्वरपाठयोः (स्वरस्य पाठस्य) च विविधाकारेण (नानाभावेन) संयोजनञ्चेति ।। ३०२६ ।।

अनुवाद—अब गीत के गुण कहते हैं—जैसे—ग्रह, लय, यति, विचित्र मान, षड्जादि धातुओं की पुनरुक्ति, नवीनता, मातु की अनेकार्थता, राग की सुरम्यता, गमक, अर्थ की निर्मलता व विशुद्धता, तेन्ना, पाठ और स्वरों का विविध रूप से संयोजन ।। ३०२६ ।।

किञ्च—

एषु सर्व्वेष्वपि गुणेष्वावश्यकतमन्त्विदम् ।
गुणालङ्काररसवद्वाक्यस्य ग्रहणन्तु यत् ।। ३०२७ ।।

अन्वयए—षु (पूर्व्वोक्तेषु) सर्व्वेषु अपि गुणेषु (मध्ये) इदं तु आवश्यकतमं (अवश्यसम्पाद्यतमं) यत् गुणालङ्काररसवद्वाक्यस्य (गुणादियुक्तस्य वाक्यस्य) ग्रहणं (सन्निवेशनम्) ।। ३०२७ ।।

अनुवाद—गुण-अलंकार-रस युक्त वाक्य के समावेश का विधान ही पूर्वोक्त सभी गुणों में सर्वापेक्षा आवश्यक है ।। ३०२७ ।।

ग्रहादि-यतेक गुण कैल निरूपण ।
इहा नाना प्रकारे विस्तारे विज्ञगण ।। ३०२८ ।।

तत्र ग्रहमाह—

ग्रह—अनागत,सम, अतीत-ए त्रय ।
अनागत-ग्रहादि-ए संज्ञा तिन हय ।। ३०२९ ।।

अनुवाद—ग्रह आदि जितने गुण हैं, उनका निरूपण किया गया है । गुणियों ने इनका नाना प्रकार से विस्तृत वर्णन किया है । अब ग्रह के विषय में कहते हैं—ग्रह तीन प्रकार के होते हैं—अनागत, सम और अतीत ।। ३०२८–२९ ।।

तथाहि—

तालो गीतगतेः साम्यकारी तस्य ग्रहास्त्रयः ।
अनागत-समातीत-संज्ञाः सर्व्वत्र ते मताः ।। ३०३० ।।

अन्वय—तालः गीतगतेः (गानविस्तारस्य) साम्यकारी तस्य (तालस्य) त्रयः ग्रहाः (भवन्ति)। ते (ग्रहाः (सर्व्वत्र) (सर्व्वशास्त्रेषु) अनागत-समातीत-संज्ञाः (अनागतादिनामानः) मताः ।। ३०३० ।।

अनुवाद—ताल गान की गति का समताविधान कारक है। उसके तीन 'ग्रह' हैं। इनके नाम हैं अनागत, अतीत और सम, जो सब शास्त्रों में अभिहित है ।। ३०३० ।।

अनागतमाह—

गीतारम्भपूर्व्वे ताल ग्रहण हइले।
'अनागत' ग्रह-संज्ञा कहये सकले ॥ ३०३१ ॥

अनुवाद—गीतारम्भ के पूर्व ताल ग्रहण करने को 'अनागत' ग्रह कहा जाता है ॥ ३०३१ ॥

तथाहि—

गीतारम्भाद् यदापूर्व्वं समुच्चार्य्याक्षरद्वयम् ।
तालस्य न्यसनमुक्तस्तदैवानागतग्रहः ॥ ३०३२ ॥

अन्वय—यदा गीतारम्भात् पूर्व्वं अक्षरद्वयं समुच्चार्य्य तालस्य न्यसनं (स्थापनं भवेत्) तदा अनागतग्रह उक्तः ॥ ३०३२ ॥

अनुवाद—जब गीत आरम्भ करने के पूर्व दो अक्षरों का उच्चारण कर ताल की स्थापना की जाती है, तब 'अनागत' ग्रह कहलाता है ॥ ३०३२ ॥

(अत्र गीतादौ यदक्षरमधिकं गृह्यते तदनागतं तालाभ्यन्तरे कदापि न प्रविष्टमित्यर्थः) ॥ ३०३३ ॥

अनुवाद—(यहाँ गीत के आरम्भ में जो अधिक अक्षर बोले जाते हैं, वे 'अनागत' हैं; अर्थात् वे कभी भी ताल में गृहीत नहीं होते) ॥ ३०३३ ॥

सममाह—

समकालोद्भवताल गीत यदि हय।
तवे तार 'समग्रह'-संज्ञा विज्ञे कय ॥ ३०३४ ॥

अनुवाद—जब गीत के उच्चारण के साथ ही समकाल के उद्भव के समय ताल का आरम्भ हो व संगति हो तो विज्ञगण उसे 'समग्रह' कहते हैं ॥ ३०३४ ॥

तथाहि—

गीतोच्चारणमात्रेण यदा तालस्य सङ्गतिः ।
तदा समग्रहः प्रोक्तः समकालसमुद्भवात् ॥ ३०३५ ॥

अन्वय—यदा गीतोच्चारणमात्रेण (गीतोच्चारणसमकाल एव) तालस्य सङ्गतिः (युगपद्गतिः भवति) तदा समकालसमुद्भवात् (समकाले उदयाद्धेतोः) समग्रहः प्रोक्तः ॥ ३०३५ ॥

अनुवाद—जब गीत के उच्चारण के साथ ही साथ ताल की संगति आरम्भ होती है, तब उस सम काल में उदय (गीत और ताल दोनों) के लिए यह 'समग्रह' कहलाता है ॥ ३०३५ ॥

अतीतमाह—

ऐछे अतीत ग्रह, प्रकार बहु इथे ।
सङ्गीतज्ञगण प्रकाशिल नाना मते ॥ ३०३६ ॥

अनुवाद—अब अतीत के विषय में कहते हैं—अतीत ग्रह के कई प्रकार हैं, जिनके बारे में संगीतज्ञों ने भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये हैं ॥ ३०३६ ॥

तथाहि

कला या तु पतिष्यति पश्चात् तां प्रथमे यदि ।
विन्यस्य गृह्यते तालस्तदा तालग्रहः स्मृतः ॥ ३०३७ ॥

अन्वय—यातु कला (तालस्येत्यर्थः) पश्चात् पतिष्यति तां (कलां) प्रथमे विन्यस्य यदि तालः गीयते तदा तालग्रहः स्मृतः ॥ ३०३७ ॥

अनुवाद—ताल का जो अंश बाद में पड़ेगा, यदि उसे पूर्व में स्थापन कर ताल गृहीत किया जाय तब 'तालग्रह' होता है। (यहाँ द्वितीय पंक्ति में तालस्तदा तालग्रहः' के स्थान पर तालस्तदातीतग्रहः' होना चाहिए, अतः यह 'तालग्रह' के स्थान पर 'अतीतग्रह' होगा) ॥ ३०३७ ॥

अथ लयः—

लय—ग्रहादिकक्रिया समता सुरीते ।
द्रुत—विलम्बित-मध्य-भेदत्रय इथे ॥ ३०३८ ॥

अनुवाद—गीत-वाद्य की ग्रहादि क्रिया में समता ही लय है। इसके तीन भेद हैं—विलम्बित, मध्य और द्रुत ॥ ३०३८ ॥

तथाहि—

गीतवाद्यपदन्यासक्रियाणां समता मिथः ।
तथा क्रियातालयोर्व्वा लय इत्युच्यते बुधैः ॥
इति वाचस्पतिः ॥ ३०३६ ॥

अन्वय—गीतवाद्यपदन्यासक्रियाणां (गीतस्य वाद्यस्य च पदस्थापनक्रियाणां) तथा क्रियातालयोः वा मिथः समता लयः (स्यात्) इति बुधैः उच्यते ॥ ३०३६ ॥

अनुवाद—वाचस्पति कहते हैं—गीत और वाद्य की पदस्थापनक्रिया, उसके अनुरूप क्रिया और ताल की परस्पर समता—लय है—पण्डितगण ऐसा कहते हैं ॥

हरिनायकस्तु—

क्रियान्तरेण विश्रान्तिर्लय इत्यभिधीयते ।
स त्रिधा कथितः प्राज्ञैर्द्रुतो मध्यो विलम्बितः ॥ ३०४० ॥
एकमात्रो द्रुतो मध्यो विश्रान्तिद्विगुणाद्द्रुतात् ।
विलम्बितस्तु द्विगुणः सर्व्वेऽमी सर्वतालगाः ॥ ३०४१ ॥

अन्वय—क्रियान्तरेण (गानक्रियायाः अवसरेण) विश्रान्तिः लय इति अभिधीयते। सः (लयः) त्रिधा कथितः प्राज्ञैः द्रुतः मध्यः विलम्बितः (इति)। एकमात्रः द्रुतः (भवति), विश्रान्तिद्विगुणात् मध्यः (भवति) द्रुतात् द्विगुणस्तु विलम्बितः (स्यात्)। सर्व्वे अमी (लयाः) सर्व्वतालगाः (सर्व्वतालेषु गृहीताः) ॥ ३०४०–४१ ॥

अनुवाद—हरिनायक का कहना है—गानक्रिया के बीच विश्राम को लय कहते हैं। गुणीजन इसके तीन भेद बताते हैं, यथा—द्रुत, मध्य और विलम्बित। द्रुत लय में एक मात्रा है, द्रुत का द्विगुण विश्राम मध्यलय है और उससे भी द्विगुण विश्राम विलम्बित लय है। सब तालों में सकल लय अवस्थित है ॥ ३०४०–४१ ॥

केह ताल निरूपण करये इहाते।
लय—गानविशेषरूपत्व सर्व्वमते ॥ ३०४२ ॥

अनुवाद—कुछ गुणी इसमें ताल का निरूपण करते हैं। गानविशेष के रूप के अनुसार लय निर्धारित होती है ॥ ३०४२ ॥

यतिमाह—

लयप्रवर्त्तनेर नियम 'यति' हय।
स्रोतोवहा, समा, गोपुच्छिका-भेदत्रय ॥ ३०४३ ॥
विश्राम-विशेष-ए तिनेते निरूपण।
इथे नाना प्रकार विस्तार विज्ञगण ॥ ३०४४ ॥

अनुवाद—लय-प्रवर्तन का नियम 'यति' है। इसके तीन भेद हैं—स्रोतोवहा, समा और गोपुच्छिका। इन तीन विशेष विश्राम का विज्ञजनों ने नाना प्रकार से विस्तृत निरूपण किया है ॥ ३०४०–४४ ॥

तथाहि—

लयप्रवर्त्तनस्यैव नियमो हि यतिर्भवेत्।
स्रोतोवहा समा गोपुच्छिकेति त्रिविधैव सा ॥ ३०४५ ॥

अन्वय—लयप्रवर्त्तनस्य (लयस्थापनस्य) हि नियमः एव यतिः भवेत्। स्रोतोवहा, समा, गोपुच्छिका इति सा (यतिः) त्रिविधा एव (त्रिविधा भवति) ॥ ३०४५ ॥

अनुवाद—लय-प्रवर्त्तन (लयस्थापन) का नियम ही 'यति' है। यति के तीन प्रकार हैं—स्रोतोवहा, समा और गोपुच्छिका ॥ ३२४५ ॥

स्रतोवहा, समा, गोपुच्छिका यतित्रय।
लक्षण सुगम जान शास्त्रे विस्तारय ॥ ३०४६ ॥

मानमाह—

विश्रान्तिकारिणी तालक्रिया 'मान' कय।
ए 'आवर्त्त-वर्द्धमान'-संज्ञा एक हय॥ ३०४७॥
द्वितीय—'आवर्त्त-हीयमानाख्य' निर्द्धार।
ए द्वय-लक्षण जान सुगम प्रकार॥ ३०४८॥

अनुवाद—यति के तीन भेद हैं यथा-स्रोतोवहा, समा एवं गोपुच्छिका। इनके लक्षण सुगम हैं। इनका शास्त्र में निरूपण किया गया है। अब मान के विषय में कहते हैं—विश्रान्तिकारिणी तालक्रिया को 'मान' कहा जाता है। इसके दो प्रकार हैं—वर्द्धमान आवर्त्त और हीयमान आवर्त्त। इन दोनों के लक्षण सुगम हैं॥ ३०४६–३०४८॥

तथाहि—

विश्रान्तिकारिणी तालक्रिया मानमिहोच्यते।
तालविश्रामकारित्वान्मानं तालसमाप्तिकृत्॥ ३०४९॥
तच्चेद्ध्रुवे द्वितीयायां कलायां निपतेत्तदा।
आवर्तो वर्द्धमानाख्यस्तालो तालज्ञसम्मतः॥ ३०५०॥
मानं ध्रुवे त्वन्तिमायां कलायां निपतेद् यदा।
आवर्तो हीयमानाख्यस्तदा प्रोक्ता मनीषिभिः॥ ३०५१॥

अन्वय—इह (संगीतशास्त्रे) विश्रान्तिकारिणी तालक्रिया (तालस्य कार्य्यं) मानम् उच्यते। तालविश्रामकारित्वात् मानं तालसमाप्तिकृत् (भवति)। तत् (मानं) चेत् ध्रुवे द्वितीयायां कलायां (द्वितीयांशे) निपतेत् तदा तालः तालज्ञ-सम्मतः वर्द्धमानाख्य आवर्त्तः (स्यात्)। मानं यदा ध्रुवे अन्तिमायां कलायां (शेषांशे) निपतेत् तदा मनीषिभिः हीयमानाख्य आवर्त्तः प्रोक्तः॥ ३०४९८५१॥

अनुवाद—संगीतशास्त्र में विश्रान्तिकारिणी तालक्रिया को 'मान' कहा गया है। ताल की विश्रामकारक होने से मान ताल की समाप्ति का ज्ञापक है। जब मान ध्रुवपद की द्वितीय कला में पड़े तो वह ताल की तालज्ञसम्मत 'वर्धमान आवर्त्त' संज्ञा होती है जब मान ध्रुवपद की शेष कला में पड़े तो मनीषीगण उसे 'हीयमान आवर्त्त' कहते हैं॥ ६०४९–५१॥

अथ धातोः पुनरुक्तता—

धातु-पुनरुक्तता-प्रकार कहे भव्य।
गीत-अवयव पुनः पुनः गान नव्य॥ ४०५२॥

मातोर्वाक्यस्य नैकार्थता—

मातुवाक्य नैकार्थता ऐछे निरूपय।
एकार्थवाक्यभङ्गिते प्रयोग ना हय॥ ३०५३॥

धातु-मातु लक्षण पूर्व्वेइ जानाइल।
सुगम प्रकार-तेञि विस्तार नहिल॥ ३०५४॥

रागसुरम्यतामाह—

रागसुरम्यता व्यक्त बहु दुःख नाशे।
कर्णप्रिय आदि गुण रागज्ञ प्रकाशे॥ ३०५५॥

अनुवाद—अब धातु पुनरुक्तता के विषय में कहते हैं—गीत के अवयवों का पुनः पुनः नवीन ढंग से गान धातु-पुनरुक्तता है। मातु-वाक्य की अनेकार्थता के विषय में कहते हैं—इसका यहाँ निरूपण किया जाता है। एक ही प्रकार का अर्थ देने वाली भंगी का प्रयोग नहीं होता। धातु-मातु के लक्षण पहले बताये हैं। ये प्रकार सुगम हैं अतः इन पर विस्तार से प्रकाश महीं डाला गया है। अब राग-सुरम्यता के विषय में कहते हैं—राग की सुरम्यता प्रकट होने से अनेक दुःखों का अन्त होता है। रागज्ञ इनके कर्णप्रिय आदि कई गुण बताते हैं॥ ३०५२-५५॥

तथाहि—

कर्णप्रियं यतिस्थं स्याद्भङ्गयुक्तं सुखावहम्।
मन्द्रमध्यमताराढ्यं रागरम्यत्वमीहितम्॥ ३०५६॥

अनुवाद—कर्णप्रिय, यतिस्थ, भङ्गयुक्त, सुखावह, मन्द्र-मध्य-ताराढ्य (युक्त)- ये सब राग-रम्यता के गुण हैं॥ ३०५६॥

गमकमाह—

स्वरेर कम्पन गमक स्वरूप हय।
श्रोतागण-चित्ते अति सुख उपजय॥ ३०५७॥
गमकेर भेद पञ्चदश परकार।
तिरिपादि-क्रमे सब लक्षण प्रचार॥ ३०५८॥

अनुवाद—स्वर का कम्पन गमक का स्वरूप है, इससे श्रोताओं के चित्त में आनन्द की सृष्टि होती है। गमक के पन्द्रह प्रकार है, तिरिप आदि के लक्षण प्रचलित है॥ ३०५७-५८॥

तथाहि—

स्वरस्य कम्पो गमकः श्रोतृचित्तसुखावहः।
तस्य प्रभेदस्तिरिपः स्फुरितः कम्पितस्तथा॥ ३०५९॥
नील आन्दोलित-बलि-त्रिभिन्न-कुवलाहताः।
उन्नामितः प्लावितश्च हुङ्कृतो मुद्रितस्तथा।
नामितो मिश्रितः पञ्चदशेति परिकीर्त्तितः॥ ३०६०॥

अनुवाद—श्रोताओं के चित्त को आनन्द प्रदान करने वाला स्वरकम्पन—'गमक है। उनके पन्द्रह प्रकार हैं, जैसे—तिरिप, स्फुरित, कम्पित, नील, आन्दोलित, बलि, त्रिभिन्न, कुवल, आहत, उन्नामित, प्लावित, हुङ्कुत, मुद्रित, नामित, मिश्रित ॥ ३०५९–३०६० ॥

एषां लक्षणमाह—

लघिष्ठ-डमरुध्वनिकम्पानुकृति-सुन्दरः।
द्रुततुर्य्यांशवेगेन तिरिपः परिकीर्त्तितः॥ ३०६१ ॥
वेगे द्रुततृतीयांशनिर्म्मिते स्फुरितो मतः।
द्रुतार्द्धमानगानेन कम्पितं गमकं विदुः॥ ३०६२ ॥
नीलस्तु द्रुतवेगेनान्दोलितो लघुवेगतः।
वलिर्विविधवक्रत्वयुक्तो रागवशाद्भवेत् ॥ ३०६३ ॥
त्रिभिन्नस्तु त्रिषु स्थानेष्वविश्रान्तघनस्वरः।
कुवलो वलिरेव स्यात् ग्रंथिलः कण्ठकोमलः॥ ३०६४ ॥
स्वरमग्रिममाहत्य निवृत्तस्त्वाहतो मतः।
उन्नामितः स तु प्रोक्तो यः स्वरानुत्तरानुत्तरोत्तरान् ॥ ३०६५ ॥
क्रमाद्गच्छेत् प्लावितस्तु प्लुतगानेन कम्पनम्।
हृदयङ्गमहुङ्कारगर्भितो हुङ्कृतो मतः ॥ ३०६६ ॥
मुखमुद्रणसम्भूतो मुद्रितो गमको भवेत्।
स्वराणां नमनादुक्तो नामितो ध्वनिवेदिभिः॥ ३०६७ ॥
एतेषां मिलनान्मिश्रस्तस्य स्युः भूरयो भिदाः।
नोक्ताः प्रयोगानर्हत्वादज्ञेयत्वाच्च ते मया॥ ३०६८ ॥

अन्वय—लघिष्ठडमरुध्वनिकम्पानुकृतिसुन्दरः (लघुतमस्य डमरुध्वनिकम्पस्य अनुकरणेन सुन्दरः) द्रुततुर्य्यांशवेगेन (द्रुतस्य चतुर्थांशवेगेन) तिरिपः (गमकः) परिकीर्त्तितः। द्रुततृतीयांशनिर्म्मिते (द्रुतस्य तृतीयांशकृते) वेगे स्फुरितः (गमकः) मतः। द्रुतार्द्धमानगानेन (द्रुतस्य अर्द्धमानेन गानेन) कम्पितं गमक विदुः (कथयन्ति)। द्रुतवेगेन (द्रुतस्येव वेगेन) नीलः (गमकः), लघुवेगतः (लघोः वेगेन) आन्दोलितः (गमकः), रागवशात् विविधवक्रत्वयुक्तः वलिः (गमकः) भवेत्। त्रिषु भिन्नस्थानेषु अविश्रान्तघनस्वरः त्रिभिन्नः (गमको भवति)। ग्रन्थिलः (ग्रन्थियुक्तः) कण्ठकोमलः (कोमलकण्ठेन) वलि एव कुवलः स्यात्। अग्रिम (पूर्व्वस्थं) स्वरम् आहत्य निवृत्तः (यः सः) आहतः (गमकः) मतः। यः तु उत्तरोत्तरान् स्वरान् क्रमात् गच्छेत् स उन्नामितः प्रोक्तः। प्लुतगानेन कम्पनं प्लावितः (गमको भवेत्) हृदयङ्गमहुङ्कारगर्भितः (मनोज्ञेन हुङ्कारेण पूर्णः) हुङ्कृतः (गमकः) मतः। मुखमुद्रणसम्भूतः (मुखं सम्मील्य उद्भूतः यः सः) मुद्रितः (गमकः) भवेत्। स्वराणां नम-

नात् (ह्रस्वीकरणात्) ध्वनिवेदिभिः नामितः (गमकः) उक्तः। एतेषां मिलनाद् मिश्रः (गमको भवति) तस्य (मिश्रस्य) भूरयः भिदाः स्युः। ते (भेदाः) प्रयोगानर्हत्वात् (प्रयोगे अयोग्यत्वात्) अज्ञेयत्वात् (ज्ञातुमशक्यत्वात्) च मया न उक्ताः ॥ ३०६१–६८ ॥

अनुवाद—गमक के सभी प्रकारों के लक्षण कहे जा रहे हैं—डमरु की ध्वनि के लघुतम कम्पन के अनुकरण से सुन्दर एवं द्रुत मात्रा के चतुर्थांश वेग में तिरिप-गमक होती है। द्रुत मात्रा का तृतीयांश ($\frac{1}{3}$) वेग होने पर स्फुरित गमक होती है। द्रुत मात्रा के अर्ध-परिमाण में गान होने पर उसे कम्पित-गमक कहा जाता है। द्रुत मात्रा में वेग होने पर नील गमक, लघु मात्रा में वेग से आन्दोलित-गमक होती है। राग के स्वरूपानुसार नाना प्रकार की वक्रता से युक्त होने पर वलि-गमक होती है। तीन भिन्न स्थानों पर अविश्रान्त घनभाव से यानी भरा हुआ होने पर त्रिभिन्न-गमक होती है। वलिगमक कोमल कण्ठ से ग्रन्थि युक्त होने पर कुवल-गमक होती है। पूर्व स्वर को आघात कर निवृत होने पर आहत गमक होती है। जो गमक उत्तरोत्तर सभी स्वरों का क्रमशः सञ्चरण करती है, उसका नाम उन्नामित गमक है। उच्चगान में कम्पन अथवा प्लुत के मान से कम्पन को प्लावित-गमक कहते हैं। मनोज, सुन्दर हुंकार से पूरित गमक हुंकृत गमक है। मुख बन्द करके जिसका उद्भव होता है, उसका नाम मुद्रित गमक है। स्वरों के नीचे उतारने को अथवा ह्रस्व करने को नामित गमक कहते हैं। इन सब के मिश्रण का नाम मिश्र-गमक है। मिश्रगमक के कई भेद हैं। ये प्रयोग के योग्य नहीं और उनका जानना शक्य नहीं हैं, अतः यहाँ इनका उल्लेख नहीं किया गया है ॥ ३०६१–६८ ॥

एतदभ्यासप्रकारस्तु—

माघपौषनिशायान्तु शेषप्रहरमात्रके ।
साधकः सलिले स्थित्वा गमकान् साधयेदिमान् ॥ ३०६९ ॥

अन्वय—माघपौषनिशायां शेषप्रहरमात्रके (अवशिष्टे सति) साधकः (गीताभ्यासकारी) सलिले स्थित्वा इमान् गमकान् साधयेत् ॥ ३०६९ ॥

अनुवाद—इन गमक-प्रकारों के अभ्यास का तरीका इस प्रकार है—माघ और पौष की रात्रि का अन्तिम प्रहर शेष रहने पर साधक जल में खड़ा रह कर इन सब गमकों की साधना करे ॥ ३०६९ ॥

अथार्थनैर्म्मल्यम्—

उच्चारणे वाक्येर सकल बोध हय ।
अदोष रसयुक्तार्थ नैर्म्मल्य कहय ॥ ३०७० ॥

अनुवाद—अब अर्थ-नैर्म्मल्य का अर्थ कहते हैं—सकल वाक्य उच्चारण में बोधगम्य हो, दोष-रहित हो, रस-युक्त हो तो उसे अर्थ-नैर्मल्य कहते हैं ।। ३०७० ।।

तथाहि—

उच्चारणेन वाकस्य सम्यगर्थावबोधनम् ।
सुखतादोषरसयुगर्थ – नैर्म्मल्यमेव तत् ।। ३०७१ ।।
तेनपाठस्वराणाञ्च वैचित्र्येण निवेशनम् ।
पाठस्वरान्ते तेनस्य प्रयोगो नादितः क्वचित् ।। ३०७२ ।।

अन्वय—वाकस्य उच्चारणेन सुखतादोषरसयुक् (सुखता अदोषः रसश्च एतैर्युक्तं यत्) सम्यक् अर्थावबोधनं (अर्थज्ञानं) तदेव अर्थनैर्म्मल्यं (भवति) । तत्रार्थ-नैर्म्मल्ये) तेन-पाठ-स्वराणां च वैचित्र्येण (विचित्रभावेन) निवेशनं (संस्थापनं कर्त्तव्यमित्यर्थः) । पाठ-स्वरान्ते तेनस्य प्रयोगः (कर्त्तव्यः) क्वचित् (कदापि) न आदितः (प्राक् प्रयोगो विहितः) ।। ३०७१–७२ ।।

अनुवाद—वाक्य के उच्चारण में सुखता-अदोष-रसयुक्त सम्यक् अर्थ-बोध होने पर उसे अर्थ-नैर्मल्य कहते हैं । उसमें तेन-पाठ-स्वर का विचित्र रूप से सन्निवेश होना चाहिए । पाठ और स्वर के बाद तेन का प्रयोग विहित है, तेन का प्रारम्भ में प्रयोग कभी नहीं किया जाता ।। ३०७१–७२ ।।

गुणादिर अभावे ये दोष हय गीते ।
ताहा किछु जानो—ए विस्तारे गीतज्ञेते ।। ३०७३ ।।
तालहीने रोग, धातुहीने धनक्षय ।
धातु-मातु-पद विना गीते रिपु हय ।। ३०७४ ।।

अनुवाद—गीत में गुण आदि के अभाव के कारण जो दोष उत्पन्न होते हैं, उनके बारे में कुछ जानिये—गीतज्ञों ने इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला है । ताल-हीन से रोग, धातु हीन से धन-क्षय होता है और धातु-मातु-पद होने पर गीत शत्रु-सम है ।। ३०६३–७४ ।।

तथाहि—

तालहीने कायरोगो धातुहीने धनक्षयः ।
धातुमातुपदं यत्र नास्ति तद्गीतकं रिपुः ।। ३०७५ ।।

अनुवाद—गीत ताल-रहित होने पर शरीर में रोग उत्पन्न होता है । धातु से रहित होने पर धन क्षय होता है । जिस गीत में धातु-मातु-पद नहीं होते, उस गीत को शत्रु कहते हैं ।। ३०७५ ।।

अथ गीतदोषमाह—

गीते दोष अनेक प्रकार केह कय।
केह अल्पे वाणीस्खलनादि निरूपय॥ ३०७६॥

अनुवाद—कुछ गुणी गीत में अनेक प्रकार के दोष बताते हैं। कुछ वाणी-स्खलन आदि दोष कहते हैं॥ ४०७६॥

तथाहि—

गीतेषु दोषाः स्खलनादिवाण्या-
स्तालाद्यभावेन निबन्धनञ्च।
स्युर्धातुमात्वादिहतिः कटूक्ती
रसादिहानिः श्रवणाप्रियत्वम्॥ ३०७७॥
इत्यादिदोषा गीतेषु बहवो यदि सन्त्यपि।
नोक्तास्ते चेद्ग्रहस्तेषां गाने तत्तद्विलोक्यताम्॥ ३०७८॥

अन्वय—वाण्याः स्खलनादिः (अक्षरस्य शब्दस्य वा स्खलनं), तालाद्यभावेन (तालराहित्येन) निबन्धनं (रचना), धातुमात्वादिहतिः (धातुमातुप्रभृतीनां हीनता) कटूक्तिः रसादिहानिः श्रवणाप्रियत्वं (श्रवणकार्कश्यं) (एवमादयः) दोषा गीतेषु स्युः। यद्यपि गीतेषु इत्यादिदोषाः (पूर्व्वोक्ता दोषाः) बहवः सन्ति, ते न उक्ताः। गाने तेषां (दोषाणां) ग्रहः (प्रकाशः) चेत् भवेत् तत् (तत्र) तत् (दोषादिक) विलोक्यताम्॥ ३०७७–७८॥

अनुवाद—गीत में शब्द का स्खलन, ताल-रहित व ताल बाह्य रचना, धातु-मातु प्रभृति का अभाव, कटु उच्चार, रसादि की हानि, श्रुतिकर्कशता प्रभृति गीत के दोष हैं। यद्यपि गीत में उपरोक्त बहुत से दोष हैं, फिर भी उनका यहाँ विशेष उल्लेख नहीं किया गया है। गान में यदि उन दोषों की प्रतीति हो तो उसी स्थल पर उन पर ध्यान करना चाहिए॥ ३०६७–७८॥

गीत गाय ये जन 'गायक' कहि तारे।
गायक-लक्षण व्यक्त विविध प्रकारे॥ २०७६॥

गायकलक्षणमाह—

गायक त्रिविध—उत्तम, मध्यम, अधम।
ए तिन-लक्षण शास्त्रे कहये सुगम॥ ३०८०॥

अनुवाद—जो गीत गाता है उसे 'गायक' कहा जाता है। गायक के लक्षणों को विविध प्रकार से व्यक्त किया गया है। अब हम गायक-लक्षण कहते हैं—गायक

तीन प्रकार के होते हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। इन तीन प्रकार के गायकों के लक्षण शास्त्र में बताये गये हैं ॥ ६०७६–८० ॥

तथाहि—

गायकस्तु त्रिधा प्रोक्त उत्तमो मध्यमोऽधमः ।
मृष्टध्वनिः सुशारीरो नानारागप्रभेदवित् ॥ ३०८१ ॥
ग्रहमानलयोपेतस्तालज्ञो विजितश्रमः ।
त्रिस्थानस्पर्शगमकेष्वनायासलसद्गतिः ॥ ३०८२ ॥
प्रबन्धगानकुशलः सावधानक्रियापरः ।
आयत्तकण्ठः स्थायिज्ञो निर्दोदो धारणान्वितः ॥ ३०८३ ॥
उत्तमो मध्यमः प्रोक्तो गुणैः कतिपयैरितः ।
गुणयुक्तोऽपि दोषाढ्यो यस्तु सोऽधम उच्यते ॥ ३०८४ ॥

अन्वय—गायकः तु उत्तमः मध्यमः अधम इति त्रिधा (त्रिविधः) प्रोक्तः । (यो हि) मृष्टध्वनिः (शोधितस्वरः) सुशारीरः (सुन्दरावयवः) नानारागप्रभेदवित् (विविधरागभेदज्ञः) ग्रहमानलयोपेतः (अधिकृतग्रहमानलयः) तालज्ञः, विजितश्रमः (अक्लान्तः) त्रिस्थानस्पर्शगमकेषु (त्रिभिन्नादिगमकेषु) अनायासलसद्गतिः (सहजसलीलगतिः) प्रबन्धगानकुशलः, सावधानक्रियापरः (गानक्रियासु प्रमादरहितः) आयतकण्ठः, स्थायिज्ञः, निर्द्दोषः, धारणान्वितः (मेधावी सः) उत्तमः (गायकः) । इतः (एषु मध्ये) कतिपयैः गुणैः (लक्षितो गायकः) मध्यमः प्रोक्तः गुणयुक्तः अपि दोषाढ्यः (बहुदोषयुक्तः यः) स तु अधम उच्यते ॥ ३०८१–८४ ॥

अनुवाद—गायक तीन प्रकार के होते हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। जिस गायक का स्वर मार्जित हो, देह सुगठित हो, विविध राग-रागिनियों के भेद का ज्ञाता हो, ग्रह-मान-लय पर अधिकार-सम्पन्न हो, तालज्ञ हो, क्लान्ति-रहित हो, त्रिभिन्नादि गमक व तीनों स्थानों में सहज और सावलील गतिविशिष्ट हो, प्रबन्धगान में कुशल हो, गानक्रिया में सावधान हो, आयत्तकण्ठ व स्वाधीन कण्ड हो, स्थायिज्ञ हो, दोषरहित हो, धारणाशील या मेधावी हो, वह उत्तम गायक है। इनमें से कुछ गुणों से युक्त हो तो मध्यम और गुणयुक्त होने पर भी वहुदोष-युक्त हो तो गायक अधम है ॥ ३०८१–८४ ॥

शिक्षाकारादिक आर पञ्च परकार ।
शिक्षाय निपुण—शिक्षाकारादि प्रचार ॥ ३०८५ ॥

अनुवाद—शिक्षाकार आदि पाँच प्रकार के गायकों का प्रकार है। शिक्षा देने में जो निपुण है वह शिक्षाकार है ॥ ३०८५ ॥

तथाहि—

शिक्षाकारोऽऽनुमुकारश्च रसिको रञ्जकस्तथा।
भावकश्चेति गीतज्ञाः पञ्चधा गायनं जगुः ॥ ३०८६ ॥
अन्यूनशिक्षणे दक्षः शिक्षाकारो मतः सताम्।
अनुकार इति प्रोक्तः परभङ्गयनुकारकः ॥ ३०८७ ॥
रसाविष्टस्तु रसिको रञ्जकः श्रोतृरञ्जकः।
गीतस्यातिशयाधानाद्भावकः परिकीर्त्तितः ॥ ३०८८ ॥

अन्वय—शिक्षाकारः, अनुकारः, रसिकः, तथा रञ्जकः, भावकः चेति पञ्चधा (पञ्चप्रकारं) गायनं (गायकं) गीतज्ञाः (संगीततत्वज्ञाः) जगुः (उक्तवन्तः)। अन्यूनशिक्षणे (समग्रशिक्षणे) दक्षः (गायकः) सतां (साधूनां) शिक्षाकरः मतः। परभङ्गयनुकारकः परभङ्गीनां अनुकरणकारी) अनुकार इति प्रोक्तः (कथ्यते)। रसाविष्टं (रसामग्नः गायकः) तु रसिकः (परिकीर्त्तितः), श्रोतृरञ्जकः, गीतस्य अतिशयाधानात् भावकः परिकीर्त्तितः ॥ ३०८–८८ ॥

अनुवाद—संगीततत्त्वज्ञ गायकों के पाँच प्रकार बताते हैं—शिक्षाकार, अनुकार, रसिक, रञ्जक और भावक। समग्र शिक्षादान में दक्ष गायक सर्वसम्मत से शिक्षाकार है। अन्यों की भङ्गि व शैली का अनुसरण करने वाला अनुकार है। रसाविष्ट व रस में मग्न गायक रसिक व रसज्ञ है। श्रोताओं के मन को आनन्द करने वाला व रञ्जन करने वाला रञ्जक है। गीत के अतिशय आधान व उसमें विलक्षणता निर्माण करने वाला भावक है ॥ ३०८६–८८ ॥

गायक त्रिविध आर—कहे विज्ञगण।
एक, द्वय, बहुत्व—ए सुगम लक्षण ॥ ३०८० ॥

अनुवाद—विज्ञजनों का कहना है कि गायक और तीन प्रकार के हैं—एकाकी, युगल (द्वय) और वृन्द (बहुत्त्व) ॥ ३०८९ ॥

तथाहि—

एकलो यमलो वृन्दो गायकश्चेति स त्रिधा।
एक एव तु यो गायेदसावेकलगायनः।
स द्वितीयस्तु यमलः स वृन्दो वृन्दगायनः ॥ ३०९० ॥

अनुवाद—अन्य प्रकार से गायक और तीन प्रकार के हैं—एकल, यमल (युग्म) और वृन्द। जो अकेला गान करता है वह 'एकल' गायक है, अन्य एक गायक के साथ गायन करता है वह 'यमल' है, बहु व समूह के साथ गान करने वाला 'वृन्द' गायक है ॥ ३०९० ॥

गायनदोषमाह—

गायकेर दोष हय अनेक प्रकार।
भय, अव्यक्तपदादि शास्त्रे सुप्रचार ॥ ३०६१ ॥

अनुवाद—गायन-दोष कहते हैं—गायक के कई प्रकार के दोष होते हैं—भय, अव्यक्तपद आदि का शास्त्र में उल्लेख है ॥ ३०६१ ॥

तथाहि—

भीतोऽव्यक्तपदः शिरोविचलितः फूत्कारको विस्वरः।
स्यात् सन्दष्टरदो निमीलनयनो ग्रामाव्यवस्थस्तथा।
गायन् वक्रगलः स्वराल्पबहुलः स्याद्रागसंमिश्रकः
कम्पाङ्गोऽनवधानको विरसकृत् काकस्वरः सत्वरः ॥
(काकस्वरः क्रूरव इत्यर्थः) ॥३०६२ ॥

अन्वय—भीतः, अव्यक्तपदः (अस्पष्टवाक्यः), शिरोविचलितः (शिरश्चलिकः) फूत्कारकारकः (फूत्कारकारी), विस्वरः (शुद्धस्वरात् स्खलितः), सन्दृष्टरदः (दृष्टदन्तः), निमीलनयनः (नयने निमील्य गायकः), ग्रामाव्यवस्थः (समारब्ध-ग्रामे अस्थिरः) वक्रगलः, स्वराल्पबहुलः (स्वरस्य दीर्घतासंरक्षणे असमर्थः), रागसंमिश्रकः रागान्तरसंमिश्रकारी) कम्पाङ्गः, अनवधानकः अन्यमनस्कः), विरस-कृत्, काकस्वरः (कर्कशस्वरः), सत्वरः (द्रुतगायकः)—(एवं सदोषः) गायन् स्यात् ॥ ३०६२ ॥

अनुवाद—दोषयुक्त गायक इस प्रकार होते हैं—भीत, अस्पष्ट वाक्य बोलने वाला, मस्तक सञ्चालन करने वाला, फूत्कार-युक्त स्वर की विकृति करने वाला, दांत दिखायी देना, आँखें मूंद लेने वाला, आरम्भ किये गये ग्राम में स्थिर न रह सकने वाला, गला वक्र रखने वाला, स्वरों की दीर्घता के संरक्षण में असमर्थ, एक राग के साथ अन्य राग का मिश्रण करने वाला, अंग में कँपकँपी व अंग सञ्चालन वाला, अन्यमनस्क, विरस करने वाला, कर्कश स्वर वाला और द्रुत गाने वाला ॥ ३०६२ ॥

किञ्च—

बितालको गीततनुप्रसारकः करालकश्छागगलोऽव्यवस्थितः।
उत्फुल्लगण्डस्त्वनुनासिकः स्यादेव हि दुष्टः किल गायनः स्यात् ॥३०६३॥
सन्त्यन्ये बहवो दोषा नोक्ता विस्तरशङ्कया।
ग्रन्थान्तरेभ्यस्तज्ज्ञेया अनुक्ता गानदोषकाः ॥ ३०६४ ॥

अन्वय—वितालकः (तालभङ्गकारी), गीततनुप्रसारकः (गीतदेहस्य दैर्घ्य-कारी), करालकः (भयङ्कराकारः), छागगलः (छागवत् कण्ठध्वनियुक्तः) अव्य-वस्थितः (चञ्चलः), उत्फुल्लगण्डः (गण्डस्फीतिविशिष्टः), अनुनासिकः—गायनः किल एवं (उक्तप्रकारैः दुष्टः (दोषयुक्) स्यात् । अन्ये च बहवः दोषाः सन्ति, (ते) विस्तरशङ्कया न उक्ताः । तत् ते अनुक्ताः गानदोषकाः (गीतदोषाः) ग्रन्था-न्तरेभ्यः ज्ञेयाः ॥ ३०९३ ॥

अनुवाद—और भी—बेताला, गान की मात्रा को दीर्घ करने वाला, भयंकर आकार वाला, बकरे के समान कण्ठध्वनि वाला, चञ्चल प्रकृति वाला, गण्ड (गला) स्फीत कर—फुलाकर गान करने वाला, नाक के स्वर उच्चार करने वाला गायक दोषयुक्त होता है। और भी कई प्रकार के दोष हैं, जिन्हें विस्तार के भय से यहाँ नहीं बताया गया है। अतः अनुक्त दोषों को अन्य ग्रन्थों से जानना चाहिए ॥ ३०९४–९४ ॥

राग यकारादि आर यतेक प्रकार।
सङ्गीतज्ञगण ताहा करिला विस्तार॥ ३०९५ ॥
अप्राकृत ए गीतादि—नाहि दोष लेश।
प्रसङ्गे कहिल किछु करिते उद्देश॥ ३०९६ ॥
गुण-दोष-रहित कृष्ण पुरुष उत्तम।
ये करये लीला सेइ सर्व्व-मनोरम॥ ३०९७ ॥
अलोक पुरुष सेइ, लोकतुल्य लीला।
देखिया शुनिया गले तृण-काष्ठ-शिला॥ ३०९८ ॥
ये से कोनरूपे ताहा करये वर्णन।
दुःसङ्गविमुक्त हैया पाय से चरण॥ ३०९९ ॥
ओहे श्रीनिवास कि कहिव रासरङ्गे।
प्रकाशये कृष्ण से-सकल प्रियासङ्गे॥ ३१०० ॥
नाद, श्रुति, स्वरादि यतेक परकार।
भरतादि मुनिउ ना पाय अन्त तार॥ ३१०१ ॥
ब्रह्मादिर परम विस्मय जन्मे या' ते।
हेन से अद्‌भुत सब प्रकाशये गीते॥ ३१०२ ॥
सुसंस्कृत नाना-देश भाषा गीतगण।
गायेन से-सब रीते करिया वर्णन॥ ३१०३ ॥
क्षणे एका गाय, क्षणे राधिका सहित।
के वर्णिते पारे से दोहार गान-रीत॥ ३१०४ ॥

क्षणे ललितादि सखीगणेर सहिते।
गायेन राधिका-कृष्ण अद्भुत भङ्गिते ।। ३१०५ ।।
से सकल कण्ठध्वनि अमृतेर सार।
ताहे नाना गमकेर अद्भुत सञ्चार ।। ३१०६ ।।
शुनिते से गान केह स्थिर हैते नारे।
उपमार स्थान नाइ भुवन भितरे ।। ३१०७ ।।
यैछे गान तैछे नाना वाद्य महाश्चर्य्य।
वाद्यध्वनि जगत्त्रयेर हरे धैर्य्य ।। ३१०८ ।।

अनुवाद—राग जितनी संख्या में हैं और जितने प्रकार के हैं, उनका संगीतज्ञों ने प्रचार किया है। इन अलौकिक गीत आदि में लेशमात्र भी दोष नहीं है, जिनका यहाँ प्रसंगानुसार कुछ उद्देश्य सहित वर्णन किया गया है। गुणदोषरहित कृष्ण पुरुषोत्तम है और वे जो लीला प्रदर्शित कर रहे हैं, वह सर्व मनोरम है। वह लोक-पुरुष न होते हुए भी लोकतुल्य लीला कर रहे हैं, जिसे देख-सुनकर तृण-काष्ठ-शिला पिघल जाती है। जो भी उसका किसी रूप में वर्णन करता है, वह दुःसंग विमुक्त होकर उस दिव्यरूप का चरणस्पर्श पाता है। हे श्रीनिवास ! रासरंग में श्रीकृष्ण राधिका के साथ जो सब प्रकाश कर रहे हैं, उसका मैं क्या वर्णन करूँ। नाद, श्रुति, स्वर आदि जितने भी प्रकार हैं, भरतादि मुनि भी उनका पार नहीं पा सकते। ब्रह्मादि को भी जिनसे विस्मय होता है, ऐसे सब अद्भुत प्रकारों को गीत में प्रकाशित करते हैं। विभिन्न देशभाषाओं में सुसंस्कृत गीत वर्णन-सह जाते हैं। कभी एकाकी गान करते हैं तो कभी राधिका सहित। इन दोनों की गान-रीति का कौन वर्णन कर सकता है। कभी ललिता आदि सखियाँ सहित राधा कृष्ण अद्भुत भङ्गि से गान करते हैं। यह सब कण्ठध्वनि अमृत-सार है, जिनमें विविध गमकों का अद्भुत सञ्चार है। ऐसे गान को सुनकर कोई भी स्थिर नहीं रह सकता। इस संसार में इसकी उपमा नहीं है। जिस प्रकार का गान है, उसी के अनुरूप नाना प्रकार के वाद्य हैं, जिनसे महा-आश्चर्य होता है। इस वाद्यध्वनि ने तीनों लोकों का धैर्य हरण कर लिया है।। ३०९५-३१०८ ।।

अथ वाद्यमाह—

वाद्ये गीत-ताल-शोभा, वाद्यचतुष्टय।
तत, आनद्ध, शुषिर, घनाख्या शास्त्रे कय ।। ३१०९ ।।
तत—वीणादि, आनद्ध—मुरजादि ह' न।
वंश्यादि—शुषिर, कांस्यतालादिक—घन ।। ३११० ।।

अनुवाद—अब वाद्य के विषय में कहते हैं—गीत एवं ताल की शोभा वाद्य में निहित है। वाद्य चार प्रकार के हैं—तत, आनद्ध, शुषिर और घन, जिनका वर्णन

शास्त्रों में किया गया है। वीणादि तत वाद्य हैं, मुरज आदि आनद्ध वाद्य हैं, वंशी आदि शुषिर वाद्य हैं और कांस्य-करताल आदि घनवाद्य हैं ॥ ३१०१० ॥

तथाहि—

न वाद्येन विना यस्माद् गीतं तालश्च शोभते ।
तस्मान्माङ्गल्यमस्माभिर्वाद्यमत्र निगद्यते ॥ ३१११ ॥
ततानद्धशुषिराणि घनश्चेति चतुर्व्विधम् ।
ततं वीणादिकं वाद्यमानद्धं मुरजादिकम् ।
वंश्यादिकन्तु शुषिरं कांस्य-तालादिकं घनम् ॥ ३११२ ॥

अन्वय—यस्मात् गीतं तालः च वाद्येन विना न शोभते तस्मात् अत्र (शास्त्रे) अस्माभिः माङ्गल्यं (मङ्गलविधायकं) वाद्यं निगद्यते (कथ्यते)। ततानद्धशुषिराणि (ततम् आनद्धं शुषिरं) घनं च इति (वाद्यं) चतुर्व्विधं (भवति)। वीणादिकं (तंत्रीयुक्तं) ततं (कथ्यते), मुरजादिकं (मृदङ्गप्रभृति चर्म्मच्छादितं) आनद्धं, वंश्यादिकं (वंशीप्रभृति सच्छिद्रं धमनेन वादितं) शुषिरं, कांस्य-तालादिकं (कांस्य-करताल प्रभृति धातवानि वाद्यानि) घनं (उच्यते)॥ ३१११–१२ ॥

अनुवाद—गीत एवं ताल वाद्य के बिना शोभा नहीं देता, अतः यहाँ मंगल-विधायक वाद्य के विषय में कहा जा रहा है। वाद्य के चार प्रकार हैं—तत, आनद्ध, शूषिर और घन। वीणा प्रभृति तार युक्त वाद्य को 'तत', मुरज, मृदंग प्रभृति चर्मा-च्छादित वाद्य को 'आनद्ध', मुखवायु द्वारा वादित छिद्रयुक्त वंशी आदि वाद्य को 'शुषिर' एवं कांस्य-करताल प्रभृति धातु निर्मित वाद्यों को 'घन' वाद्य कहते हैं॥ ३१११–१२ ॥

संगीत-दामोदरे—

ततं शुषिरमानद्धं घनमित्थं चतुर्व्विधम् ।
ततं तंत्रीगतं वाद्यं वंशाद्यं शुषिरं तथा ।
चर्म्मावनद्धमानद्धं घनं तालादिकं मतम् ॥ ३११३ ॥

अनुवाद—संगीत दामोदर में है—तत, शुषिर, आनद्ध और घनवाद्य के ये चार प्रकार हैं। तंत्रीगत वाद्य तत, वंश प्रभृति शुषिर, चर्माच्छादित आनद्ध और ताल प्रभृति घन वाद्य हैं। ॥ ३११३ ॥

नाममात्र किछु जानाइये चतुष्टये ।
सङ्गीतज्ञ वाद्यलक्षणादि प्रकाशये ॥ ३११४ ॥

ततं यथा—

तत वाद्य—अलावनी, ब्रह्मवीणा आर ।
किन्नरी, लघुकिन्नरी आदि ए प्रचार ॥ ३११५ ॥

अनुवाद—वाद्यों के चार प्रकारों के नाम मात्र बताकर संगीतज्ञ वाद्य-लक्षण आदि बताते हैं। तत इस प्रकार है—अलावनी, ब्रह्मवीणा, किन्नरी, लघुकिन्नरी आदि इसके भेद हैं ॥ ३११४-१५ ॥

तथाहि सङ्गीतदामोदरे—

अलावनी ब्रह्मवीणा किन्नरी लघुकिन्नरी ।
विपञ्ची वल्लकी ज्येष्ठा चित्रा घोषवती जया ॥ ३११६ ॥
हस्तिका कुब्जिका कूर्म्मी शारङ्गी परिवादिनी ।
त्रिशरी, शतचन्द्री च नकुलौष्ठी च कंसरी ॥ ३११७ ॥
औडम्बरी पिनाकी च निबन्धः पुष्कलस्तथा ।
गदावारणहस्तश्च रुद्रोऽथ शरमण्डलः ।
कपिलासो मधुस्यन्दी घोणेत्यादि ततं भवेत् ॥ ३११८ ॥

अनुवाद—संगीत दामोदर में है—अलावनी, ब्रह्मवीणा, किन्नरी, लघुकिन्नरी, विपञ्ची, वल्लकी, ज्येष्ठा, चित्रा, घोषवती, जया, हस्तिका, कुब्जिका, कूर्मी, शारंगी, परिवादिनी, त्रिशरी, शतचन्द्री, नकुलौष्ठी, कंसरी, औड़म्बरी, पिनाकी, निबन्ध, पुष्कल, गदावारणहस्त, रुद्रवीणा, शरमण्डल, कपिलास, मधुस्यन्दी, घोणा प्रभृति तत व तंत्रीवाद्ययंत्र के विविध प्रकार हैं ॥ ३११६-१८ ॥

तथा च—

अपरा कच्छपी वीणा सैव रूपवति कचित् ॥ ३११९ ॥
(इवमेव रूपवतीत्युच्यत इत्यर्थः । रुद्र इति रुद्रवीणा)

अनुवाद—और एक प्रकार-कच्छपी वीणा है, यही रूपवती वीणा है ॥३११९॥

आनद्धं यथा—

आनद्ध-प्रभेद जानो मर्द्दलाख्या आर ।
मुरज, ढक्का, पटह आदि-ए प्रचार ॥ ३१२० ॥

अनुवाद—आनद्ध वाद्य के विषय में कहते हैं—मर्द्दल, मुरज, ढक्का, पटह आदि आनद्ध वाद्य हैं ॥ ३१२० ॥

तथाहि—

मर्द्दलो मुरजश्चैव ढक्का-पटह-चाङ्गवः ।
पणवः कुण्डली भेरी घण्टावाद्यश्च झर्झरः ॥ ३१२१ ॥

डमरुष्टमकिर्मन्थो हुडुका मड्डुडिम्डिमौ ।
उपाङ्गदर्दुरावित्यादिकमानद्धमीरितम् ॥ ३१२२ ॥

अनुवाद—मर्दल, मुरज, ढक्का, पटह, चाङ्गु, पणव, कुण्डली, भेरी, घण्टावाद्य झर्झर, डमरु, टमकि, मन्थ, हुड़ुका मड्डु, डिण्डिम, उपाङ्ग, दर्दुर इत्यादि आनद्ध वाद्य हैं ॥ ३१२१–२२ ॥

मर्द्दल आनद्ध-श्रेष्ठ, मृदङ्गाख्या तार ।
काष्ठ-मृत्तिका-निर्म्मित–ए द्वय प्रकार ॥ ३१२३ ॥
सर्व्ववाद्योत्तम ए मर्द्दल-संयोगेते ।
सर्व्व वाद्य शोभा पाय-विदित शास्त्रेते ॥ ३१२४ ॥
मृदङ्गे ब्रह्मादि-देव स्थिति निरन्तर ।
परम मङ्गलध्वनि सर्व्वमनोहर ॥ ३१२५ ॥

अनुवाद—आनद्ध वाद्य में मर्दल श्रेष्ठ है । इसे मृदंग कहते हैं । इसके दो प्रकार हैं, काष्ठ निर्मित और मृत्तिका-निर्मित । मर्दल संयोग ये यह सभी वाद्यों में उत्तम है । यह सब वाद्यो में शोभायमान है, यह शास्त्रों में उल्लिखित है । मृदंग में ब्रह्मादि-देव सर्वदा निवास करते हैं अतः सबसे मनोहर है और इसकी ध्वनि परम मङ्गलकारी है ॥ ३१२३–२५ ॥

तथाहि संगीतदर्पणे—

आनद्धे मर्द्दलः श्रेष्ठ इति ॥ ३१२६ ॥

अनुवाद—संगीत दर्पण में हैं—आनद्ध वाद्य में मर्दल श्रेष्ठ है ॥ ३१२६ ॥

सङ्गीतदामोदरे—

मृत्तिकानिर्म्मिताश्चैव मृदङ्गाः परिकीर्त्तिता ।
एवं मर्द्दलकः प्रोक्तः सर्व्ववाद्योत्तमोत्तमः ।
अस्य संयोगमासाद्य सर्व्वं वाद्यञ्च शोभते ॥ ३१२७ ॥

अन्वय—मृदङ्गाः मृत्तिकानिर्म्मिताः चैव (चकारात् काष्ठनिर्म्मितापि) परिकीर्त्तिताः । एवं (अनेन प्रकारेण) मर्द्दलकः सर्व्ववाद्योत्तमोत्तमः (सर्व्वेषाम् उत्तमवाद्यानामपि उत्तमः) प्रोक्तः । अस्य (मर्द्दलकस्य) संयोगं (संगतिं) आसाद्य (प्राप्य) सर्व्वं वाद्यं शोभते ॥ ३१२७ ॥

अनुवाद—संगीतदामोदर में है—मृदंग मृत्तिका (मिट्टी) से निर्मित बताया गया है । चकार से लकड़ी से निर्मित मृदंग बताया गया है । इसी प्रकार मर्दल सभी उत्तम वाद्यों में उत्तम कहा गया है । इसके संयोग से व संगति से अन्य सभी वाद्यों की शोभा बढ़ती है ॥ ३१२७ ॥

संगीतपारिजाते—

मध्यदेशे मृदङ्गस्य ब्रह्मा वसति सर्व्वदा ।
तथा तिष्ठन्ति तल्लोके देवा अत्रापि संस्थिताः ।
सर्व्वदेवमयो यस्मान्मृदङ्गः सर्व्वमङ्गलः ॥ ३१२८ ॥

अन्वय—मृदङ्गस्य मध्यदेशे (मध्यांशे) ब्रह्मा सर्व्वदा वसति । यथा देवाः तल्लोके (ब्रह्मलोके) तिष्ठन्ति (तथा) अत्रापि (मृदङ्गस्य मध्यदेशेऽपि ते देवाः) संस्थिताः । यस्मात् (अयं मृदङ्गः) सर्व्वदेवमयः (ततः) मृदङ्गः सर्व्वमङ्गलः (स्यात्) ॥ ३१२८ ॥

अनुवाद—संगीतपारिजात में है—मृदङ्ग के मध्य भाग में सर्वदा ब्रह्मा अवस्थान करते हैं। जिस प्रकार देवगण ब्रह्मलोक में निवास करते हैं उसी प्रकार इस स्थल में भी देवगण हैं। मृदंग सर्वदेवमय होने के कारण सर्व मंगलकारी है ॥ ३१२८ ॥

मृदङ्ग-निर्माण-वाद्य-भेदादि-लक्षण ।
विविध प्रकारे वर्णे सङ्गीतज्ञगण ॥ ३१२९ ॥
वाद्योद्भव वर्ण केह कहये विंशति ।
केह किछु कहे वर्णविन्यास सुरीति ॥ ३१३० ॥

अनुवाद—मृदंग-निर्माण-वाद्य-भेद आदि लक्षणों का संगीतज्ञगण विविध प्रकार से वर्णन करते हैं। कुछ गुणी वाद्य में उद्भूत वर्णों की संख्या बीस बताते हैं और अन्य गुणी वर्ण-विन्यास की भिन्न रीति बताते हैं। ३१२९–३० ॥

तथाहि पारिजाते—

उमापतिप्रणीतास्ते पाठवर्णाश्च विंशतिरित्यादयः ॥ ३१३१ ॥

अनुवाद—संगीतपारिजात में है—उमापति भगवान शंकर विरचित इन सब पाठवर्णों की संख्या बीस हैं, इत्यादि ॥ ३१३१ ॥

मृदङ्गवादकेर बहुलक्षण हय ।
धीर, वाद्यविशारदादिक केह कय ॥ ३१३२ ॥

अनुवाद—मृदंगवादक के धीर, वाद्यविशारद आदि कई लक्षण होते हैं ॥

तथाहि—

धीरो वाद्यविशारदः प्रवचनः पाठाक्षरव्यञ्जक-
स्तालाभ्यासरतः समस्तगमकप्रौढ़प्रकाशक्षमः ।
नानावाद्यविवर्त्तनर्त्तनपटुः स्वभ्यस्तगीतक्रमः
सन्तुष्टो सुखवादको द्रुतकरो मार्दङ्गिकः कीर्त्तितः ॥ ३१३३ ॥

अन्वय—मार्द्दङ्गिका (मृदङ्गवादकः) धीरः, वाद्यविशारदः (वाद्यनिपुणः) प्रवचनः (वाग्मी पाठाक्षरव्यञ्जकः (वाद्याक्षरः प्रकाशनक्षमः) नानावाद्यविवर्त्त-नर्त्तनपटुः (विविधानां वाद्यानां विवर्त्तनक्रमेण नर्त्तनकुशलः) स्वभ्यस्तगीतक्रमः (गीत-क्रमस्य सुष्ठु सङ्गतिकारकः) सन्तुष्टः सुखवादकः (अनायासेन वादकः) द्रुतकरः (लघुहस्तः) कीर्त्तितः ।। ३१३३ ।।

अनुवाद—मृदङ्गवादक के लक्षण—धीर, वाद्यनिपुण, वाक्पटु, वाद्याक्षर व पाठाक्षर व बोल-प्रकाशक, नाना रूप से वाद्यों में परिवर्तन-भंगि सहित नृत्य में कुशल, गान की गति के साथ संगत में उत्तम रूप से अभ्यस्त, सन्तुष्टचित, प्रयास के बिना सहज व अनायास वादनकारी, लघुहस्त यानी लाघव व हाथों से हल्कापन और सब बोलों को प्रौढ़ि के साथ प्रकट करने वाला ।। ३१३३ ।।

ए सकल विस्तारिल सङ्गीतज्ञगण ।
शुषिर-वाद्य-प्रभेद अति रसायन ।। ३१३४ ।।

अनुवाद—शुषिर वाद्यों के प्रभेद अति रसपूर्ण हैं, जिनके विषय में संगीतज्ञों ने विस्तार से प्रकाश डाला है ।। ३१३४ ।।

अथ शुषिरम्—

शुषिरवाद्य-प्रभेद नाना निरूपण ।
वंशी, पारी, मधुरी, तितिरी, शङ्खादय ।। ३१३५ ।।

अनुवाद—अब शुषिर वाद्यों के विषय में कहते हैं—वंशी, पारी, मधुरी, तित्तिरी, शंख आदि शुषिर वाद्यों के नाना भेदों का निरूपण किया गया है ।।३१३५।।

तथाहि—

वंशोऽथ पारी-मधुरी-तित्तिरी-शङ्ख-काहलाः ।
तोड़ही-मुरली-बुक्का-शृङ्गिका-स्वरनाभयः ।। ३१३६ ।।
शृङ्गं लापिकवंशश्च चर्म्मवंशस्तथापरः ।
एते शुषिरभेदास्तु कथिताः पूर्व्वसूरिभिः ।। ३१३७ ।।

अनुवाद—वंश, पारी, मधुरी, तित्तिरी, शंख, काहल, तोड़ही, मुरली, बुक्का, शृंगिका, स्वरनाभि, शृङ्ग, लापिक वंश एवं चर्मवंश—शुषिर वाद्यों के इन सब भेदों के विषय में पूर्व-गुणीजन बता गये हैं। (शुषिर वाद्य = छिद्रयुक्त वाद्य है) ।। ३१३६–३७ ।।

वंशाख्य-लक्षण शास्त्रे बहुविध हय ।
मञ्जुल, सरल, सर्व्वदोषहीदनाय ।। ३१३८ ।।

अनुवाद—शास्त्र में वंश के लक्षण—मंजुल, सरल, सर्वदोषहीन आदि कई प्रकार के बताये गये हैं ॥ ३१३८ ॥

तथाहि—

मञ्जुलः सरलश्चैव सर्व्वदोषविवर्जितः ।
वैणवः खादिरोऽपि स्याद्रक्तचन्दनजोऽथवा ॥ ३१३९ ॥
श्रीखण्डजोऽथ सौवर्णो दन्तिदन्तमयोऽथवा ।
कनिष्ठाङ्गुलितुल्येन गर्भरन्ध्रेण सोऽन्वितः ॥ इत्यादयः ॥ ३१४० ॥
(वैणवो वंशनिर्म्मित इत्यर्थः)

अन्वय—(वंशी इत्यर्थः) मञ्जुलः (सुन्दरः) सरलः (अवक्रः) सर्व्वदोषविवर्ज्जितः (ग्रन्थिः-दोषरहितः च स्यात्) । (सः) वैणवः (वेणुनिर्म्मितः) खादिरः (खदिरवृक्षनिर्मितः) रक्तचन्दनजः (रक्तचन्दनकाष्ठनिर्म्मितः) श्रीखण्डजः (श्वेतचन्दनवृक्षजातः) सौवर्णः (स्वर्णनिर्म्मितः) दन्तिदन्तमयः (हस्तिदन्तरचितः वा स्यात्) । (स हि) कनिष्ठाङ्गुलितुल्येन (कनिष्ठाङ्गुलिपरिमितेन) गर्भरन्ध्रेण (मध्यच्छिद्रेण) अन्वितः (युक्तः स्यात्) ॥ ३१३९–४० ॥

अनुवाद—शुषिर वाद्यों में वंशी (बांसुरी) सुन्दर, सरल-अवक्र, और ग्रन्थिदोषरहित होनी चाहिए । यह वेणु-निर्मित, खदिर (खैर) काष्ठनिर्मित, रक्तचन्दननिर्मित, श्वेतचन्दननिर्मित, सुवर्ण-निर्मित व हस्दिन्त-निर्मित होगी । इसका गर्भछिद्र (मध्य छिद्र) कनिष्ठांगुलि के परिमाण का होगा ॥ ३१३९–४० ॥

वंशिका-प्रमाण हय–षडङ्गुल हैते ।
अष्टादशाङ्गुल पर्य्यन्त, ए शास्त्रमते ॥ ३१४१ ॥

अनुवाद—शास्त्र-मत के अनुसार वंशी छ अंगुलि से अठारह अंगुलि प्रमाण की होती है ॥ ३१४१ ॥

तथाहि—

पञ्चाङ्गुलोऽयं वंशः स्यादेकैकाङ्गुलिवृद्धितः ।
षडङ्गुलादिनाम्ना स्याद्यावदष्टादशाङ्गुलम् ॥ ३१४२ ॥

अन्वय—अयं वंशः पञ्चाङ्गुलः स्यात् अष्टादशाङ्गुलं यावत् एकैकाङ्गुलिवृद्धितः (एकैकां अङ्गुलिं वर्द्धयित्वा अयं हि) नाम्ना षडंङ्गुलादिः स्यात् ॥ ३१४२ ॥

अनुवाद—यह वंशी कम से कम पाँच अंगुल परिमाण में लम्बी हो सकती है । एक-एक अंगुलि के वृद्धि-कम से षडंगुल, सप्तांगुल आदि अठारह अंगुलि तक यह लम्बी हो सकती है, अतः इसके नाम षडंगुल आदि होते हैं ॥ ३१४२ ॥

अङ्गुलि न्यूनेते वंशी-नाम बहु हय।
महानन्दादि प्रशस्त शास्त्रे निरूपय ॥ ३१४३ ॥

अनुवाद—अंगुलि-परिमाण से वंशी के कई नाम होते हैं। शास्त्र में महानन्द आदि नाम बताये गये हैं ॥ ३१४३ ॥

तथाहि—

महानन्दस्तथा नन्दो विजयस्तु जयस्तथा।
चत्वार उत्तमा वंशा मतङ्गमुनि सन्मताः ॥ ३१४४ ॥
दशाङ्गुलो महानन्दो नन्द एकादशाङ्गुलः।
द्वादशाङ्गुलमानस्तु विजयः परिकीर्त्तितः।
चतुर्दशाङ्गुलमितो जय इत्यभिधीयते ॥ ३१४५ ॥

अन्वय—महानन्दः तथा नन्दः तथा विजयः जयः च—(एते) चत्वारः मतङ्ग-मुनिसम्मताः (मतङ्गमुनेर्मतानुसारतः) उत्तमाः वंशाः (भवन्ति)। (तत्र) दशाङ्गुलः (वंशः) महानन्दः, एकादशाङ्गुलः नन्दः, दशाङ्गुलमानः (द्वादशाङ्गुलिपरिमितः) तु विजयः परिकीर्त्तितः स्यात्। चतुर्द्दशाङ्गुलमितः (वंशः) जय इति अभिधीयते (कथ्यते) ३१४४–४५ ॥

अनुवाद—मतंग मुनि के मतानुसार चार प्रकार की वंशी—महानन्द, नन्द, विजय और जय—उत्तम हैं। इनमें दस अंगुल-परिमित की वंशी का नाम महानन्द, एकादश अंगुल परिमित की वंशी का नाम नन्द, द्वादश अंगुल परिमित की वंशी का नाम विजय और चतुर्दश अंगुल दीर्घ वंशी का नाम जय है ॥ ३१४४–४५ ॥

वंशी गुणदोषादि प्रकाशे विज्ञगण।
ए सब प्रचार—जानाइये वाद्यघन ॥ ३१४६ ॥

अथ घनम्—

घनवाद्ये—करताल, कांस्यवल आर।
जयघण्टा, शुक्तिकादि विविध प्रकार ॥ ३१४७ ॥

अनुवाद—विज्ञजनों ने वंशी के गुण-दोष आदि पर प्रकाश डाला है और इसके बाद घनवाद्य बताये हैं। अब घनवाद्य के विषय में कहते हैं—करताल, कांस्यवल, जयघण्टा, शुक्तिका आदि विविध प्रकार के घनवाद्य हैं ॥ ३१४६–४७ ॥

तथाहि—

करतालः कांस्यवलो जयघण्टाऽथ शुक्तिका।
कम्पिका घटवाद्यञ्च घण्टातोद्यञ्च घर्घरम् ॥ ३१४८ ॥

झञ्झातालश्च मञ्जीरः कर्त्तर्य्युङ्कर एव च।
द्वादशैते मुनीन्द्रेण कथिता घनसंज्ञकाः॥ ३१४६॥

अनुवाद—करताल, कांस्यवल, जयघण्टा, शुक्तिका, कम्पिका, वटवाद्य, घण्टातोद्य, घर्घर, झंझाताल, मञ्जीर, कर्त्तरी, उंकुर—घनवाद्य के ये बारह प्रकार मुनीन्द्र भरत ने बताये हैं॥ ३१४८–४६॥

करतालादि-लक्षण शास्त्रेते प्रचार।
ततादिक वाद्ये देवादिर अधिकार॥ ३१५०॥

अनुवाद—करता आदि के लक्षण शास्त्र में बताये गये हैं। तत आदि वाद्यों पर देवादि का अधिकार है॥ ३१५०॥

तथाहि—

ततं वाद्यञ्च देवानां गन्धर्व्वर्णाञ्च शौषिरम्।
आनद्धं राक्षसानाञ्च किन्नराणां (मानवानां) घनं विदुः॥ ३१५१॥

अन्वय—देवानां ततं, गन्धर्वाणां शौषिरं, राक्षसाना आनद्धं, किन्नराणां (मानवानां इति पाठान्तरं) घनं वाद्यं विदुः (कथयन्ति विज्ञाः इत्यर्थः)॥ ३१५१॥

अनुवाद—वीणा प्रभृति तत वाद्ययंत्र देवताओं के, वंशी प्रभृति शुषिर वाद्य गन्धर्वों के, ढ़ाक प्रभृति आनद्ध वाद्य राक्षसों के एवं करताल प्रभृति घनवाद्य यंत्र मानव व किन्नरों के वाद्य कहे गये हैं॥ ३१५१॥

ए सब वाद्येर महा सौभाग्य उदय।
श्रीरासमण्डले हैलो शोभा अतिशय॥ ३१५२॥
ओहे श्रीनिवास! रासे कि अद्भुत रीत।
वाय नाना वाद्य याते ब्रह्मादि मोहित॥ ३१५३॥
सर्व्ववाद्य-विशारद व्रजेन्द्र तनय।
प्रेयसीवेष्ठित कोटि कन्दर्प मोहय॥ ३१५४॥
बाजायेन वंशी किवा अपूर्व्व भङ्गिते।
त्रिजगते शोभार उपमा नाइ दिते॥ ३१५५॥
मन्द्र, मध्य, तारे स्वरालाप मनोहर।
वंशीध्वनि श्रवणे विह्वल महेश्वर॥ ३१५६॥
गोविन्दमोहिनी राधा रसेर मूरति।
बाजायेन अलावनी-यंत्र शुद्ध-रीति॥ ३१५७॥
षड्ज आर मध्यम, गान्धार-ग्रामत्रय।
यैछे गाने व्यक्त तैछे वाद्ये प्रकाशय॥ ३१५८॥

ललिता कौतुके बाजायेन ब्रह्मवीणा।
श्रुति-आदि वाद्ये प्रकाशिते ये प्रवीणा॥ ३१५६॥
विशाखा-सुन्दरी महामधुरभङ्गिते।
बाजाय कच्छपी-वीणा नानाभेद मते॥ ३१६०॥
रुद्रवीणा बाजायेन सुचित्रा सुन्दरी।
स्वर-जाति-प्रभेद प्रकाशे भङ्गि करि'॥ ३१६१॥
विपञ्ची बाजान रङ्गे चम्पकलतिका।
मूर्च्छना तालादि प्रकाशेन सर्व्वाधिका॥ ३१६२॥
रङ्गदेवी बाजायेन यंत्रक विलास।
ताँहि कि अद्भुत गमकेर परकाश॥ ३१६३॥
सुदेवी सुन्दरी रङ्गे सारङ्गी बाजाय।
नाना राग-प्रभेद, प्रबन्ध॰ व्यक्त ताय॥ ३१६४॥
बाजान किन्नरी तुङ्गविद्या कुतूहले।
करये अमृतवृष्टि श्रीरासमण्डले॥ ३१६५॥
इन्दुलेखा रङ्गे स्वरमण्डल बाजाय।
स्वरेर प्रभेद व्यक्त करये हेलाय॥ ३१६६॥
श्रीराधिका-सखी समूहेर गण यत।
सबे सर्व्वप्रकारे सकल वाद्ये रत॥ ३१६७॥
केह वाय मर्द्दल, मृदङ्ग सर्व्वमते।
प्रकाशे अद्भुत ताल अश्रुत जगते॥ ३१६८॥
केह केह मुरज, उपाङ्गवाद्य वाय।
याहार श्रवणे धैर्य ना रहे हियाय॥ ३१६६॥
केह वाय डमरु परम चातुर्य्येते।
शिवप्रिय डमरु ए विदित जगते॥ ३१७०॥

अनुवाद—इन सब वाद्यों का भाग्य उदय हुआ है कि ये श्रीरासमण्डल में शोभायमान हैं। हे श्रीनिवास! रास की अद्‌भुत रीति है, जहाँ नाना प्रकार के वाद्य बज रहे हैं, जिससे ब्रह्मा आदि मोहित हैं। सभी वाद्य-वादन में विशारद व्रजेन्द्रतनय श्रीकृष्ण प्रेयसी से वेष्ठित हैं, कोटि-कोटि कन्दर्प को मोह लेते हैं। श्रीकृष्ण ऐसी अद्‌भुत भंगिमा से वंशी बजा रहे हैं कि तीनों लोकों में उसकी उपमा नहीं मिलती। मन्द्र, मध्य एवं तार सप्तकों में मनोहर स्वरालाप हो रहा है। इस वंशी-ध्वनि को सुनकर महेश्वर-शिव भी विह्वल हो उठते हैं। गोविन्द मोहिनी राधा रस की प्रतिमूर्ति हैं। वह अलावली वीणा शुद्ध रीति से बजा रही हैं। षड्‌ज, मध्यम

और गान्धार तीनों ग्रामों में जिस प्रकार गान हो रहा है, उसी प्रकार उन्हें वाद्य पर प्रकट किया जा रहा है। ललिता, जो वाद्य पर श्रुति आदि प्रस्तुत करने में प्रवीण है, ब्रह्मवीणा बजा रही है। विशाखा सुन्दरी मधुर भंगिमा से विविध भेद से कच्छपी वीणा बजा रही है। सुन्दरी सुचित्रा रुद्रवीणा बजा रही है और सुन्दर भंगिमा से स्वर-जाति-प्रभेद को प्रस्तुत कर रही है। रास में चम्पकलतिका विपञ्ची वीणा बजा रही है और मूर्छना-ताल आदि प्रकाश कर रही है। रंगदेवी कपिलास (विलास) वीणा बजा रही है जिस पर गमक का प्रदर्शन है। सुन्दरी सुदेवी श्री-रास में सारंगी बजा रही है जिस पर नाना राग-प्रभेद और प्रबन्ध व्यक्त किये जा रहे हैं। तुंगविद्या बड़े कुतूहल से किन्नरी वीणा बजा रही है और श्रीरासमण्डल में रसवृष्टि कर रही है। श्रीरास में इन्दुलेखा स्वरमण्डल बजा रही है और स्वर-भेद प्रकट कर रही है। श्रीराधिका की जितनी सखियाँ हैं, वे सब विविध प्रकार के वाद्य-वादन में रत हैं। कोई मर्दल बजा रही हैं, जो सर्वसम्मत से मृदंग है और अद्‌भुत ताल पेश कर रही हैं, जो इस जगत में अश्रुत हैं। कोई मुरज, कोई उपांग वाद्य बजा रही है, जिसे सुनकर कोई भी अधीर हो उठता है। कोई परम चातुर्य से डमरु बजा रही है। डमरु शिवप्रिय है, यह जगत में विदित है ॥ ३१५२–७० ॥

तथाहि संगीतपारिजाते—

द्विमुष्टिडमरुर्ज्ञेयो द्विमुखो मध्यसूक्ष्मकः।
तदास्यं मुष्टिमानेन सूक्ष्मेण चर्म्मणा युतम् ॥ ३१७१ ॥
तत्र संलग्नसूत्रस्थग्रन्थिभ्यां वाद्यते च सः।
उमापतेः करे नित्यं वाद्यमेतत् सुशोभते ॥ ३१७२ ॥

अन्वय—द्विमुष्टिः (मुष्टिद्वयपरिमितपरिणाहः) द्विमुखः मध्यसूक्ष्मकः (मध्ये सूक्ष्मः) डमरुः ज्ञेयः। मुष्टिमानेन (मुष्टिपरिमाणेन) सूक्ष्मेण चर्म्मणा तदास्यं (तस्य डमरोरास्यं) युतं (भवति)। तत्र (आस्ये) संलग्नसूत्रस्थग्रन्थिभ्यां (संलग्नयोः सूत्रयोः स्थिताभ्यां ग्रन्थिभ्यां) सः (डमरुः) वाद्यते। एतत् वाद्यं उमापतेः (शिवस्य) करे नित्यं सुशोभते ॥ ३१७१-७२ ॥

अनुवाद—संगीत-परिजात में है—डमरु द्विमुष्टिपरिमाण लम्बा, दो मुख युक्त एवं मध्यस्थल में सूक्ष्म होता है। इसके मुख मुष्टिपरिमाण के व सूक्ष्म चर्म द्वारा अच्छादित होते हैं। उसमें एक सूत्र या रस्सी रहती है। उसके अग्र भाग में ग्रन्थि यानी गांठ दी जाती है।—वे रस्सियाँ दो रहती हैं। इन ग्रन्थियों का आघात डमरु के मुख पर करके उसे बजाया जाता है। यह वाद्य महादेव शिव के हाथ में नित्य शोभायमान रहता है ॥ ३१७१–७२ ॥

केह केह करतालादिक वाद्य वाय।
श्रीरासमण्डल व्याप्त वाद्येर घटाय ॥ ३१७३ ॥
श्रीराधिका--सखीसमूहेर गण यत।
नाना वाद्ययुक्ते शोभा के कहिवे कत ॥ ३१७४ ॥
सर्व्ववाद्यध्वनि कि अद्भुत एक मेले।
सुधा वृष्टि करे येन श्रीरास-मण्डले ॥ ३१७५ ॥
श्रीवृन्दादेवीर अति आनन्द अन्तर।
योगान अदभुत वाद्य शास्त्र अगोचर ॥ ३१७६ ॥
राइ-कानु निमग्न हइया वाद्यरसे।
करये नर्त्तन अति मनेर उल्लासे ॥ ३१७७ ॥
ललितादि सखीर आनन्द यथोचित।
करये नर्त्तन--भेद जानाइ किञ्चित् ॥ ३१७८ ॥

अनुवाद—कोई-कोई करताल आदि बजा रही हैं। श्रीरासमण्डल में वाद्य की घटा छा गयी है। श्रीराधिका की जितनी सखियाँ हैं, वे सभी वाद्य-वादन रत हैं। इस शोभा का कौन वर्णन कर सकता है। सभी वाद्यों की ध्वनियों में क्या अद्भुत मेल है, जैसे श्रीरासमण्डल में सुधा-वृष्टि हो रही है। श्रीराधिका के हृदय में अपार आनन्द है, वह ऐसे वाद्य एकत्र कर रही है, जो शास्त्र में भी उल्लिखित नहीं है। इस वाद्य-वादन के रस में निमग्न श्रीकृष्ण और राधा मन के उल्लास से नर्तन कर रहे हैं। ललितादि सखियों को अद्भुत आनन्द हो रहा है और कुछ भेद के साथ नर्त्तन कर रही हैं।। ३१७३-७८ ॥

अथ नृत्यमाह--

नर्त्तन क्रमेते--नाट्य, नृत्य, नृत्त त्रय।
वेदोद्भव ए तिन--नृत्यज्ञ निरूपय ॥ ३१७९ ॥
नर्त्तनं त्रिविधं नाट्यं नृत्यं नृत्तमिति क्रमात् ॥ ३१८० ॥

अनुवाद—नर्त्तन तीन प्रकार के हैं, जो क्रमशः इस प्रकार हैं—नाट्य, नृत्य और नृत्त। नृत्यज्ञों ने कहा है कि इन तीनों का उद्भव वेदों से हुआ। नर्त्तन तीन प्रकार के हैं जो क्रमशः नाट्य, नृत्य और नृत्त हैं ॥ ३१७९-८० ॥

तत्र नाट्यं यथा--

ये लोक-स्वभावावस्था-भेद सुप्रकार।
से नाट्य अङ्गाभिनययुक्त ए प्रकार ॥ ३१८१ ॥

अनुवाद—अब नाट्य इस प्रकार है—अवस्था-भेद के अनुसार जो लोक-स्वभाव है, उसे अंगाभिनय के साथ प्रकट करने को नाट्य कहते हैं ॥ ३१८१ ॥

तथाहि--

योऽयं स्वभावो लोकस्य नानावस्थान्तरात्मकः ।
सोऽङ्गाभिनयनैर्युक्तो नाट्यमित्युच्यते बुधैः ॥ ३१८२ ॥

अन्वय—यः अयं लोकस्य नानावस्थान्तरात्मकः (विविधावस्थाभेदात्मकः) स्वभावः (भवति) सः अङ्गाभिनयनैः (आङ्गिकानुकारैः) युक्तः (सन्) बुधैः नाट्यम् इति उच्यते ॥ ३१८२ ॥

अनुवाद—नाना अवस्थाओं के भेद से युक्त लोगों के जो स्वभाव हैं, वह आंगिक अभिनय युक्त होने पर अर्थात् उसके आंगिक अनुकरण होने पर पण्डितगण उसे नाट्य कहते हैं ॥३१८२ ॥

अपरञ्च—

नाटकस्थितं वाक्यार्थपदार्थाभिनयात्मकम् ।
तच्चादौ भरतेनोक्तं रसभावसमन्वितम् ।
नाटकादिषु तन्नूनमुपयुक्तं मुनीश्वरैः ॥ ३१८३ ॥

अन्वय—वाक्यार्थ-पदार्थाभिनयात्मकं (वाक्यार्थस्य तथा पदार्थस्य अभिनयात्मकम् अनुकरणरूपं द्विविधम् अभिनयनं) नाटकस्थितं (नाटकगतं भवति) रसभावसमन्वितं (रसाश्रयं भावाश्रयं च द्विविधम्) तत् (अनुकरणं) आदौ भरतेन (मुनिना) उक्तम् । तत् (द्विविधम् अभिनयनं) मुनीश्वरैः नाटकादिषु नूनम् उपयुक्तं (प्रयुक्तम्) ॥ ३१८३ ॥

अनुवाद—वाक्यार्थ और पदार्थ के अनुकरण रूप दो प्रकार के अभिनय नाटक में है । रसाश्रय वाक्यार्थ अभिनय और भावाश्रय पदार्थ अभिनय—इन दोनों का पहले भरत मुनि निरूपण कर गये हैं । भरत मुनि ने नाटक आदि में इन दोनों का प्रयोग किया है । नाटकों में उनका पूर्णतया प्रयोग नहीं हो सका है । मुनियों ने जो प्रयोग किये हैं, वे उनमें से कुछ अंश ही हैं अथवा मुनियों ने भरत का अनुसरण किया है, स्वतंत्र कुछ नहीं ॥ ३१८३ ॥

अथ नृत्यम्--

देश-रीत-प्रतीत ये तालादि-आश्रित ।
से नृत्य सविलासाङ्गविक्षेप विदित ॥ ३१८४ ॥

अनुवाद—देश-रीति के अनुसार तालादि आश्रित विलास सहित अंगविक्षेप को नृत्य कहते हैं ॥ ३१८४ ॥

तथाहि—

देशरीत्या प्रतीतो यस्तालमानलयाश्रितः ।
सविलासाङ्गविक्षेपो नृत्यमित्युच्यते बुधैः ॥ ३१८५ ॥

अन्वय—यः देशरीत्या (देशविशेषरीत्यनुसारतः) प्रतीतः (ज्ञातः) तालमान-लयाश्रितः (तालाद्याश्रयेण प्रवृत्तः) सविलासाङ्ग-विक्षेपः (विलाससहिताङ्गविक्षेपः सः) नृत्यम् इति बुधैः उच्यते ॥ ३१८५ ॥

अनुवाद—देश-प्रचलित रीति-अनुसार प्रसिद्ध, ताल-मान-लय के अनुसार विलास के साथ जो अंग-विक्षेप है, पण्डितगण उसे नृत्य कहते हैं ॥ ३१८५ ॥

विलासो यथा—

नायकालोकनादिषु विशेषो हि क्रियासु यः ।
शृङ्गारचेष्टासहितो विलासः स निगद्यते ॥ ३१८६ ॥

अन्वय—नायकालोकनादिषु (दयितस्य दर्शनप्रभृतिम्) क्रियासु (नायिकायाः) यः शृङ्गारचेष्टासहितः विशेषः स विलासः निगद्यते ॥ ३१८६ ॥

अनुवाद—विलास की व्याख्या इस प्रकार है—प्रियतम के दर्शन आदि के कार्य में नायिका का शृंगार चेष्टायुक्त जो वैशिष्टय है, वही विलास है ॥ ३१८६ ॥

नृत्तमाह—

नृत्ताख्यलक्षण—सर्व्वाभिनयवर्जित ।
अङ्गेर विक्षेपमात्रादिक ए विदित ॥ ३१८७ ।

अनुवाद—अव नृत्त के विषय में कहते हैं—नृत्त के लक्षण सभी प्रकार के अभि-नय से रहित केवल अंग विक्षेप नृत्त कहलाता है ॥ २१८७ ॥

तथाहि—

गात्रविक्षेपमात्रन्तु सर्व्वाभिनयवर्जितम् ।
आङ्गिकोक्तप्रकारेण नृत्तं नृत्यविदो विदुः ॥ ३१८८ ॥

अन्वय—नृत्यविदः (नृत्यस्वरूपज्ञाः जनाः) आङ्गिकोक्तप्रकारेण (आङ्गिका-भिनयोक्तविधिना) सर्व्वाभिनयर्व्जितं गात्रविक्षेपमात्रं (केवलम् अङ्गविक्षेपं) नृत्तं विदुः (जानन्ति) ॥ ३१८८ ॥

अनुवाद—अंगाभिनय में कथित प्रकार के अनुसार सभी प्रकार के अभिनय-रहित मात्र गात्रविक्षेप को नृत्यविद्गण 'नृत्त'[1] कहते हैं ॥ ३१८८ ॥

---

१. धनञ्जय कृत दशरूपक में 'नृत्त' के लक्षण इस प्रकार हैं—
अवस्थानुकृतिर्नाट्यं······रसाश्रयम् ।
अन्यद् भावाश्रयं नृत्यं, नृत्तं ताललयाश्रयम् ।
नाट्य—सात्विकबहुल, रसाश्रय, वाक्यार्थाभिनयात्मक ।
नृत्य—आङ्गिकाबहुल, भावाश्रय, पदार्थाभिनयात्मक ।
नृत्त—केवल, ताल-लय की अपेक्षायुक्त, अभिनय शून्य अंगविक्षेप ।

नाट्य, नृत्य, नृत्त–त्रय हय द्विप्रकार।
मार्ग, देशी–भेद, इहा शास्त्रे सुप्रचार॥ ३१८६॥

अनुवाद--नाट्य, नृत्य और नृत्त--ये तीनों दो प्रकार के होते हैं। इनके भेद हैं मार्ग और देशी, जिनका शास्त्र में प्रचार है॥ ३१८६॥

तथाहि—

एतत्त्रयं द्विधा प्रोक्तं मार्गो देशीतिभेदतः॥ ३१९०॥

अनुवाद—नाट्य, नृत्य और नृत्त--ये तीनों मार्ग और देशी भेद से दो प्रकार के होते हैं॥ ३१९०॥

तत्र मार्गमाह—

ब्रह्माद्यैर्मार्गितं शम्भोः प्रयुक्तं भरतादिभिः।
गान्धर्व्वं वादनं नृत्यं यत्तन्मार्ग इति स्मृतम्॥ ३१९१॥
(मार्गितं प्रार्थितमित्यर्थः)

अन्वय—यत् (यस्मात्) गान्धर्व्वं (गीतं) वादनं नृत्यं (एतत् त्रयं) शम्भोः (सकाशात्) ब्रह्माद्यैः) मार्गितं (प्रार्थितं ततो लब्ध्वा) भरतादिभिः प्रयुक्तं तत् (तस्मात्) तत् (गीतादि) मार्ग इति स्मृतम्॥ ३१९१॥

अनुवाद—जिस कारण ब्रह्मा प्रभृति ने यह नृत्य, गीत और वाद्य शम्भु से प्रार्थना कर प्राप्त किया था, बाद में उनसे शिक्षा ग्रहण कर भरत मुनि प्रभृति ने जगत में इनका प्रयोग किया था, इसी हेतु इसे मार्ग कहा जाता है॥ ३१९१॥

देश्याह—

देशे देशे नृपादीनां यदाह्लादकरं परम्।
गानं वाद्यं तथा नृत्यं तद्देशीत्युच्यते बुधैः॥ ३१९२॥

अन्वय—यत् गानं वाद्यं तथा नृत्यं देशे देशे (विभिन्नेषु देशेष्वित्यर्थः) नृपादीनां (नृपाणां लोकानाञ्च) परं (अतीव) आह्लादकरं (भवति) तत् (गीतादिकं) बुधैः देशी इति उच्यते॥ ३१९२॥

अनुवाद—जो गान, वाद्य और नृत्य भिन्न-भिन्न देशों के तत्कालीन नृपति व लोगों के लिए अतिशय आनन्ददायक होते हैं, उन्हें विज्ञजन देशी कहते हैं॥३१९२॥

मार्ग–नाट्य विंशति–कोहले निरूपय।
नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसनादय॥ ३१९३॥
केह कहे—मार्ग-नाट्य दश परकार।
नाटिका, प्राकरणिकादिक ए प्रचार॥ ३१९४॥

दन्तिलादि देशी—नाट्य षोडश कहय।
सट्टक, त्रोटक, गोष्ठी, वृन्दकाख्यादय ॥ ३१६५ ॥
ऐछे नाना प्रकार नाट्याङ्ग मनोहित।
एथा दिक् दर्शाइनु—शास्त्रे सुविदित ॥ ३१६६ ॥
नृत्य–नृत्त द्वयेते ताण्डव, लास्य द्वय।
कहये नृत्यज्ञ या' ते सर्व्व सुखोदय ॥ ३१६७ ॥

अनुवाद—कोहल का कहना है कि नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन आदि बीस मार्ग-नाट्य हैं। कुछ गुणी मार्ग-नाट्य के दस प्रकार—नाटिका, प्रकरण आदि बताते हैं। दन्तिल (दत्तिल) ने मार्ग-नाट्य के सोलह प्रकार—सट्टक, त्रोटक, गोष्ठी, वृन्दक आदि–कहे हैं। नाट्य के इन नाना मनोहर प्रकारों का प्रचार है, इनका शास्त्रों में प्रचार है, मैंने दिशानिर्देश किया है। नृत्य और नृत्त दोनों दो प्रकार के हैं—ताण्डव और लास्य, नृत्य शास्त्रज्ञों का ऐसा कहना है। ये सभी आनन्ददायी हैं ॥ ३१६३–६७ ॥

तथाहि—

ताण्डवं लास्यमित्येतद्द्वयं द्वेधा निगद्यते ॥ ३१६८ ॥
(द्वयं नृत्यं नृत्तञ्चेत्यर्थः ।)

अनुवाद—नृत्य और नृत्त दोनों ताण्डव और लास्य भेद से दो प्रकार के हैं ॥ ३१६८ ॥

ताण्डव—उद्धतप्रायादिक नृत्य हय।
पुरुष–स्त्रीद्वये—ए ताण्डव–लास्य द्वय ॥ ३१६९ ॥

अनुवाद—उद्धतप्राय नृत्य ताण्डव है। पुरुष का नृत्य ताण्डव और स्त्री का नृत्य लास्य है ॥ ३१६९ ॥

तथाहि—

तण्डूक्तमुद्धतप्रायं प्रयोगं ताण्डवं विदुः ॥ ३२०० ॥
(तण्डुर्नाम शम्भोर्गणविशेष इत्यर्थः ।)

अनुवाद—महादेव के द्वारपाल तण्डु द्वारा कथित उद्धतप्राय प्रयोग को ताण्डव कहा जाता है ॥ ३२०० ॥

नारदसंहितायाम्—

पुंनृत्यं ताण्डवं प्रोक्तं स्त्रीनृत्यं लास्यमुच्यते ॥ ३२०१ ॥

अनुवाद—नारदसंहिता में है—पुरुष के नृत्य को ताण्डव और स्त्रियों के नृत्य को लास्य नृत्य कहते हैं ॥ ३२०१ ॥

ताण्डव द्विविध—प्रेरणी-ताण्डव आर।
बहुरूप-ताण्डव, ए सुगम प्रचार॥ ३२०२॥

अनुवाद—ताण्डव दो प्रकार का है–प्रेरणी-ताण्डव और बहुरूप ताण्डव॥३२०२॥

तथाहि—

प्रेरणी बहुरूपञ्चेत्येवं स्यात्ताण्डवं द्विधा॥ ३२०३॥

अनुवाद—प्रेरणी और बहुरूप भेद से ताण्डव के दो प्रकार हैं॥ ३२०३॥

तत्र प्रेरणी यथा—

अङ्गविक्षेपबाहुल्यं तथाभिनयशून्यता।
यत्र सा प्रेरणी प्रोक्ता संज्ञादेशीति लोकतः॥ ३२०४॥

अन्वय—यत्र (ताण्डवनृत्ये) अङ्गविक्षेपबाहुल्यं तथा अभिनयशून्यता (अभिनयाभावः) सा प्रेरणी प्रोक्ता, लोकतः (लोके) (तस्य) देशी इति संज्ञा (भवति)॥ ३२०४॥

अनुवाद—जिस ताण्डव नृत्य में अंगविक्षेप का आधिक्य है और अभिनय का अभाव है, वह प्रेरणी ताण्डव है। वह लौकिक परम्परा से चला आ रहा देशी है॥ ३२०४॥

बहुरूपं यथा (सङ्गीत)दामोदरे—

छेदनं भेदनं यत्र बहुरूपा मुखावली।
ताण्डवं बहुरूपञ्च तद्वाणीगतमुद्धतम्॥ ३२०५॥

अन्वय—यत्र (ताण्डवप्रकारे) छेदनं भेदनं बहुरूपा मुखावली वाणीगतम् उद्धतं (सन्ति) तत् बहुरूपं (बहुरूपाख्यं) ताण्डवम्॥ ३२०५॥

अनुवाद—जिस ताण्डव नृत्य में छेदन-भेदन (तोड़ना-फोड़ना) अनेक प्रकार की मुखभंगि रहती है, वाणीगत उद्धतत्व रहता है, वह बहुरूप ताण्डव है॥३२०५॥

प्रेरणी, बहुरूप अन्यत्र विस्तारित।
लास्य कन्दर्पवर्द्धन—शास्त्रे सुविदित॥ ३२०६॥

लास्यमाह—

लास्य-नृत्य द्विविध-स्फुरित-लास्य आर।
यौवत लास्य—ए द्वय सर्व्वप्रचार॥ ३२०७

अनुवाद—प्रेरणी और बहुरूप ताण्डव पर अन्यत्र विस्तृत प्रकाश डाला गया है। लास्य काम व रतिभाव-वर्द्धक है, यह शास्त्र में उल्लिखित है। अब लास्य के विषय में कहते हैं—लास्य दो प्रकार के हैं—स्फुरित लास्य और यौवत लास्य॥ ३२०६–७॥

तथाहि—

लास्यं तु सुकुमाराङ्गं मकरध्वजवर्द्धनम् ।
स्फुरितं यौवतञ्चेति तदपि द्विविधं मतम् ॥ ३२०८ ॥

अन्वय—लास्यं (तदाख्यं नृत्यं) तु सुकुमाराङ्गं (कोमलाङ्गं) मकरध्वजवर्द्धनं (कामवर्द्धकं भवति) । तत् अपि स्फुरितं यौवतं च इति द्विविधं मतम् ॥ ३२०८ ।

अनुवाद—लास्य नृत्य सुकोमलाङ्ग और कामवर्द्धक है । इसके भी दो प्रकार। हैं—'स्फुरित' और 'यौवत' ॥ ३२०८ ॥

स्फुरितलास्यमाह—

यत्राद्येऽभिनये भावे रसैराश्लेषचुम्बनैः ।
नायिका नायकश्चैव नृत्यतः स्फुरितं हि तत् ॥ ३२०९ ॥
(आद्ये प्रधाने रसे, रसजनकैर्भावैश्चेष्टितैः,
आश्लेषः आलिङ्गनमित्यर्थः)

अन्वय—यत्र आद्ये (आदिरसप्रधाने) अभिनये (अनुकरणात्मके व्यापारे) नायिका नायकः च (उभौ) भावैः रसैः आश्लेषचुम्बनैः (आलिङ्गनेन चुम्बनैश्च) नृत्यतः तत् हि स्फुरितं स्फुरिताख्यां नृत्यं भवति ॥ ३२०९ ॥

अनुवाद—स्फुरित लास्य के विषय में कहते हैं—जिस शृङ्गार रस प्रधान अभिनय में नायक-नायिका भाव और रस से पूरित व उल्लसित होकर आलिंगन-चुम्बन सहित नृत्य करते हैं, वह स्फुरित नामक लास्य नृत्य है ॥ ३२०९ ॥

यौवतलास्यमाह—

मधुरावद्धलीलाभिर्नटीभिर्यत्र नृत्यते ।
वशीकरणविद्याभं तल्लास्यं यौवतं मतम् ॥ ३२१० ॥

अन्वय—मधुरावद्धलीलाभिः (मधुरं यथा स्यात्तथा रचिताभिः लीलाभिः) नटीभिः (नर्त्तकीभिः) यत्र (नृत्ये) नृत्यते (नृत्यं क्रियते) वशीकरणविद्याभं (वशीकरणविद्यासमुज्ज्वलं) तत् (नृत्यं) हि यौवतं (युवतिसम्बन्धि) लास्यं मतम् ॥ ३२१० ॥

अनुवाद—जहाँ नटियाँ मधुरभाव से रचित नाना लीलाओं की भंगिमाओं के साथ नृत्य करती हैं, वही वशीकरण-विद्या से पूरित व समुज्ज्वल नृत्य यौवत लास्य कहलाता है । इसे युवतियाँ करती हैं, अतः यह यौवत है—यौवत का अर्थ युवतियों का समूह ॥ ३२१० ॥

अथ नृत्तमाह—

नृत्तनाममात्र कहि, इथे भेदत्रय ।
विषम, विकट लघु-शास्त्रे विस्तारय ॥ ३२११ ॥

अनुवाद—अब नृत्त के विषय में कहते हैं—नृत्त के तीन प्रकार हैं—विषम, विकट और लघु। शास्त्र में इन पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है ॥ ३२११ ॥

तथाहि—

नृत्तञ्चापि त्रिधा प्रोक्तं विषमं विकटं लघु।
विषमं तत् समुद्दिष्टं यद्रज्जुभ्रमणादिकम् ॥ ३२१२ ॥
विरूपवेशावयवव्यापारं विकटं मतम्।
उपेतं करणैरल्पैरञ्चिताद्यैर्लघु स्मृतम् ॥ ३२१३ ॥

(अञ्चितादि करणविशेषः, स च वक्ष्यते। कोहलोक्तनृत्यविशेषारम्भिका भाणिकादयस्तूक्ता एव।)

अन्वय—नृत्तं च अपि त्रिधा (त्रिप्रकारं) प्रोक्तं विषमं विकटं लघु (चेति)। रज्जुभ्रमणादिकं (रज्जुभ्रमणादियुक्तं) यत् (नृत्तं) तत् विषमं समुद्दिष्टं (कथितम्) विरूपवेशावयवव्यापारं (विविधरूपाः वेशावयवव्यापाराः यस्मिन् तत् नृत्तं) विकटं मतम् अञ्चिताद्यैः (वक्रभङ्गिप्रभृतिभिः) अल्पैः करणैः (क्रियाविशेषैः) उपेतं (अन्वितं यत् तत्) लघु (नृत्तं) स्मृतम् ॥ ३२१२–१३ ॥

अनुवाद—नृत्त के भी तीन प्रकार बताये गये हैं—विषम, विकट और लघु। रस्सी घुमाना आदि के साथ जो नृत्त है वह 'विषम' है। नाना प्रकार के वेश और अंग-भंगिमा के साथ जो नृत्त है वह 'विकट' है। वक्र भंगि (अंचित) आदि अल्प करणयुक्त जो नृत्त है उसे 'लघु' कहा जाता है ॥ ३२१२–१३ ॥

ओहे श्रीनिवास! नर्त्तनेर नानागति।
सम्यक् कहिवे—ऐछे काहार शकति ॥ ३२१४ ॥
श्रीरासमण्डले कृष्ण रसिकशेखर।
प्रकाशे नर्त्तन शिव-ब्रह्मा अगोचर ॥ ३२१५ ॥
कृष्णेर अद्भुत नृत्ये केवा धैर्य्य धरे।
सखीसह राई भासे सुखेर सायरे ॥ ३२१६ ॥
परस्पर नृत्ये महाकौतुक बाढ़य।
परम आश्चर्य से अङ्गेर अभिनय ॥ ३२१७ ॥

अथाङ्गाभिनयः—

अङ्ग-अभिनय त्रिधा-अङ्गापाङ्ग आर।
प्रत्यङ्ग—ए तिने भेद अनेक प्रकार ॥ ३२१८ ॥

अनुवाद—हे श्री निवास! नर्त्तन की नाना गति है, इसका सम्यक् वर्णन करने की किसकी शक्ति है। श्रीरासमण्डल में रसिकशेखर ऐते नर्तन प्रकाश करते हैं, जो

शिव-ब्रह्मा के लिये भी अगोचर हैं। कृष्ण के अद्‌भुत नृत्य से कौन धीर-स्थिर रह सकता है। राधिका सखियों के साथ सुख के सागर में गोते लगा रही हैं। परस्पर नृत्य से महाकौतुक बढ़ रहा है। इस अंगाभिनय से परम आश्चर्य की सृष्टि होती है। अब अंगाभिनय के विषय में कहते हैं—अंग-अभिनय तीन प्रकार के हैं—अंग, उपांग और प्रत्यंग। इन तीनों में अनेक भेद हैं ॥ ३२१४–१८ ॥

तथाहि—

तत्राङ्गानामुपाङ्गानां प्रत्यङ्गानां निरूपणम्।
यथामतीह क्रियते शार्ङ्गदेवादि सम्मतम् ॥ ३२१९ ॥

अन्वय—तत्र (अङ्गाभिनये) अङ्गानां उपाङ्गानां प्रत्यङ्गानां (च) शार्ङ्गदेवादि-सम्मतं (शार्ङ्गदेवादीनां मतानुसारतः) यथामति (यथाज्ञानं) इह (स्थले) निरूपणं (निर्देशः) क्रियते ॥ ३२१९ ॥

अनुवाद—अंगाभिनय में अंग, उपांग और प्रत्यंग इन सब का शार्ङ्गदेव आदि गुणियों के मतानुसार निरूपण स्वबुद्धि के अनुसार यहाँ किया जा रहा है ॥३२१९॥

अङ्ग-अभिनय-शिरः, अंस कहि आर।
उरः, पार्श्व, हस्त, कटि, पद-प्रचार ॥ ३२२० ॥

अनुवाद—अंग-अभिनय—शिर, अंश, उर, पार्श्व, हस्त, कटि और पद—ये सात अंग हैं ॥ ३२२७ ॥

तथाहि—

सप्ताङ्गानि शिरोंऽसोरः पार्श्वहस्तकटिपदम् ॥ ३२२१ ॥

अनुवाद—अंग-निरूपण—शिर, अंस (कंधा), उर (वक्ष), पार्श्व, हस्त, कटि और पद—ये सात अंग हैं ॥ ३२२१ ॥

'प्रत्यङ्ग' जानह नय प्रकार सुन्दर।
ग्रीवा, बाहु, अंस, मणिबन्ध, पृष्ठोदर ॥ ३२२२ ॥
ऊरु आर जङ्घा, जानु, भूषण—ए नय।
प्रत्यङ्गाभिनये नृत्यविज्ञ निरूपय ॥ ३२२३ ॥

अनुवाद—'प्रत्यंग' नौ हैं—ग्रीवा, बाहु-अंस, मणिबन्ध, पृष्ठ, उदर, ऊरु, जंघा जानु और भूषण। प्रत्यंगाभिनय के विषय में नृत्यविज्ञों ने उनका निरूपण किया है ॥ ३२२२–२३ ॥

तथाहि—

प्रत्यङ्गानि नव ग्रीवा बाह्वंसमणिबन्धकौ।
पृष्ठोदरोरुजङ्घाश्च जानुनी भूषणानि च ॥ ३२२४ ॥

अनुवाद—ग्रीवा, बाह्वंस, मणिवन्ध, पृष्ठ, उदर, ऊरु, जंघा, जानु और भूषण नौ प्रत्यंग हैं ॥ ३२२४ ॥

उपाङ्ग द्वादश—अभिनय सुप्रकार।
मूर्द्धा, दृक्, तारा, भ्रुकुटी, मुखादि प्रचार ॥ ३२२५ ॥

अनुवाद—अभिनय में उपांग द्वादश हैं—मूर्धा, दृष्टि, तारा, भ्रुकुटी, मुख आदि ॥ ३२२५ ॥

तथाहि—

द्वादशोपाङ्गानि मूर्द्ध-दृक्-तारा-भ्रुकुटी-मुखम्।
नासे निश्वासचिबुके जिह्वागण्डरदाधरान् ॥ ३२२६ ॥
मुखरागमुपाङ्गेषु शार्ङ्गदेवो गृतहीवान् ॥ ३२२७ ॥

अन्वय—शार्ङ्गदेवः उपाङ्गेषु (उपाङ्गगणनायां) मूर्द्ध-दृक्–तारा–भ्रुकुटी–मुखं, नासे (नासिकाद्वयं) निश्वासचिबुके, जिह्वागण्डदाधरान् मुखरागं (चेति) द्वादश उपाङ्गानि गृहीतवान् (निर्णीतवान्) ॥ ३२२६–२७ ॥

अनुवाद—शार्ङ्गदेव ने उपांग-निरूपण में मूर्धा, चक्षु, तारा, भ्रुकुटी, मुख, नासिका, निःश्वास, चिबुक, जिह्वा, गण्ड (गाल), दन्त और अधर—इन बारह उपांगों को माना है। मुखराग भी उपांग माना गया है ॥ ३२२६–२७ ॥

केह कहे—षड् अंग प्रत्यङ्ग दश हय।
त्रयोविंशति प्रकार उपाङ्गाभिनय ॥ ३२२८ ॥
ए सब विस्तर—अङ्ग प्रधान इहाते।
किछु जानाइये सर्व्वचित्ताकर्षे या' ते ॥ ३२२९ ॥

अनुवाद—कुछ गुणियों का कहना है कि अंग छः, प्रत्यंग दस और उपांग तेईस होते हैं। ये कई प्रकार के हैं, इनमें से जो प्रधान हैं, उनके बारे में मैंने बताया है, जिनके प्रति लोगों का चित्त आकृष्ट होता है ॥ ३२२८–२९ ॥

तथाहि—

तत्राङ्गानां प्रधानत्वात् तान्युच्यन्ते समासतः ॥ ३२३० ॥

अन्वय—तत्र (तेषाम् अङ्गादीनां मध्ये) अङ्गानां प्रधानत्वात् तानि (अङ्गानि) समासतः संक्षेपेण) उच्यन्ते ॥ ३२३० ॥

अनुवाद—अंग-प्रत्यंग आदि में अंग की प्रधानता है, अतः उनके बारे में ही संक्षेप में कहते हैं ॥ ३२३० ॥

तत्रादौ शिर आह—

शिरः कर्म्म—धूत, विधूत, आधूत आर।
अवधूत आदि चतुर्द्दश परकार॥ ३२३१॥

अनुवाद—अब शिर अंग के अभिनय व शिरःकर्म के विषय में कहते हैं—शिरः-कर्म धूत, विधूत, आधूत, अवधूत आदि चौदह प्रकार के हैं॥ ३२३१॥

तथाहि—

धूतं विधूतमाधूतमवधूतञ्च कम्पितम्।
आकम्पितोद्वाहिते च परिषावितमश्चितम्॥ ३२३२॥
निकुञ्चितं परावृत्तमुत्क्षिप्ताधो मुखे तथा।
लोलितञ्चेति विज्ञेयं चतुर्द्दशविधः शिरः॥ ३२३३॥
(आकम्पितमीषत्कम्पितमित्यर्थ :)

अनुवाद—शिर अंग के अभिनय के चौदह प्रकार हैं—धूत, विधूत, आधूत, अवधूत, कम्पित, आकम्पित (किञ्चित् कम्पित), उद्वाहित, परिवाहित, अञ्चित, निकुञ्चित, परावृत्त, उत्क्षिप्त, अधोमुख और लोलित॥ ३२३२–३३॥

तत्र धूतम्—

क्रमे अल्प वक्र शिरःकम्प 'धूत' हय।
विषाद, विस्मयादिके 'धूत' निरूपय॥ ३२३४॥

अनुवाद—अब धूत के विषय में कहते हैं—क्रमशः धीरे-धीरे वक्र रूप से कम्पन को 'धूत' कहते हैं और विषाद, विस्मय आदि में 'धूत' का प्रयोग होता है॥३२३४॥

तथाहि—

क्रमेण शनकैस्तिर्य्यक् धूतमुक्तं धूतं शिरः।
प्रतिषेधेऽलिप्सिते च विषादे विस्मये भवेत्॥ ३२३५॥

अन्वय—क्रमेण (तथा) शनकैः (शनैः) तिर्य्यक् (वक्रं) धूतं (कम्पनं) धूतं शिरः उक्तं (कथ्यते)। (एतत्) प्रतिषेधे, अलिप्सिते (अनभिमते विषये) विषादे विस्मये च भवेत्॥ ३२३५॥

अनुवाद—क्रमशः धीरे-धीरे वक्रभाव से जो कम्पन है, उसे 'धूत'-शिरः कहते हैं। यह प्रयोग निषेध, इच्छा के अभाव, विषाद और विस्मय में किया जाता है॥ ३२३५॥

विधूतादि-लक्षण जानह एइ मत।
अंस-अभिनय ऐछे व्यक्त सुसम्मत॥ ३२३६॥

अनुवाद—विधूत आदि के लक्षण इसी प्रकार जानिये। अंश-अभिनय इस प्रकार प्रकार व्यक्त किये जा रहे हैं ॥ ३२३६ ॥

अथासौ—

अंस पञ्च—एक उच्च, लग्न-कर्ण आर।
उच्छ्रित, स्रस्त, लोलित–लक्षण प्रचार ॥ ३२३७ ॥

अनुवाद—अब अंस-अभिनय के विषय में कहते हैं—अंस (स्कन्ध) अभिनय के पाँच प्रकार हैं—एकोच्च,, लग्नकर्ण, उच्छ्रित, स्रस्त और लोलित ॥ ३२३७ ॥

तथाहि—

एकोच्चो लग्नकर्णौ चोच्छ्रितौ स्रस्तौ च लोलितौ।
इत्युक्तौ पञ्चधा स्कन्धौ नाम्नैव त्यक्तलक्षणौ ॥ ३२३८ ॥

अनुवाद—एकोच्च, लग्नकर्ण, उच्छ्रित, स्रस्त, लोलित—ये पाँच प्रकार के स्कन्धअभिनय कहे गये हैं। नाम मात्र से इनके लक्षण स्पष्ट हैं ॥ ३२३८ ॥

एकोच्चाभिनय--मुष्टि-कुन्त-प्रहारेते ।
ऐछे कर्ण-लग्नादिर लक्षण शास्त्रेते ॥ ३२३९ ॥

अनुवाद—मुष्टि व कुन्त (भाला) प्रहार एकोच्च अभिनय है। इसी प्रकार कर्ण-लग्न आदि के लक्षण शास्त्र में बताये गये हैं ॥ ३२३९ ॥

तथाहि—

एकोच्चौ कथितौ स्कन्धौ मुष्टिकुन्तप्रहारयोः।
आश्लेषे शिशिरे चांसौ कर्णलग्नौ सतां मतौ ॥ ३२४० ॥
उच्छ्रितौ हर्षगर्व्वादौ स्रस्तौ दुःखे श्रमे मदे।
मूर्च्छायां चाथ कर्त्तव्यौ लौलितौ विटनर्त्तने।
नृत्यज्ञैर्गदितौ हास्ये हुड्डुकावाद्यवादने ॥ ३२४१ ॥
(विटनर्त्तने जारपुरुषनर्त्तन इत्यर्थः)
इत्यंसौ पञ्चधाः ॥

अन्वय—मुष्टिकुन्तप्रहारयोः (मुष्टिहारे कुन्तप्रहारे च) स्कन्धौ (स्कन्ध-भङ्गी) एकोच्चौ कथितौ (भवतः), आश्लेषे (आलिङ्गने) शिशिरे (हिमे हिमर्त्तौ वा) च स्कन्धौ कर्णलग्नौ सतां मतौ; हर्षगर्व्वादौ उच्छ्रितौ, दुःखे श्रमे मदे (च) स्रस्तौ (मतावित्यर्थः); मूर्च्छायां विटनर्त्तने (जारपुरुषनर्त्तने) च लौलितौ कर्त्तव्यौ, हास्ये हुड्डुकावाद्यवादने (च) नृत्यज्ञैः (लौलितौ) गदितौ (कथितौ) ॥ ३२४०–३२४१ ॥

अनुवाद—नृत्यविद्गणों ने मुष्टि प्रहार और कुन्त प्रहार में स्कन्धाभिनय का नाम 'एकोच्च', आलिङ्गन और शीत में स्कन्धाभिनय का नाम 'कर्णलग्न'; हर्ष, गर्व आदि में स्कन्धाभिनय का नाम 'उच्छ्रित'; दुःख, श्रम, मद आदि में स्कन्धाभिनय का नाम 'स्रस्त' (नीचे गिरना); मूर्छा, लम्पट के नर्तन; हास्य और हुड्डुकावाद्य-वादन में स्कन्धभिनय का नाम 'लोलित' कहा है। ये पाँच प्रकार हैं ॥ ३२४०–४१ ॥

अथ उरः—

वक्ष–अभिनय पञ्च–समाभुग्न आर ।
निर्भुग्न, कम्पितोद्वाहित-ए प्रचार ॥ ३२४२ ॥

अनुवाद—अब उरः (वक्ष) अभिनय के विषय में कहते हैं—वक्ष-अभिनय पाँच प्रकार के हैं—सम, आभुग्न, निर्भुग्न, कम्पित और उद्वाहित ॥ ३२४२ ॥

तथाहि—

स्याद्वक्षः सममाभुग्नं निर्भुग्नञ्च प्रकम्पितम् ।
उद्वाहितं पञ्चधेति तेषां लक्ष्माभिदध्महे ॥ ३२४३ ॥

अन्वय—वक्षः (वक्षोऽभिनय इत्यर्थः) समम् आभुग्नं, निर्भुग्नं प्रकम्पितं उद्वाहितम् इति पञ्चधा (पञ्चविधं भवति); तेषां पञ्चविधानां लक्ष्म (लक्षणं) अभिदध्महे (कथयामः) ॥ ३२४३ ॥

अनुवाद—उर (वक्ष) अभिनय पाँच प्रकार के हैं—सम, आभुग्न, निर्भुग्न, प्रकम्पित और उद्वाहित। इनके लक्षण कहते हैं ॥ ३२४३ ॥

तत्र समं—

वक्षः-सौष्ठवादि जान 'सम'-अभिनय ।
आभुग्नादि लक्षण शास्त्रज्ञ निरूपय ॥ ३२४४ ॥

अनुवाद—सौष्ठवयुक्त वक्ष 'सम'-अभिनय हैं। इसी प्रकार आभुग्न आदि के लक्षणों का शास्त्रज्ञों ने निरूपण किया है ॥ ३२४४ ॥

तथाहि—

सौष्ठवाधिष्ठितं वक्षश्चतुरस्राङ्गसंश्रयम् ।
प्रकृतिस्थं समं प्राहुः स्वभावाभिनये समम् ॥ इत्यादयः ॥ ३२४५ ॥

अन्वय—सौष्ठवाधिष्ठितं (सौष्ठवान्वितं) चतुरस्राङ्गसंश्रयं (चतुष्कोणाङ्गाश्रितं) प्रकृतिस्थं (स्वाभाविकावस्थं) वक्षः समं प्राहुः (कथयन्ति); (तच्च) समं स्वाभावाभिनये (स्वाभाविकभावस्य अभिनये भवति) ॥ ३२४५ ॥

अनुवाद—सौष्ठवयुक्त, चपुष्कोणांगसंश्रित प्रकृतिस्थ वक्ष अभिनय को 'सम' कहते हैं, सरल स्वाभाविक भाव का अभिनय 'सम' है ॥ ३२४५ ॥

अथ पार्श्वम्—

पार्श्व—विवर्त्तित, अपसृत, प्रसारित।
नत, उन्नत—ए पञ्च लक्षण विदित ॥ ३२४६ ॥

अनुवाद—अब पार्श्व अभिनय तथा पार्श्वांगाभिनय के विषय में कहते हैं। पार्श्व-अभिनय के पाँच लक्षण हैं—विवर्त्तित, अपसृत, प्रसारित, नत और उन्नत ॥३२४६॥

तथाहि—

विवर्त्तितं चापसृतं प्रसारितमथो नतम्।
उन्नतञ्चेति संचख्युः पार्श्वं पञ्चविधं बुधाः ॥
विवर्त्तनात्त्रिकस्य स्यात् परावृत्ते विवर्त्तितम् ॥ इत्यादयः।
(त्रिकस्य पृष्ठदेशस्येत्यर्थः। पृष्ठवंशाधरे त्रिकमिति) ॥ ३२४७ ॥

अन्वय—बुधाः (पण्डिताः) पार्श्वं (पार्श्वाभिनयं) विवर्त्तितं, अपसृतं, प्रसारितं, नतम्, उन्नतं च इति पञ्चविधं संचख्युः (कथितवन्तः)। परावृत्ते (पार्श्व-परिवर्त्तने) त्रिकस्य (पृष्ठदेशस्य) विवर्त्तनात् (हेतोः) विवर्त्तितं स्यात् ॥३२४७॥

अनुवाद—पण्डितों ने विवर्त्तित, अपसृत, प्रसारित, नत और उन्नत—ये पाँच प्रकार के पार्श्वांग-अभिनय बताये हैं। पार्श्व-परिवर्त्तन में त्रिक (मेरुदण्ड का निम्नांश) का विवर्त्तन होने से यह विवर्त्तित संज्ञा हुई; यानी विवर्त्तित कहते हैं ॥ ३२४७ ॥

अथ हस्तः—

हस्त अभिनय त्रिधा—संयुताख्या आर।
असंयुत नृत्यहस्त—ए त्रय प्रचार ॥ ३२४८ ॥

अनुवाद—अब हस्ताभिनय के विषय में कहते हैं—हस्त-अभिनय तीन प्रकार के हैं—संयुत, असंयुत और नृत्तहस्त ॥ ३२४८ ॥

तथाहि—

असंयुताः नृसंयुताश्च त्तहस्ता इति त्रिधा।
हस्तकाः कथितास्तज्ज्ञैः सामान्यनृत्यभेदतः ॥ ३२४९ ॥

अन्वय—नृत्यभेदतः (नृत्यभेदेन) सामान्यात् (साधारणभावेन) हस्तकाः (हस्ताभिनयाः) असंयुताः संयुताः नृत्तहस्ता च इति त्रिधा (त्रिविधाः) तज्ज्ञैः कथिताः ॥ ३२४९ ॥

अनुवाद—नृत्यभेद से और साधारणतया हस्ताभिनय तीन प्रकार के हैं—असंयुत, संयुत और नृत्तहस्त। नृत्यज्ञों ने इस प्रकार कहा है ॥ ३२४६ ॥

एकहस्ते अभिनय-कर्म्म 'असंयुत'।
हस्तद्वये कर्म्म ये से हयेन संयुत ॥ ३२५० ॥
नृत्यमात्रस्थित किछु वस्तु ना प्रचारे।
अङ्ग-हावसह—'नृत्यहस्त' कहे तारे। ३२५१ ॥

अनुवाद—एक हाथ ने अभिनय कर्म 'असंयुत' और दोनों हाथों से अभिनयकर्म 'संयुत' हस्त है। हावभाव के साथ नृत्त मात्र करे और किसी वस्तु की ओर निर्देश न करे तो वह 'नृत्यहस्त' है ॥ ३२५०–५१ ॥

तथाहि—

हस्तेनैकेन कर्म्माणि येषां ते स्युरसंयुताः।
येषां हस्तद्वयेनैव कर्म्म ते स्युस्तु संयुताः ॥ ३२५२ ॥

अन्वय—येषां (हस्ताभिनयानां) एकेन हस्तेन कर्म्माणि (भवन्ति) ते असंयुताः स्युः (भवेयुः)। येषां हस्तद्वयेन एव कर्म्म (भवेत्) ते तु संयुताः स्युः ॥ ३२५२ ॥

अनुवाद—जिस हस्ताभिनय में एक हाथ से कार्य हो वह 'असंयुत' एवं जिस अभिनय में दोनों हाथों का कार्य हो वह 'संयुत' है ॥ ३२५२ ॥

नृत्तमात्रस्थिता ये तु न किञ्चिद्वस्तुवाचिनः।
अङ्गहावेन सहिता नृत्यहस्तास्तु ते मताः ॥ ३२५३ ॥

अन्वय—ये (हस्ताभिनयाः) नृत्तमात्रस्थिताः (नृत्यकाल एव स्थिताः) तु (किन्तु) किञ्चिद्वस्तुवाचिनः (वस्तुनिर्देशकाः) न (न भवन्तीति शेषः)। अङ्गहावेन (अङ्गभङ्ग्या) सहिताः (युक्ताः) ते (हस्ताभिनयाः) तु नृत्यहस्ताः (इतिनामानः) मताः (कथिताः) ॥ ३२५३ ॥

अनुवाद—जो केवल नृत्त काल में अवस्थान करते है, किन्तु किसी वस्तु की ओर निर्देश नहीं करते, अंगभंगी सहित वह अभिनय नृत्यहस्त कहलाता है ॥ ३२५३ ॥

हस्तेर सञ्चार त्रिधा नृत्यज्ञ कहय।
उत्तान, पार्श्वग, अधोमुख एइ त्रय ॥ ३२५४ ॥

अनुवाद—नृत्यज्ञों ने हस्त संचार के तीन प्रकार बताये हैं—उत्तान, पार्श्वग और अधोमुख ॥ ३२५४ ॥

तथाहि—

उत्तानः पार्श्वगश्चैव तथाधोमुख एव च ।
हस्तसञ्चारस्त्रिविधो भरतेन प्रकीर्त्तितः ॥ ३२५५ ॥

अन्वय—उत्तानः पार्श्वगश्च एव तथा अधोमुखः एव च (इति) भरतेन (नाट्य-शास्त्राणां सूत्रकारो भरतः) त्रिविधः हस्तसञ्चारः प्रकीर्त्तितः ॥ ३२५५ ॥

अनुवाद—मुनि भरत ने तीन प्रकार के हस्तसञ्चार का वर्णन किया है--उत्तान पार्श्वग और अधोमुख ॥ ३२५५ ॥

केहो कहे पञ्चदश इहाओ मानिये ।
क्रमप्राप्त मते असंतुत जानाइये ॥ ३२५६ ॥

असंयुतमाह—

असंयुता हस्तक पताका कहि आर ।
त्रिपताकादिक चतुर्विंशति प्रकार ॥ ३२५७ ॥
इहाते अधिक केह कहे चतुष्टय ।
केह कहे त्रिंशत ए सुसम्मत हय ॥ ३२५८ ॥
असंयुत अर्थवशे संयुता प्रमाण ।
ए सब विस्तारि निरूपये विद्यावान ॥ ३२५९ ॥

अनुवाद--कुछ गुणी पन्द्रह प्रकार बताते हैं, इसे भी माना जा सकता है । क्रम से असंयुत हस्त बताइये । अब हम असंयुत हस्त के विषय में कहते हैं--असंयुत हस्त के पताक, त्रिपताक आदि चौबीस प्रकार हैं । कुछ गुणी चार अधिक प्रकार भी बताते हैं । कुछ गुणियों के अनुसार इसके तीस प्रकार हैं । अर्थवशतः असंयुत ही संयुत का प्रमाण है । गुणियों ने इन सब पर विस्तार से प्रकाश डाला है ॥ ३२५६–५९ ॥

तथाहि—

पताकस्त्रिपताकोऽर्द्धचन्द्राख्यः कर्त्तरीमुखः ।
अरालमुष्टि-शिखर–कपित्थ-खटकामुखाः ॥ ३२६० ॥
शुकतुण्डः काङ्गुलश्च पद्मकोषोऽथ पल्लवः ।
सूचिमुखः सर्पशिराश्चतुरो मृगशीर्षकः ॥ ३२६१ ॥
हंसास्यो हंसपक्षश्च भ्रमरो मुकुलस्तथा ।
ऊर्णनाभश्च संदंशस्ताम्रचूड़ोऽपरः कविः ।
अमी असंयुता हस्ताश्चतुर्विंशतिरीरिताः ॥ ३२६२ ॥

अनुवाद--पताक, त्रिपताक, अर्द्धचन्द्र, कर्त्तरीमुख, अरालमुष्टि, शिखर, कपित्थ, खटकामुख, शुकतुण्ड, काङ्गुल, पद्मकोष, पल्लव, सूचिमुख, सर्पशिरा, चतुर, मृगशीर्षक, हंसास्य, हंसपक्ष, भ्रमर, मुकुल, ऊर्णनाभ, संदंश, ताम्रचूड़ और कवि--ये चौबीस असंयुत हस्त कहे गये हैं ॥ ३२६०-६२ ॥

उपधानः सिंहमुखः कदम्बश्च निकुञ्जकः।
असंयुतेषु चतुरोऽधिकानेतान् परे जगुः ॥ ३२६३ ॥

अन्वय—परे (अपरे) असंयुतेषु (मध्ये) उपधानः, सिंहमुखः, कदम्बः, निकुञ्जकश्च एतान् चतुरः अधिकान् जगुः (गीतवन्तः) ॥ ३२६३ ॥

अनुवाद—अन्य कुछ आचार्यों ने असंयुत हस्त-समूह में उपधान, सिंहमुख, कदम्ब, निकुञ्जक—ये चार अधिक कहे हैं ॥ ३२६३ ॥

त्रिंशद्दामोदरेणोक्ता अमी हस्ता असंयुताः।
असंयुता अर्थवशादेते स्युः संयुता अपि ॥ ३२६४ ॥

अन्वय—दामोदरेण अमी असंयुता हस्ताः त्रिशत् (त्रिंशत् संख्यकाः) उक्ताः। अर्थवशात् एते असंयुताः अपि संयुताः स्युः ॥ २२६४ ॥

अनुवाद—दामोदर ने इन असंयुत हस्त की संख्या तीस बतायी है। अर्थवशतः ये असंयुत ही संयुत होते हैं ॥ ३२६४ ॥

ए सकल हस्तकेर लक्षण-प्रकार।
ये विषये प्रयोग ता शास्त्रेते प्रचार ॥ ३२६५ ॥
हस्तक-लक्षण अति विस्तारित हय।
एथा दर्शाइये दिशा यैछे अभिनय ॥ ३२६६ ॥

अनुवाद—इन सब हस्तकों के लक्षणों और प्रकारों का जिन विषयों में प्रयोग है, उसका शास्त्रों में उल्लेख है। हस्तकलक्षण अति विस्तृत हैं, यहाँ मैंने केवल निर्देश किया है, जैसा कि अभिनय में है ॥ ३२६५-६६ ॥

पताकामाह—

अङ्गुष्ठवक्रता तर्ज्जनीमूल-समाश्रित।
आर सर्व्वाङ्गुल सोभा पताका विदित। ३२६७ ॥

अनुवाद—अब पताका (पताकहस्त) के विषय में कहते हैं—जब अंगूठा वक्र एवं तर्जनीमूलाश्रित रहे और सभी अंगुलियाँ सीधी रहें तो पताक कहलाता है ॥३२६७॥

तथाहि—

अङ्गुष्ठो यस्य वक्रः सन् तर्ज्जनी मूलसंश्रितः।
ऋजवोऽङ्गुलयः श्लिष्टाः स पताका इति स्मृतः ॥ ३२६८॥

अन्वय—यस्य (असंयुतस्य) अङ्गुष्ठः वक्रः सन् तर्ज्जनीमूलसंश्रितः (भवतीति शेषः) (यस्य) अङ्गुलयः ऋजवः (सरलाः) श्लिष्टाः (संयुक्तः) (च) स पताकः इति स्मृतः (कथितः) ।। ३२६८ ।।

अनुवाद—जिस असंयुत के अभिनय में अंगुष्ठ वक्र एवं तर्जन-मूल के आश्रित रहे सभी अंगुलियाँ सरल और परस्पर संयुक्त हों, उसे पताक हस्त कहते हैं ।।

पताकाभिनयः स्पर्शादिक बहु स्थाने ।
इहा नाना प्रकारेते नृत्यज्ञ बाखाने ।। ३२६९ ।।

अनुवाद—पताक-अभिनय स्पर्श आदि कई स्थानों पर संचालन से होता है। नृत्यज्ञ इनका कई प्रकार से वर्णन करते हैं ।। ३२६९ ।।

तथाहि—

एष स्पर्शे च पेटे च पताका तालिकादिषु ।
ज्वालास्वर्द्धगतास्तस्याङ्गुल्यः प्रविरलाश्चलाः ।। ३२७० ।।
धारास्वधोगता पक्षिपक्षे तस्य कटिस्थितिः ।
ऊद्ध्वं गच्छन्नुच्छ्रितेषु पुष्करे ग्रहणे त्वधः ।। ३२७१ ।।
ऊद्ध्वं गच्छन् कटिक्षेत्रात् उत्क्षेपाभिनये करः ।
कटिक्षेत्रात् कटिस्थान इत्यर्थः ।। ३२७२ ।।

अन्वय—एष पताकः स्पर्शे च (स्पर्शस्थाने स्यात्) पेटे च (पेटस्थाने च स्यात्) तस्य (पताकस्य) अङ्गुल्यः (अङ्गुलिसमूहः) पताकातालिकादिषु ज्वालासु अर्द्धगताः प्रविरलाः (स्वल्पाः) चलाः (चञ्चला भवन्ति) पक्षिपक्षे तस्य (पताकाभिनयस्य कटिस्थितिः (कटिस्थानं) धारासु अधोगता (भवति) । उत्क्षेपाभिनये करः (हस्तः) उच्छ्रितेषु (स्थानेषु) ऊद्ध्वं गच्छन् तु (किन्तु) पुष्करे ग्रहणे (स्थाने) अधः (गच्छन्) कटिक्षेत्रात् (कटिस्थाने) ऊद्ध्वं गच्छन् (वर्त्तते) ।।

अनुवाद—यह पताकाभिनय स्पर्श-स्थान और पेटस्थान (चपेट) से होता है। इसकी अंगुलियाँ पताकातालिकादि में और ज्वाला-निर्देशन में अर्द्धगमनपूर्वक कुछ चञ्चल हिलती हुई रहती हैं। पंखी के पंख दिखाने के लिये कटिस्थान में दोनों तरफ पताका धारण करें और जलधारा के पतन के निर्देश के लिए ऊपर से नीचे ले जाते हुए विरल एवं चञ्चल अंगुलियाँ दिखायी जायँ। उत्क्षेपाभिनय में हस्त ऊच्छ्रितस्थान में ऊपर लिये जाते हैं, किन्तु पुष्कर स्थान में यानी कमल-ग्रहण में हस्त अधोगमन करते हैं और कटिस्थान में हस्त ऊर्ध्व-गमन करते हैं ।। ३२७०–७२ ।।

आमुख्ये मुखक्षेत्रमागच्छन्निजपार्श्वतः ।
कम्प्रः पार्श्वे निषेधे च पार्श्वे विभजने पृथक् ।। ३२७३ ।।

पताकञ्च शणैर्घर्षोन्मर्द्दने मार्ज्जने तथा ।
शिलादिस्थूलवस्तूना धारणोत्पाटनादिषु ।
उच्छ्रितौ विच्युतौ कार्य्यावेतावन्योऽन्यसम्मुखौ ॥
(उच्छ्रितौ उच्चगतौ इत्यर्थः) ॥ ३२७४ ॥

अन्वय—आभिमुख्ये (साम्मुख्यस्थाने) कम्प्रः (कम्पनं) निजपार्श्वतः (स्वपार्श्वेन) मुखक्षेत्रम (मुखस्थानम्) आगच्छन् पार्श्वे (पार्श्वस्थाने) निषेधे च (निषेधस्थाने स्यात्) पार्श्वे विभजने पृथक् (स्यात्) धर्षोन्मर्द्दने तथा मार्ज्जने (स्थाने इत्यर्थः) शनैः (धीरं) पताकं (तालं कुर्य्यात्) शिलादिस्थूलवस्तूनां धारणोत्पाटनादिषु एतो (करश्च कम्प्रश्च) अन्योऽन्यसम्मुखौ (परस्परसम्मुखौ) उच्छ्रितौ (उच्चगतौ) विच्युतौ कार्य्यौ (कर्त्तव्यौ) ॥ ३२७३–७४ ॥

अनुवाद—अपने सम्मुख स्थान पर, निज पार्श्व की ओर, मुख की ओर आता हुआ एवं पार्श्व और निषेधस्थान में कम्पन होता है। किन्तु पार्श्व और विभाजन स्थान पर पृथक् कम्पन होता है। घर्षण, मर्दन और मार्जन में धीरे-धीरे पताक का संचालन है। शिला आदि स्थूल वस्तु-समूह धारण और उत्पाटन (उखाड़ना) आदि क्रिया में हस्त और कम्प्र परस्पर सम्मुख कर उच्छ्रित और विच्युत करके दिखायें ॥ ३२७३–७४ ॥

अधोगतोच्छ्रिततलाङ्गुलिर्व्वायुर्म्मिवेगयोः ।
स्वरः पल्ललनिर्द्देशैः स्वस्तिकीभूय विच्युता ॥ ३२७५ ॥
(स्वरः पल्ललः क्षुद्रपुष्करिणीत्यर्थः ।)

अन्वय—उच्छ्रिततलाङ्गुलिः वायुर्म्मिवेगयोः (वायुवेगे च तरङ्गवेगे च) अधोगता स्वरः पल्ललनिर्द्देशैः (क्षुद्रपुष्करिणीनिर्द्देशैः) स्वस्तिकीभूय विच्युता (भवति) ॥३२७५ ॥

अनुवाद—वायुवेग और तरंगवेग दिखाने के लिए उच्छ्रित (उन्नत) तलांगुलि (तालहस्त) अधोगमन करती हैं एवं क्षुद्र पुष्करिणी-निर्देश में पताकहस्त स्वस्तिककार कर वियुक्त किया जाता है ॥ ३२७५ ॥

कार्य्यः पताको विश्लिष्य स्वस्तिकाकारतां गतौ ।
छेदने गोपनादर्शवाचनप्रोञ्छनेषु च ॥ ३२७६ ॥
(प्रोञ्छने पोंछने इति भाषा इत्यर्थः ।)
अधोमुखोत्तालतलौ हस्तौ किञ्चित प्रसारितौ ।
कृत्वा प्रदर्शयेद्वेलां विलं ग्राहं गृहं गुहाम् ॥ ३२७७ ॥

अन्वय—गतौ (गतिविषये) स्वस्तिकाकारतां (स्वस्तिकरूपतां) विश्लिष्य (विच्छिद्य) पताकः कार्य्यः (कर्त्तव्यः)। छेदने गोपनादर्शवाचनप्रोञ्छनेषु अधोमुखोत्तालतलौ (अधोमुखम् उत्तालं च तलं ययोः तौ) हस्तौ किञ्चित् प्रसारितौ (विस्तारितौ) कृत्वा वेलां विलं ग्राहं गुहां प्रदर्शयेत् ।। ३२७६–७७ ।।

अनुवाद—गतिस्थान में व गति दिखाने में स्वस्तिकाकार को विश्लेष (विच्युत) कर पताक करना चाहिए। छेदनस्थान गोपन-आदर्श-वाचन और प्रोञ्छनस्थान में अधोमुख और उत्तालतालयुक्त हस्तद्वय को कुछ प्रसारित कर वेला, विल, ग्राह, गृह और गुहा का प्रदर्शन करना चाहिए ।। ३२७६–७७ ।।

यद्यपि निर्व्विशेषेण हस्तप्रयोगा उक्तास्तथापि । लोकप्रयुक्तिमनुसृत्यैव प्रयोज्यम् ।। ३२७८ ।।

अनुवाद—यद्यपि सकल हस्तप्रयोग सम्पूर्ण रूप से कहे गये हैं, फिर भी लोकप्रयोग के अनुसार हस्प्रयोग कर अभिनय करना कर्त्तव्य है, क्योंकि शास्त्र में इसी प्रकार कहा गया है ।। ३२७८ ।।

तदुक्तम्—

लोकप्रयोगमुद्वीक्ष्य नाट्याङ्गमुपजीव्य च ।
तत्तच्चेष्टानुसारेण हस्तकान् संप्रयोजयेत् ।।
घर्षणच्छेदनादर्शविभागादौ स्फुटं हि तत् ।। ३२७९ ।।
इति पताकः ।।

अन्वय—लोकप्रयोगम् उद्वीक्ष्य (अनुसृत्य) नाटचाङ्गम् उपजीव्य च (आश्रित्य च) तत्तच्चेष्टानुसारेण हस्तकान् संप्रयोजयेत् घर्षणच्छेदनादर्शविभागादौ (तत्) हस्तकं स्फुटं (स्पष्टं) प्रयोजयेत् ।। ३२७९ ।।

अनुवाद—लोक-प्रयोग के अनुसार और नाटचांग का आश्रय कर उस-उस चेष्टानुसार हस्त-प्रयोग करना चाहिए। घर्षण, छेदन, आदर्श-विभागादि स्थानों में (घिसना, तोड़ना, दर्पण, विभाग आदि) स्पष्ट रूप से हस्त-प्रयोग होता है। इति पताकाभिनय समाप्त ।। ३२७९ ।।

ऐछे त्रिपताकादि नृत्यज्ञ निरूपय ।
इथे ये कौतुक ताहा अन्ये कि बूझय ।। ३२८० ।।

अनुवाद—अब त्रिपताकादि-अभिनय का नृत्यज्ञ निरूपण करते हैं। इसमें जो कुतुहल व रहस्य है, उसे दूसरे क्या समझ सकते हैं ।। ३२८० ।।

इत्यसंयुतहस्ताः अथ प्राप्तक्रमं संयुतमाह ।। ३२८१ ।।

अनुवाद—इति असंयुतहस्ता, अब क्रमानुसार संयुतहस्त के विषय में कहा जाता है ॥ ३२८१ ॥

संयुतहस्तक त्रयोदश निरूपय।
अञ्जलि कपोत कर्कट स्वस्तिकादय॥ ३२८२ ॥

अनुवाद—अञ्जलि, कपोत, कर्कट, स्वस्तिक आदि तेरह संयुतहस्त का निरूपण किया गया है ॥ ३२८२ ॥

तथाहि—

अञ्जलिश्च कपोतश्च कर्कटः स्वस्तिकस्तथा।
दोल-पुष्पपुटोत्सङ्ग-खटका वर्द्धमानकः ॥ ३२८३ ॥
गजदन्तश्चावहित्थो निषधो मकरस्तथा।
वर्द्धमानश्चेति हस्ताः संयुताः स्युताः स्युस्त्रयोदश ॥ ३२८४ ॥

अन्वय—अञ्जलिः च कपोतः च कर्कटः तथा स्वस्तिकः दोलपुष्पपुटोत्सङ्ग-खटकाः वर्द्धमानकः गजदन्तश्च अवहित्थः निषधः तथा मकरः वर्द्धमानः च इति त्रयोदश संयुताः हस्ताः स्युः (भवेयुः) ॥ ३२८३-८४ ॥

अनुवाद—अञ्जलि, कपोत, कर्कट, स्वस्तिक, दोल, पुष्पपुटोत्संग, खटक, वर्द्धमानक, गजदन्त, अवहित्थ, निषध, मकर और वर्द्धमान—ये तेरह संयुतहस्त हैं ॥ ३२८३-३२८४ ॥

अत्राञ्जलिः—

पताका द्विहस्ततलसंश्लिष्ट अञ्जलि।
देवादि-नमस्कारादि क्रिया युक्ताङ्गुलि ॥ ३२८५ ॥

अनुवाद—पताकहस्त के दोनों तल मिले हुए होने पर अञ्जलि है, देवादि को नमस्कार आदि की क्रिया में अंगुलियाँ युक्त रहती हैं ॥ ३२८५ ॥

तथाहि—

पताको हस्ततलयोः संश्लिष्टश्चेत्तदाञ्जलिः।
नमस्कारे देवतानां शिरःस्थोऽयमुदीरितः ॥ ३२८६ ॥
गुरुणान्तु नमस्कारे मुखक्षेत्रगतो भवेत्।
नमस्कारे तु विप्राणां हृदिस्थः सद्भिरिष्यते ॥ ३२८७ ॥
अन्येष्वनियमो ज्ञेयस्त्रिभिः कार्य्यो यथेष्टतः ॥ ३२८८ ॥

इत्यञ्जलिः ॥

अन्वय—चेत् (यदि) पताकः हस्ततलयोः संश्लिष्टः (संयुक्तः स्यात्) तदा अञ्जलिः (भवेत्)। देवतानां नमस्कारे अयं (अञ्जलिः) शिरःस्थः उदीरितः

(कथितः) तु (किन्तु) गुरुणां नमस्कारे (अञ्जलिः) मुखक्षेत्रगतः (मुखस्थान-गतः भवेत्) तु (किन्तु) विप्राणां नमस्कारे (अयम् अञ्जलिः) हृदिस्थः सद्भिः (साधुभिः) इर्ष्यते (कथ्यते) अन्येषु (कपोतादिषु) अनियमः ज्ञेयः (ज्ञातव्यः) त्रिभिः कपोतादीनां मध्ये यैः कैश्चित् (त्रिभिः) यथेष्टतः (यथेच्छं) नमस्कारः कार्य्यः (कर्त्तव्यः) ३२८६–८८ ॥

अनुवाद—यदि पताक हस्त के दोनों तल संश्लिष्ट (मिले हुए) हों तो उसे अञ्जलि कहते हैं। देवता को नमस्कार करने में यह अञ्जलि शिरस्थ होती है—यानी मस्तक प्रदेश में लगती है। किन्तु गुरु के नमस्कार में यह मुखस्थान-गत और विप्र (ब्राह्मण) के नमस्कार में हृदयस्थ होती है। ऐसा विद्वानों ने कहा है। अन्यान्य कपोतादि के विषय में कोई नियम नहीं हैं। इच्छानुसार इन तीनों में से किसी ढंग से नमस्कार किया जा सकता है ।। ३२८६–८८ ।।

कपोतादि संयुत लक्षण बहु हय।
विविध प्रकार नृत्यविज्ञ विस्तारय ॥ ३२८९ ॥

अथ नृत्तहस्ताः—

नृत्तहस्ता नृत्य-उपयोगी मात्र हय।
ए त्रिंशत् प्रकार द्वात्रिंश केहो कय ॥ ३२९० ॥
चतुरस्र उद्वृत्तादि त्रिंशत् प्रकार।
ए सभार लक्षणादि शास्त्रे सुप्रचार ॥ ३२९१ ॥

अनुवाद—कपोतादि संयुत हस्त के कई प्रकार होते हैं। नृत्यविज्ञों ने इनका विवध प्रकार से विवरण दिया है। अब नृत्यहस्त के विषय में कहते हैं—नृत्तहस्त मात्र नृत्यउपयोगी होते हैं, इनके तीस प्रकार हैं। कुछ गुणी इनके बत्तीस प्रकार बताते हैं। चतुरस्र, उद्वृत्त आदि तीस प्रकार हैं। इन सबके लक्षणों का शास्त्र में उल्लेख है ॥ ३२८९–९१ ॥

तथाहि—

चतुरस्रावथोद्वृत्तौ हस्तौ तेन मुखाभिधौ ॥ इत्यादयः ॥३२९२ ॥

अन्वय—चतुरस्रौ अथ (अनन्तरं) उद्वृत्तौ मुखाभिधौ हस्तौ इत्यादयः (हस्त-नृत्ताः भवन्ति) ॥ ३२९२ ॥

अनुवाद—चतुरस्र, उद्वृत्त आदि तीस प्रकार के नृत्तहस्त हैं ॥ ३२९२ ॥

हस्तक अनन्त विज्ञे दिग्दर्शाइल।
आर ये ये हस्तक प्रकारे विस्तारिल ॥ ३२९३ ॥

अनुवाद—हस्तक अनन्त हैं, मैंने दिशा-निर्देश मात्र किया है, और जो हस्तक हैं, उन पर गुणियों ने विस्तार से प्रकाश डाला है ॥ ३२६३ ॥

तथाहि—

दिङ्मात्रदर्शनार्थैते मयोक्ता हस्तका इमे ।
आनन्त्यादभिनेयानां सन्त्यनन्ताः परे कराः ॥
इति हस्तः ॥ ३२६४ ॥

अन्वय—मया दिङ्मात्रदर्शनाय (स्वल्पमात्रप्रदर्शनार्थम्) इमे हस्तका उक्ताः (कथिताः) अभिनेयानाम् आन्त्यात् (असंख्यत्वात्) परे (अन्ये) अनन्ता कराः सन्ति ॥ ३२६४ ॥

अनुवाद—मैंने केवल दिग्दर्शन के लिए ये थोड़े हस्त कहे हैं। जिस प्रकार अभिनययोग्य विषय अनन्त हैं, उसी प्रकार हस्त प्रकार भी अनन्त हैं ॥ ३२६४ ॥

अथ कटिमाह—

कटि-अभिनय पञ्च कम्पितोद्वाहित ।
छिन्ना विवृता रेचितः लक्षण विदित ॥ ३२६५ ॥

अनुवाद—अब कटि-अभिनय के विषय में कहते हैं—कम्पित, उद्वाहित, छिन्न, विवृत; रेचित—ये पाँच प्रकार के कटिअभिनय हैं, जिसके लक्षण विदित हैं ॥३२६५॥

तथाहि—

कम्पितोद्वाहितछिन्ना विवृता रेचिता तथा ।
कटिः पञ्चविधा प्रोक्तेति ॥ ३२६६ ॥

अन्वय—कम्पिता, उद्वाहिता, छिन्ना, विवृता तथा रेचिता इति पञ्चविधा कटिः प्रोक्ता ॥ ३२६६ ॥

अनुवाद—कम्पित, उद्वाहित, छिन्न, विवृत और रेचित—ये पाँच प्रकार के कटि-अभिनय कहे गये हैं ॥ ३२६६ ॥

अथ पदम्—

पदसम अञ्चित कुञ्चित सूच्यादय ।
त्रयोदय प्रकार नृत्यज्ञ निरूपय ॥ ३२६७ ॥

अनुवाद—अब पद-नृत्य के विषय में कहते हैं—सम, अञ्चित, कुञ्चित, सूच्यग्र आदि पदनृत्य के तेरह प्रकारों का नृत्यज्ञों ने निरूपण किया है ॥ ३२६७ ॥

तथाहि—

समोऽञ्चितः कुञ्चितश्च सूच्यग्रतलसञ्चरः ।
मर्द्दितोद्घाटितौ चेत्यग्रगः पार्श्वगपार्ष्णिगौ ॥ ३२६८ ॥

ताड़ितोद्घट्टितोच्छेधः उद्घाटित इति क्रमात् ।
त्रयोदशविधः प्रोक्तश्चरणो नृत्यकोविदैः ॥ ३२९९ ॥
स्वभावेन स्थितो पादौ समः पादोऽभिधीयते ॥
॥ इति सप्ताङ्गानि ॥ ३३०० ॥

अन्वय—समः अञ्चितः कुञ्चितः च सूच्यग्रतलसञ्चरः मर्द्दितोद्घाटितौ (मर्द्दितश्च उद्घाटितश्च) च इति अग्रगः पार्श्वगपार्ष्णिगौ (पार्श्वगश्च पार्ष्णिगश्च) ताडितोद्घट्टितोच्छेधः (ताड़ितश्च उद्घट्टितश्च उच्छेधश्च) उद्घाटितः इति (एवम् प्रकारेण) क्रमात् (अनुक्रमं) नृत्यकोविदैः (नृत्यविशारदैः) त्रयोदशविधः चरणः (पादः) प्रोक्तः (कथितः) स्वभावेन (प्रकृत्या) स्थितौ पादौ समः (समानः) पादः इति अभिधीयते (कथ्यते) ॥ ३२९८–३३०० ॥

अनुवाद—नृत्यविद्गण सम, अञ्चित, कुञ्चित, सूच्यग्रतलसञ्चर, मर्दित, उद्घाटितअग्रग, पार्श्वग, पार्ष्णिग, ताड़ित, उद्घट्टित—ये तेरह प्रकार के पदनृत्य कहे हैं। स्वाभाविक रूप से स्थित पादद्वय को सम कहते हैं। यहाँ सात अंग समाप्त हुए ॥ ३३०० ॥

प्रत्यङ्ग उपाङ्गे अभिनय ये प्रकार।
नृत्यज्ञगणे ते ताहा करिल विस्तार ॥ ३३०१ ॥
आर ये ये नाट्यक्रिया प्रचारिल इथे।
से सकल विस्तारिया नारि जानाइते ॥ ३३०२ ॥
ओहे श्रीनिवास ! रासे व्रजेन्द्र-तनय।
ब्रह्मादि-दुर्ज्ञेय याहा ताहा प्रकाशय ॥ ३३०३ ॥
अङ्ग अभिनयेर उपमा नाइ दिते।
नाना भाव प्रकाशये अशेष भङ्गिते ॥ ३३०४ ॥
श्रीराधिका राधिकार सखीगण यत।
प्रकाशये भङ्गि ता' कहिवे के वा कत ॥ ३३०५ ॥
परम अद्भुत शोभा कहिल ना हय।
सखीगण मध्ये राइ कानु विलसय ॥ ३३०६ ॥
कहिते कि दोंहार माधुर्य्य मनोहर।
विविध प्रकारेते वर्णये विज्ञवर ॥ ३३०७ ॥

अनुवाद—प्रत्यंग-उपांग में जितने प्रकार के अभिनय हैं, नृत्यज्ञगणों ने उनका विस्तार से वर्णन किया है। यहाँ जिन नाटचक्रियाओं का प्रचार हैं, उन सब की विस्तृत जानकारी नहीं दे सकता। हे श्रीनिवास ! रास में व्रजेन्द्र तनय ऐसी क्रियाओं को प्रकाश करते हैं, जो ब्रह्मादि के लिए भी दुर्ज्ञेय है। यहाँ प्रस्तुत

अंग-अभिनय की उपमा देना असम्भव है। यहाँ अनन्त भंगिमाओं के द्वारा भाव प्रकट किये जा रहे हैं। श्रीराधिका और उनकी जितनी सखियाँ हैं, सभी विविध भंगिमाओं का प्रदर्शन कर रही है, उनका कौन वर्णन कर सकता है। यह परम शोभा अवर्णनीय है। सखियों के बीच राधिका और कृष्ण शोभायमान हैं। दोनों के माधुर्य का क्या वर्णन करूँ, विज्ञवर ने इसका विविध प्रकार से वर्णन किया है ॥ ३३०१–७ ॥

तथाहि गीते ॥ श्रीकृष्णस्य ॥ यथा रागः ॥
रासविनोदिया श्याम राय।
भङ्गिते भुवन मुरुछाय ॥ ३३०८ ॥
दलित अञ्जन घन घटा।
जिनि सुकोमल अङ्ग छटा ॥ ३३०९ ॥
मयूर-चद्रिका शिरे शोहे।
युवतीगणेर मन मोहे ॥ ३३१० ॥
विचित्र तिलक चारु भाले।
के ना भूले अलक अराले ॥ ३३११ ॥
दुटि भुरु कामेर कामान।
आँखि कोणे शरेर सन्धान ॥ ३३१२ ॥
चञ्चल कुण्डल श्रुतितटे।
दोलये मुकुता नासा पुटे ॥ ३३१३ ॥
वदन चन्द्रमा चारि देशे।
वरिषे अमिया हासि लेशे ॥ ३३१४ ॥
परिसर बुकेर माधुरी।
करये धैरज-धन चुरी ॥ ३३१५ ॥
गले विलसये वनमाला।
हेरि हिया धरे कि अबला ॥ ३३१६ ॥
भुजार वलनि प्राण हरे।
जगत माताय कृशोदरे ॥ ३३१७ ॥
वसन भूषण साजे भालि।
उरु निन्दे उलट कदली[1] ॥ ३३१८ ॥
वाजये नूपुर राङ्गा पाय।
नरहरि निछनि ताहाय ॥ ३३१९ ॥

---

१. कदली वृक्ष को यदि मूलदेश के ऊपर किया जाय, उसी के समान जानिये।

यथा रागः ॥ अथ श्रीराधिकायाः ॥

रासविलासिनी राइ रासे।
सखी माझे विलसे श्यामेर वाम पाशे ॥ ३३२० ॥
आहा मरि रूपेर कि छटा।
आलो करे जग जिनि उपमार घटा ॥ ३३२१ ॥
वदने चाँदेर मद नाशे।
अमिया गरव हरे सुमधुर हासे ॥ ३३२२ ॥
भुरु दुटि भ्रमरेर पांति।
कमलनयन-कोणे भङ्गि नाना भाति ॥ ३३२३ ॥
नासाय वेशर भाल साजे।
कि नव सिन्दूर बिन्दु ललाटेर माझे ॥ ३३२४ ॥
श्रवणे ताड़ङ्क[1] मनोरमा ।
कनक दर्पण निन्दे गण्डेर सुषमा ॥ ३३२५ ॥
वलया कङ्कण करे शोहे।
काँचुलि अञ्चित कुच कानु मन मोहे ॥ ३३२६ ॥
किङ्किनी वलित माजा क्षीण।
परिधेय विचित्र वसन तनु लीन ॥ ३३२७ ॥
ललित नितम्ब उरुदेश।
ये गढ़िल तार कि रोहिल धृति-लेश ॥ ३३२८ ॥
मणिमय नूपुर चरणे।
नरहरि निछनि सुनखेर किरणे ॥ ३३२९ ॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण का गीत में वर्णन—राग के अनुसार—रास-विहारी श्याम अपनी भंगिमा से जगत को मोहित करते हैं। अञ्जन जैसे घनघटा है और उनके सुकोमल अंग की अद्‌भुत घटा है। सिर पर मयूर चन्द्रिका शोभायमान है, जो युवतियों के मन मोहित करती हैं। सुन्दर भाल पर विचित्र तिलक है और घुंघराली अलकों को कौन भूल सकता है। दोनों भौंहें काम के कमान है जो आंखों कानों के शर के समान हैं। कानों के नीचे चञ्चल कुण्डल शोभायमान है और नासिका में मुक्ता चमक रहे हैं। वदन चन्द्रमा के समान है जिससे अमृत वर्षा हो रही है। वक्ष के माधुर्य से दर्शक अपना धैर्य खो देते हैं। गले में वनमाला विलसित है, इसे देखकर महिलाएँ धैर्य रख सकती हैं? भुजाओं की भंगिमा मनहर है और कृश कटि पर जगत बलिहारी है। वसन भूषण शोभायमान है। कदली उलटने जैसी कटि की

---

१. ताटङ्क = कर्णभूषण, काणताड़का।

शोभा प्रकट होती है। रंगे पाँवों में नूपुर बज रहे हैं। नरहरि इस पर बलिहारी हैं॥

राग के अनुसार—श्रीराधिका—रासविलासिनी राधिका रास में सखियों के साथ श्रीकृष्ण के वाम पार्श्व में विलसित है। रूप की क्या शोभा है, जैसे कि वह जगत में प्रकाश कर रही है। वदन जैसे चन्द्रमा का गर्व चूर्ण करता है और सुमधुर हास्य से अमृत का गर्व भी हरण करता है। दोनों भुरु (भौंहें) भ्रमर की पंक्ति के समान हैं और कमल रूपी नयनों की छोर पर विविध प्रकार की भंगिमा है। नासिका में बेसर मोती शोभायमान हैं। ललाट पर नवसिन्दूर का बिन्दु है। कानों में सुन्दर कर्णभूषण हैं और कपोल की शोभा से कनक दर्पण भी फींका पड़ जाता है। हाथों में वलय कंकण शोभायमान है। काँचुलि से उत्थित कुच श्रीकृष्ण का मन मोहित करते हैं किंकणी वलित, क्षीण कटि और विचित्र वसन तन से लिपटे हुए हैं। ललित नितम्ब, उरुदेश जिसने भी गढ़ा है उसे क्या धैर्य रहा है। चरणों में मणियुक्त नूपुर हैं। सुनख की किरणों पर नरहरि बलिहारी हैं॥ ३३०८–२६॥

राइ–कानु सखी–सह विविध प्रकारे।
श्रीवृन्दादेवीर मनोरथ पूर्ण करे॥ ३३३०॥
किवा रङ्ग उपजये श्रीरासमण्डले।
मृदङ्गादि नाना वाद्य बाजे एक मिले॥ ३३३१॥
नाचये रसिकशिरोमणि श्यामराय।
कत साधे से नृत्यमाधुरी कवि गाय॥ ८३३२॥

अनुवाद—राधिका और श्रकृष्ण सखियों के साथ विविध प्रकार से श्रीवृन्दादेवी का मनोरथ पूर्ण करते हैं। श्रीरासमण्डल में कैसे-कैसे रंग उभरते हैं। मृदंगादि विविध वाद्य एक साथ बज रहे हैं। रसिकशिरोमणि श्रीकृष्ण नाच रहे हैं। इस नृत्यमाधुरी का कविगण कितनी साध से वर्णन करते हैं॥ ३३३०–३२॥

गीत यथा॥ राग केदारः॥

नृत्यति व्रजनागर रससागर सुखधामा।
झमकत मञ्जीर चरण, नाना गति ताल-धारण,
धैरज-भर-हरण भूरि भङ्गिम निरुपामा॥ ३३३३॥
ललनाकुल कौतुक-धृत, विविध भाँति हस्तक नत,
मस्तक अभिनय नव-शिखिपिच्छ वलित वामा।
मञ्जु वदन रदनच्छद, निरसइ चन्द्र अरुण मद
कुन्द वदन दमकत, मधुरस्मित-जित-कामा॥ ३३३४॥
चारु पाठ उघटत कत, धा धा धिकि धिकि तक तत

थै थै थै थो दि द्दमिकि, द्दमिकट दिदि द्रामा ।
तात्ता तक थोङ्ग थोङ्ग, थबि कुकु कुकुधा धिलङ्ग
धिजकट धिधि कट धिधि कट, धिधि धिल्लि लिलि ललामा ॥३३३५॥
कटिभूषण ध्वनि रसाल, लम्बित उर पुहप माल
दोलत अलकालि भाल, भालय अभिरामा
झलकत श्रुति कुण्डल मणि, चञ्चल नव खञ्जन जिनि,
कञ्जनयन चाहनी, निरमञ्छन घनश्यामा ॥ ३३३६ ॥

पुनः केदारः

श्याम रसमय रासमण्डल मध्ये लसत सु-भङ्गिते ।
ललित-वेश विलास अतिशय निपुण नव नव सङ्गीते ॥ ३३३७ ॥
जाति श्रुति स्वर ग्राम मुरुछन तान सरस प्रकाशई ।
थोदित कत थैता थै थै वदत मृदु मृदु हासई ॥ ३३३८ ॥
मञ्जु वदन मयङ्क झलकत मदन मदभर भञ्जए ।
लोल लोचन कञ्ज चाहनि युवतिगण हृदि रञ्ज ए ॥ ३३३९ ॥
झन नन नन शब्दकृत मञ्जीर चरणे विराजई ।
निछनि नरहरि मधुर नृत्ये मृदङ्ग द्दमि द्दमि बाजई ॥ ३३४० ॥

पुनः भूपाली

नाचये रसिक श्यामराय ।
देखि, के ना पराण जुड़ाय ॥ ३३४१ ॥
कि मधुर छान्दे मृदु हासे ।
युवति-धैरय-धर्म्म नाशे ॥ ३३४१ ॥
दोलये कुन्डल श्रुतिमूले ।
गण्डेर घटाय केना भूले ॥ ३३४३ ॥
करये कत ना अभिनय ।
जाहाते मदन पराजय ॥ ३३४४ ॥
चञ्चल दीघल आँखि-कोणे ।
कि रस ढालये केवा जाने ॥ ३३४५ ॥
चरण-कमले ताल धरे ।
नूपुरेर ध्वनि प्राण परे ॥ ३३४६ ॥
ता थै ता थै थै थैया ।
कहे कि भङ्गिते रैया रैया ॥ ३३४७ ॥

द्रमि द्रमि मादल बाजये।
नरहरि पराण निछये ॥ ३३४८ ॥
ओहे श्रीनिवास ! राइ नृत्य चमत्कार।
कविगण वर्णे किछु नाहि पाय पार ॥ ३३३६ ॥

तथाहि गीते ॥ केदारः ॥

नृत्यति राधा धृति'-भर-भञ्जिनी गजगामिनी,
मङ्गलमय हीन मलिन कोमल कालिन्दी पुलिन।
धनि धनि धनि निर्म्मल वर सरस पुलिन यामिनी ॥ ३३५० ॥

बाजत मृदुतर मृदङ्ग, धिगि धिगि धिगि तग धिलङ्ग,
धा द्रगु द्रगु झेन्द्रां द्रमि, द्रमि द्रमि द्रमि द्रामिणी।
झुनु झुनु पग नूपुर-ध्वनि, किङ्किणि कटि भिनि निनि निनि,
झङ्कृत कर वलय झनन झनन, अतिरामिणी ॥ ३३५१ ॥

प्रफुल्लित मुख कञ्ज वसन, दशनावलि ललित हसन,
निगदत तक थै थै, थै तक सुखधामिनी।
सुललित मणिभूषण गण, गीम धुनत कौतुक घन,
लोल लोचनाञ्चल भरु, अलक कुल ललामिनी ॥ ३३५२ ॥

चामीकर गरव हरण, परम मधुर मधुरिमतन,
आवृत रसनाञ्चल चल, झलकत अनुपामिनी।
हस्तक बहुभीति करत, शोभा रसपुञ्ज झरत,
नरहरि बहु निछनि निरखि-लज्जित सुरकामिनी ॥ ३३५३ ॥

पुनः कर्णाटः

नृत्यति रासविलासिनी राधा।
बाजत मृदङ्ग धिक धिक धा धा ॥ ३३५४ ॥
झलकत अङ्ग किरण मनहरइ।
मुख शशि हसनि अमिय जनु झरइ ॥ ८३५५ ॥
उघटत थै थै धिकि तक्ष थेन्ना।
आइ अति अइ अति ओइअ तेन्ना ॥ ३३५६ ॥
कञ्ज नयन गति खञ्जन दलये।
अभिनय कृतकर शोभित वलये ॥ ३३५७ ॥
किङ्किणी मुखर वलित कटि क्षीणा।
पहिरण वसन तरल तनुलीना ॥ ३३५८ ॥

झनन झलित मणि नूपुर चरणे।
नरहरि निछनि ललित पग धरणे ॥ ३३५६ ॥

पुनः कामोदः

नाचे राइ रमणीर मणि।
चरणे नूपुर बाजे कटिते किङ्किणी ॥ ३३६० ॥
फणि जिनि वेणी पीठे दोले।
ग्रीवार भङ्गिमा कि वा रसेर हिल्लोले ॥ ३३६१ ॥
कि मधुर अभिनय करे।
ताथै ता ता थैया थैया कहि ताल धरे ॥ ३३६२ ॥
वदने चान्देर मद नाशि।
हासिते वरिषे कि अमिया राशि ॥ ३३६३ ॥
आखि अभिनय कत छान्दे।
माताय मदन भूप बरजेर चान्दे ॥ ३३६४ ॥
नरहरि कि दिबो उपमा।
जगते करये आलो अङ्गेर सुषमा ॥ ३३६५ ॥
ओहे श्रीनिवास! राइ कानु कत रङ्गे।
करये अद्भुत नृत्य ललितादि सङ्गे ॥ ३३६६ ॥

तथाहि गीते केदारः

आजु रास विलास अतिशय श्याम शोहत परम रसमय,
राधिका कर कञ्जहि महीधर चरण-रञ्जना।
हसित वदने सुपाट उघटत थै ताथै थै ताथै ततथो,
दिदि दिगण हस्त अभिनय, मदन मदभय भञ्जना ॥ ३३६७ ॥
रमणीमणि निजप्राण प्रियमुख निरखि बाढ़त गाढ़ मनसुख,
विपुल पुलकित गात पद तल, तालधृत गति चञ्चले।
वादत द्रमि द्रमिकि द्रमिधा, थै तथै तत थै तथै था,
थुं नुं नुं रसपुञ्ज वरषत लोल लोचन अञ्चले ॥ ३३६८ ॥
युगल छवि अवलोकि प्रमुदित, निछइ जलधर तड़ित अतुलित,
नृत्यरत ललितादि लहु लहु गीम धुनत सुभङ्गिते।
मधुर सुर कत भाँति उचरत, थै ताथै थै द्रमिकि द्रमि तथो,
दिग दिग दिग दिग थै ताथै प्रवीणातिशय सह सुसङ्गीते ॥ ३३६९ ॥
वनि सुवेश विशाखिका दिक नटत घन घन ताधिक धिगिति रटत

धिगिति धिगि धिगि धिक्क धैकट, धा धि नि नि नि नि नि धिन्निना,
द्रमिकि द्रमि द्रमि मर्द्दल-ध्वनि हर धृति घनश्याम मणि अनिवार
ति अइ अइति अइ आ, आइ अति अइअ तिन्नि ना ॥ ३३७० ॥

पुनः केदारः

आजु कि नव पूणिम निशा ।
यमुना पुलिन झलकइ रासे शशि उजोर ए दिशा ॥ ३३७१ ॥
राइकानु कि मधुर छाँदे ।
नाके दुहु अङ्गे अङ्ग हेलाइया भुजा आरोपिया काँधे ॥ ३२७२ ॥
तिले तिले कि कौतुक चिते ।
दोँहे बाय बाँशी, भिशाइया मुख तार कि उपमा दिते ॥ ३३७३ ॥
चारु नयने नयन निया ।
अधरे अधर परशये रस आवेशे उल्लास हिया ॥ ३३७४ ॥
वाम दक्षिण युगल करे ।
प्रकाशये कत भाँति अभिनय मदन धैरय हरे ॥ ३३७५ ॥
ता ता ताथै ताथै कहे ।
अनिवार रव वदनचान्दे कि अमिया धारा बहे ॥ ३३७६ ॥
द्रमि द्रमिकि मृदङ्ग बाजे ।
महीतल ताल धरये, चरणे, कि नव नूपुर साजे ॥ ३३७७ ॥
ललितादि देखि से ना शोभा ।
नटन भङ्गिते गाय नानामते नरहरि मनलोभा ॥ ३३७८ ॥
ओहे श्रीनिवास ! रास-विलास विशेष ।
वर्णे कविगण जाते आनन्द अशेष ॥ ३३७९ ॥
ए सब श्रवणे नाना अमङ्गल नाशे ।
राधाकृष्ण पादपद्म मिले अनायासे ॥ ३३८० ॥
श्रीरासविलासी कृष्ण भुवन मोहन ।
यमुनाय जलकेलि करे कत क्षण ॥ ३३८१ ॥
ताहे जे कौतुक ताहा के वर्णिते पारे ।
रचये विचित्र वेश एइ कुञ्जागारे ॥ ३३८२ ॥
दोँहे महारङ्गे एथा करये शयन ।
निशान्त-समये जागायेन सखीगण ॥ ३३८३ ॥
दोँहे सखीसह निज निज गृहे जान ।
दोँहार विच्छेदे दोँहे ना धरे पराण ॥ ३३८४॥

सखीगण नानारूपे दोंहे प्रबोधय।
दोंहे निज गृहे सुति स्वप्नेते मिलय॥ ३३८५॥

तथाहि गीते—

सखीसह राइ श्यामराय।
विपुल विलास रासे उल्लास हियाय॥ ३३८६॥
जलकेलि करिवार तँरे।
प्रवेशि यमुनाजले कत भङ्गि करे॥ ३३८७॥
परस्पर वारि वरिषय।
भिङ्गये वसन तनुलीन शोभामय॥ ३३८८॥
लाजे धनि चाहि श्याम पाने।
लुकाय अगाध जले कमलेर वने॥ ३३८९॥
कालिया से विभोल प्रेमेते।
चुम्बये कमल राइ मुखेर भ्रमेते॥ ३३९०॥
ललितादि सथी चारिपाशे।
देखिया श्यामेर रङ्ग मृदु मृदु हासे॥ ३३९१॥
राइ सखी इङ्गित पाइया।
दाँड़ाय श्यामेर अङ्गे अङ्ग हेलाइया॥ ३३९२॥
बाढ़ये कौतुक तिले तिले।
करि जलकेलि उठे यमुनार कूले॥ ३३९३॥
पिये मधु मदने मातिया।
सुरत-समर-सुखे उथलये हिया॥ ३३९४॥
निशि शेषे निकुञ्ज हइते।
चले सचकित गति अलखित पथे॥ ३३९५॥
दोंहे निज निज गृहे गिया।
सुतये विच्छेद-दुखे व्याकुल हइया॥ ३३९६॥
स्वपने मिलये मोद चिते।
नरहरि निछनि ए दोंहार पीरिते॥ ३३९७॥
पुनः आसि विलसये ए कुञ्जागारे।
क्रमे कवि वर्णे इहा विविध प्रकारे॥ ३३९८॥

भावार्थ—राग केदार में—रससागर सुखधाम श्रीकृष्ण नृत्य कर रहे हैं और नाना गति-ताल तथा अनुपम भंगिमा का प्रदर्शन हो रहा है। अभिनय अद्‌भुत है। पुनः

केदार में—रासमण्डल में श्याम सुन्दर भंगिमा के साथ शोभायमान हैं। यहाँ संगीत का प्रदर्शन है जिसमें श्रुति-स्वर-जाति-ग्राम-मूर्छना का समावेश है। इस सुन्दर नृत्य पर नरहरि बलिहारी हैं॥ भोपाली में—श्याम नृत्य कर रहे हैं जिससे युवतियाँ धैर्य खो देती हैं। इसके अभिनय से मदन भी पराजित हो जाता है। नूपुर की ध्वनि हमारे प्राण हरण करती है। हे श्रीनिवास ! राधिका का नृत्य अद्‌भुत है॥ केदार—गजगामिनी राधा नृत्य कर रही है। मृदंग बज रहा है। नूपुर ध्वनि हो रही है। किंकिणी-वलय-मणिभूषण ध्वनि कर रहे हैं। हस्तक की शोभा अद्‌भुत है। इस शोभा से रस झर रहा है। नरहरि बलिहारी हैं॥ कर्णाट–रासविलासिनी राधा नृत्य कर रही है। अभिमय की अद्‌भुत शोभा है॥ कामोद—रमणी-मणि राधिका का अद्‌भुत नृत्य है जिसका सौन्दर्य, अंग–सुषमा जगत प्रकाश करती है॥ केदार— आज रासविलास है जिसमें कई प्रकार के वाद्य बज रहे हैं॥ केदार—पूर्णिमा की रात्रि में यमुना तट पर राधा-कृष्ण उल्लास के साथ नाच रहे हैं॥ हे श्रीनिवास। रास-विलास का कविगण जो वर्णन करते हैं उससे अद्‌भुत आनन्द मिलता है॥ गीत—श्रीकृष्ण राधिका उल्लास के साथ नृत्य कर रहे हैं॥ ३३३३–३३९८॥

कुञ्जाद्‌गोष्ठं निशान्ते प्रविशति कुरुते दोहनान्नाशनाद्यां
प्रातः सायञ्च लीलां विहरति सखिभिः सङ्गवे चारयन् गाः।
मध्याह्ने चाथ नक्तं विलसति विपिने राधयाद्धापराह्ने
गोष्ठं याति प्रदोषे रमयति सुहृदो यः स कृष्णोऽवतान्नः ३३९९॥

अन्वय—यः निशान्ते (रजनीशेषे) कुञ्जात् गोष्ठं प्रविशति (ततः) दोहनान्नाशनाद्यां (गोदोहान्नभोजनाद्यां) लीलां प्रातः सायञ्च (सायंकाले च) कुरुते सङ्गवे (पूर्वाह्णे) गाः चारयन् (पालयन्) सखिभिः (वयस्यैः) विहरति (भ्रमति), मध्याह्ने अथ नक्तञ्च (रात्रौ च) विपिने राधया (सह) अद्धा (निश्चितं) विलसति (रमते), अपराह्णे गोष्ठं याति, प्रदोषे (रजनीमुखे) सुहृदः (नन्दयशोदादीन्) रमयति (आनन्दयति) स कृष्णः (नन्दनन्दनः) नः (अस्मान्) अवतात् (रक्षतु)॥ ३३९९॥

अनुवाद—जो रात्रि शेष होने पर कुञ्ज से गोष्ठ में प्रवेश करते हैं, प्रातः और सायंकाल गो-दोहन और अन्न-भोजनादि लीला करते हैं; पूर्वाह्ण में सखियों के साथ गोचारण करते-करते विहार करते हैं, मध्याह्न और रात्रि में श्रीराधा के साथ रमण करते हैं, अपराह्ण में गोष्ठ में जाते हैं, प्रदोषकाल (रात्रि-आरम्भ) में सुहृद् को आनन्दित करते हैं, वही कृष्ण हमारा पालन-रक्षण करें ३३९९॥

गीते यथा—

रजनी शेष, नवकुञ्जे शयन,
व्रज-भूषण श्यामगोरि नवलेह।
कौतुके जागि, कठिन गुरुजन भये,
चलु अति तुरित सुतहि पुन गेह ॥ ३४०० ॥

स्नानादिक रत, प्राते धनी यशोमती,
गृहगत कृत रन्धन सखीसङ्ग।
गोदोहन करु, स्नान कानु सखे,
गणसह भुञ्जि शयनेर बहुरङ्ग ॥ ३४०१ ॥

पूर्व्वाह्ने वन-गमन धेनु सह,
विलसि चपल चलु कुण्डकतीर।
प्रिय अदर्शन सहि पुन धनी निज,
प्रेषित दूती-पथ निरिखे अथिर ॥ ३४०२ ॥

मध्याह्ने सखी-सह सुन्दरी निज,
कुण्ड निकट प्रिय मिलने उलास।
वंशीहरण मधु-पान स्नान रवि-
पूजन अरु कत विविध विलास ॥ ३४०३ ॥

गृह चलु गोरी, साजि अपराह्णहि,
सखीसह प्रियपथ रहइ नेहारि।
धेनु सखा सब्वे श्याम गमन गृह,
ओ मुख लखि' व्रजजन सुख भारि ॥ ३४०४ ॥

साझ्नु समये, जननी करु लालन,
गोदोह—आदि बहु रङ्ग।
राइक प्रेषित, विविध द्रव्य सुखे,
भुञ्जइ प्रिय सुवलादिक सङ्ग ॥ ३४०५ ॥

समय प्रदोषे, साजि व्रजनागर,
शुनि शुनि-गात गमन करु कुञ्ज।
राइ रमणी मणि, बनी अलखित गति,
सखीसह श्याम मिलने सुख-पुञ्ज ॥ ३४०६ ॥

मधुर निशा नव-नृत्य गीतरत,
रासविलास भुवने अनुपाम।

कुञ्जभवने रति-केलिकलह दुहुँ,
शयन सेवइ सुखे सखी घनश्याम ॥ ३४०७ ॥
ओहे श्रीनिवास एइ यमुनार कूले ।
झूले कृष्ण प्रियासह विचित्र हिन्दोल ॥ ३४०८ ॥

गीते यथा । मल्लार ॥

आजु झुलत नागर-राज ।
महामञ्जु निकुञ्जिकि माझ ॥ ३४०९ ॥
नवनिर्मित रत्नहि डोर ।
तहि राजत रङ्ग विभोर ॥ ३४१० ॥
वाम भागेते सुन्दरी शोहे ।
श्यामसुन्दरेर मन मोहे ॥ ३४११ ॥
दुहु रूप निरूपन छटा ।
दूरे दामिनी जलघटा ॥ ३४१२ ॥
हेममणि विभूषण गाय ।
अति विचित्र वसन ताय ॥ ३४१३ ॥
गले दोले सुललित हार ।
नेत्र भङ्गि कि उपमा तार ॥ ३४१४ ॥
मुखचन्द्रे सुमधुर हासि ।
अनिवार झरे सुधाराशि ॥ ३४१५ ॥
दोहे अधरे अधर दिया ।
रहे अङ्गे अङ्ग मिशाइया ॥ ३४१६ ॥
ललितादि सखी चारिपाशे ।
रङ्ग देखि' कि आनन्दे भासे ॥ ३४१७ ॥
हासि झुलायइ मन्द मन्द ।
मिलि गायइ गीत सुछन्द ॥ ३४१८ ॥
केह केह मृदङ्गादि बाय ।
चारु चामर केह डुलाय ॥ ३४१९ ॥
वरषा ऋतु रीति अशेष ।
बहे मन्द समीर सुदेश ॥ ३४२० ॥
बेढ़ि वृक्ष-लता रुचिकारी ।
नाना पुष्प प्रफुल्लित भारि ॥ ३४२१ ॥

भ्रमे भृङ्ग-ध्वनि परतेक ।
शिखी कोकिल पक्ष अनेक ॥ ३४२२ ॥
घन दादुर[१] शबद बहु ।
रस बादर झुमि रहु ॥ ३४२३ ॥
कहुको उपमा नहु थोर ।
धनश्याम से कौतुक भोर ॥ ३४२४ ॥
देखह फल्गुन खेला स्थान श्रीनिवास ।
एथा राइकानुर कि अद्भुत विलास ॥ ३४२५ ॥

गीते वसन्तः ॥

आजु परम, रङ्ग हरषे, श्याम रसिक राज ।
वेश विरचि विलसत नवकुञ्ज-भवन-माझ ॥ ३४२६ ॥
राधा-विधु-वदनी बनी, कि उपमा नहु थोरि ।
नाह समीप, भङ्गिम सब्वे, बाजत रस भोरि ॥ ३४२७ ॥
डारत दुहु, फागु दुहुक, अङ्ग अरुण मेल ।
मृगमद चन्दन पराग कुंकुम पुन देल ॥ ३४२८ ॥
सहचरीगण, हेरि दुहुक, शोभा बहु भाँति ।
बाजत कत, यंत्र चरित, गायत मुद माति ॥ ३४२९ ॥
चञ्चल मन-मोहन घन, छाड़त पिचकारी ।
भीगल तनु, वसन लागि सचकित सुकुमारी ॥ ३४३० ॥
ललिता दलिताञ्जन जल, नागर शिरे ढाले ।
हो हो हो, होरि उचरि विरचइ करतालि ॥ ३४३१ ॥
केलिकलह—पटु नटवर, काहुक गहि आनि ।
चुम्बित वदन, काहुक कुच कमले धरइ पाणि ॥ ३४३२ ॥
काहुक परिरम्भई बहु कहि सुमधुर बात ।
लोचन-शर, वरिषे परश-पर पुलकित गात ॥ ३४३३ ॥
ऐछे फागु, खेला सुख, कोन करब अन्त ।
मानि सुकृति, अतिशय ऋतुराज ऋतु वसन्त ॥ ३४३४ ॥
मङ्गलमय, जय जय पिक, कूहकत अनिवारि ।
भणव कि घनश्याम विपुल कौतुक बलिहारि ॥ ३४३५ ॥
ओहे श्रीनिवास महा कौतुक एथाय ।
राइ कुञ्जदेवी हैला सखीर इच्छाय ॥ ३४३६ ॥

---

१. दादुर अर्थात् मेढ़क (बेङ्) दर्दुर ।

गीते यथा। यथा रागः ॥

सुन्दरी सखीसह, करिया युकति,
श्यामे मिलिबारे चलये रङ्गे।
निकुञ्जे प्रवेशि, वैसे एका सुखे,
सुचारु वसन झापिया अङ्गे ॥ ३४३७ ॥
नागरवर तरुतले तरल,
राइपथ हेरे प्रेमेर भरे।
कुञ्जेते से धनी पानी चा' या धा' या,
जा' या पूछे वृन्दादेवीरे धीरे ॥ ३४३८ ॥
कह कह नव निकुञ्जे एकाकी,
केबा बोसियाछे अपूर्व्व वेशे।
हेन शोभा कभू, ना देखि भूमाझे,
उमार मूरति उपमा किसे ॥ ३४३९ ॥
शुनि वृन्दा, व्रजराजसुत प्रति,
कहे इह एइ निकुञ्जे देवी।
मोर यत पराक्रम ताहा तुमि,
जानिह उहार चरण सेवि' ॥ ३४४० ॥
शुनि वाणि विदग्ध गतिपर
परमादर दरश आशे।
चञ्चलचित, चारुकुञ्जे जिया,
दाड़ाय ओ नव देवीर पाशे ॥ ३४४१ ॥
युड़ि दुइ कर, कहे आजु सब,
साध सिधि हवे तोमारे सेवि।
वञ्चना ना करि, कर दया सुख,
हबे निवेदिये शुनह देवी ॥ ३४४२ ॥
मोर प्राण-प्रिया हियार पुतलि,
वृषभानु-सुता रमणी-मणि।
ताँर अदरश, न सहे पराणे,
कत-शत युग क्षणेके गणि ॥ ३४४३ ॥
तेंहो कुलवती, अति मृदु सदा,
प्राण काँपे गुरुजनेर डरे।
ताहे शुभंकरी, एइ क' रो येन,

ताँरे केहो किछु कहिते नारे ॥ ३४४४ ॥
एत कहि कानु प्रणमये पद,
परशि कुसुम अञ्जलि दिया ।
ता' देखि ललिता थकिया गुपते,
हासे अतिशय पुलक हिया ॥ ३४४५ ॥

वृन्दादेवी कहे, कि कर कालिया,
ए रूप पूजने कि फल पा'वे ।
प्रति अङ्ग दिया पूज प्रति अङ्ग,
तबे से ए देवी प्रसन्न हवे ॥ ३४४६ ॥

शुनि' शशिमुखी, घुङ्टे वदन राखि,
मृदु हासे आनन्दे भासि' ।
नेत्रकोणे निवारये ये वृन्दारे,
से प्रकाशये पुन ईषत' हासि ॥ ३४४७ ॥

मदनमदे, मातिया नागर,
हेरि हासि भासि आनन्द-जले ।
आइस-आइस मोर, प्राण-प्रिया देवी,
इहा बुलि तुलि करये कोले ॥ ३४४८ ॥

ललिता-लतामाझ, तेजिया निकटे,
आसि कहे कत बुझाबो आमि ।
कुञ्जदेवी बलि, भय नाहि करो,
विपरीत रति-लम्पट तुमि ॥ ३४४९ ॥
इथे दोष ना मानो ? शुनिया कहये,
जाबे दोष तुया परश पाया ।
इहा शुनि' नरहरि सह सहचरी,
हासे मुखे वसन दिया ॥ ३४५० ॥
अहे श्रीनिवास ! एक दिन एइखाने ।
हैला महाव्याकुल श्रीकृष्ण राइ विने ॥ ३४५१ ॥

दूतीमुखे राधिकार शुनिया गमन ।
महानन्दे मत्त हइला व्रजेन्द्रनन्दन ॥ ३४५२ ॥
नेत्रमन राधिकागमन-पथे थुइला ।
आपना ना चिने ऐछे विह्वल हइला ॥ ३४५३ ॥
एथा राधा प्रिय सखीगणेर इच्छाय ।

कृष्ण आगे चले चन्द्रावली दूती प्राय ॥ ३४५४ ॥

गीते यथा । यथा रागः ॥

राधा सुधामुखी, सुखी सखीगणे,
राखी कथोदूरे कौतुक अति ।
प्राणसम प्रिया, पाशे चले एका,
अलखित चन्द्रावलीर दूती ॥ ३४५५ ॥
निकुञ्जे नागर गर गर राइ,
दरशन आशे विभोर हैया ।
कत मनोरथ, करे मने मने,
पिया पथ पाने सघने चा' या ॥ ३४५६ ॥
तथा भृङ्गगण, भ्रमे भङ्गि भूरि,
रङ्गे रहे करि गुञ्जर छला ।
चन्द्रावली—दूती, फिरे वने केने,
ना जानिये शुनि चमके काला ॥ ३४५७ ॥
हेनइ समय, से दूतीं तुरित,
उपनीत पाशे चाहि ता पाने ।
विमरिष मुख मलिन विषम,
सङ्कट जानिया व्याकुल मने ॥ ३४५८ ॥
थिर हैया पुन, चातुरी प्रकाशि,
दूती प्रति कहे आदर करि ।
याह तुया पाछे, पाछे याब वेगे,
दूती कहे छाड़ि याइते नारि ॥ ३४५९ ॥
तुया बिनु चन्द्रावली ना जीयये,
कि कर से दशा देखह जा' या ।
उठो उठो आर ना सोहे विलम्ब,
एत कहि' पाये धरये धा' या ॥ ३४६० ॥
परशे परम परशन दूती,
कतरूपे धृति धरये मेनो ।
दूती—सुपरश, पाइ श्याम शशी,
विवश सापिनी दंशये येनो ॥ ३४६१ ॥
चञ्चल लोचने, चाहे वृन्दा प्रति,
कहे कह इकि हइल मोरे ।

वृन्दा कहे केने भावो भालो हवे,
बारेक दूतीरे करह कोरे ॥ ३४६२ ॥
शुनि सुचतुर—मणि अनिवार,
दूती कोरे करि आनन्दे मासे।
दूरे थाकि ताहा, देखी सखी सब,
वृन्दापाने चा' या ईषत हासे ॥ ३४६३ ॥
ललिता ललित, मल्लीवल्ली—मध्य,
तेजि रोषे कहे भ्रुभङ्गि करि'।
याह याह तथा, एथा वृथा स्थिति,
रीति अनुपम सोहिते नारि ॥ ३४६४ ॥
कत बा ना कर, ओ रति—लम्पट,
से सकल कथा रहिलो दूरे।
चन्द्रावलीसह, ये रूप तोमार,
ताहा जानिलाम दूतीर द्वारे ॥ ३४६५ ॥
आहा मरि तुया, पीरित ए रूप,
पुलक कभु ना देखिये अङ्गे।
आमा सभाकारे, किसेर सङ्कोच,
चन्द्रावली—सुधा पिबह रङ्गे ॥ ३४६६ ॥
शुनि कानु कहे, जिनि' चन्द्रावली,
ए चान्दवदने अमिया राशि।
पाइनु अनुमति, पान करि एवे,
एतो कहि' मुख चुम्बये हासि ॥ ३४६७ ॥
चिबुक परि धरि कर-पल्लव,
परिहास करे रसेर भरे।
ऊरुपरि राखि' रचिया सुवेश,
विलसये नव पालङ्क परे ॥ ३४६८ ॥
जानि' सुसमय, प्रिय सखी दुँहु,
श्रम निवारये यतन करि।
पाइया इङ्गित रङ्गे नरहरि,
करये चामर ओ रूप हेरि ॥ ३४६९ ॥
अहे श्रीनिवास आर ए रस-कुञ्जेते।
यैछे विहरय ताहा के पारे कहिते ॥ ३४७० ॥

परम अद्‌भुत लीला सखी विस्तारय।
मनेर आनन्दे ताहा सखी आस्वादय॥ ३४७१॥

सखी विना सुख ना जन्मये कदाचित।
सखीर माहात्म्य हय सर्व्वत्र विदित॥ ३४७२॥

भावार्थ—प्रथम गीत में व्रजनागर और राधिका की केलि का वर्णन है। सखियाँ यह देखकर प्रसन्न होती हैं। कृष्ण प्रिया के साथ झूला झूल रहे हैं॥ मल्लार गीत में—राधा कृष्ण के झूला झूलने की अद्‌भुत छटा का वर्णन है। सुधा-वर्षा हो रही है और चारों ओर सखियाँ हैं॥ वसन्त गीत में—फागुन की केलि है, जहाँ रंग की वर्षा हो रही हैं, कितने ही वाद्य बज रहे हैं। पिचकारियाँ चल रही हैं। इस फाग खेल के सुख का कहाँ अन्त है॥ यथा राग-गीत में—श्याम से मिलने की मुक्ति का वर्णन है। कुञ्ज में एकाकी बैठे श्याम की शोभा अपूर्व है। इसमें परमादर भाव से पूजन का विधान है। श्री कृष्ण राधिका के गमन की बात सुनकर विह्वल हो उठते हैं॥ यथा राग गीत में—रंग में सखियों के साथ राधिका के अधीरभाव का वर्णन है। इस परम लीला का वर्णन सखी करती है॥३४००-७२॥

तथाहि श्रीमदुज्ज्वलनीलमणौ। सखीभेदे १ म श्लोकः—

प्रेमलीलाविहाराणां सम्यग्विस्तारिका सखी।
विश्रम्भरत्नपेटी च ततः सुष्ठु विवच्यते॥ ३४७३॥

अन्वय—सखी प्रेमलीलाविहाराणां सम्यक् विस्तारिका (विस्तारकारिणी) विश्रम्भरत्नपेटी (विश्वासरूपरत्नपेटिका) च (भवति) ततः सुष्ठु (यथायथं) विवच्यते (विचार्य्यते)॥ ३४७३॥

अनुवाद—श्रीमदुज्ज्वलनीलमणि में सखियों के भेद-निरूपण के प्रथम श्लोक में है—सखी सकल प्रेमलीला-विहार का सम्यक् रूप से विस्तार करने वाली है एवं आनन्द बढ़ाने वाली तथा विश्वासरत्नपेटिका-स्वरूपिणी अथवा विश्वासरूप रत्न का रक्षण करने वाली पेटी की तरह है, अतः सखियों के प्रकार का यहाँ यथार्थ रूप से विचार करते हैं॥ ३४७३॥

अहे श्रीनिवास कृष्णरसेर मूरति।
ये ये स्थाने ये ये लीला कहि कि शकति॥ ३४७४॥
नायक-प्रभेदे सर्व्वत्रेइ विलसय।
नायकेर शिरोमणि व्रजेन्द्र-तनय॥ ३४७५॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! कृष्ण रस की मूर्ति हैं। जिन-जिन स्थानों पर जो-जो लीला है उसका वर्णन करना अशक्य है। नायक-प्रभेद सर्वत्र विलसित हैं। कृष्ण स्वयं नायक-शिरोमणि हैं ॥ ३४७४–७५ ॥

तथाहि भक्तिरसामृतसिन्धौ—

नायकानां शिरोरत्नं कृष्णस्तु भगवान स्वयम् ॥ ३४७६ ॥

अनुवाद—भक्तिरसामृतसिन्धु में है—नायकों में शिरोमणि यानि श्रेष्ठ नायक स्वयं भगवान कृष्ण ही हैं ॥ ३४७६ ॥

धामभेदे नायकेर भेद षण्णवति।
व्रजे पूर्णतम कृष्ण भाव उपपति ॥ ३४७७ ॥
सहस्र सहस्र यूथेश्वरीगण सङ्गे।
सर्व्व नायकेर क्रिया प्रकाशये रङ्गे ॥ ३४७८ ॥
यूथे सर्व्वश्रेष्ठा चन्द्रावली श्रीराधिका।
सर्व्वत्र विदित इथे राधिका अधिका ॥ ३४७९ ॥

अनुवाद—स्थानभेद से नायक-भेद ९६ हैं। व्रज में कृष्ण के भाव में पूर्णतम भेद के दर्शन होते हैं। सहस्र दलगत नायिकाओं के साथ रास में सभी नायकों के भेद प्रकट होते हैं। दल में चन्द्रावली और राधिका सर्वश्रेष्ठ हैं। राधिका का सर्वश्रेष्ठत्व सर्वविदित है ॥ ३४७७–७९ ॥

तथाहि उज्ज्वलनीलमणौ—

तथापि सर्व्वथा श्रेष्ठे राधाचन्द्रावलीत्युभे।
यूथयस्तु ययोः सन्ति कोटिसंख्या मृगीदृशः ॥ ३४८० ॥

अन्वय—तथापि राधा चन्द्रावली इति (नामिके) उभे सर्व्वथा (सर्व्वप्रकारेण) श्रेष्ठे। ययोस्तु (राधाचन्द्रावल्योः) कोटि-संख्या मृगीदृशः (असंख्याः मृगनयना गोपिकाः) यूथयः (व्यूहाः) सन्ति ॥ ३४८० ॥

अनुवाद—उज्ज्वलनीलमणि में है—फिर भी गोपियों के बीच राधा और चन्द्रावली दोनों सब प्रकार से श्रेष्ठ हैं। कोटि-कोटि मृगनयना गोपिकाएँ दल रूप में इन दोनों की अनुगामिनी हैं ॥ ३४८० ॥

अभूदाकुलितो रासः प्रमदाशतकोटिभिः।
पुलिने यामुने तस्मिन्नित्येषागमिका प्रथा ॥ ३४८१ ॥

अन्वय—तस्मिन् यामुने पुलिने प्रमदाशतकोटिभिः (नारीशत-कोटिभिः) आकुलितः (सङ्कुलितः) रासः (तन्नामकनृत्यम्) अभूत्। इति (एवम्) एषा आगमिका (शास्त्रीया) प्रथा (रीतिः) ॥ ३४८१ ॥

अनुवाद—उस यमुना-पुलिन पर शतकोटि तरुणियों का संकुलित-परिपूर्ण रास होता था। इसी प्रकार की सनातनी रीति व आगम परम्परा है।। ३४८२।।

तयोरप्युभयोर्म्मध्ये राधिका सर्व्वथाधिका।
महाभावस्वरूपेयं गुणैरति वरीयसी।। ३४८२।।

अन्वय—तयोः (राधाचन्द्रावल्योः) अपि उभयोः (द्वयोः) मध्ये राधिका सर्व्वथा (सर्व्वभावेन) अधिका (श्रेष्ठा) (यतः) इयं (एषा राधिका) महाभावस्वरूपा (महाभावरूपिणी) गुणैः (निखिलसद्गुणैः) अति वरीयसी (श्रेष्ठा) ।।३४८२।।

अनुवाद—श्रीराधा और चन्द्रावली इन दोनों में श्रीराधिका सब प्रकार से श्रेष्ठ है। यह महाभावरूपिणी (जिसमें श्रीकृष्ण विषयक तन्मयता है) एवं सर्व गुणों में अतिशय गुणान्विता हैं यानी सर्वसद्गुण के कारण अति उत्तमा है।। ३४८२।।

श्रीराधिकासह यैछे कृष्णेर विहार।
ताहा विस्तारिया वा वर्णिते शक्ति का'र।। ३४८३।।
एथा कृष्ण परक कौतुके विलसये।
धीरोदात्त नायकेर क्रिया प्रकाशये।। ३४८४।।
धीरोदात्त हय सर्व्वमाने प्रवीण अति।
परम गम्भीर विनयादि शुद्धरीति।। ३४८५।।

अनुवाद—श्रीराधिका के साथ श्रीकृष्ण का जैसा विहार होता है उसका विस्तार से वर्णन करने की शक्ति किसमें है। यहाँ श्रीकृष्ण परम कौतुक से बिलसित हैं और धीरोदात्त नायक की क्रियाएँ प्रकाशित कर रहे हैं। धीरोदात्त नायक सब प्रकार से प्रवीण, परम गम्भीर, विनयशील आदि गुणों से युक्त होता है और उसकी रीति शुद्ध होती है।। ३४८३-८५।।

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धौ—

गम्भीरो विनयी क्षन्ता करुणः सुदृढव्रतः।
अकत्थनो गूढ़गर्व्वो धीरोदात्तः सुसत्त्वभृत्।। ३४८६।।

अन्वय—(धीरोदात्तलक्षणमाह) धीरोदात्तः (नायकः) गम्भीरः, विनयी क्षन्ता (क्षमाशीलः) करुणः सुदृढ़व्रतः अकत्थनः (आत्मश्लाघाहीनः) गूढ़गर्व्वः सुसत्त्वभृत् (अति साहसिक उदारो वा स्यात्) ।। ३४८६।।

अनुवाद—अब धीरोदात्त नायक के लक्षण कहते हैं—श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु में है—धीरोदात्त नायक गम्भीर (हर्ष-शोकादि में जिसके मनोविकार गूढ़ रहते हैं),

विनयी, क्षमाशील, करुण (दयालु), व्रतादि नियम पालन में दृढ़, आत्मश्लाघाहीन, अप्रकाशितगर्व, अतिसाहसिक और उदार होता है ॥ ३४८६ ॥

कृष्ण धीर ललित नायक मनोहर ।
एइ कुञ्जमन्दिरे विलसे निरन्तर ॥ ३४८७ ॥
विदग्ध, निश्चिन्त, परिहासरत अति ।
प्रेयसीर वश, परमानन्दमय रीति ॥ ३४८८ ॥

अनुवाद—कृष्ण मनोहर धीरललित नायक हैं और इस कुञ्जमन्दिर में निरन्तर लीला करते हैं। धीरललित नायक चतुर, निश्चित-निर्भय, परिहासरत, प्रेयसी के वशीभूत, परम आनन्दमय होता है ॥ ३४८७–८८ ॥

तत्रैव—

विदग्धो नवतारुण्यः परिहासविशारदः ।
निश्चिन्तो धीरललितः स्यात् प्रायः प्रेयसीवशः ॥ ३४८९ ॥

अन्वय—धीरललितः (नायकः) प्रायः (प्रायशः) विदग्धः (चतुरः) नवतारुण्यः (नवीनयुवस्वभावः) परिहासविशारदः (हास्यकौतुकनिपुणः) निश्चिन्तः (निर्भयः) प्रेयसीवशः (प्रियाधीनः) स्यात् ॥ ३४८९ ॥

अनुवाद—धीरललित नायक प्रायः चतुर, नवतारुण्ययुक्त, परिहासविशारद, निश्चिन्त-निर्भय और स्वप्रिया के वश में रहने वाला होता है ॥ ३४८९ ॥

अयं कन्दर्पवत्—

धीर शान्त नायक श्रीव्रजेन्द्र-तनय ।
शास्त्रदर्शी जितेन्द्रिय धार्म्मिकातिशय ॥ ३४९० ॥
विनयादि गुण प्रकाशये प्रियापाश ।
ए कुञ्जभवने अति अद्भुत विलास ॥ ३४९१ ॥

अनुवाद—यह (धीरशान्त नायक) मदन के समान है। धीरशान्त नायक नन्दनन्दन-श्रीकृष्ण शास्त्रदर्शी, जितेन्द्रिय एवं अत्यन्त धार्मिक हैं। प्रिया के साथ विनयादि गुण प्रकाशित करते हैं। इस कुञ्जभवन में अति अद्भुत विलास है ॥ ३४९०–९१ ॥

तत्रैव—

समप्रकृतिकः क्लेशसहनश्च विवेचकः ।
विनयादिगुणोपेतो धीरशान्त उदीर्य्यते ॥ ३४९२ ॥

अन्वय--समप्रकृतिकः क्लेशसहनः च विवेचकः विनयादिगुणोपेतः (विनयादि-गुणैः उपेतः युतः) (नायकः) धीरशान्तः (धीरश्च शान्तश्चेति) उदीर्य्यते (कथ्यते) ॥ ३४६२ ॥

अनुवाद—धीरशान्त नायक के लक्षण—समप्रकृतिक यानी जिसकी प्रकृति व स्वभाव सम हो, क्लेशसहनशील यानी क्लेशों को सहन करने वाला, विवेचक, विनय, सरलता आदि गुणों से युक्त नायक को धीरशान्त नायक कहा जाता है ॥ ३४६२ ॥

अयं युधिष्ठिरवत् ॥

धीरोद्धत नायकेर जैछे गुण क्रिया।
कृष्ण एथा प्रकाशे जाहाते हर्ष प्रिया ॥ ३४६३ ॥
आत्मश्लाघादिक से परम चमत्कार।
ये कौतुक ए कुञ्जे ता ना हय विस्तार ॥ ३४६४ ॥

अनुवाद—यह (धीरोद्धत नायक) युधिष्ठिर के समान है। धीरोद्धत नायक के जो गुण हैं उन्हें श्रीकृष्ण प्रकाशित करते हैं। इससे श्रीराधिका प्रफुल्लित होती है। इस नायक में आत्मश्लाधा आदि गुण हैं। कुञ्ज में जो कौतुक प्रदर्शित होता है उसका विस्तार से वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ३४६३–६४ ॥

तत्रैव—

मात्सर्य्यवानहङ्कारी मायावी रोषणश्चलः।
विकत्थनश्च विद्वद्भिर्धीरोद्धत उदाहृतः ॥ ३४६५ ॥

अन्वय—मात्सर्य्यवान् (ईर्षान्वितः) अहङ्कारी, मायावी (छलकारी) रोषणः (क्रोधी) चलः (चञ्चलः) विकत्थनः च (आत्मश्लाघायुक्तश्च) (नायकः) विद्वद्भिः (पण्डितैः) धीरोद्धतः (इति) उदाहृतः (उक्तः) ॥ ३४६५ ॥

अनुवाद—धीरोद्धत नायक के लक्षण—मत्सरयुक्त यानी ईर्षान्वित, अहङ्कारी, छलकपटशील, क्रोधी, चञ्चल और आत्मश्लाघाकारी नायक को विद्वानों ने धीरोद्धत नायक कहा है ॥ ३४६५ ॥

अहे श्रीनिवास कृष्ण रसेर मूरति।
व्यक्त कैला अनुकूल नायकेर रीति ॥ ३४६६ ॥
अनुकूल नायकेर नाहि समतूल।
एक नायिकाते अनुराग अनुकूल ॥ ३४६७ ॥
अनुकूल नायक श्रीव्रजेन्द्र-कुमार।
एका राइ संगे एथा अद्भुत विहार ॥ ३४६८ ॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! श्रीकृष्ण रस की मूर्ति हैं जिन्होंने अनुकूल नायक की रीति प्रकट की है। अनुकूल नायक का कोई समतुल्य नहीं है। एक नायिका में अनुरक्त रहने वाला अनुकूल नायक है। अनुकूल नायक श्रीव्रजेन्द्र-कुमार श्रीकृष्ण एकमात्र राधिका के साथ यहाँ विहार करते हैं ॥ ३४९६–९८ ॥

श्रीमदुज्ज्वलनीलमणौ—

अतिरक्ततया नार्य्यां त्यक्तान्यललनास्पृहः।
सीतायां रामवत् सोऽयमनुकूलः प्रकीर्त्तितः ॥ ३४९९ ॥
राधायामेव कृष्णस्य सुप्रसिद्धानुकूलता।
तदालोके कदाप्यस्य नान्यासङ्गः स्मृतिं व्रजेत् ॥ ३५०० ॥

अन्वय—नार्य्यां (नायिकायां) अतरिक्ततया (रागातिशय्यहेतुना) त्यक्ता-न्यललनास्पृहः (अन्यनारीसङ्गमे निस्पृहः) सीतायां (एकपत्न्यां) रामवत् (राम-चन्द्रतुल्यः) सः अयम् (एष कृष्णः) अनुकूलः प्रकीर्त्तितः (कथितः)। राधायाम् एव कृष्णस्य अनुकूलता (अनुरक्तिः) सुप्रसिद्धा (यतः) तदालोके (तस्या राधाया दर्शने प्राप्ते सति) कदापि अन्यासङ्गः (तदितरप्रियासङ्गः) अस्य (श्रीकृष्णस्य स्मृतिं न व्रजेत् (चिन्तनीयो न भवेत्) ॥ ३४९९–३५०० ॥

अनुवाद—श्रीमद् उज्ज्वलनीलमणि में है—अनुकूल नायक के लक्षण—सीता में अनुरक्त श्रीरामचन्द्र के समान एकनारी में (श्रीराधा में) विशेष अनुरक्तता हेतु अन्य नारी-संग से निस्पृह कृष्ण अनुकूल नायक कहे जाते हैं। श्रीराधा में ही श्रीकृष्ण की अनुकूलता (अनुरक्ति) सुप्रसिद्ध है, इस कारण उनके (राधा के) दर्शन मात्र से कदापि अन्य नारी-स्पर्श की इच्छा उनकी (श्रीकृष्ण की) स्मृति में उदित नहीं होती या अन्य नारी का स्मरण नहीं होता ॥ ३४९९–३५०० ॥

राधा-प्रेमाधीन कृष्ण यैछे दुंहु प्रीति।
विविध प्रकारे कवि वर्णे सेना-रीति ॥ ३५०१ ॥

अनुवाद—राधा के प्रेम के अधीन श्रीकृष्ण हैं। इन दोनों की जैसी प्रीति है, उस अलौकिक रीति का कविगण विविध प्रकार से वर्णन करते हैं ॥ ३५०१ ॥

तथाहि श्रीगौरचरित्रचिन्तामणौ श्रीयमुना गङ्गां प्रत्याह—

गीते यथा पौरवी ॥

अहे प्राणसम, सखि सुखमयि !
बिकाइनु मुइ तोमार गुणे।
एवे कहि शुन, श्याम-सुन्दरेर,

अधिक पीरिति याहार सने ॥ ३५०२ ॥
चन्द्रावली व्रजे विदिता सुन्दरी,
अपरूप रूपे लज्जिता रमा।
नवीन यौवनी, रसिकिनी धनि,
से गुण चरिते नाहिक समा ॥ ३५०३ ॥
सुवलित नव निकुञ्जमन्दिरे,
श्याम सह रंगे विलसे निति।
श्याम रसमय, मातये तेमति,
ताँर प्रेमाधीन के बुझे रीति ॥ ३५०४ ॥
परानन्दसिन्धु माझे भासे यवे,
से धनि रतन परश क'रे।
मुखशशि-सुधा-पाने-निमगन,
तखन नागरे किछु ना स्फुरे ॥ ३५०५ ॥
यदि से समये राधा तनुगन्ध,
किञ्चित से नासा परशे गिया।
तखनि ताहारे तेजिया चञ्चल,
कालाधाय येन पागल हैया ॥ ३५०६ ॥
कि आर बलिब इथे जानो चिते,
या सने कानुर अधिक लेहा।
नरहरि हेन, प्रेमेर निछनि,
गणइते गुण के बाँधे थेहा ॥ ३५०७ ॥

पुनस्तत्रैव ॥ कामोदः ॥

कि बलिब ओगो, जगते अतुल,
राधा-माधवेर पीरिति खानि।
प्राण एक तनु भिन भिन केबा,
गड़ियाछे कत आनन्द मानि । ३५०८ ॥
यदि बलो दुँहु एक इथे केन,
हइल दोहार वरण भिनो।
ताह तुया प्रति कहिये किञ्चित,
यतन करिया से कथा शुनो ॥ ३५०९ ॥
विविध वरण आछे ताथे श्याम,
गौरवरणे अधिक शोभा।
ताहार अवधि देखा' या जगते,

हासे जगजन नयन-लोभा ॥ ३५१० ॥
आर बलि अहे, कालिया चञ्चल,
यखन देखाय रङ्गिणी राधे ।
आतुर हइया तखन दुबाहु,
पसारिया कोरे करये साधे ॥ ३५११ ॥
से समये यदि विपक्ष लोकेते,
हठात् निकटे देखे ए रीति ।
घन ताड़ितादि भ्रमे भूले केह,
लखिते नारये कौतुक अति ॥ ३५१२ ॥
आर बलि सेइ सुकवि विधाता,
बहुजने अनेक आनन्द दिते ।
निरखिया श्याम गौर रुचिर,
उपमा रचिब अनेक मते ॥ ३५१३ ॥
एइ हेतु कत, कत भिन नहे,
राइ प्रेमे गढ़ा श्यामेर देहा ।
राधा-कानु-तनु प्रेममय एइ,
जगते विदित देहेर लेहा ॥ ३५१४ ॥
ए दोहार रीति आने कि जानिब,
जानये केवल रसिक जने ।
ए रसे वञ्चित, ये हइल नर-
हरि ताहे पशु समान गणे ॥ ३५१५ ॥
अहे श्रीनिवास एक दिन एइखाने,
हइल मिलन स्थिर चन्द्रावली सने ॥ ३५१६ ॥
हइला चञ्चल कृष्ण ताँहार मिलिते ।
तेह अभिसार कैला निजसखी साथे ॥ ३५१७ ॥
हेन काले राधिकार निकुञ्जगमन ।
शुनि' एथा हैते चले व्रजेन्द्र-नन्दन ॥ ३५१८ ॥
राधिका निकटे आसि अधैर्य हइला ।
चन्द्रावली मिलनादि सकल भूलिला ॥ ३५१६
एइ कुञ्जे राइसह हैल ये विलास ।
ताहा ना कहिते जानि अहे श्रीनिवास ॥ ३५२० ॥
दक्षिण-नायक कृष्ण क्रिया रसमय ।
सर्व्वनायिकाते सम दक्षिण कहय ॥ ३५२१ ॥

प्रियागण सङ्गे कृष्णचन्द्र एइखाने।
यैछे विलसये ता कहिते केबा जाने॥ ३५२२॥

भावार्थ—श्रीगौरचरित्रचिन्तामणि में श्रीयमुना ने गंगा से कहा है—पौरवी में गीत—हे प्राणसम सुखमयी सखी ! मैं तुम्हारे गुणों के आगे बिक गयी हूँ। श्याम सुन्दर की जो प्रीति है उसके बारे में कहती हूँ। चन्द्रावली अत्यन्त सुन्दरी लज्जिता है जिसके गुण-चरित्र का सानी नहीं है। वह श्याम के साथ विलसित है। उसके प्रेम से श्याम पागल हैं। नरहरि ऐसे प्रेम पर निछावर हैं॥ कामोद—राधा-माधव की अतुलनीय प्रीति के विषय में क्या कहूँ। प्राण एक है यद्यपि तन भिन्न-भिन्न हैं। दोनों का वर्ण भिन्न है, उनकी प्रीति के बारे में कहता हूँ। रंगिणी राधा की शोभा देखने को श्याम आतुर हो उठते हैं। श्याम की रुचि को देखकर कई प्रकार की उपमाओं की रचना गयी। श्याम-राधा में गाढ़ प्रीति है। इन दोनों की प्रीति को रसिकजन ही जान सकते हैं। हे श्रीनिवास ! इसी स्थल पर चन्द्रावली के साथ मिलन स्थिर हुआ। इससे श्याम चञ्चल हो उठे। उन्होंने अपनी सखी के साथ अभिसार किया। इस सयय राधिका के कुञ्ज में आगमन पर श्रीकृष्ण राधिका के पास पहुँचे और अधीर हो उठे। वे चन्द्रावली के साथ मिलन को भूल गये। इस कुञ्ज में ही राधा के साथ विलास हुआ। उसका वर्णन नरहरि नहीं कर सकता। दक्षिण नायक श्रीकृष्ण रसमय हैं। श्रीकृष्ण प्रियाओं के साथ विलसित है, उसका वर्णन कौन कर सकता है॥ ३५०२–२२॥

तत्रैव—

यो गौरवं भयं प्रेम दाक्षिण्यं पूर्व्वयोषिति।
न मुञ्चत्यन्यचित्तोऽपि ज्ञेयोऽसौ खलु दक्षिणः॥ ३५२३॥

यथा—

नायिकास्वपानेकासु तुल्यो दक्षिण उच्यते॥ ३५२४॥

अन्वय—अन्यचित्तः अपि (अन्यासक्तः अपि) यः (नायकः) पूर्व्वयोषिति (पूर्व्वनायिकायाम्) गौरवं, भयं, प्रेम (प्रीतिं) दाक्षिण्यम् (उदारतां) (च) न मुञ्चति (परित्यजति) असौ खलु (निश्चितं) दक्षिणः (नायकः) ज्ञेयः॥३५२३-२४॥

अनुवाद—दक्षिण नायक के लक्षण—जो नायक अन्य नायिका के प्रति आसक्त होते हुए भी पूर्व नायिका के प्रति गौरव, भय, प्रेम और दाक्षिण्य (उदारता) का परित्याग नहीं करता, उसे ही दक्षिण नायक कहते हैं, अथवा कई नायिकाओं में

समान रूप से अनुरक्त रहने वाले को दक्षिण नायक करते हैं—(दक्षिण अर्थात् सरल, उदार) ।। ३५२३-२४ ।।

दक्षिणानुकूल नायकेर येइ रीति।
रासे प्रकाशिल कृष्ण रसेर मूरति ।। ३५२५ ।।

अनुवाद—दक्षिण नायक की जो रीति है, उसे रस की प्रतिमूर्ति श्रीकृष्ण ने रास में प्रकाश किया ।। ३४२५ ।।

तथाहि श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे अष्टम परिच्छेदे—

शतकोटि गोपी लैया श्रीराधा-विलास।
तार मध्ये एक-मूर्त्ये रहे राधा-पाश ।। ३५२६ ।।
साधारण प्रेम देखि सर्व्वत्र समता।
राधार कुटिल प्रेम हइल वामता ।। ३५२७ ।।
क्रोध करि' रास छाड़ि' गेला मान करि'।
ताँहारे ना देखिया व्याकुल हइला हरि । ३५२८ ।।
सम्यक् वासना कृष्णेर इच्छा रास-लीला।
रासलीला-वासनाते राधिका शृङ्खला ।। ३५२९ ।।
ताँहा विना रासलीला नाहि भाय चिते।
मण्डली छाड़िया गेला राधा अन्वेषिते ।। ३५३० ।।
इतस्ततः भ्रमि काहाँ राधा ना पाइया।
विषाद करेन कामबाणे खिन्न हैया ।। ३५३१ ।।
शतकोटि-गोपिते नहे काम-निर्व्वापण।
ताहातेइ अनुमानि श्रीराधिकार गुण ।। ३५३२ ।।
एथा कृष्ण शठ-नायकता प्रकाशय।
साक्षाते प्रिय परोक्षेते अप्रिय करय ।। ३५३३ ।।

अनुवाद—कोटि-कोटि गोपियों के साथ श्रीराधा का विलास हो रहा था। उसके बीच राधा के निकट श्रीकृष्ण थे। साधारण प्रेम देखकर सर्वत्र समता का भाव था। राधा के कुटिल प्रेम ने वामभाव का रूप ले लिया और राधा अभिमान कर क्रोध से रास छोड़ कर चली गयी। राधा को न देखकर श्रीकृष्ण व्याकुल हो उठे। सम्यक् वासना के प्रतिरूप श्रीकृष्ण की इच्छा रास की लीला थी। रासलीला-वासना में राधिका एक शृंखला थी। उनकी अनुपस्थिति में रासलीला नहीं भाती। वे रासमण्डल छोड़कर राधा को खोजने निकले। इधर-उधर घूमकर राधा को न पाकर कामबाण से खिन्न होकर विषाद करने लगे। शत कोटि गोपियों

में काम-अवसान उसी में श्रीराधिका के गुणों का अनुमान करते हैं। यहाँ श्रीकृष्ण शठ-नायक का भाव प्रकाशित करते हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से प्रिय है, जबकि परोक्ष रूप में अप्रिय ॥ ३५२६–३३ ॥

तथाहि उज्ज्वलनीलमणौ—

प्रियं वक्ति पुरोऽन्यत्र विप्रियं कुरुते भृशम्।
निगूढ़मपराधञ्च शठोऽयं कथितो बुधैः ॥ ३५३४ ॥

अन्वय—(यो नायकः) पुरः (अग्रतः) प्रियं (अनुकूलं) वक्ति (कथयति), अन्यत्र (अगोचरं) विप्रियं (अप्रियं) ('वक्ति) भृशम् (अत्यन्तं) निगूढ़म् (गुप्तम्) अपराधञ्च कुरुते, अयं (नायकः) बुधैः (तत्वज्ञैः) शठः (इति) कथितः ॥३५३४॥

अनुवाद—उज्ज्वलनीलमणि में है—शठ नायक के लक्षण—जो नायक नायिका के सामने उसकी प्रिय बात अथवा अनुकूल बोलता है किन्तु परोक्ष में अथवा अन्यत्र अप्रिय व विरुद्ध बोलता है और गुप्त रूप से गम्भीर-अपराध भी करता है, पण्डितों ने उसे शठ-नायक कहा हैं ॥ ३५३४ ॥

एइखाने कृष्ण धृष्टनायकेर क्रिया।
प्रकाशे नायिका आगे उल्लसित हैया ॥ ३५३५ ॥
अन्य नायिकार भोग-चिन्हे ओ निर्भय।
मिथ्यावाक्य प्रयोगे प्रवीण अतिशय ॥ ३५३६ ॥

अनुवाद—यहाँ श्री कृष्ण नयिका के समक्ष उल्लिसत होकर धृष्ट नायक की क्रिया प्रकाश करते हैं। अन्य नायिका के भोग-चिह्न धारण करते हुए भी मिथ्या बोलने में अति प्रवीण है, वह धृष्ट नायक है ॥ ३५३५–३६ ॥

तत्रैव—

अभिव्यक्तान्यतरुणी-भोगलक्ष्मापि निर्भयः।
मिथ्यावचनदक्षश्च धृष्टोऽयं खलु कथ्यते ॥ ३५३७ ॥

अन्वय—(यो नायकः) अभिव्यक्तान्यतरुणीभोगलक्ष्मा (अभिव्यक्तानि स्पष्टीभूतानि अन्यतरुणीभोगस्य लक्ष्माणि लक्षणानि यस्मिन् सः) (तथाभूतोऽपि) निर्भयः मिथ्यावचनदक्षश्च (मिथ्यावादनिपुणश्च) (भवति) अयं (नायकः) खलु धृष्टः (कपटः) (नायकः) कथ्यते ॥ ३५३७ ॥

अनुवाद—धृष्ट नायक के लक्षण—जो नायक अन्य नारी के भोग—लक्षण के चिह्न अपने अंग पर स्पष्ट रूप से धारण करते हुए भी निर्भीक रहने और मिथ्या बोलने में निष्णात होता है, ऐसा नायक धृष्ट नायक कहलाता है ॥ ३५३७ ॥

एथा कृष्ण राधा प्राणप्रियार साहिते।
ये विलासे विह्वल, के पारे वर्णिते॥ ३५३८॥
मध्यवयःस्थिता राधा गुणरत्न-खनि।
ये विदिता सर्व्वनायिकार शिरोमणि॥ ३५३९॥
सर्व्वनायकावस्था कृष्णे सम्भव यैछे।
सर्व्वनायिकावस्था श्रीराधिकाते तैछे॥ ३५४०॥

अनुवाद—यहाँ श्रीकृष्ण प्राणप्रिया श्रीराधिका के साथ जिस प्रकार विलास के लिए विह्वल हैं, उसकः वर्णन कौन कर सकता है। मध्यवयप्राप्त श्रीराधा गुणरत्न की खान है और सभी नायिकाओं में शिरोमणि है, यह सर्वविदित है। जिस प्रकार कृष्ण में सभी प्रकार के नायकों की अवस्थाएँ परिलक्षित हैं, उसी प्रकार श्रीराधा में सभी प्रकार की नायिकाओं की अवस्थाएँ समाहित हैं॥ ३५३८–४०॥

तत्रैव—

यथा स्युर्नायकावस्था निखिला एव माधवे।
तथैव नायिकावस्था राधायां प्रायशो मताः॥ ३५४१॥

अन्वय—यथा निखिलाः (समस्ताः) नायकावस्था माधवे एव स्युः (भवेयुः) तथा नायिकावस्थाः प्रायशः (बाहुल्येन) राधायाम् एव (सन्ति) (इति) मताः (निश्चिताः)॥ ३५४१॥

अनुवाद—जिस प्रकार के नायकों की सकल अवस्थाएँ एकमात्र माधव में निहित हैं, उसी प्रकार सभी प्रकार की नायिकाओं की अवस्थाएँ एकमात्र श्रीराधा में निश्चित रूप से हैं॥ ३५४१॥

स्थानभेदे स्वीया परकीया निरूपय।
तिनशत घाटि नायिकार भेद हय॥ ३५४२॥
व्रजे परकीया राधा नायिका उत्तमा।
मुग्धादि प्रभेदे विलसये नाहि सीमा॥ ३५४३॥
अहे श्रीनिवास, एइ निकुञ्ज भवने।
विलसये कृष्ण मुग्धा नायिकार सने॥ ३५४४॥
सखीर अधीन मुग्धा नवीन-यौवना।
नव-कामकला-चातुर्य्ये अल्प प्रवीणा॥ ३५४५॥
मान-विषयेते मृदु अक्षमा ताहाय।
कृष्णे मिलाइया सखी महासुख पाय॥ ३५४६॥

अनुवाद—स्थान-भेद के अनुसार स्वीया, परकीया नायिकाओं का निरूपण किया जाता है। नायिकाओं के तीन सौ साठ (३६०) भेद हैं। व्रज में परकीया राधा उत्तमा नायिका है। मुग्धा आदि प्रभेद से जो विलसित हैं उनकी कोई सीमा सीमा नहीं है। हे श्रीनिवास! इस निकुञ्ज में कृष्ण मुग्धा नायिका के साथ विलसित हैं। नवयौवन प्राप्त मुग्धा नायिका सखी के अधीन है, जो नवकामकला के चातुर्य में अल्प प्रवीण है। मान-अभिमान में वह असमर्थ है, उसका मृदु स्वभाव है। कृष्ण से मिलाकर सखी महासुख का अनुभव करती है ॥ ३५४२–४६ ॥

तत्रैव—

मुग्धा नववयःकामा रतौ वामा सखीवशा।
रतचेष्टास्वतिव्रीड-चारुगूढ़प्रयत्नभाक् ॥ ३५४७ ॥
कृतापराधे दयिते वाष्परुद्धावलोकना।
प्रियाप्रियोक्तौ चाशक्ता माने च विमुखी सदा ॥ ३५४८ ॥

अन्वय—मुग्धा (नायिका) नववयः कामा (नववयः कामश्च यस्याः सा) रतौ (रतिविषये) वामा (विमुखी) सखीवशा रतचेष्टासु (रतिकेलिषु) अतिव्रीड-चारुगूढ़प्रयत्नभाक् (अतिव्रीडा अत्यधिकलज्जाशीला तथा चारुं मनोहरं गूढ़ञ्च प्रयत्नं भजते या सा) दयिते (प्रिये) कृतापराधे (अपराधिनि सति) वाष्परुद्धाविलोकना (अश्रुरुद्धदृष्टिः) प्रियाप्रियोक्तौ (प्रियायाम् अनुकूलायाम् अप्रियायां प्रतिकूलायाञ्च उक्तौ) च अशक्ता (असमर्था) माने च सदा विमुखी (पराङ्मुखी) भवति ॥ ३५४७–४८ ॥

अनुवाद—मुग्धा नायिका नवीन यौवना, कामकला, अनभिज्ञा, रतिक्रीड़ा में अनिच्छुका, सखी के अधीना, रतिलीला में अतिशय लज्जिता; फिर भी उसमें मनोहर भाव से गोपनीयता के साथ चेष्टायुक्ता, प्रिय को अपराधी देखकर अश्रुरुद्धनेत्रा, प्रिय और अप्रिय वाक्य-प्रयोग में अशक्ता एवं मान करने से सर्वदा विमुखी रहती है ॥ ३५४७–४८ ॥

माने विमुखी यथा—

मृद्वी तथा क्षमा चेति सा माने विमुखी द्विधा ॥ ३५४९ ॥

अनुवाद—मान में विमुखी मुग्धा नायिका दो प्रकार की है—एक मृद्वी यानी मृदु और दूसरी अक्षमा यानी असमर्थं ॥ ३५४९ ॥

एइ जे निकुञ्ज देख ओहे श्रीनिवास।
एथा मध्या प्रिया सह कृष्णेर विलास ॥ ३५५० ॥

मध्या व्यक्तयौवना प्रवीणा सर्व्वमते ।
धीरादिक भेदत्रय मानविषयेते ॥ ३५५१ ॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! इस निकुञ्ज में देखो, यहाँ मध्या नायिका का कृष्ण के साथ विलास है। मध्या नायिका व्यक्तयौवना एवं प्रवीणा है। मान-मनोवृत्ति से धीरादि तीन प्रकार की है ।। ३५५०–५१ ॥

तत्रैव—

समानलज्जामदना प्रोद्यत्तारुण्यशालिनी ।
किञ्चित् प्रगल्भवचना मोहान्तसुरतक्षमा ॥ ३५५२ ॥
मध्या स्यात् कोमला क्वापि माने कुत्रापि कर्क्कशा ।
त्रिधासौ मानवृत्तिः स्याद्धीराधीरोभयात्मिका ॥ ३५५३ ॥

अन्वय—मध्या (नायिका) समानलज्जामदना (समानौ तुल्यौ लज्जामदनौ लज्जाकामौ यस्याः सा) प्रोद्यत्तारुण्यशालिनी (प्रोद्यत् विलसत् तारुण्यं यौवनं धत्ते या सा) किञ्चित् प्रगल्भवचना (वाङ्निपुणा) मोहान्तसुरतक्षमा (मूर्च्छापर्य्यन्तं सुरते क्षमा समर्था) क्वापि (कुत्रापि) कोमला कुत्रापि माने कर्कशाः (कठिना) स्यात् । असौ मानवृत्तिः (मानस्य स्वभावः) धीरा अधीरा उभयात्मिका (धीराधीरा) (इति) त्रिधा (त्रिविधा) स्यात् ।। ३५५२–५३ ॥

अनुवाद—मध्या नायिका में लज्जा-भाव और काम-वासना समान रूप से रहती है, उसमें उदीयमान यौवन की शोभा परिलक्षित होती है। वह कुछ वाक्चातुर्य युक्ता, मोहान्त यानी मूर्छा तक सुरत क्रीड़ा में समर्थ, कभी कोमला, कभी मान में कठोरता दिखायी देती है। मान-वृत्ति व मान का स्वभाव तीन प्रकार के होते हैं—धीरा, अधीरा और धीराधीरा ।। ३५५२–५३ ॥

धीरा मध्या माने एइ कुञ्ज परिसरे।
वक्र युक्ति, पवित्र भर्त्सन कृष्णे करे ॥ ३५५४ ॥

अनुवाद—धीरा मध्या नायिका इस कुञ्ज में वक्र उक्ति से कृष्ण की पवित्र भर्त्संना करती है ।। ३५५४ ।

तत्रैव—

धीरा तु वक्ति वक्रोक्त्या सोत्प्रासं सागसं प्रियम् ॥ ३५५५ ॥

अन्वय—धीरा तु सागसं (अपराधिनं) प्रियं सोत्प्रासं (उपहाससहितं) वक्रोक्त्या (व्यंग्योक्त्या) वक्ति (वदति) ।। ३५५५ ॥

अनुवाद—धीरा नायिका अपराधी प्रिय के प्रति उपहास के साथ वक्र वाक्य बोलती हैं, व्यंग्य करती है ॥ ३५५५ ॥

ए कुञ्जे अधीर मध्या क्रोधे प्राणनाथे ।
निर्भय निष्ठुर वाक्ये सखी-सुख याते ॥ ३५५६ ॥

अनुवाद—इस कुञ्ज में अधीर मध्या नायिका प्राणनाथ को निर्भय होकर क्रोध में कठोर वाक्य सुनाती है, जिससे सखियों को आनन्द अनुभव होता है ॥ ३५५६ ॥

तत्रैव—

अधीरा परुषैर्वाक्यैर्निरस्येद्वल्लभं रुषा ॥ ३५५७ ॥

अन्वय—अधीरा (नायिका) रुषा (क्रोधेन) परुषैः (निष्ठुरैः) वाक्यैः वल्लभं (प्रियं) निरस्येत् (दूरीकुर्य्यात्) ॥ ३५५७ ॥

अनुवाद—अधीरा नायिका क्रोध में निष्ठुर-कठोर वाक्य द्वारा अपने प्रिय का प्रत्याख्यान करती है, दूर करती है ॥ ३५५७ ॥

धीरा धीरमध्या कृष्णे वाष्पयुक्त हैया ।
कहे वक्रवाक्ये एथा सखीपाने चा' या ॥ ३५५८ ॥

अनुवाद—धीरा धीरमध्या नायिका आँखों में आँसू लाकर सखियों की ओर निहार कर श्रीकृष्ण को वक्रोक्ति से कहती है ॥ ३५५८ ॥

तत्रैव—

धीराधीरा तु वक्रोक्त्या सवाष्पं वदति प्रियम् ॥ ३५५९ ॥

अन्वय—धीराधीरा (नायिका) तु सवाष्पं (अश्रुयुक्तं यथा स्यात् तथा) वक्रोक्त्या (वक्रवाक्येन) प्रियं वदति ॥ ३५५९ ॥

अनुवाद—धीराधीरा नायिका आँखों में आँसू लाकर प्रिय के प्रति वक्रवाक्य का प्रयोग करती है ॥ ३५५९ ॥

सर्व्व रसोत्कर्ष-मध्या-नायिका ए हय ।
मध्या राधाकृष्णे एथा आनन्द वितरय ॥ ३५६० ॥

अनुवाद—मध्या नायिका में सभी रसों का उत्कर्ष मिलता है और मध्या राधा कृष्ण में यहाँ आनंद की अनुभूति होती है ॥ ३५६० ॥

तत्रैव—

सर्व्व एव रसोत्कर्षो मध्यायामेव युज्यते ।
यदस्यां वर्त्तते व्यक्तं मौग्ध्यप्रागल्भयोर्युतिः ॥ ३५६१ ॥

अन्वय—सर्व्वः एव रसोत्कर्षः (रसोन्नतिः) मध्यायाम् (नायिकायाम्) एव युज्यते (युक्तो भवति) यत् (यतः) अस्यां (मध्यायां) मौग्ध्यप्रागल्भयोः (मुग्ध-भावस्य प्रगल्भभावस्य च) युतिः (समष्टिः) व्यक्तं (स्पष्टं) वर्त्तते ॥ ३५६१ ॥

अनुवाद—मध्या नायिका में ही सभी रसों का उत्कर्ष शोभा पाता है। इसमें मुग्धा और प्रगल्भा दोनों का मिलन स्पष्ट रूप से रहता है ॥ ३५६१ ॥

ए कुञ्जे प्रगल्भा पूर्णयौवना सुन्दरी।
कृष्णे सुख दिते कतो प्रकाशे चातुरी ॥ ३५६२ ॥
सुरते उत्सुका यैछे कहिले ना हय।
मानवृत्ते प्रगल्भा धीरादि भेदत्रय ॥ ३५६३ ॥

अनुवाद—प्रगल्भा नायिका पूर्ण यौवन प्राप्त सुन्दरी है और इस कुञ्ज में अपने वल्लभ श्रीकृष्ण को आनंद प्रदान करने के लिए कितने चातुर्य का प्रदर्शन करती है। सुरत (कामक्रीड़ा) में उसकी जैसी उत्सुकता है, वह अवर्णनीय है। मानवृत्ति के अनुसार प्रगल्भा के धीरादि तीन भेद होते हैं ॥ ३५६२–६३ ॥

तत्रैव—

प्रगल्भा पूर्णतारुण्या मदान्धोरुरतोत्सुका।
भूरिभावोद्गमाभिज्ञा रसेनाक्रान्तवल्लभा।
अतिप्रौढोक्तिचेष्टासौ माने चात्यन्तकर्कशा ॥ ३५६४ ॥

अन्वय—प्रगल्भा (नायिका) पूर्णतारुण्या (पूर्णयौवना) मदान्धा (यौवन-गर्व्वेण अन्धा) उरुरतोत्सुका (प्रचुरसुरताभिलाषिणी) भूरिभावोद्गमाभिज्ञा (यथेष्टभावसम्पादने निपुणा) रसेन (प्रेमणा आक्रान्तवल्लभा) वशीकृतप्रिया) असौ (प्रगल्भा) अतिप्रौढ़ोक्तिचेष्टा (अतिप्रौढ़ोक्तियुक्ता चेष्टा यस्याः सा) माने च अत्यन्तकर्कशा (अतिरूढ़ा) (भवति) ॥ ३५६४ ॥

अनुवाद—प्रगल्भा नायिका पूर्ण यौवना, यौवनगर्वान्धा, प्रचुर कामक्रीड़ा-अभिलाषिणी, यथेष्ट भावसम्पादन में निपुणा, रस (प्रेम) द्वारा वल्लभ को वशीकृत-प्रिया, अतिशय प्रौढ़ उक्ति वाली एवं मान में अति कर्कशा होती है ॥ ३५६४ ॥

एइ कुञ्जे धीरा प्रगल्भा मानेते प्रवीणा।
करि क्रध गोपन सुरते उदासीना ॥ ३५६५ ॥

अनुवाद—इस कुञ्ज में धीरा प्रगल्भा नायिका अभिमान में प्रवीणा है, किन्तु गुप्त रूप से क्रोध कर कामक्रीड़ा में उदासीन रहती है ॥ ३५६५ ॥

तत्रैव—

उदास्ते सुरते धीरा सावहित्था च सादरा ॥ ३५६६ ॥

अन्वय—धीरा (धीरप्रगल्भा नायिका द्विविधा-एका) सुरते (रतिकेलौ) अभिमानिनी सती (अन्या) सावहित्था (अवहित्थया आत्मगोपनेन सह वर्त्तमाना) सादरा च उदास्ते (उदासीना भवति) ॥ ३५६६ ॥

अनुवाद—एक प्रकार की धीर-प्रगल्भा नायिका अभिमानिनी बनकर रति-कीड़ा के प्रति उदासीन रहती है, अन्य प्रकार की नायिका संगोपनकारिणी एवं आदर युक्ता होती है ॥ ३५६६ ॥

अधीर-प्रगल्भा एइ निकुञ्ज-भवने ।
कर्णोत्पले ताड़े कृष्णे निष्ठुर तर्ज्जने ॥ ३५६७ ॥

अनुवाद—अधीरा प्रगल्भा नायिका इस निकुञ्ज में अपने प्रिय कृष्ण की निष्ठुर वाक्य से भर्त्सना करती है और कर्ण में डालने के कमल से ताड़न करती है ॥ ३५६७ ॥

तत्रैव—

सन्तर्ज्य निष्ठुरं रोषादधीरा ताडयेत् प्रियम् ॥ ३५६८ ॥

अन्वय—अधीरा (नायिका) रोषात् (क्रोधवशतः) निष्ठुरं (परुषं कर्कशं वा) सन्तर्ज्य (भर्त्सयित्वा) प्रियं (नायकं) ताडयेत् (कर्णोत्पलेन आहन्यात्) ॥

अनुवाद—अधीरा नायिका अभिमान से क्रोध कर प्रिय प्रिय की कर्कश शब्दों में भर्त्सना करती है और कान में डालने के कमल से ताड़ना करती है ॥३५६८॥

धीराधीरप्रगल्भार क्रोध अलक्षित ।
ए कुञ्जे भङ्गिते कृष्णे तर्ज्जये किञ्चित ॥ ३५६९ ॥

अनुवाद—धीराधीरा प्रगल्भा नायिका का क्रोध अलक्षित रहता है यानी प्रकट रूप में सामने नहीं आता, वह कुञ्ज में विचित्र भङ्गिमा से प्रिय कृष्ण की कुछ ताड़ना करती है ॥ ३५६९ ॥

तत्रैव—

धीराधीरगुणोपेता धीराधीरेति कथ्यते ॥ ३५७० ॥

अन्वय—धीराधीरगुणोपेता (धीरैः शान्तैः अधीरैः अशान्तैश्च गुणैः उपेता युक्ता प्रगल्भा नायिका) धीराधीरा इति कथ्यते ॥ ३५७० ॥

धीर (शान्त) और अधीर (अशान्त) दोनों गुणों से युक्त नायिका को धीराधीर प्रगल्भा कहते हैं ॥ ३५७० ॥

देख श्रीनिवास एइ कुञ्जे श्रीराधिका ।
करायेन कृष्णे अभिसार प्रेमाधिका ॥ ३५७१ ॥

श्रीराधिका अभिसार करि सङ्गोपने।
समय उचित वेशे मिले कृष्णसने ॥ ३५७२ ॥
अभिसारिका नायिका राधिका रूपसी।
कभु सखीसङ्गे कभु एका मिले आसि ॥ ४५७३ ॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! देखो, इस कुञ्ज में श्रीराधिका प्रेम के आधिक्य से श्रीकृष्ण को अभिसार कराती है। श्रीराधिका गुप्त रूप से अभिसार करती है, और उचित समय पर गमनयोग्य वेश धारण कर कृष्ण के साथ मिलती है। रूपसी राधिका अभिसारिका नायिका है, वह कभी सखियों के साथ और कभी अकेली आकर अपने वल्लभ श्रीकृष्ण से मिलती है ॥ ३५७१–७३ ॥

तत्रैव—

याभिसारयते कान्तं स्वयं चाभिसरत्यपि।
सा ज्योत्स्नी तामसी यानयोग्यवेशाभिसारिका ॥ ३५७४ ॥
लज्जया स्वाङ्गलीनेव निःशब्दाखिलमण्डना।
कृतावगुण्ठा स्निग्धैकसखीयुक्ता प्रियं व्रजेत् ॥ ३५७५ ॥

अन्वय—या (नायिका) कान्तं (प्रियं) अभिसारयते स्वयं च अपि अभिसरसि (कान्तं सङ्गच्छते) सा ज्योत्स्नी (शुभ्रवेशा) तामसी (कृष्णवेशा) यानयोग्यवेशा (शुक्लकृष्णपक्षकाले गमनयोग्यवेशयुक्ता) (सती) अभिसारिका (तन्नामिका नायिगा भवति)। (अभिसरिका) लज्जया स्वाङ्गलीना (स्वाङ्गैरेव अङ्गमाच्छादयन्ती) इव निःशब्दाखिलमण्डना (निःशब्दम् अखिलं मण्डनं भूषणं यस्याः सा) कृतावगुण्ठा (अवगुण्ठनवती) स्निग्धैकसखीयुक्ता (स्निग्धया स्वजातीयया एकया सख्या युक्ता सती) प्रियं व्रजेत् (सङ्गच्छेत) ॥ ३५७४–७५ ॥

अनुवाद—जो नायिका अपने कान्त को अभिसार के लिए प्रवृत करती है एवं स्वयं भी अभिसार करती है, अर्थात् प्रिय-मिलन के लिए संकेत-स्थान पर गमन करती है, उसे अभिसारिका नायिका कहा जाता है। वह दो प्रकार की होती है, यथा ज्योत्स्नी और तामसी; चन्द्रप्रकाश में, जो शुक्ल पक्ष में होता है, न दिखायी देने वाले वेश धारण करने वाली ज्योत्स्नी और कृष्णपक्षानुकूल काला वेश धारण करने वाली तामसी है। यह वेश गमन योग्य होता है। अभिसारिका लज्जा से जैसे अपने में ही लीन अपने अंगों से अंग ढक कर शब्द न करने वाले समस्त आभूषण पहन कर अवगुण्ठन लेकर एकमात्र स्निग्धा स्वजातीय सखी के साथ प्रिय से मिलती है ॥ ३५७४–७५ ॥

वासकसज्जा-नायिका ए कुञ्ज-भवने ।
शय्यादिक सज्जा करे हर्षे सखीसने ॥ ३५७६ ॥
कृष्णेर गमनपथे अर्पये नयन ।
बार-बार दूतीरे करये निरीक्षण ॥ ३५७७ ॥
वासकसज्जा नायिका राधिका सुन्दरी ।
प्रकाशे ये चेष्टा ताहा कहिते ना पारि ॥ ३५७८ ॥

अनुवाद—इस कुञ्जभवन में वासकसज्जा नायिका शैया आदि सजाती है, सखियों के साथ हर्ष-विनोद करती है, कृष्ण के गमनपथ को निहारती है, बार-बार दूती को पथ-निरीक्षण के लिए कहती है । सुन्दरी श्रीराधा वासकसज्जा नायिका है, वह जो हाव-भाव प्रदर्शित करती है, उसका मैं वर्णन नहीं कर समता ॥३५७६-७८॥

तत्रैव—

स्ववासकवशात् कान्ते समेष्यति निजं वपुः ।
सज्जीकरोति गेहञ्च या सा वासकसज्जिका ॥ ३५७६ ॥
चेष्टा चास्याः स्मरक्रीडासङ्कल्पो वर्त्मवीक्षणम् ।
सखीविनोदवार्त्ता च मुहुर्दूतीक्षणादयः ॥ ३५८० ॥

अन्वय—या (नायिका) स्ववासकवशात् (स्वेच्छावशात् स्ववासरवशाद्वा) कान्ते समेष्यति (समागमिष्यति सति) निजं वपुः गेहञ्च (गृहञ्च) सज्जीकरोति, सा वासकसज्जिका (भवति) । अस्याः (वासकसज्जायाः) चेष्टा च (यथा) स्मर-क्रीड़ासकल्पः (रतिक्रीड़ाभिलाषः) वर्त्मवीक्षणं (प्रियागमनपथदर्शनं) सखीविनोद-वार्त्ता (सख्याः कान्तविनोदस्य वार्त्ता) मुहुः (बारं बारं) दूतीक्षणादयश्च (दूत्या-गमनप्रत्याशा) (भवन्ति) ३५७९–८० ॥

अनुवाद—जो नायिका स्वेच्छा से, कान्त की इच्छावशतः कुञ्जभवन में अव-स्थानपूर्वक आत्मदेह एवं वासकगृह सज्जित करती है, उसे वासकसज्जिका नायिका कहते हैं । उसकी चेष्टा अथवा व्यवहार-हालचाल इस प्रकार है—कामक्रीड़ा-संकल्प, कान्त-पथ-निरीक्षण, सखियों के साथ विनोदवार्ता, बार-बार दूती के पथ की ओर निरीक्षण इत्यादि । प्रिय के आगमन की आशा उसके दिल में है ॥ ३५७९–८० ॥

एइ कुञ्जे मिलनेर सङ्केत आछिल ।
कुञ्जेर विलम्बे से ना उत्साह घुचिल ॥ ३५८१ ॥
बाढ़िल विरह उत्कण्ठार सीमा नाइ ।
विरहोत्कण्ठितावस्था राधिका एथाइ ॥ ३५८२ ॥
ना आइल केने कृष्ण तर्कणा करय ।
हृत्तापकम्पादि-चेष्टा कहिले ना हय ॥ ३५८३ ॥

अनुवाद—इस कुञ्ज में मिलन का संकेत था, प्राणनाथ के विलम्ब के बावजूद नायिका का उत्साह समाप्त नहीं हुआ। विरह में वृद्धि हुई और उत्कण्ठा की सीमा नहीं थी : यहीं श्रीराधा की विरहोत्कण्ठिता-अवस्था थी। कृष्ण क्यों नहीं आये, इस विषय का तर्क न करते हुए हृताप, कम्पन आदि क्रियाएँ आरम्भ हुईं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता ।। ३५८१–८३ ।।

तत्रैव—

अनागसि प्रियतमे चिरयत्युत्सुका तु या।
विरहोत्कण्ठिता भाववेदिभिः सा समीरिता ।। ३५८४ ।।
अस्यास्तु चेष्टा हृत्तापो वेपथुर्हेतुतर्कणम्।
अरतिर्वाष्पमोक्षश्च स्वावस्थाकथनादयः ।। ३५८५ ।।

अन्वय—या (नायिका) तु अनागसि (निरपराधिनि) प्रियतमे (प्राणनाथे) चिरयति (विलम्बं कुर्व्वति सति) उत्सुका (उत्कण्ठिता) (भवति) सा भाववेदिभिः (भावज्ञैः) विरहोत्कण्ठिता (इति) समीरिता (सम्यक् कथिता)। अस्याः (विरहोत्कण्ठितायाः) तु चेष्टा कार्य्यं (यथा) हृत्तापः (हृदयवेदना) वेपथुः (कम्पः) हेतुतर्कणं (अनागतिकारणचिन्तनं) अरतिः (विरक्तिः) वाष्पमोक्षः (अश्रुमोचनं) स्वावस्थाकथनादयः (स्वावस्थायाः निवेदनप्रभृतयः) च ।। ३५८४-८५ ।।

अनुवाद—निरपराध प्रियतम बहुत समय बीत जाने पर भी न आये अथवा आने में अत्यधिक विलम्ब हो तो विरहवशतः जो नायिका अत्यन्त उत्सुक होती है, उसे ही रसज्ञ उत्कण्ठिता नायिका कहते हैं। उसकी चेष्टाएँ इस प्रकार हैं—हृदय सन्तप्त रहना, गात्र-कम्पन, प्रियतम के न आने के कारण को लेकर तर्क अथवा चिन्तन करना, विरक्ति अथवा अस्वास्थ्य, अश्रुमोचन, अपनी अवस्था का वर्णन करना आदि ।। ३५८४–८५ ।।

अन्यकान्ता-भोगचिह्न करिया धारण।
करिलेन कृष्ण एइ कुञ्जे आगमन ।। ३५८६ ।।
अतिक्रोधे धृष्टनायकेर पाने चाइ।
खण्डिता नायिकावस्था राधार एथाइ ।। ३५८७ ।।

अनुवाद—अन्य कान्ता का भोगचिह्न धारण कर श्रीकृष्ण ने इस कुञ्ज में आगमन किया। इस धृष्ट नायक की ओर नायिका अत्यन्त क्रोध से देखा, यही श्रीराधा की खण्डिता नायिका अवस्था प्रकट हुई ।। ३५८६–८७ ।।

तत्रैव—

उल्लङ्घ्य समयं यस्याः प्रेयानन्योपभोभवान्।
भोगलक्ष्माङ्कितः प्रातरागच्छेत् खण्डिता हि सा।
एषा तु रोष-निःश्वास-तूष्णीभावादिभाग् भवेत् ॥ ३५८८ ॥

अन्वय—समयम् (मिलनसमयम्) उल्लङ्घ्य (अतिक्रम्य) यस्याः (नायिकायाः) प्रेयान् (प्रियः) अन्योपभोगवान् (अन्यामुपभुङ्क्ते यः सः) भोगलक्ष्माङ्कितः (अन्यभोगलक्षणयुक्तः) (सन्) प्रातः (पूर्वनायिका समीपे) आगच्छेत् सा हि खण्डिता (नायिकेति कथिता)। एषा (खण्डिता नायिका) तु रोषनिःश्वास तूष्णीम्भावादिभाक् (क्रोधदीर्घनिःश्वास-मौनभावादिलक्षणान्विता) भवेत् ॥ ३५८८ ॥

अनुवाद—पूर्व संकेतित मिलन-समय पर न आकर जिस नायिका का प्रियतम अन्य नारी का उपभोग करता है और उसी उपभोग के चिह्न धारण कर प्रातः पूर्वनायिका के पास आता है, वह प्रथम नायिका ही खण्डिता नायिका है। यह खण्डिता नायिका क्रोध, दीर्घनिःश्वास और मौन आदि लक्षण युक्त होती है ॥३५८८॥

विप्रलब्धावस्था राइ तमाल-कुञ्जेते।
आसिबेन कृष्ण ना आइला चिन्ते चिते ॥ ३५७९ ॥
सेइ एइ तमाल कुञ्ज देख श्रीनिवास।
विप्रलब्धा चेष्टा यैछे सर्वत्र प्रकाश ॥ ३५९० ॥

अनुवाद—कृष्ण आने का कह गये फिर भी नहीं आये, इसी कारण तमाल कुञ्ज में नायिका चिन्तित है, यही अवस्था विप्रलब्धा नायिका की है। हे श्रीनिवास ! इस तमाल कुञ्ज को देखो, विप्रलब्धा नायिका की चेष्टाएँ सर्वत्र प्रकट हो रही हैं ॥ ३५७९-८० ॥

तत्रैव—

कृत्वा सङ्केतमप्राप्ते देवाज्जीवितवल्लभे।
व्यथमानान्तरा प्रोक्ता विप्रलब्धा मनीषिभिः।
निर्व्वेद-चिन्ता-खेदाश्रु-मूर्च्छा-निःश्वसितादिभाक् ॥ ३५९१ ॥

अन्वय—सङ्केतं (इङ्गितं) कृत्वा दैवात् जीवितवल्लभे (प्राणनाथे) अप्राप्ते (सति) (ता) व्यथामानान्तरा (व्यथितहृदया) (भविति, सा) मनीषिभिः (पण्डितैः) विप्रलब्धा प्रोक्ता (कथिता)। (सा) निर्व्वेद-चिन्ता-खेदाश्रुमूर्च्छा-निःश्वसितादिभाक् (भवति) ॥ ३५९१ ॥

अनुवाद—मिलने का संकेत करके यदि देवयोग से प्राणनाथ नहीं आयें तो जिस नायिका का अन्तःकरण अतिशय व्यथित होता है, पण्डितगण उसे ही विप्रलब्धा नायिका कहते हैं। निर्वेद यानी वैराग्य, चिन्ता, दुःख, अश्रु, मूर्च्छा और दीर्घ-निःश्वास-त्याग आदि विप्रलब्धा नायिका की चेष्टाएँ हैं ॥ ३५९१ ॥

एइ कुञ्जे कलहान्तरितावस्था राइ।
मानान्ते पश्चात् ताप करेन एथाइ ॥ ३५९२ ॥
प्रलापादि चेष्टा यैछे कहिले ना हय।
देखि सखीगण नाना युक्ति विचारय ॥ ३५९३ ॥

अनुवाद—इस कुञ्ज में राधिका की कलहान्तरिता नायिका की अवस्था है, जो अभिमान करने के पश्चात् पश्चात्ताप करती है। इस नायिका की प्रलाप आदि जैसी चेष्टाएँ हैं, वे अवर्णनीय हैं। इसे देखकर सखियाँ विविध युक्तियों के बारे में विचार करती हैं ॥ ३५९२–९३ ॥

तत्रैव

या सखीनां पुरः प्राप्तं पतितं वल्लभं रुषा।
निरस्य पश्चात्तपति कलहान्तरिता हि सा।
अस्याः प्रलाप-सन्ताप-ग्लानि-निःश्वसितादयः ॥ ३५९४ ॥

अन्वय—या (नायिका) सखीनां पुरः (अग्रे) पाप्तं पतितं (उवनतं) वल्लभं (प्रियं) रुषा (क्रोधेन) निरस्य (प्रत्याख्याय) पश्चात् तपति (क्लिश्यति) सा हि कलहान्तरिता (त्यक्तकलहा) (भवति)। प्रलाप-सन्ताप-ग्लानि-निश्वसितादयः अस्याः (चेष्टाः भवन्तीति शेषः) ॥ ३५९४ ॥

अनुवाद—जो नायिका सखियों के समक्ष पदानत वल्लभ को क्रोध से परित्याग करने के पश्चात् अत्यन्त पश्चात्ताप अनुभव करे, उसे कलहान्तरिता नायिका कहते हैं। प्रलाप, सन्ताप, ग्लानि और दीर्घ-निःश्वास-त्याग प्रभृति कलहान्तरिता नायिका की चेष्टाएँ हैं ॥ ३५९४ ॥

प्रोषितभर्त्तृकावस्था राधिका एथाते।
कृष्ण दूरदेश गेले नारे स्थिर हैते ॥ ३५९७ ॥

अनुवाद—श्रीष्ण दूरदेश गये हुए हैं अतः श्रीराधा स्थिर नहीं रह पाती, यही श्रीराधा की प्रोषित्तभर्त्तृका नायिका की अवस्था है ॥ ३५९७ ॥

तत्रैव—

दूरदेशं गते कान्ते भवेत् प्रोषितभर्त्तृका।
प्रियसङ्कीर्त्तनं दैन्यमस्यास्तानवजागरौ।
मालिन्यमनवस्थानं जाड्यं चिन्तादयो मताः ॥ ३५९६ ॥

अन्वय—कान्ते दूरदेशं (प्रवासं) गते (सति) (नायिका) प्रोषितभर्त्तृका (प्रोषितः दूरदेशगतः भर्त्ता यस्याः सा) भवेत् । प्रियसङ्कीर्त्तनं (प्रियजनगुणगानं) दैन्यं तानवजागरौ (कृशता निद्राराहित्यञ्च) मालिन्यम् अनवस्थानम् (अस्थिरता) जाड्यम् (आलस्यम्) चिन्तादयः (अस्याः चेष्टाः) मताः (कथिताः) ॥ ३५९६ ॥

अनुवाद—कान्त दूरदेश-गमन करने पर नायिका को प्रोषितभर्त्तृका कहते हैं। प्रियगुणगान, दैन्य, कृशता, जागरण, मलिनता, अस्थिरता एवं आलस्य प्रभृति इस नायिका की चेष्टाएँ बतायी गयी हैं ॥ ३५९६ ॥

कृष्ण लैया अक्रूर जाइते मथुराय।
एथा यैछे हैला राइ कहने ना याय ॥ ३५९७ ॥

अनुवाद—कृष्ण को लेकर अक्रूर के मथुरा चले जाने पर राधिका की जो अवस्था हो गयी, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ३५९७ ॥

तथाहि हंसदूतकाव्ये द्वितीयः श्लोकः—
यदायातो गोपीहृदयमदनो नन्दसदना-
न्मुकुन्दो गान्दिन्यास्तनयमनुविन्दन् मधुपुरीम्।
तदाऽमाङ्क्षीच्चिन्तासरिति घनघूर्णापरिचयै-
रगाधायां बाधामयपयसि राधाविरहिणी ॥ ३५९८ ॥

अन्वय—यदा गोपीहृदयमदनः (गोपीप्राणवल्लभः) मुकुन्दः नन्दसदनात् (नन्दगृहात्) गान्दिन्याः तनयम् (अक्रूरम्) अनुविन्दन् (अनुसरन्) मधुपुरीम् (मथुराम्) आयातः (आगतः) तदा घनघूर्णापरिचयैः (गाढ़घूर्णालक्षणैः लक्षिते) बाधामयपयसि (पीड़ामयसलिले) अगाधायां चिन्तासरिति (चिन्तातरङ्गिण्याम्) राधाविरहिणी (विप्रलम्भमयी राधा) अमाङ्क्षीत् (निममज्ज) ॥ ३५९८ ॥

अनुवाद—हंसदूतकाव्य के द्वितीय श्लोक में है—जिस समय गोपी-प्राणवल्लभ मुकुन्द ने नन्दगृह से गान्दिनीपुत्र अक्रूर का अनुसरण कर मथुरा में आगमन किया, उस समय से विरहिणी राधा घनघूर्णालक्षणान्वित पीड़ा रूपी सलिल-विशिष्ट अगाध चिन्ता-तरंगिणी में निमज्जित हो गयी है। यहाँ विप्रलम्भमयी राधा है, यानी यह विप्रलब्धा नायिका का उदाहरण है ॥ ३५९८ ॥

कि बलिब अक्रूरेर व्रजे यश नाइ।
अद्यापि अक्रूरे क्रूर कहे दुःख पाइ ॥ ३५९९ ॥
परस्पर अक्रूरे निन्दये बार-बार।
ना बूझये व्रजेर मरम ये प्रकार ॥ ३६०० ॥
गान्दिनी आपन माये प्रसव-समय।
दिल महादुःख इहो ताहारि तनय ॥ ३६०१ ॥

अक्रूरेर नाम केह शुनिते ना पारे।
मने करितेइ दुःखसमुद्रे साँतारे ॥ ३६०२ ॥
देख, यमुनार कूले कुञ्ज शोभामय।
एथा राइकानु कि आनन्दे विलसय ॥ ३६०३ ॥
सुरतान्ते राइ ये कहेन कृष्ण प्रति।
ताहाइ करेन कृष्ण प्रेमाधीन अति ॥ ३६०४ ॥
स्वाधीनभर्त्तृकावस्था राधा प्रकाशय।
तिले तिले ये कौतुक कहिले ना हय ॥ ३६०५ ॥

अनुवाद—क्या कहा जाय व्रज में अक्रुर का यश नहीं है, फिर भी अक्रुर को क्रूर कहने से मन को दुःख होता हैं। अक्रूर की बार-बार गोपियाँ परस्पर निन्दा करती हैं, किन्तु वे व्रज के मर्म को नहीं जानतीं। गान्दिनी ने अपनी माँ के प्रसव के समय जो महादुःख दिया, उसी गान्दिनी का यह पुत्र है। अक्रूर का नाम कोई भी सुनना नहीं चाहता, मन में उसका खयाल आते ही जैसे दुःख रूपी समुद्र में डूब जाता है। यमुना के तट पर शोभामय कुञ्ज देखो, यहाँ श्रीराधिका आनंद से विलसित हैं। रतिक्रीड़ा के पश्चात् श्रीराधिका श्रीकृष्ण से जो कहती है, प्रेमाधीन श्रीकृष्ण वैसा ही करते हैं। श्रीराधा स्वाधीनभर्त्तृका नायिका की अवस्था का प्रकाश जरती है। पग-पग पर जो कौतुक प्रदर्शित होता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ३५९०-३६०५ ॥

तथाहि श्रीमदुज्ज्वलनीलमणौ नायिकाभेदे ४९-श लक्षणम्—

स्वायत्तासन्नदयिता भवेत् स्वाधीनभर्त्तृका।
सलिलारण्यविक्रीड़ा कुसुमावचयादिकृत् ॥ ३६०६ ॥

अन्वय—स्वायत्तासन्नदयिता (स्वायत्तः स्वाधीन आसन्नः निकटवर्ती च दयितो यस्याः सा) (नायिका) स्वाधीनभर्त्तृका भवेत्। (सा) सलिलारण्यविक्रीड़ा (सलिले जलमध्ये अरण्ये च विशिष्टा क्रीड़ा यस्याः सा) कुसुमविचयादिकृत् (पुष्पाहरणादिकारिणी) भवेत् ॥ ३६०६ ॥

अनुवाद—श्रीमद् उज्ज्वलनीलमणि के नायिकाभेद का ४९ वां लक्षण जिसका कान्त (प्रियतम) उसके अधीन होकर बराबर पास ही रहता है, उस नायिका को स्वाधीनभर्त्तृका कहते हैं। जल और अरण्य में उसकी क्रीड़ा होती रहती है और पुष्पाहरणादि (पुष्प एकत्र करना) करती रहती है ॥ ३६०६ ॥

ओहे श्रीनिवास एइ पुष्पेर कानने।
भ्रमे राधामाधव वेष्टित सखीगणे ॥ ३६०७ ॥

अनुरागे राधिकार उथलये हिया।
प्राप्तप्रेमवैचित्त्य-दशानुराग-क्रिया ॥ ३६०८॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! इस पुष्प-कानन में श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण सखियों से घिरे हुए घूम रहे हैं। अनुराग से श्रीराधिका का हृदय उद्वेलित हो उठता है, जिससे प्रेम-वैचित्र्य की प्राप्ति होती है॥ ३६०७-०८॥

तत्रैव स्थायिभाव-प्रकरणे १०२ तम-लक्षणम्—

सदानुभूतमपि यः कुर्य्यान्नवनवं प्रियम्।
रागो भवन्नवनवः सोऽनुराग इतीर्य्यते॥ ३६०६॥
परस्परवशीभावः प्रेमवैचित्त्यकं तथा।
अप्राणिन्यपि जन्माप्त्यै लालसाभर उन्नतः।
विप्रलम्भेऽस्य विस्फूर्त्तिरित्याद्याः स्युरिह क्रिया॥ ३६१०॥

अन्वय—प्रियं (प्रीतिविषयं जनं) सदा अनुभूतमपि (अस्वादितचररूपगुण-माधुर्य्यम् अपि) नवनवम् (अननुभूतपूर्व्वमिव) यः रागः (पूर्व्वोक्तलक्षणोऽत्र तु तृष्णा-विशेषत्वेन परिणतः) (नवं नवं नित्यनवास्वाद्यमानं) कुर्यात्, स (स्वयमपि) नवनवः भवन् रागः अनुरागः इति ईर्य्यते (कथ्यते)। (तत्र अनुरागे) परस्परवशी-भावः (परस्पराधीनतास्वीकारः, अत्र नायकस्यैव वशीभावः स्पष्टः) तथा प्रेम-वैचित्त्यं (नायके समीपस्थेऽपि तदभावजनितं रोदनादिकम्) अप्राणिनि (अचेतने) अपि (वस्तुनि) जन्माप्त्यै (जन्मलाभाय) उन्नतः (प्रबलः) लालसाभरः (आका-ङ्क्षावेगः), इह विप्रलम्भे (विरहे) अस्य (नायकस्य) विस्फूर्त्तिः, इत्याद्याः क्रियाः स्युः (भवेयुः)॥ ३६०६-१०॥

अनुवाद—उसी में स्थायीभाव प्रकरण का १०२ वां लक्षण—जो राग नव-नव रूप धारण कर अनुभूत प्रियजन को सर्वदा नय-नव बोध कराता है, उसे पण्डितगण अनुराग कहते हैं। इस अनुराग में परस्पर वशीभाव, प्रेम-वंचित्त्य, अवचेतन में जन्मलाभ की उत्कट लालसा एवं विप्रलम्भ में श्रीकृष्ण की स्फूर्ति इत्यादि का अनु-भव होता है॥ ३६०६-१०॥

कि वा प्रेमवैचित्त्यदशाय प्रेमाधिका।
हइते विश्लेषबुद्धि व्याकुल राधिका॥ ३६११॥
कोथा कृष्ण बलि अश्रु झरये नयने।
निकटेइ कृष्ण ताहा स्मृति नाइ मने॥ ३६१२॥

अनुवाद—प्रेमाधिक्य के कारण विरह-शंक की जो व्याकुलता है, वह प्रेमा-वैचित्त्य-दशा है। यह दशा कैसी अद्भुत है कि कृष्ण निकट होते हुए भी स्मरण

नहीं रहता एवं मन वह उठता है कि कृष्ण कहाँ हैं, और आँखों से आँसू झरने लगते हैं ।। ३६११-१२ ।।

तत्रैव—

प्रियस्य सन्निकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्षस्वभावतः ।
या विश्लेषधियार्त्तिस्तत्प्रेमवैचित्त्यमुच्यते ।। ३६१३ ।।

अन्वय—प्रियस्य सन्निकर्षे प्रेमोत्कर्षस्वभावतः (प्रेमाधिक्यहेतुना) विश्लेषधिया (विरहशंकया) या आर्त्तिः विलापादिः) तत् (कार्य्यं) प्रेमवैचित्त्यम् (प्रेमविवर्त्तम्) उच्यते ।। ३६१३ ।।

अनुवाद—प्रिय (नायक) निकट होते हुए भी प्रेमाधिक्य व उत्कट प्रेम हेतु वियोग की अथवा विरह की शंका से जो विलाप आदि अथवा अन्तःकरण में जो पीड़ा होती है, उसे प्रेमवैचित्त्य कहते हैं ।। ३६१३ ।।

प्रेमवैचित्त्य सम्भोग नहे पृथकत ।
सम्पन्न समृद्धिमान् इथे सुसङ्गत ।। ३६१४ ।।
प्रेमवैचित्त्य-विलास हय परम मधुर ।
वर्णे कविगण याते ताप जाय दूर ।। ३६१५ ।।

अनुवाद—प्रेमवैचित्त्य सम्भोग नहीं बल्कि पृथक है, तथा यहाँ सम्पन्न, समृद्धिवान एवं सुसंगत है । प्रेम-वैचित्त्य-विलास परम मधुर है, जिसका कवियों ने वर्णन किया है । इससे ताप दूर होता है ३६१४-१५ ।।

गीते यथा—कामोदः

राइकानु रसेर आवेशे ।
वैसे एकासने सखीगण चारिपाशे ।। ३६१६ ।।
किवा अनुरागेर तरङ्ग ।
न धरे धैरज धनि हैल क्षीण अङ्ग ।। ३६१७ ।।
सखीरे सुधाय वारे वारे ।
प्राणनाथ छाड़ि' कोथा गेलेन आमारे ।। ३६१८ ।।
आर कि पाइब प्राणनाथे ।
एत कहि कराघात करे निज माथे ।। ३६१९ ।।
भासे दुटि नयनेर जले ।
छाड़ि दीर्घ निश्वासः लोटाय महीतले ।। ३६२० ।।
रसिकशेखर श्यामराय ।
देखिया विषम दशा प्रबोधे राधाय ।। ३६२१ ।।

प्रबोधे पराण जुडाइलो।
घुचिल विच्छेदबुद्धि दुःख दूरे गेल ॥ ३६२२ ॥
सखी कि कहिला आँखिकोणे।
पुलके वलित हैया विलसे गोपने ॥ ३६२३ ॥
काला आलिङ्गये मेलि बाहु।
लाजे नतमुखी राइ हासे लहु लहु ॥ ३६२४ ॥
माधव धरिते नारे धृति।
मुखे मुख झापये मदनमहे माति ॥ ३६२५ ॥
उचकुचयुगे कर दिते।
ना जाने आछये कोथा कतो उठे चिते ॥ ३६२६ ॥
हासि नीबिबन्ध खसाइया।
रहये कुसुम-शेषे अङ्ग गड़ाइया ॥ ३६२७ ॥
तनु-तनु मिशा शोहे हेन।
नीलमणि-कनक दामिनीघन येन ॥ ३६२८ ॥
बाढ़ये कौतुक अतिशय।
दुँहु वेश विरचिया दोहे निरिखय ॥ ३६२९ ॥
समय जानिया सहचरी।
श्रम उपशमे कत कहे घिरि घिरि ॥ ३६३० ॥
नरहरि सखीर इङ्गिते।
करये सुवातास घरम निवारिते ॥ ३६३१ ॥
ओहे श्रीनिवास एइ कालिन्दी-कानने।
विलसये कृष्ण पञ्चविध सखासने ॥ ३६३२ ॥
चेट, विट, विदूषक, पीठमर्द, आर।
प्रियनर्म्म एइ पञ्च सहाय ताँहार ॥ ३६३३ ॥
विविध प्रकारे करे कृष्णेर सहाय।
ए सब सखार गुण के वा नाहि गाय ॥ ३६३४ ॥

भावार्थ—कामोद में गीत—श्रीराधा और श्रीकृष्ण रस के आवेश में एक आसन पर बैठे हैं, और चारों ओर सखियाँ हैं। यहाँ जैसा अनुराग है उससे राधा अनुप्राणित है, और उसका क्षीण अंग धन्य है। प्राणनाथ के चले जाने पर वह सखी से पूछती है, और सिर पर कराघात करती है। उसकी आँखों से आँसू बहने लगते हैं। वह पृथ्वी पर लोटपोट हो जाती है। यह दृश्य देखकर श्याम राधा का प्रबोधन करते हैं, तब उसके जैसे प्राण भर आते हैं। वह लाज से नमित हो जाती है। मदन-

मद में माति राधा अत्यन्त प्रसन्न होती है। कौतुक में वृद्धि होती है और दोनों एक दूसरे को देखने लगते हैं। पसीना निवारण के लिए नरहरि पंखा झलते हैं। × × हे श्रीनिवास ! इस कालिन्दी कानन में श्रीकृष्ण पाँच प्रकार के सखाओं के साथ विलसित हैं। चेट, विट, विदूषक, पीठमर्द्द और प्रियनर्म्म—ये पाँच प्रकार के सखा उनके सहायक हैं। वे विविध प्रकार से श्रीकृष्ण की सहायता करते हैं, इन सब सखाओं का गुणगान कौन नहीं करता है ॥ ३६१६—३४ ॥

तथाहि श्रीउज्ज्वलनीलमणौ सहाय-भेदप्रकरणे प्रथमलक्षणम्—

अथैतस्य सहायाः स्युः पञ्चधा चेटको विटः।
विदूषकः पीठमर्द्दः प्रियनर्म्मसखस्तथा।
नर्म्मप्रयोगे नैपुण्यं सदा गाढ़ानुरागिता ॥ ३६३५ ॥
देशकालज्ञता दाक्ष्यं रुष्टगोपीप्रसादनम्।
निगूढ़मन्त्रतेत्याद्याः सहायानां गुणा मताः ॥ ३६३६ ॥

अन्वय—अथ एतस्य (नायकस्य कृष्णस्य) पञ्चधा पञ्चप्रकाराः सहाया स्युः। चेटकः, विटः, विदूषकः, पीठमर्द्दः, तथा प्रियनर्म्मसखः। नर्म्मप्रयोगे (परिहासकरणे) नैपुण्यं सदा गाढ़ानुरागिता, देशकालज्ञता, दाक्ष्यं (दक्षता) रुष्टगोपीप्रसादनं, निगूढ़-मन्त्रता (गुप्तमन्त्रकारिता) इत्याद्याः (एवम् प्रकाराः) गुणाः सहायानां (लीला-सहायानां सखानां) मताः (विश्रुताः) ॥ ३६३५–३६ ॥

अनुवाद—श्री उज्ज्वलनीलमणि में सहाय भेद प्रकरण में प्रथम लक्षण—इस नायक श्रीकृष्ण के सहायक पाँच प्रकार के होते हैं। यथा–चेटक, विट, विदूषक, पीठमर्द्द और प्रियनर्मसख। परिहास, विनोद आदि में निपुणता, सर्वदा गाढ़ अनु-रागित्व अथवा प्रेम, देशकाल-अभिज्ञता, दक्षता, रुष्टगोपियों को प्रसन्न करने और उन्हें निगूढ़ व गुप्त मंत्रणा देने में सहायक आदि उनके गुण हैं ॥ ३६३५–३६ ॥

एथा कृष्ण चेट भृङ्ग-भङ्गुरादि सने।
विलसे से सब दक्ष सकल सन्धाने ॥ ३६३७ ॥

अनुवाद—यहाँ कृष्ण चेट भृङ्ग भङ्गुरादि के साथ विलसित हैं। ये सब सन्धान में दक्ष हैं ॥ ३५३७ ॥

तथाहि तत्रैव—

सन्धानचतुरश्चेटो गूढ़कर्म्मा प्रगल्भधीः।
स तु भङ्गुर-भृङ्गारादिक प्रोक्तोऽत्र गोकुले ॥ ३६३८ ॥

अन्वय—चेटः सन्धानचतुरः गूढ़कर्म्मा प्रगल्भधीः (प्रत्युत्पन्नमतिः) (भवति)। अत्र गोकुले स (चेटः) तु भङ्गुरभृङ्गारादिकः प्रोक्तः (कथितः) ॥ ३६३८ ॥

अनुवाद—जो व्यक्ति सन्धान विषय में चतुर (कलह होने पर मेल कराने में चतुर) है, जिसके कार्य कोई जान नहीं सकता, जो गुप्त रूप से कार्य करता है, एवं जिसकी बुद्धि अतिशय प्रगल्भा है, यानी जिसकी समय पर उत्तम सूझ है, उसे चेट कहते हैं। इस गोकुल में भंकुर, भृगारादि श्रीकृष्ण के चेट हैं, जो उनकी सहायता करते हैं ॥ ३६३८ ॥

विट-सखा कड़ार, भारती आदि एथा।
कृष्णवेशविन्यासे निपुणाद्भुत प्रथा ॥ ३६३६ ॥

अनुवाद—यहाँ कड़ार, भारती आदि विट-सखा हैं, जो कृष्ण-वेश धारण करने में अत्यन्त निगुण हैं ॥ ३६३९ ॥

तत्रैव—

वेशोपचारकुशलो धूर्त्तो गोष्ठीविशारदः।
कामतन्त्रकलावेदी विट इत्यभिधीयते।
कडारो भारतीबन्ध इत्यादिर्विट ईरितः ॥ ३६४० ॥

अन्वय—वेशोपचारकुशलः (विशे वेशरचनायाम् उपचारे सेवायाञ्च कुशलः) धूर्त्तः, गोष्ठीविशारदः (परिजननियन्त्रणनिपुणः) कामतन्त्रकलावेदी (कामतन्त्र-कलासु वशीकरणमोहनमन्त्रौषधादिप्रयोगेषु अभिज्ञः सहायः विटः इति अभिधीयते (कथ्यते)। कडारः, भारतीबन्धः इत्यादिः विटः ईरितः (कथितः) ॥ ३६४० ॥

अनुवाद—जो व्यक्ति वेशभूषादि रचना में चतुर, सेवा कार्य में निष्णात, धूर्त एवं परिवार-वर्ग जिसके आज्ञाधीन है एवं जो कामतंत्र-कला अथवा स्त्रीवशीकरणार्थ मंत्रौषधि प्रयोग में सिद्धहस्त है, उसे विट कहते हैं। कडार, भारतीबन्ध प्रभृति गोप कृष्ण के विट-सहायक हैं ॥। ३६४० ॥

एथा विदूषक वसन्तादि सखागण।
वाढ़ाय कौतुक कृष्ण करिते भोजन ॥ ३६४१ ॥

अनुवाद—यहाँ वसन्त आदि सखा विदूषक हैं, जो भोजन के लोलुप हैं और कृष्ण का कौतुक, हास्य बढ़ाते हैं ॥ ३५४१ ॥

वसन्ताद्यभिधो लोलो भोजने कलहप्रियः।
विकृताङ्गवचोवेशैर्हास्यकारी विदूषकः।
विदग्धमाधवे ख्यातो यथासौ मधुमङ्गलः ॥ ३६४२ ॥

अन्वय—भोजने लोलः (लालसायुक्तः) कलहप्रियः विकृताङ्गवचोवेशैः (विकृतैः अङ्गैः वचोभिः वेशैश्च) हास्यकारी (सहायः) विदूषकः (कथितः)। यथा

विदग्धमाधवे (नाटके) ख्यातः असौ मधुमङ्गलः वसन्ताद्यभिधः (वसन्तादिनामकः गोपश्च) ॥ ३६४२ ॥

अनुवाद—जो व्यक्ति भोजन-विषय में लालसायुक्त, कलहप्रिय, एवं देह-वेश-वाक्य में विकृति कर हास्यकारी है, उसे विदूषक कहते हैं। जैसे विदग्ध-माधव-नाटक में मधुमंगल विदूषक है, उसी प्रकार वसन्तादि गोप भी विदूषक कहे जाते हैं ।।३६४२।।

पीठमर्द श्रीदाम गुणेर अन्त नाइ।
करे कत कृष्णेर सहाय एइ ठाँइ ॥ ३६४३ ॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण का सहायक पीठमर्द्द गोप श्रीदाम हैं, जिसके गुणों का अन्त नहीं है, श्रीकृष्ण की यहाँ कितनी ही सहायता करता है ॥ २६४३ ॥

तत्रैव—

गुणैर्नायककल्पो यः प्रेम्ना तत्रानुवृत्तिमान्।
पीठमर्द्दः स कथितः श्रीदामा स्याद् यथाः हरेः ॥ ३६४४ ॥

अन्वय—यः गुणैः नायककल्पः प्रेम्ना तत्र अनुवृत्तिमान् (अनुगतः) स पीठमर्द्दः (सहायः) कथितः। यथा श्रीदामा हरेः (कृष्णस्य) पीठमर्द्दः (सहायः) स्यात् ॥ ३६४४ ॥

अनुवाद—जो व्यक्ति नायक के समान गुणवान होता है, और प्रेमवश इस नायक का ही अनुवृत्तिकारी व अनुसरणकर्त्ता होता है, उसे पीठमर्द्द कहते हैं। जैसे श्रीदाम श्रीकृष्ण के पीठमर्द्द सहायक थे ॥ ३६४४ ॥

प्रियनर्म्म-सखा सुफलादिक एथाय।
कृष्ण-सुख या'ते ताहा करे सर्व्वथाय ॥ ३६४५ ॥

अनुवाद—यहाँ सुबल आदि प्रियनर्म्म सखा हैं, जो सर्वथा ऐसा ही कार्य करते हैं, जिससे श्रीकृष्ण को सुख हो ॥ ३६४५ ॥

तत्रैव—

आत्यन्तिकरहस्यज्ञः सखीभावसमाश्रितः।
सर्व्वेभ्यः प्रणयिभ्योऽसौ प्रियनर्म्मसखो वरः।
स गोकुले तु सुबलस्तथा स्यादर्ज्जुनादिकः ॥ ३६४६ ॥

अन्वय—(यः) आत्यन्तिकरहस्यज्ञः सखीभावसमाश्रितः (श्रीकृष्ण-तत्प्रेयस्योः परस्परमिलनेच्छां समाश्रितः) असौ सर्व्वेभ्यः प्रणयिभ्यः वरः (श्रेयान् जनः) प्रियनर्म्मसखः (भवतीति शेषः) स तु गोकुले सुबलः (प्रियनर्म्मसखः) तथा (द्वारकायाम्) अर्ज्जुनादिकः स्यात् ॥ ३६४६ ॥

अनुवाद—जो व्यक्ति अत्यधिक रहस्यज्ञ, सखीभाव-समाश्रित एवं प्रणयी में अतिशय प्रिय अथवा प्रेयसियों के संगम की इच्छा और योजना करने वाले को प्रिय-नर्म्मसख कहते हैं। जैसे गोकुल में सुवल और (द्वारका में) अर्जुन ॥ ३६४६ ॥

ओहे श्रीनिवास कृष्ण ए रम्य कानने।
स्वयं मिले, गोपिका कर्षये वंशीस्वने ॥ ३६४७ ॥
स्वयं-दूती राधिकाप्तदूती यैछे ताँर।
तैछे श्रीकृष्णेर इथे आनन्द अपार ॥ ३६४८ ॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! इस सुरम्य कानन में श्रीकृष्ण गोपियों से स्वयं मिलते हैं, और गोपिकाएँ भी वंशी की ध्वनि सुनकर उनकी ओर खिंची चली आती हैं। दूती दो प्रकार की हैं, स्वयं और आप्त। जिस प्रकार यहाँ राधिका उनकी स्वयं और आप्त दूती है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण को इससे बड़ा आनन्द हो रहा है ॥ ३४७–३४८ ॥

तत्रैव—

हरिप्रियाप्रकरणे वक्ष्यन्ते यास्तु दूतिकाः।
तत्रापि ता यथायोग्यं विज्ञेया रसवेदिभिः ॥ ३६४९ ॥
तत्र स्वयं वशी च। स्वयमिति स्वयं दूतीत्यर्थः ॥ ३६५० ॥

अन्वय—हरिप्रियाकरणे (श्रीमदुज्ज्वलनीलमणौ हरिप्रियाप्रकरणे कृष्णवल्लभा प्रकरणे) या, तु दूतिकाः वक्ष्यन्ते ताः अत्र अपि रसवेदिभिः (रसज्ञैः) यथायोग्यं विज्ञेयाः। (दूती द्विविधा) तत्र स्वयं वशी (आप्ता) च। स्वयम् इति स्वयं-दूती इत्यर्थः ॥ ३६४९–५० ॥

अनुवाद—हरिप्रिया प्रकरण में (श्रीमद् उज्ज्वलनीलमणि में हरिप्रिया प्रकरण में कृष्णवल्लभा प्रकरण में) जिन समस्त दूती-लक्षणों का वर्णन किया गया है, रसज्ञगण यहाँ भी उन सब के विषय में यथायोग्य रूप में जान सकेंगे। दूती दो प्रकार की हैं—स्वयं एवं वशी (आप्ता)। स्वयं का अर्थ है, स्वयं दूती ॥ ३६४९–५० ॥

वीरा-वृन्दादिक श्रीकृष्णेर आप्तदूती।
ए कुञ्जे मिलाय दोंहे कि अद्भुतरीति ॥ ३६५१ ॥

अनुवाद—वीरा और वृन्दा आदि श्रकृष्ण की आप्तदूतियाँ हैं। वे इस कुञ्ज में दोनों का अद्भुतरीति से मिलन कराती हैं ॥ ३६५१ ॥

तत्रैव—

वीरावृन्दादिरप्याप्तदूती कृष्णस्य कीर्त्तिता।
वीरा प्रगल्भवचना वृन्दा चाटूक्तिपेशला ॥ ३६५२ ॥

अस्याः साधारणा दूत्यो वीराद्याः कथिता हरेः।
लिङ्गिन्यन्तास्तु वक्ष्यन्ते यास्ताः साधारणा द्वयोः ॥ ३६५३ ॥

अन्वय—वीरावृन्दादिः अपि कृष्णस्य आप्तदूती कीर्त्तिता। (तन्मध्ये) वीरा प्रगल्भवचना (मुखरा) वृन्दा (तु) चाटूक्तिपेशला (चाटूवाक्यदक्षा)। अस्याः (राधिकायाः) साधारणाः (समानाः) दूत्यः वीराद्याः हरेः (कृष्णस्यापि) (दूत्यः) कथिताः। याः लिङ्गिन्यन्ताः (तापसीपर्य्यन्ताः) दूत्यः) तु वक्ष्यन्ते, ताः (दूत्यः) द्वयोः राधामाधवयोः) साधारणाः (भवन्ति) ॥ ३६५२–५३ ॥

अनुवाद—वीरा, वृन्दा आदि कृष्ण की आप्त दूतियों के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनमें वीरा मुखर हैं, एवं वृन्दा चाटुवाक्य प्रयोग में दक्ष है। वीरादि श्रीराधा और श्रीकृष्ण की साधारणा व समान दूतियाँ हैं। लिङ्गिनी प्रभृति के विषय में भी कहा जायगा। वे दोनों की भी समान दूतियाँ हैं।। ३६५२–५३ ॥

कि बलिब एथा सख्यादिक राधिकार।
करये सहाय यैछे ना हय विस्तार ॥ ३६५४ ॥
राधिकार सखी पञ्चविधा सखी आर।
नित्यसखी, प्राणसखी आदि ए प्रचार ॥ ३६५५ ॥
ए सकल सखी लैया राधिका सुन्दरी।
एइ कुञ्ज रहेन कृष्णेर पथ हेरि ॥ ३६५६ ॥

अनुवाद—श्रीराधिका की सखियों के बारे में क्या कहें, जिस प्रकार वे श्री-राधिका की सहायता करती हैं, उसका विस्तार से वर्णन असम्भव है। राधिका की सखियाँ पाँच प्रकार हैं, यथा सखी, नित्यसखी, प्राणसखी आदि। इन सभी सखियों के साथ सुन्दरी श्रीराधिका इस कुञ्ज में श्रीकृष्ण की राह ताक रही हैं ॥३६५४-५६॥

तत्रैव—

तास्तु वृन्दावनेश्वर्य्याः सख्यः पञ्चविधा मताः।
सख्यश्च नित्यसख्यश्च प्राणसख्यश्च काश्चन।
प्रियसख्यश्च परमप्रेष्ठसख्यश्च विश्रुता ॥ ३६५७ ॥

अन्वय—वृन्दावनेश्वर्य्याः (श्रीराधायाः) ताः (प्रसिद्धाः) सख्यः तु पञ्चविधाः मताः (कथिताः)। (यथा) सख्यः च नित्यसख्यः च, काश्चन प्राणसख्यः च, प्रिय-सख्यः च परमप्रेष्ठसख्यः च विश्रुताः (प्रसिद्धाः भवन्ति) ॥ ३६५७ ॥

अनुवाद—वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा की सखियाँ पाँच प्रकार की हैं। वे सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी और परमप्रेष्ठसखी नामों से प्रसिद्ध हैं ॥ ३६५७ ॥

सखी कुसुमिका विन्ध्या धनिष्ठादि एथा।
यतने साधये राधिकार मनः-कथा ॥ ३६५८॥

अनुवाद—कुसुमिका, विन्ध्या, धनिष्ठा आदि सखियाँ श्रीराधिका की आन्तरिक इच्छा की बड़े जतन से पूर्ति करती हैं अथवा साधती हैं ॥ ३६५८ ॥

तत्रैव—

सख्यः कुसुमिका-विन्ध्या-धनिष्ठाद्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ ३६५९ ॥

अनुवाद—कुसुमिका, विन्ध्या और धनिष्ठा आदि सखियों के रूप में विख्यात हैं ॥ ३६५९ ॥

नित्यसखी—कस्तुरी, मणिमञ्जरिकादि।
एथा राधामनोवृत्ति साधे निरवधि ॥ ३६६० ॥

अनुवाद—कस्तुरी, मणिमञ्जरिका आदि नित्यसखी हैं, जो यहाँ श्रीराधा की मनोवृत्ति को सर्वदा पूरी करती हैं ॥ ३६६० ॥

तत्रैव—

नित्यसख्यस्तु कतुरी मणीमञ्जरिकादयः ॥ ३६६१ ॥

अनुवाद—कस्तुरी, मणिमञ्जरिका आदि नित्यसखी हैं ॥ ३६६१ ॥

प्राणसखी वासन्त्यादि राधातुल्य प्राय।
एइ कुञ्जे राधाकृष्णे कौतुक बाढ़ाय ॥ ३६६२ ॥

अनुवाद—वासन्ती आदि प्राणसखियाँ हैं जो प्रायः राधा के समान हैं और इस कुञ्ज में श्रीराधा और श्रीकृष्ण का कौतुक बढ़ाती हैं ॥ ३६६२ ॥

तत्रैव—

प्राणसख्यः शशिमुखी वासन्ती लासिकादयः।
गता वृन्दावनेश्वर्य्याः प्रायेणेमाः स्वरूपताम् ॥ ३६६३ ॥
(स्वरूपतां तुल्यतामित्यर्थः)।

अन्वय—शशिमुखी वासन्ती, लासिकादयः (लासिकाप्रभृतयः) प्राणसख्यः (भवन्ति)। इमाः (प्राणसख्यः) प्रायेण वृन्दावनेश्वर्य्याः स्वरूपतां (तुल्यरूपतां) गताः ॥ ३६६३ ॥

अनुवाद—शशिमुखी, वासन्ती, लसिका आदि प्राणसखियाँ हैं। ये प्रायः वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा के तुल्यरूप-प्राप्ता यानी समान हैं, (स्वरूपता शब्द से तुलना का बोध होता है) ॥ ३६६३ ॥

प्रियसखी कुरङ्गाक्षी आदि अनुपमा।
एकुञ्जे विह्वल देखि दोंहार सुषमा॥ ३६६४॥

अनुवाद—कुरङ्गाक्षी आदि अनुपम प्रियसखियाँ हैं। इस कुञ्ज में दोनों—श्रीकृष्ण और श्रीराधा—की सुषमा देखकर विह्वल हो उठती हैं॥ ३६६४॥

तत्रैव—

प्रियसखी कुरङ्गाक्षी सुमध्या मदनालसा।
कमला माधुरी मञ्जुकेशी कन्दर्पसुन्दरी।
माधवी मालती कामलता शशिकलादयः॥ ३६६५॥

अनुवाद—कुरङ्गाक्षी, सुमध्या, मदनालसा, कमला, माधुरी, मञ्जुकेशी, कन्दर्प-सुन्दरी, माधवी, मालती, कामलता, शशिकला आदि प्रियसखियाँ हैं॥ ३६६५॥

परमप्रेष्ठसखी ललितादिक एथाय।
दोंहे मिलाइया महा उल्लास हियाय॥ ३६६६॥

अनुवाद—ललिता आदि यहाँ परमप्रेष्ठ सखियाँ हैं, दोनों—श्रीकृष्ण और श्रीराधा—को मिला देने से उनके हृदय में भारी उल्लास है॥ ३६६६॥

तत्रैव—

परमप्रेष्ठसख्यस्तु ललिता सविशाखिका।
सुचित्रा चम्पकलता तुङ्गविद्येन्दुलेखिका॥ ३६६७॥
रङ्गदेवी सुदेवी चेत्यष्टौ सर्वगुणाग्रिमाः।
आसां सुष्ठु द्वयोरेव प्रेम्णः परमकाष्ठया।
क्वचिज्जातु क्वचिज्जातु तदाधिक्यमिवेक्ष्यते॥ ३६६८॥

अन्वय—सविशाखिका (विशाखासहिता) ललिता, सुचित्रा, चम्पकलता, तुङ्ग-विद्या, इन्दुलेखिका, रङ्गदेवी, सुदेवी, च इति अष्टौ सर्व्वगुणाग्रिमाः (सर्व्वगुणैः श्रेष्ठाः) परमप्रेष्ठसख्यः तु (भवन्ति)। आसां (परमप्रेष्ठसखीनां मध्ये) द्वयोः (ललिताविशाखयोः) प्रेम्णः सुष्ठु परमकाष्ठया (अतिशयैकान्तितया) क्वचित् जातु क्वचित् जातु (कुत्रचित् कुत्रचित् स्थले) तदाधिक्यम् (तयोः आधिक्यं महत्त्वम्) इव ईक्ष्यते (दृश्यते)॥ ३६६७–६८॥

अनुवाद—ललिता, विशाखा, सुचित्रा, चम्पकलता, तुङ्गविद्या, इन्दुलेखिका, रङ्गदेवी, सुदेवी—ये आठ सब गुणों में श्रेष्ठा परमप्रेष्ठ सखियाँ हैं। इनमें दो सखियों—ललिता एवं विशाखा की प्रेम की पराकाष्ठा के कारण कहीं-कहीं उनकी ही जैसे श्रेष्ठता परिलक्षित होती है॥ ३६६७–६८॥

ओहे श्रीनिवास एइ निकुञ्ज-आवासे।
स्वयं दूती आप्तदूती चातुर्य्य प्रकाशे॥ ३६६६॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! इस निकुञ्ज-आवास में दो प्रकार की दूतियाँ—स्वयं दूती और आप्तदूती—अपना चातुर्य प्रकाश कर रही हैं॥ ३६६६॥

तथाहि तत्रैव—

अथाश्रितसहायानां कृष्णसङ्गमतृष्णया।
एतासां पूर्वरागादौ दूत्ययुक्तिर्विलिख्यते।
दूती स्वयं तथाप्ता च द्विधात्र परिकीर्त्तिता॥ ३६७०॥

अन्वय—अथ (यूथेश्वरीभेदकथनानन्तरम्) आश्रितसहायानाम् (आश्रिताः सहायाः यासां तासाम्) एतासां (यूथेश्वरीणां) पूर्व्वरागादौ कृष्ण-सङ्गमतृष्णया (कृष्णसह-मिलनेच्छया) दूत्ययुक्तिः (दूतस्य रागाभिव्यञ्जकसंवादस्य युक्तिः) विलिख्यते। अत्र दूती द्विधा परिकीर्त्तिता, स्वयं तथा आप्ता च॥ ३६७०॥

अनुवाद—यूथेश्वरी-भेद कथन के अनन्तर आश्रित-सहायक यूथेश्वरियों की पूर्व-रागादि अवस्था में कृष्ण-मिलन-इच्छा होने पर उनकी दूती-युक्ति लिखी जा रही है। दूती दो प्रकार की है—स्वयंदूती और आप्तदूती॥ ३६७०॥

स्वयं दूती एथा कृष्णे करिया दर्शन।
वाचिकाङ्गिक चाक्षुषे साधे प्रयोजन॥ ३६७१॥
स्वयंदूती श्रीराधिका सर्व्वांशे प्रवीणा।
विलसये एकुञ्जे सुखेर नाहि सीमा॥ ३६७२॥

अनुवाद—स्वयं दूती यहाँ श्रीकृष्ण के दर्शन कर वाचिक, आंगिक एवं चाक्षुष अभियोगों से अपना प्रयोजन साधती है। स्वयं दूती श्रीराधिका सब प्रकार से प्रवीण हैं और वह कुञ्ज में विलसित है, जिससे सुख की सीमा नहीं है॥ ३६७१-७२॥

तत्रैव—

अत्यौत्सुक्यत्रुटद्व्रीडा या च रागादिमोहिता।
स्वयमेवाभियुङ्क्ते सा स्वयं दूती ततः स्मृता।
स्वाभियोगास्त्रिधा प्रोक्ता वाचिकाङ्गिकचक्षुषाः॥ ३६७३॥

अन्वय—या अत्यौत्सुक्यत्रुटद्व्रीडा (अतिशयौत्सुक्यात् त्रुटन्ती नश्यन्ती व्रीडा सज्जा यस्याः सा) (या) रागादिमोहिता (रत्यादिमुग्धा) स्वयम् एव अधियुङ्क्ते (नायकं प्रति भावं प्रकाशयति) सा ततः (तस्माद्धेतोः) स्वयंदूती स्मृता (उक्ता)। वाचिकाङ्किकचाक्षुषाः त्रिधा स्वाभियोगाः प्रोक्ताः॥ ३६७३॥

अनुवाद—अति उत्सुकता के कारण जिसकी लज्जा दूर हुई है और जो अनुराग में अतिशय विमोहित हो एवं जो स्वयं नायक के निकट अभियोग करती हो व अपना भाव प्रकाशित करती हो, उसे स्वयंदूती कहा जाता है। अभियोग तीन प्रकार के हैं—वाचिक, आङ्गिक (कायिक) और चाक्षुष—बोलकर व्यक्त करना वाचिक, अंग से व्यक्त करना आंगिक और नेत्र संकेत से प्रेम व्यक्त करना चाक्षुष है ।। ३६७३ ।।

ओहे श्रीनिवास, एइ कदम्बकानने।
सदा राधासुख वाञ्छे आप्तदूतीगणे ।। ३६७४ ।।
आप्तदूतीगणचेष्टा कहिल ना हय।
अमितार्था निसृष्टार्था, पत्रहारी त्रय ।। ३६७५ ।।

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! इस कदम्ब कानन में आप्तदूतियाँ सदा राधा के सुख की कामना करती हैं। आप्तदूतियों की चेष्टाएँ—क्रियाएँ अवर्णनीय हैं। ये आप्तदूतियाँ तीन प्रकार की होती हैं—अमितार्था, निसृष्टार्था और पत्रहारी ।। ३६७४–७५ ।।

तत्रैव—

न विश्रम्भस्य भङ्गं या कुर्य्यात् प्राणात्ययेष्वपि।
स्निग्धा च वाग्मिनी चासौ दूती स्याद्गोपसुभ्रुवाम्।
अमितार्था निसृष्टार्था पत्रहारीति सा त्रिधा ।। ३६७६ ।।
विश्रम्भो विश्वास इत्यर्थः।

अन्वय—या प्राणात्ययेषु अपि विश्रम्भस्य भङ्गं न कुर्य्यात् (या) स्निग्धा च वाग्मिनी च असौ गोपसुभ्रुवां (गोपसुन्दरीणां) दूती (आप्तदूती) स्यात्। सा (आप्तदूती) त्रिधा (भवति) (यथा) अमितार्था (प्रचुरेङ्गितज्ञा), निसृष्टार्था (निसृष्टः अर्पितः अर्थः कार्य्यं यस्यै सा), पत्रहारी (पत्रवाहिका) इति ।।३६७६।।

अनुवाद—जो दूती प्राणसंकट में भी विश्वासभंग व विश्वासघात नहीं करती, जो स्निग्धा (प्रेम करने वाली) एवं वाग्मिनी (वक्तृत्व कुशल) है, गोपसुन्दरियों की उस दूती को आप्तदूती कहते हैं। आप्तदूती तीन प्रकार की हैं—अमितार्था (पूर्ण रूप से नायक-नायिका भाव जानने वाली), निसृष्टार्था (जिस पर काम का भार सौंपा गया है,) और पत्रहारी (पत्रवाहिका) ।। ३६७६ ।।

अमितार्था दूती अति प्रवीणा इङ्गिते।
रचिया उपाय दोंहे मिलाय एथाते ।। ३६७७ ।।

अनुवाद—अमितार्था (आप्त) दूती संकेत समझने में बड़ी प्रवीण होती है और किसी प्रकार का उपाय कर दोनों को मिला देती है ।। ३६७७ ।।

तत्रैव—

ज्ञात्वेङ्गितेन या भावं द्वयोरेकतरस्य वा ।
उपायैर्म्मिलयेत्तौ द्वावमितार्था भवेदियम् ॥ ३६७८ ॥

अन्वय—या (आप्तदूती) इङ्गितेन द्वयोः एकतरस्य वा भावं ज्ञात्वा उपायैः (कौशलैः) तौ द्वौ मिलयेत्, इयम् अमितार्था भवेत् ॥ ३६७८ ॥

अनुवाद—जो आप्तदूती संकेत मात्र पाकर नायक-नायिका दोनों अथवा किसी एक का भाव समझ कर उपाय व कौशल व युक्ति से दोनों का मिलन करवा देती है, उसे अमितार्था कहते हैं ॥ ३६७८ ॥

निसृष्टार्था दूतीके अर्पये कार्य्यभार ।
ए कुञ्जे करेन युक्ति घटना दोंहार ॥ ३६७६ ॥

अनुवाद—जिस दूती को कार्य-भार सौंपा गया है; वह अपनी युक्ति से इस कुञ्ज में दोनों (नायक-नायिका) का मिलन करा देती है । ऐसी आप्तदूती निसृष्टार्था है ॥ ३६७६ ॥

तत्रैव—

विन्यस्तकार्य्यभारा स्याद्द्वयोरेकतरेण या ।
युक्त्योभौ घटयेदेषा निसृष्टार्था निगद्यते ॥ ३६८० ॥

अन्वय—द्वयोः (नायकनायिकयोः) एकतरेण विन्यस्तकार्य्यभारा या युक्त्या (दूत्यकार्य्येण) उभौ घटयेत् (मिलयेत्) एषा (दूती) निसृष्टार्था निगद्यते (कथ्यते) ॥ ३६८० ॥

अनुवाद—नायक-नायिका में से एक के द्वारा जिस पर कार्य भार सौंपा गया है, वह अपनी युक्ति व दूतकार्य से दोनों (नायक-नायिका) का मिलन करा देती है । ऐसी मिलनकारिणी आप्तदूती को निसृष्टार्था कहते हैं ॥ ३६८० ॥

पत्रहारी दूती मात्र पत्रिका लइया ।
देन दोंहे, दोंहे मिले निकुञ्जे आसिया ॥ ३६८१ ॥

अनुवाद—जो (आप्त) दूती एक दूसरे का पत्र लेकर दोनों को पहुँचाती है, जिससे दोनों (नायक-नायिका) निकुञ्ज में आकर मिलते हैं, उसे पत्रहारी (आप्त-दूती) कहते हैं ॥ ३६८१ ॥

तत्रैव—

सन्देशमात्रं या यूनोर्न्नयेत् सा पत्रहारिका ॥ ३६८२ ॥

अन्वय—या (दूती) यूनोः (नायकनायिकयोः) सन्देशमात्रं (संवादमात्रं) नयेत्, सा पत्रहारिका (भवेत्) ॥ ३६८२ ॥

अनुवाद—जो दूती नायक अथवा नायिका का संवाद मात्र वहन करती है, अथवा एक दूसरे के पास पहुँचाती है, उसे पत्रहारिका कहते हैं ॥ ३६८२ ॥

दूती शिल्पकारी दैवज्ञा लिङ्गिनी आर।
परिचारिका धात्रेयी सर्व्वत्र प्रचार ॥ ३६८३ ॥
वनदेवी सखी आदि ए सब कुञ्जेते।
निज निज गुण प्रकाशये हर्षचिते ॥ ३६८४ ॥

अनुवाद—इस कुञ्ज में (आप्त) दूतियों में शिल्पकारी, दैवज्ञा, लिङ्गिनी, परिचारिका, धात्रेयी, वनदेवी एवं सखी आदि हैं, जो हर्षित मन से अपने गुणों को प्रकाशित करती हैं ॥ ३६८३–८४ ॥

तथाहि तत्रैव—

ताः शिल्पकारी दैवज्ञा लिङ्गिनी परिचारिकाः।
धात्रेयी वनदेवी च सखी चेत्यादयो व्रजे ॥ ३६८५ ॥

अन्वय—ताः (दूत्यः) व्रजे शिल्पकारी, दैवज्ञा, लिङ्गिनी (वेशधारिणी) तापसी परिचारिकाः (सेविकाः) धात्रेयी (धात्री) वनदेवी सखी च इत्यादयः (भवन्ति) ॥ ३६८५ ॥

अनुवाद—व्रज में आप्तदूतियों का वर्णन करते हैं—इन आप्तदूतियों में शिल्पकारी, दैवज्ञा, लिङ्गिनी, परिचारिका, धात्रेयी, वनदेवी, सखी इत्यादि विविध भेद हैं ॥ ३६८५ ॥

शिल्पकारी नाना शिल्पे प्रवीणा एथाय।
देखाइया शिल्प, सुखी करेन दोंहाय ॥ ३६८६ ॥
दैवज्ञाप्रदूती गणनाय विलक्षणा।
कहे एइ कुञ्जे अद्य दोंहार घटना ॥ ३६८७ ॥
लिङ्गिनी तापसीवेशा यैछे पौर्णमासी।
पौर्णमासी दोंहे मिलायेन एथा आसि ॥ ३६८८ ॥

अनुवाद—शिल्पकारी आप्तदूती विविध शिल्प-कलाओं में प्रवीण, दक्ष है और वह अपनी कला का प्रदर्शन कर दोनों को खुश करती है। दैवज्ञा आप्तदूती ज्योतिष-गणना में विलक्षण है और इस कुञ्ज में दोनों (नायक-नायिका) का भूत-भविष्य बताती है। लिङ्गिनी आप्तदूती तापसी वेशधारिणी है, जैसे पौर्णमासी हो और पौर्णमासी ही दोनों को यहाँ मिलाती है ॥ ३६८६–८८ ॥

तत्रैव—

लिङ्गिनी तापसीवेशा पौर्णमासीवदीरिता ॥ ३६८६ ॥

अन्वय—पौर्णमासीवत् तापसीवेशा लिङ्गिनी ईरिता (कथिता) ॥ ३६८६ ॥

अनुवाद—पौर्णमासी के समान तपोवेशधारिणी को लिङ्गिनी कहते हैं। (तापसीवेश विश्वसनीय, भावोत्पादक होता है) ॥ ३६८६ ॥

परिचारिका लवङ्गमञ्जर्य्यादि रङ्गे।
राधिकारे ए कुञ्जे मिलान कृष्ण-सङ्गे ॥ ३६६० ॥

अनुवाद—लवङ्गमञ्जरी आदि परिचारिकाएँ आप्तदूती हैं, जो इस कुञ्ज में राधिका का कृष्ण के साथ मिलन कराती हैं ॥ ३६६० ॥

तत्रैव—

लवङ्गमञ्जरी भानुमत्याद्याः परिचारिकाः ॥ ३६६१ ॥

अनुवाद—लवङ्गमञ्जरी, भानुमती आदि परिचारिका (सेविका) दूती हैं। (विश्वास के कारण उनका सर्वत्र प्रवेश है) ॥ ३६६१ ॥

धात्रेयी यावट हैते आनिया राधाय।
ए कुञ्जे कृष्णेर सह कौतुके मिलाय ॥ ३६६२ ॥
वनदेवीगण वने रहे सर्व्वक्षण।
एइ कुञ्जे देखे राइ कानुर मिलन ॥ ३६६३ ॥
सखी एइ कुञ्जे दोंहे कौतुके मिलाय।
सखीरीत-विदित के वा ना यश गाय ॥ ३६६४ ॥

अनुवाद—धात्रेयी (पोषण करने वाली) आप्तदूती राधा को कहीं से लाकर कुञ्ज में श्रीकृष्ण के साथ उसका मिलन कराती है। वनदेवी आप्तदूतियाँ सब समय बन में (कानन में) रहती हैं और कुञ्ज में श्रीराधिका-श्रीकृष्ण का मिलन देखती हैं। सखी (आप्तदूती) इस कुञ्ज में दोनों (नायक-नायिका—श्रीकृष्ण-श्रीराधा) का कौतुक के साथ मिलन कराती है। जिन्हें सखी की रीति की जानकारी है, वे उनका यशगान किये बिना कैसे रह सकते हैं ॥ ३६६२–६४ ॥

तत्रैव—

आत्मनोऽप्यधिकं प्रेम कुर्व्वाणान्योऽन्यमच्छलं।
विश्रम्भिणी वयोवेशादिभिस्तुल्या सखी मता ॥ ३६६५ ॥
वाच्यं व्यङ्गमिति द्वेधा तद्दूत्यमुभयोरपि ॥ ३६६६ ॥

अन्वय—अन्योऽन्यम् (परस्परं) अच्छलं (अव्याजं) आत्मनः (स्वप्राणेभ्यः) अपि अधिकं प्रेम (अनुरागं) कुर्व्वाणा विश्रम्भिणी (विश्वासपात्री) वयोवेशादिभिः

तुल्या (गोपीका) सखी मता (कथिता)। उभयोः अपि तद्दूत्यम् वाच्यं व्यङ्गम् इति द्वेधा (भवति)॥ ३६९५–९६ ॥

अनुवाद—जो निष्कपट भाव अथवा छल परित्याग कर पारस्परिक रूप से अथवा एक दूसरे के प्रति अतिशय प्रीति करती है एवं परस्पर विश्वासपात्री होती है, एवं जिनका परस्पर वयक्रम एवं वेशभूषा में समानता रहती है, वे ही परस्पर सखी (आप्तदूती) हैं। नायक-नायिका दोनों का सखी दूत्य वाच्य और व्यङ्ग भेद से दो प्रकार का है। (ये रहस्य दासी जैसी हैं)॥ ३६९५–९६ ॥

(तत्तस्याः सख्याः, उभयोर्नायकनायिकयोरित्यर्थः)।

अनुवाद—तत् शब्द का अर्थ है–सखी का। उभयोर् का अर्थ है–नायक-नायिका का।

विविधप्रकारे एइ निकुञ्ज आलये।
सम्भोगे दोंहार सुख सखी विस्तारये॥ ३६९७॥
मुख्य गौणरूपे सम्भोग अष्ट परकार।
पूर्व्वरागादि संक्षिप्तादि ए प्रचार॥ ३६९८॥

अनुवाद—इस निकुञ्ज भवन में दोनों (नायक-नायिका) के विविध प्रकार के सम्भोग में जो सुख है, उसका सखी विस्तार से वर्णन करती है। मुख्य और गौण रूप में सम्भोग आठ प्रकार के हैं। पूर्वरागादि मुख्य सम्भोग और संक्षिप्तादि गौण सम्भोग हैं॥ ४६९७–९८ ॥

तथाहि तत्रैव—

दर्शनालिङ्गनादीनामानुकूल्यान्निषेवया।
यूनोरुल्लासमारोहन् भावः सम्भोग ईर्य्यते॥ ३६९९॥
मनीषिभिरयं मुख्यो गौणश्चेति द्विधोदितः।
मुख्यो जाग्रदवस्थायां सम्भोगः स चतुर्व्विधः॥ ३७००॥
तान् पूर्व्वरागतो मानात् प्रवासद्वयतः क्रमात्।
जातान् सङ्क्षिप्त-सङ्कीर्ण–सम्पन्नर्द्धिमतो विदुः॥ ३७०१॥

अन्वय—दर्शनालिङ्गनादीनाम् आनुकूल्यात् (साहाय्यात् नतु काममयसम्भोगात्) निषेवया (सेवनेन) यूनोः (नायिकानायकयोः) उल्लासम् (आनन्दोल्लासम्) आरोहन् (लभमानः) भावः (रसविशेषः) सम्भोगः ईर्य्यते (कथ्यते) मनीषिभिः (पण्डितैः) अयं (सम्भोगः) मुख्यः गौणश्च इति द्विधा उदितः (कथितः)। जाग्रदवस्थायां (जागरणकाले) मुख्यः सम्भोगः (भवति)। स चतुर्व्विधः। (पण्डिताः) तान् (सम्भोगान्) पूर्व्वरागातः (पूर्व्वरागात्) मानात् प्रवासद्वयतः (कश्चिद्दूरः

सुदूरश्च इति प्रवासद्वयात्) जातान् (उत्पन्नान्) संक्षिप्त-सङ्कीर्ण-सम्पन्नर्द्धिमतः च विदुः (जानन्ति) ।। ३६९९-३७०१ ।।

अनुवाद—दर्शन एवं आलिंगन आदि की अनुकूलता हेतु नायक-नायिकाओं की क्रिया, उनके आनन्दोल्लास से जो भाव उठते हैं, उनका नाम सम्भोग है। पण्डितों ने मुख्य और गौण भेद से दो प्रकार के सम्भोग बताये हैं। जाग्रत अवस्था में ये क्रियाएँ मुख्य सम्भोग हैं, जो चार प्रकार के हैं, यथा पूर्व्वराग, मान, किञ्चित् दूर और सुदूर प्रवास। संक्षिप्त, संकीर्ण, सम्पन्न और समृद्धिमान्—पूर्वरागादि के गौण भाव उदित होते हैं ।। ३६९९-३७०१ ।।

पूर्व्वरागे संक्षिप्त-सम्भोगे संक्षेपेते।
सखी दोंहे मिलान सुप्रकारे एथाते ।। ३७०२ ।।

अनुवाद—सखी दोनों (नायक-नायिका) को यहाँ अच्छे ढंग से मिलन कराती है, जबकि पूर्वराग में अल्प परिमाण में वे सम्भोग का उपभोग करते हैं, उसे संक्षिप्त सम्भोग कहते हैं ।। ३७०२ ।।

तत्रैव—

युवानौ यत्र संक्षिप्तान् साध्वीसव्रीडितादिभिः।
उपचारान्निषेवेते स संक्षिप्त इतीरितः ।। ३७०३ ।।

अन्वय—यत्र (सम्भोगे) युवानौ (नायिकानायकौ) साध्वसव्रीडितादिभिः (भयलज्जादिभिः, आदिशब्देन असहिष्णुता च व्यज्यते) संक्षिप्तान् (अल्पान्) उपचारान् (सम्भोगवस्तुनि) निषेवेते (उपभुञ्जाते) स (सम्भोगः) संक्षिप्तः इति ईरितः (कथितः) ।। ३७०३ ।।

अनुवाद—जिस सम्भोग में युवक युवती दोनों लज्जा और भय के कारण अल्प परिमाण में, संकोच से, मन्द रूप में सम्भोग करते हैं, उसे संक्षिप्त सम्भोग कहते हैं ।। ३७०३ ।।

विविध प्रकारे मान-भञ्जन हइले।
एथा सङ्कीर्ण-सम्भोगे सुख सखी मिले ।। ३७०४ ।।

अनुवाद—विविध प्रकार से मान-भञ्जन होने पर संकीर्ण सम्भोग होता है। इससे सखी को सुख की अनुभूति होती है ।। ३७०४ ।।

तत्रैव—

यत्र सङ्कीर्य्यमाणाः स्युर्व्यलीकस्मरणादिभिः।
उपचाराः स सङ्कीर्णः किञ्चित्तप्तेक्षुपेशलः ।। ३७०५ ।।

अन्वय—यत्र (सम्भोगे) व्यलीकस्मरणादिभिः (नायककृतवञ्चनास्मरणादिभिः) उपचाराः (भोगाः) सङ्कीर्य्यमाणाः स्युः स किञ्चित्तप्तेक्षुपेशलः (तप्तेक्षुवत् किञ्चिदुष्णमधुरभावयुक्तः) सम्भोगः) सङ्कीर्णः (भवति) ॥ ३७०५ ॥

अनुवाद—नायक के व्यलीक अर्थात् विपक्ष के गुणकीर्तन एवं स्ववञ्चनादि स्मरण द्वारा जिस स्थल पर भोगचेष्टा संकुचित होती है, एवं जिसमें तप्तेक्षुचर्वण यानी तपे हुए इक्षु के रस के समान तापयुक्त होते हुए भी मधुरभावयुक्त हो और असहिष्णुता का बोध हो, उसे संकीर्ण सम्भोग कहते हैं ॥ ३७०५ ॥

अदूर प्रवासे सम्पन्न से भेदद्वय।
एथाते सम्भोग-सुख सखी आस्वादय ॥ ३७०६ ॥

अनुवाद—निकट प्रवास के बाद जो सम्भोग होता है, उसे सम्पन्न कहते हैं। इसके दो प्रकार हैं। इस सम्भोग-सुख का आस्वादन सखी करती है ॥ ३७०६ ॥

प्रवासात् सङ्गते कान्ते भोगः सम्पन्नः ईरितः।
द्विधा स्यादागतिः प्रादुर्भावश्चेति स सङ्गमः ॥ ३७०७ ॥

अन्वय—कान्ते प्रवासात् (अदूरप्रवासात्) सङ्गते (सति) भोगः (सम्भोगः) सम्पन्नः ईरितः (कथितः) स सङ्गमः (भोगः) द्विधा स्यात् (यथा) आगतिः (आगमनम्) प्रादुर्भावः च इति ॥ ३७०७ ॥

अनुवाद—प्रवास से आने पर, कान्त का मिलन होने पर जो सम्भोग होता है, उसे सम्पन्न कहते हैं, यह संगम (भोग) दो प्रकार का है, आगति और प्रादुर्भाव ॥ ३७०७ ॥

आगतिः—

लौकिकव्यवहारेण स्यादागमनमागतिः ॥ ३७०८ ॥

अन्वय—लौकिकव्यवहारेण (प्रातः प्रातर्व्रजाद्वनगमनं प्रतिसायं वनाद्व्रजागमनमिति लौकिकव्यवहारः तेन) आगमनम् आगतिः (आगतिनामकः सम्पन्नः सम्भोगः) स्यात् ॥ ३७०८ ॥

अनुवाद—लौकिक व्यवहार (काम के लिए प्रातः गोकुल से वन में जाना और रोज वन से शाम को लौटना) से आगमन को आगति कहते हैं। (यह आगति नामक सम्पन्न संभोग है) ॥ ३७०८ ॥

प्रादुर्भावः—

प्रेष्ठानां प्रेमसंरम्भविह्वलानां पुरो हरिः।
आविर्भवत्यकस्माद् यत् प्रादुर्भावः स उच्यते ॥ ३७०९ ॥

अन्वय—प्रेमसंरम्भविह्वलानां (प्रेमसंरम्भेण रूढ़भावविक्रमेण विह्वलानामाकुलानां) प्रेष्ठानां (प्रियाणां मध्ये) अकस्मात् (स्थानान्तरवत् आगमनं विनैवेत्यर्थः) पुरः (अग्रतः) यत् हरि आविर्भवति स (सम्पन्नसम्भोगः) प्रादुर्भाव उच्यते (कथ्यते) ॥ ३७०९ ॥

अनुवाद—प्रेमसंरम्भ अर्थात् प्रेम के अतिरेक से विकल, भावातिरेक से आक्रान्त विह्वल प्रियाओं के सम्मुख श्रीकृष्ण के अकस्मात् प्रकट होने पर व आविर्भाव होने पर जो सम्पन्न सम्भोग है, उसका नाम आविर्भाव है ॥ ३७०९ ॥

समृद्धिमान् सम्भोग सुदूर प्रवासे।
आच्छन्न प्रकाशभेदे ए कुञ्जे विलासे ॥ ३७१० ॥

अनुवाद—सुदूर प्रवास में सम्भोग समृद्धिमान सम्भोग है। इसके दो प्रकार—आच्छन्न और प्रकाश—इस कुञ्ज में विलसित हैं ॥ ३७१० ॥

तत्रैव—

दुर्लभालोकयोर्यूनोः पारतन्त्र्याद्वियुक्तयोः।
उपभोगातिरेको यः कीर्त्त्यते स समृद्धिमान् ॥ ३७११ ॥

अन्वय—पारतन्त्र्यात् (यूनोरेकस्याः पतिश्वश्रूप्रभृतिनामधीनत्वात्) वियुक्तयोः (दूरगतयोः) दुर्लभालोकयोः (दुष्प्राप्यदर्शनयोः) यूनोः (नायिकानायकयोः) यः उपभोगातिरेकः (वरस्परदर्शनादिरूपः सम्भोगातिशयः) स समृद्धिमान् कीर्त्त्यते (वर्ण्यते) ॥ ३७११ ॥

अनुवाद—पति, श्वसुर आदि के अधीन होने से पारतंत्र्य के कारण नायक-नायिका का परस्पर वियोग होने पर, उनके परस्पर दर्शन दुर्लभ होने पर जो अतिरिक्त सम्भोग होता है, उसका नाम समृद्धिमान सम्भोग है ॥ ३७११ ॥

छन्नप्रकाशभेदेन कैश्चिदेषां द्विरूपता।
इष्टाप्यत्र नाह प्रोक्ता नात्युल्लासकरी यतः ॥ ३७१२ ॥

अन्वय—छन्नप्रकाशभेदेन एषां (चतुर्विधसम्भोगानां) द्विरूपता (द्वैविध्यं) कैश्चित् (पण्डितैः) (उक्ता)। इष्टा अपि अत्र सा न हि प्रोक्ता (कथिता) यतः (सा) न अत्युल्लासकरी (अतिशयानन्दप्रदा) ॥ ३७१२ ॥

अनुवाद—पूर्वोक्त चार प्रकार के सम्भोग—संक्षिप्त, संकीर्ण, सम्पन्न और समृद्धिमान्—में से प्रत्येक के दो प्रकार हैं-प्रच्छन्न और प्रकाश। लेकिन इच्छा होते हुए भी इस द्विरूपता का यहाँ वर्णन नहीं किया गया है, क्योंकि ये अति आनन्दप्रद नहीं हैं ॥ ३७१२ ॥

ओहे श्रीनिवास एइ पथे राइ रङ्गे।
प्रवेशये ए कुञ्जभवने गणसङ्गे॥ ३७१३॥
राधिकार गण यत, अन्त नाइ तार।
ललितादि सखी मध्ये शोभा चमत्कार॥ ३७१४॥
सर्व्वगुणे परिपूर्णा सखी श्रीललिता।
रत्नप्रभा आदि अष्टगुणे सुवेष्ठिता॥ ३७१५॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास! इस पथ से श्रीराधिका अपने गण के साथ इस कुञ्जभवन में प्रवेश करती हैं। राधिका के जितने गण हैं, उनका अन्त नहीं है। ललितादि सखियों के बीच श्रीराधा की शोभा चमत्कारपूर्ण है। सखी श्रीललिता सर्वगुण सम्पन्न है और वह रत्नप्रभा आदि आठ गणों से सुवेष्टित है॥ ३७१३–१५॥

तथाहि श्रीबृहत्कृष्णगणोद्देश-दीपिकायाम्—

रत्नप्रभा रतिकला सुभद्रा भद्ररेखिका।
सुमुखी च धनिष्ठा च कलहंसी कलापिनी॥ ३७१६॥

अनुवाद—श्रीवृहत् कृष्णगणोद्देश दीपिका में है—रत्नप्रभा, रतिकला, सुभद्रा, भद्ररेखिका, सुमुखी, धनिष्ठा, कलहंसी और कलापिनी—ये आठ ललिता की गण हैं॥ ३७१६॥

विशाखार सौन्दर्य उपमा नाहि हय।
वेष्ठित माधवी गणाष्ट शोभय॥ ३७१७॥

अनुवाद—विशाखा के सौन्दर्य की उपमा नहीं दी जा सकती, वे माधवी आदि आठ गण (अनुचारिणी) से वेष्टित शोभायमान है॥ ३७१७॥

तथाहि तत्रैव—

मालती माधवी, चन्द्ररेखिका कुञ्जरी तथा।
हरिणी चपलानाम्नी सुरभी च शुभानना॥ ३७१८॥

अनुवाद—मालती, माधवी, चन्द्ररेखिका, कुञ्जरी, हरिणी, चपला, सुरभी और शुभानना—ये आठ विशाखा की अनुचारिणी गण हैं॥ ३७१८॥

सर्व्वांशे प्रवीणा सुचित्रादि सुचरिता।
कुरङ्गाक्षी आदि निज-गणाष्टे अन्विता॥ ३७१९॥

अनुवाद—सब प्रकार से प्रवीण सुचित्रादि चरित्रवान हैं और कुरङ्गाक्षी आदि आठ अनुचारिणी-गण से वेष्टित हैं॥ ३७१९॥

तत्रैव—

कुरङ्गाक्षी सुचरिता मण्डली मणिकुण्डला।
चन्द्रिका चन्द्रलतिका कुन्दकाक्षी सुमन्दिरा ॥ ३७२० ॥

अनुवाद—कुरङ्गाक्षी, सुचरिता, मण्डली, मणिकुण्डला, चन्द्रिका, चन्द्रलतिका, कुन्दकाक्षी और सुमन्दिरा—ये आठ सुचित्रा की अनुचारिणी-गण हैं ॥ ३७२० ॥

चम्पकलतार अति अद्‌भुत माधुर्य्य।
रसालिका आदि अष्टगणे शोभाश्चर्य्य ॥ ३७२१ ॥

अनुवाद—चम्पकलता का अद्‌भुत माधुर्य है और रसालिका आदि आठ अनुचारिणी-गण के साथ उनकी शोभा आश्चर्यजनक बन जाती है ॥ ३७२१ ॥

तत्रैव—

रसालिका तिलकिनी सौरसेनी सुगन्धिका।
वामिनी कामनगरी नागरी नागवेणिका ॥ ३७२२ ॥

अनुवाद—चम्पकलता की अनुचारिणी-गण-रसालिका, तिलकिनी, सौरसेनी, सुगन्धिका, वामिनी, कामनगरी, नागरी और नागवेणिका हैं ॥ ३७२२ ॥

श्रीरङ्गदेवीर रूपे के वा धैर्य्य धरे।
मञ्जुमेधादि गणाष्ट शोभा चित्त हरे ॥ ३७२३ ॥

अनुवाद—रङ्गदेवी का रूप देखकर कौन धैर्य धर सकता है। मञ्जुमेधा आदि आठ (परिचारिणी) गण से वेष्टित रंगदेवी की शोभा चित्त हरण करती है ॥३७२३॥

तत्रैव—

मञ्जुमेधा सुमधुरा सुमध्या मधुरेक्षणा।
तनुमध्या मधुसान्द्रा गुणचूड़ा वराङ्गदा ॥ ३७२४ ॥

अनुवाद—मञ्जुमेधा, सुमधुरा, सुमध्या, मधुरेक्षणा, तनुमध्या, मधुसान्द्रा, गुणचूड़ा और वराङ्गदा—ये आठ रंगदेवी की (परिचारिणी) गण हैं ॥ ३७२४ ॥

सुदेवी राधिकाप्रीते सदा प्रफुल्लिता।
तार अष्टगण तुङ्गभद्रादि विदिता ॥ ३७२५ ॥

अनुवाद—श्रीराधिका की प्रीति के कारण सुदेवी सदा प्रफुल्लित रहती हैं। उसकी तुङ्गभद्रा आदि आठ (परिचारिणी) गण सर्वविदित हैं ॥ ३७२५ ॥

तत्रैव—

तुङ्गभद्रा रसोत्तुङ्गा रङ्गवाटी सुसङ्गता।
चित्रलेखा विचित्राङ्गी मेदिनी मदनालसा ॥ ३७२६ ॥

अनुवाद—सुदेवी की आठ (परिचारिणी) गण हैं—तुङ्गभद्रा, रसोत्तुङ्गा, रङ्ग-वाटी, सुसङ्गता, चित्रलेखा, विचित्राङ्गी, मेदिनी और मदनालसा ।। ३७२६ ।।

तुङ्गविद्या परमरूपसी शोभा अति ।
कलकण्ठी आदि अष्टगणाद्भुतरीति ।। ३७२७ ।।

अनुवाद—तुङ्गविद्या परम रूपसी है और उसकी शोभा अद्भुत है। कलकण्ठी आदि आठ (परिचारिणी) गण के साथ उसकी अद्भुत रीति है ।। ३७२७ ।।

तत्रैव—

कलकण्ठी शशिकला कमला मधुरेन्दिरा ।। ३७२८ ।।

अनुवाद—तुङ्गविद्या की आठ (परिचारिणी) गण हैं—कलकण्ठी, शशिकला कमला, मधुरेन्दिरा इत्यादि ।। ३७२८ ।।

इन्दुलेखा सर्व्व-चित्ताकर्षे सुचरिते ।
कावेरी आदि गणाष्ट उपमा कि दिते ।। ३७२९ ।।

अनुवाद—इन्दुलेखा अपने सुचरित्र से सबका चित्त आकृष्ट करती है। कावेरी आदि उसकी आठ (परिचारिणी) गण हैं, उनकी उपमा नहीं दी जा सकती ।।

तत्रैव—

कावेरी चारुकबरा, सुकेशी मञ्जुकेशिका ।
हारहीरा महाहीरा हारकण्ठी मनोहरा ।। ३७३० ।।

अनुवाद—इन्दुलेखा की आठ (परिचारिणी) गण हैं —कावेरी, चारुकबरा, सुकेशी, मञ्जुकेशिका, हारहीरा, महाहीरा, हारकण्ठी और मनोहरा ।। ३७३० ।।

ओहे श्रीनिवास ललितादि-गण सङ्गे ।
एइ कुञ्जे दोंहार मिलन देखि रङ्गे ।। ३७३१ ।।
तिले तिले उल्लासे धरिते नारे हिया ।
ललितादि सखीर परमाद्भुत क्रिया ।। ३७३२ ।।

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! ललिता आदि तथा परिचारिणी-गण के साथ इस कुञ्ज में नायक एवं नायिका (श्रीकृष्ण एवं राधा) दोनों का मिलन तथा ललिता आदि सखियों की परम अद्भुत क्रिया देख कर बार-बार उल्लास अनुभव होता है और मन धैर्य नहीं रख सकता ।। ३७३१—३२ ।।

तथाहि श्री उज्ज्वलनीलमणौ—

मिथः प्रेमगुणोत्कीर्त्तिस्तयोरासक्तिकारिता
अभिसारो द्वयोरेव सख्याः कृष्णे समर्पणम् ।

नर्म्माश्वासननेपथ्यं हृदयोद्घाटपाटवं
छिद्रसंवृतिरेतस्याः पत्यादेः परिवञ्चना ॥ ३७३३ ॥
शिक्षा सङ्गमनं काले सेवनं व्यजनादिभिः ।
तयोर्द्वयोरुपालम्भः सन्देशप्रेषणं तथा ।
नायिकाप्राणसंरक्षा प्रयत्नाद्याः सखीक्रियाः ॥ ३७३४ ॥

अन्वय—मिथः प्रेमगुणोत्कीर्तिः (द्वयोर्नायकनायिकयोर्मिथः परस्परं प्रति परस्परस्य प्रेम्णो गुणस्य च उत्कर्षेण कीर्त्तनं); तयोः (यूनोः) आसक्तिकारिता (परस्परं प्रति आसक्तिं कारयितुं शीलं यस्यास्तस्या भावस्तत्ता); काले (समुचितावसरे) द्वयोः (यूनोः) एव अभिसारः (सङ्केतस्थाने गमनसंघटनं); कृष्णे सख्याः समर्पणम्; नर्म्माश्वासननेपथ्यं (नर्म्म परिहासश्च आश्वासनमाश्वासदानञ्च नेपथ्यं सज्जीकरणञ्च); हृदयोद्घाटपाटवं (मनोगतभावनिवेदने दक्षता); एतस्याः (नायिकायाः); छिद्र-संवृतिः (दोषाच्छादनं); पत्यादेः परिवञ्चना (वञ्चनम्); शिक्षा (शिक्षाप्रदानं); (काले) सङ्गमनं (नायिकानायकयोर्मेलनकरणं); व्यजनादिभिः सेवनं; (काले) तयोः द्वयोः उपालम्भः (तिरस्करणम्); तथा सन्देशप्रेषणं (संवादप्रेरणम्); नायिका-प्राणसंरक्षा-प्रयत्नाद्याः (नायिकाप्राणसंरक्षार्थं विशेषयत्नादयः) (एताः सप्तदश-प्रकाशः) सखीक्रियाः (भवन्तीति शेषः) ॥ ३७३३—३४ ॥

अनुवाद—श्री उज्ज्वलनीलमणि में है—(१) नायक-नायिका का परस्पर के प्रति परस्पर का प्रेम-गुण आदि उत्कर्ष रूप में कीर्तन; (२) परस्पर के प्रति आसक्तिकारिता; (३) उचित समय में परस्पर का अभिसार, संकेत स्थान पर मिलन कराना; (४) कृष्ण में सखी का समर्पण; (५) परिहास-विनोद करना; (६) विरहातिरेक में आश्वासन देना; (७) नायकनायिका की वेशरचना; (८) मनोगत भाव के प्रकाश में दक्षता; (९) नायिका के दोष छिपाना; (१०) पति की वंचना करना व फँसाना; (११) समय पर योग्य शिक्षा देना; (१२) उचित समय पर दोनों का मिलन कराना; (१४, १५) प्रसंगवश दोनों को उपालम्भ देना व तिरस्कार प्रकट करना; (१६) संवाद-प्रेरण; (१७) नायिका के प्राणों की रक्षा हेतु यत्न आदि करना—सखियों के सप्तदश (१७) प्रकार के कार्य हैं ॥ ३७३३—३४ ॥

ओहे श्रीनिवास कहिवार साध्य नाइ ।
कृष्ण मनोहित पुष्पवाटी एइ ठाँइ ॥ ३७३५ ॥
कि अपूर्व्व शोभा एइ वनेर भितर ।
गुणातीत लिङ्गरूप नाम गोपीश्वर ॥ ३७३६ ॥
एइ सदाशिव वृन्दाविपिन पालय ।
इँहाके पूजिले सर्व्वकार्य्य सिद्ध हय ॥ ३७३७ ॥

गोपीगण सदा कृष्णसङ्गेर लागिया।
निरन्तर पूजे यत्ने नाना द्रव्य दिया ॥ ३७३८ ॥
कहिते कि पारि ये महिमा गुरुतर।
गोपिकापूजित तेंइ नाम गोपीश्वर ॥ ३७३९ ॥
इन्द्रादि देवता स्तुति करये सदाय।
वृन्दावने प्रीति वृद्धि इँहार कृपाय ॥ ३७४० ॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास ! श्रीकृष्ण मनोहित पुष्पवाटिका इस स्थान पर है, इसका वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। इस वन के भीतर क्या अद्भुत शोभा है, जहाँ गुणातीत गोपीश्वर (शिव) लिंगरूप में विराजमान हैं। ये ही सदाशिव वृन्दाविपिन का पालन करते हैं और इनकी पूजा करने से सभी कार्य सिद्ध होते हैं। गोपियाँ श्रीकृष्ण के साथ होकर नाना द्रव्य भेंट कर निरन्तर बड़े यत्न से उनकी पूजा करती हैं। उनकी बड़ी महिमा है, जिसका वर्णन करने की शक्ति मुझमें कहाँ है। जिन्हें गोपिकाएँ पूजती हैं, उन्हीं का नाम गोपीश्वर है। इन्द्र आदि देवता सदा स्तुति करते हैं। वृन्दावन की शोभा वृद्धि भी इन्हीं की कृपा से होती है ॥

तथाहि—

श्रीमद्गोपीश्वरं वन्दे शङ्करं करुणामयम्।
सर्व्वक्लेशहरं देवं वृन्दारण्यरतिप्रदम् ॥ ३७४१ ॥

अन्वय—सर्व्वक्लेशहरं वृन्दारण्यरतिप्रदं (व्रजे रतिदायकं) करुणामयं श्रीमद्-गोपीश्वरं शङ्करं देवं वन्दे (भजामि) ॥ ३७४१ ॥

अनुवाद—मैं करुणामय, सर्वक्लेशहर, वृन्दावन में रतिसुखप्रदानकारी श्रीमद्-गोपीश्वर नामक शिव की वन्दना करता हूँ ॥ ३७४१ ॥

तथाच स्तवामृतलहर्य्याँ—

वृन्दावनावनिपते जय सोमसोम-
मौले सनन्दन-सनातन नारदेड्य।
गोपेश्वर व्रजविलासियुगाङ्घ्रिपद्मे।
प्रेम प्रयच्छ निरूपाधि नमो नमस्ते ॥ ३७४२ ॥

अन्वय—वृन्दावनावनिपते (हे वृन्दावनभूमीश्वर !) सोमसोममौले (हे सुन्दर-चन्द्रशेखर !) सनन्दन-सनातन-नारदेड्य (हे सनन्दन-सनातन-नारदाद्यैः पूजित !) गोपेश्वर (हे गोपगोपीनां वाञ्छापूरक !) (त्वं) जय (सर्व्वोत्कर्षेण वर्त्तस्व) व्रजविलासियुगाङ्घ्रिपद्मे (व्रजनवयुवद्वन्दचरणकमले) (मम) निरुपाधि (अकपटं) प्रेम (अनुरागं) प्रयच्छ (देहि)। ते (तुभ्यं) नमः नमः (अस्तु) ॥ ३७४२ ॥

अनुवाद—हे वृन्दावन क्षेत्रपाल, हे सुन्दर चन्द्रशेखर, हे सनन्दन-सनातन-नारदादि देवर्षियों के पूज्य, हे गोपेश्वर–गोप-गोपियों की इच्छा पूर्ण करने वाले, तुम्हारी जय हो। गोकुल में विलास करने वाले नवयुवद्वन्द्व अर्थात् श्रीराधा-माधव के चरण कमल में निष्कपट प्रेम अनुराग प्रदान करो। तुम्हें पुनः पुनः नमस्कार ॥ ३७४२ ॥

देखो ब्रह्मकुण्ड एइ परम निर्ज्जन।
बहु गुल्मलतावृत अति सुशोभन ॥ ३७४३ ॥
एथा स्नान एकरात्रि उपवास कैले।
गन्धर्व्वादि सह क्रीड़ा करे कुतुहले ॥ ३७४४ ॥
प्राणत्याग हैले विष्णुलोक-प्राप्ति हय।
ब्रह्मकुण्ड-महिमा पुराणे व्यक्त हय ॥ ३७४५ ॥

अनुवाद—देखो, इस परम निर्जन स्थल में कई गुल्मलताओं से आवृत ब्रह्मकुण्ड अत्यन्त सुशोभित है। यहाँ स्नान करने और एक रात निवास मानव के लिए उचित है। गन्धर्वों आदि के साथ क्रीड़ा करने से आनन्द प्राप्त होता है। प्राणत्याग होने पर विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। ब्रह्मकुण्ड की महिमा पुराणों में गायी गयी है ॥ ३७४३–४५ ॥

तथाहि आदिवाराहे—

तत्र ब्राह्मे महाभागे बहुगुल्मलतावृते।
तत्र स्नानं प्रकुर्व्वीत एकरात्रोषितो नरः ॥ ३७४६ ॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च क्रीडमानः स मोदते।
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति ॥ ३७४७ ॥

अन्वय—महाभागे (पुण्यशीले पार्व्वति) तत्र (वृन्दावनस्थे) बहुगुल्मलतावृते तत्र ब्राह्मे (ब्रह्मणः सरसि) नरः स्नानं प्रकुर्व्वीत (कुर्य्यात्) एकरात्रोषितः (एक रात्रं वासं कुर्य्याच्च) अथ (यः) तत्र (ब्रह्मसरोवरे) प्राणान् मुञ्चते (परित्यजति) स गन्धर्व्वैः अप्सरोभिश्च (सह) क्रीडामानः (क्रीड़ां कुर्व्वन्) मोदते (नन्दति)। स मम लोकं (विष्णुलोकं) गच्छति ॥ ३७४६–४७ ॥

अनुवाद—आदिवाराह में है—हे महाभाग (पुण्यशील पार्वती)! वृन्दावन स्थित अनेक गुल्मलता-आवृत ब्रह्मकुण्ड में स्नान करना और उसके तीर पर एक रात निवास करना मानव मात्र के लिए उचित है। इस प्रकार व्यक्ति स्वर्ग में यानी ब्रह्मसरोवर में गन्धर्वों और अप्सराओं के साथ क्रीड़ारत होकर आनन्द प्राप्त करता है। प्राणत्याग करनेवाला व्यक्ति विष्णुलोक को जाता है ॥ ३७४६–४७ ॥

ब्रह्मकुण्ड पार्श्वे आर ये ये चमत्कार।
ताहा कि कहिब कैल पुराणे प्रचार॥ ३७४८॥

अनुवाद—ब्रह्मकुण्ड के पास जिस प्रकार के चमत्कार हैं, उनका मैं क्या वर्णन करूँ, इनका पुराण में प्रचार है॥ ३७४८॥

तथाहि वाराहे—

तस्य तत्रोत्तरे पार्श्वेऽशोकवृक्षः सितप्रभः।
वैशाखस्य तु मासस्य शुक्लपक्षस्य द्वादश्याम्॥ ३७४९॥
स पुष्पति च मध्याह्ने मम भक्तसुखावहः।
न कश्चिदपि जानाति विना भागवतं शुचिम्॥ ३७५०॥

अन्वय—तत्र तस्य (ब्रह्मकुण्डस्य) उत्तरे पार्श्वे सितप्रभः (कृष्णवर्णः) अशोक-वृक्षः (विद्यते)। स तु मम भक्तसुखावहः (अशोकः) वैशाखस्य मासस्य शुक्ल-पक्षस्य द्वादश्याम् मध्याह्ने पुष्पति (पुष्पितो भवति)। शुचिं (शुद्धं) भागवतं (वैष्णवं) विना कश्चित् अपि (जनः) (तत्) न जानाति॥ ३७४९–५०॥

अनुवाद—वाराह में है—ब्रह्मकुण्ड के उत्तर भाग में कृष्णवर्ण अशोकवृक्ष अव-स्थित है। वैशाखमास के शुक्लपक्ष की द्वादशी के मध्याह्न समय में उस वृक्ष पर पुष्प खिलते हैं जो मेरे भक्त जनों को सुख प्रदान करते हैं। शुद्ध भागवत जनों के अलावा और कोई उसे जान नहीं सकता॥ ३७४९–५०॥

एथा वृन्दादेवी मनोवृत्ति प्रकाशिल।
नारदमुनिर मनोरथ पूर्ण कैल॥ ३७५१॥
ओहे श्रीनिवास एइ वेणुकूप हय।
एथा कृष्णचन्द्रेर कौतुक अतिशय॥ ३७५२॥
प्रियागण तृष्णायुक्त कृष्ण ता जानिया।
भूमितले दिला दृष्टि वेणु करे लैया॥ ३७५३॥
वेणु फुकितेइ शब्द प्रवेशे पाताले।
अकस्मात् हैल कूप परिपूर्ण जले॥ ३७५४॥
सबे जलपान करि प्रशंसे कृष्णेरे।
वेणुकूप नाम तेञि विदित संसारे॥ ३७५५॥
ओहे श्रीनिवास कालिदमनेर दिने।
दावानलपान कृष्ण कैला एइखाने॥ ३७५६॥
एइ दावानल स्थान ये करे दर्शन।
संसार-दावाग्नि हैते हय विमोचन॥ ३७५७॥

एइ श्रीगोविन्दस्वामि-तीर्थ महोत्तम।
देखह अपूर्व शोभा नाहि यार सम॥ ३७५८॥
एथा स्नान कैले पूर्ण हय अभिलाष।
एथा गोविन्देर अति अद्भुत विलास॥ ३७५९॥

अनुवाद—यहाँ वृन्दादेवी मनोवृत्ति का प्रकाश किया और मुनि नारद का मनोरथ पूर्ण किया। हे श्रीनिवास ! यह वेणुकूप है और यहीं पर श्रीकृष्ण ने कई कौतुक प्रदर्शित किये। प्रियाओं को त्रसित देखकर श्रीकृष्ण ने वेणु हाथ में लेकर पृथ्वी तल में दृष्टि डाली। वेणु की फूंक से उत्पन्न शब्द पाताल में प्रवेश हुआ और अकस्मात् कूप जल से परिपूर्ण हो गया। जलपान कर सभी ने श्रीकृष्ण की प्रशंसा की। इसीलिए इस वेणुकूप का नाम जगप्रसिद्ध है। हे श्रीनिवास ! कालिया-दमन के समय श्रीकृष्ण ने इसी स्थान पर दावानल पान किया। इस दावानल-स्थल का जो भी दर्शन करता है, वह सांसारिक दावाग्नि से मुक्त हो जाता है। यही श्रीगोविन्दस्वामी का महत् तीर्थ है। इसकी अद्भुत शोभा देखो, इसकी कोई तुलना नहीं है। यहाँ स्नान करने से सभी अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं। यहाँ गोविन्द का अद्भुत विलास है॥ ३७५१–५९॥

तथाहि सौरपुराणे—

गोविन्दस्वामि-तीर्थाख्यमस्ति तीर्थं महोत्तमम्।
वसुदेवतनुजस्य विष्णोरत्यन्तदुर्ल्लभम्॥ ३७६०॥
गोविन्दस्वामिनामात्र वसत्यर्च्चात्मकोऽच्युतः।
तत्र स्नात्वा तमभ्यर्च्य मुक्तिमिच्छन्ति साधवः॥ ३७६१॥

अन्वय—वसुदेवतनुजस्य (वासुदेवस्य) विष्णोः (कृष्णस्य) गोविन्दस्वामितीर्थाख्यम् अत्यन्तदुर्ल्लभं महोत्तमं तीर्थम् अस्ति। अत्र गोविन्दस्वामिनामा अर्च्चात्मकः (अर्च्चारूपी) अच्युतः वसति। साधवः तत्र स्नात्वा तम् (गोविन्दस्वामिनम्) अभ्यर्च्च्य (सम्पूज्य) मुक्तिम् (स्व-स्वरूपप्राप्तिम्) इच्छन्ति॥ ३७६०–६१॥

अनुवाद—सौरपुराण में है—वसुदेव-पुत्र वासुदेव श्रीकृष्ण का गोविन्दस्वामितीर्थ नामक एक अत्यन्त दुर्लभ परम उत्तम तीर्थ है वहाँ गोविन्दस्वामी नामक अर्चात्मक अच्युतविष्णु निवास करते हैं। साधुगण वहाँ स्नान कर तथा उनका अर्चन यानी पूजन कर मुक्ति (स्वरूपप्राप्ति) की कामना करते हैं॥ ३७६०–६१॥

तथाहि स्तवावल्यां व्रजविलासे १०४ तमश्लोकः—

न ब्रह्मा न च नारदो नहि हरो न प्रेमभक्तोत्तमाः
सम्यक् ज्ञातुमिहाञ्जसार्हति तथा यस्योच्छलन्माधुरीम्॥३७६२॥

किन्त्वेको बलदेव एव परितः सार्द्धं स्वमात्रा स्फुटं
प्रेम्णाप्युद्धव एष वेत्ति नितरां किं स व्रजो वर्ण्यते ॥ ३७६३ ॥

अन्वय—न ब्रह्मा, न च नारदः, नहि हरः, न प्रेमभक्तोत्तमाः (उत्तमप्रेमिकाः) यस्य (व्रजस्य) उच्छलन्माधुरी (माधुर्य्याधिक्यं) इह तथा अञ्जसा (अनायासेन) सम्यक् ज्ञातुं न अर्हति (योग्यो भवति), किन्तु स्वमात्रा (रोहिण्या) सार्द्धं (सह) परितः (सर्व्वतोभावेन) बलदेवः एव, प्रेम्णा एष उद्धवः अपि (यं व्रजं) नितरां (यथार्थं) वेत्ति (जानाति) स व्रजः (मया) किं वर्ण्यते (तद्वर्णने मम का नाम शक्तिरित्यर्थः) ३७६२–६३ ॥

अनुवाद—स्तवावली के व्रजविलास में १०४ वें श्लोक में लिखा है—ब्रह्मा, नारद, शिव एवं उत्तम भक्तगण जिसकी (व्रजभूमि की) उच्छलित माधुरी को उत्तम रूप से जान नही सकते, किन्तु एकमात्र बलदेव एवं उनकी माता रोहिणीदेवी एवं प्रेमविह्वल उद्धव जिसे यथार्थ रूप में जानते हैं, मैं उस वृन्दावन की महिमा का क्या वर्णन करूँ ॥ ३७६२–६३ ॥

सर्व्वचित्ताकर्ष एइ द्वादश कानन ।
भूमिगत हैया भक्तवन्दे अनुक्षण ॥ ३७६४ ॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण का यह द्वादश कानन सब के लिए चिताकर्षक है और भक्तगण इसे प्रतिक्षण साष्टांग वन्दना करते हैं ॥ ३७६४ ॥

तथाहि स्तवावल्यां व्रजविलासे ९८ तमश्लोकः—

गन्धव्याकुल-भृङ्गसञ्चयचमू संघृष्ट-पुष्पोत्करै-
र्भ्राजत्-कल्पलता-पलाशिनिकरैर्विभ्राजितानि स्फुटं ।
यानि स्फारतडाग-पर्व्वत-नदीवृन्देन राजन्त्यहो
कृष्णप्रेष्ठवनानि तानि नितरां वन्दे मुहुर्द्वादश ॥ ३७६५ ॥

अन्वय—अहो (आश्चर्य्याणि) गन्धव्याकुल-भृङ्गसञ्चयचमू संघृष्टपुष्पोत्करैः (गन्धव्याकुलाः ये भृङ्गसञ्चयाः भ्रमरसमूहास्ते एव चम्वः सेनास्ताभिः संघृष्टाः संमर्द्दिताः ये पुष्पोत्कराः पुष्पसमूहाः तैः) भ्राजत–कल्पलता-पलाशिनिकरैः (भ्राजन्तः एकाशमाना ये कल्पलताः पलाशिनिकरा वृक्षसमूहाश्च तैः) स्फुटम् (अतिशयं) विभ्राजितानि (शोभमानानि) स्फरताडागपर्व्वतनदीवृन्देन (स्फाराणि आयतानि यानि तडागानि पद्माकरास्तानि च पर्व्वताश्च नद्यश्च तासां वृन्देन) राजन्ति (प्रकाशमानानि) यानि (प्रसिद्धानि द्वादश कृष्णप्रेष्ठवनानि तानि नितराम् (अतिशयं) मुहुः (वारं वारम् (अहम्) वन्दे (प्रणमामि) ॥ ३७६५ ॥

अनुवाद—स्तवावली के व्रजविलास में ९८ वें श्लोक में है—गन्धोन्मत्त भ्रमरकुलरूप सेनासमूह द्वारा जिसकी पुष्पराशि संघृष्ट हो गयी है, उसके समान शोभाय-

मान कल्पलता और वृक्षों से जिसकी भारी शोभा है, विस्तृत तड़ाग, पर्वत और नदियाँ जहाँ सुशोभित हैं, उसी श्रीकृष्ण के प्रियतम द्वादश वन की मैं बार-बार वन्दना करता हूँ ॥ ३७६५ ॥

ओहे श्रीनिवास भक्तसदा संप्रार्थये।
अन्य प्रसङ्गे ओ येनो व्रजे वास हये ॥ ३७६६ ॥

अनुवाद—हे श्रीनिवास! भक्तगण सर्वदा यह प्रार्थना करते हैं कि अन्य प्रसंग पर भी जैसे व्रज में निवास हो ॥ ३७६६ ॥

तथाहि स्तवावल्यां व्रजविलासे १०५ तमश्लोकः—

अन्यत्र क्षणमात्रमच्युतपुरे प्रेमामृताम्भोनिधि-
स्नातोऽप्यच्युत-सज्जनैरपि समं नाहं वसामि क्वचित्।
किन्त्वत्र व्रजवासिनामपि समं येनापि केनाप्यलं
संलापैर्ममनिर्भरः प्रतिमुहुर्वासोऽस्तु नित्यं मम ॥ ३७६७ ॥

अन्वय—(अन्यभगवल्लोकवास-प्रार्थनात्यागपूर्व्वकं व्रजवास एव प्रार्थ्यते अन्यत्रेति) प्रेमामृताम्भोनिधिस्नातः अपि अच्युतसज्जनैः कृष्णभक्तैरपि सह अन्यत्र अच्युतपुरे क्वचित् क्षणमात्रम् अहं न वसामि। किन्तु अत्र व्रजवासिनां (मध्ये) येन केनापि (प्रेमशून्येनापि) समं (सह) सम् अलं संलापैः (वृथाकथाभिः) प्रतिमुहुः (प्रतिक्षणं) मम निर्भरः (आसक्तिपूर्व्वकः) वासः नित्यम् अस्तु (भवतु) ॥ ३७६७ ॥

अनुवाद—स्तवावली के व्रजविलास में १०५ वाँ श्लोक—प्रेम समुद्र से स्नात होते हुए भी मैं वृन्दावन का परित्याग कर अन्य किसी भगवत्धाम में सज्जन के साथ क्षणमात्र के लिए भी निवास नहीं करूँगा। किन्तु व्रजवासियों के बीच यदि किसी भी प्रेमहीन व्यक्ति के साथ वृथालाप भी करना पड़े तो भी मेरा नित्य ही प्रतिक्षण आसक्तिपूर्वक व्रज में ही निवास हो ॥ ३७६७ ॥

व्रजभूमे बैसे ये से कृष्ण हॅ' न।
ता सॅवारे वन्दे नित्य भाग्यवन्तगण ॥ ३७६८ ॥

अनुवाद—जो व्रजभूमि में निवास करते हैं वे श्रीकृष्ण के प्रिय होते हैं। वे भाग्यवान हैं और सबके लिए वन्दनीय हैं ॥ ३७६८ ॥

तथाहि स्तवावल्यां व्रजविलासे १०० तमश्लोकः—

मुदा यत्र ब्रह्मा तृणनिकरगुल्मादिषु परं
सदा काङ्क्षन् जन्मार्पितविविधकर्म्माप्यनुदिनम्।
क्रमाद् ये तत्रैव व्रजभुवि वसन्ति प्रियजना
मया ते ते वन्द्याः परमविनयात् पुण्यखचितः ॥ ३७६९ ॥

अन्वय—यत्र (व्रजे) अर्पितविविधकर्म्मा (अर्पितं स्थापितं सृष्ट्यादिकर्म्म यस्मिन् सः) अपि ब्रह्मा तृणनिकरगुल्मादिषु जन्म (प्रादुर्भावं) परं मुदा (हर्षेण) सदा (सर्व्वक्षणं) काङ्क्षन् (काङ्क्षितवान्)। तत्र एव व्रजभुवि (वृन्दावने) ये पुण्यखचिताः (सुकृतिनः) प्रियजनाः वसन्ति ते ते अनुदिनं (प्रत्यहं) क्रमात् मया परमविनयात् (सादरं) वन्द्याः (वन्दनीयाः) ३७६९ ॥

अनुवाद—स्तवावली में व्रजविलास में १००वाँ श्लोक—श्रीकृष्ण ने जिन पर विविध जगत्-सृष्टि का भार सौंपा है, वे ही सृष्टि आदि में रत रहते हुए भी वृन्दावन में तृणवल्ली एवं गुल्म आदि में परम आनन्द से जन्म ग्रहण करने की आकांक्षा करते हैं, उसी वृन्दावन में जन्म ग्रहण कर जो वहाँ निवास करते हैं, मैं परम विनयपूर्वक उन्हें प्रतिदिन वन्दना करता हूँ। (३७६९ ॥

व्रजस्थित तृण-गुल्म-कीटादि यत।
से सबे प्रणमे भाग्यवन्त अविरत॥ ३७७० ॥

अनुवाद—व्रज में जितने तृण, गुल्म, कीट आदि हैं, वे भाग्यवान हैं और उन्हें निरन्तर प्रणाम करता हूँ॥ ३७७० ॥

तथाहि तत्रैव १०२ तमश्लोकः—

यत्किञ्चित्तृणगुल्मकीकटमुखं गोष्ठे समस्तं हि तत्
सर्व्वानन्दमयं मुकुन्ददयितं लीलानुकूलं परं।
शास्त्रैरेव मुहुर्मुहुः स्फुटमिदं निष्टङ्कितं याञ्चया
ब्रह्मादेरपि सस्पृहेण तदिदं सर्व्वं मया वन्द्यते॥ ३७७१ ॥

अन्वय—गोष्ठे (व्रजे) यत्किञ्चित् तृणगुल्मकीकटमुखं (तृणश्च गुल्मश्च कीकटो निवृच्च तानि मुखानि आद्यानि यस्य तत्) तत् (अनुभूतं) समस्तं हि सर्व्वानन्दमयं मुकुन्ददयितं (मुकुन्दस्य प्रियं) परं (केवलं) लीलानुकूलञ्च। ब्रह्मादेः अपि याञ्चया-शास्त्रैरेव (श्रीमद्भागवतादिभिः) मुहुर्मुहुः (वारं वारं) इदं स्फुटं (स्पष्टं) निष्टङ्कितं (प्रतिपादितं)। तद् (तस्मात्) इदं सर्व्वं सस्पृहेण (परमादरयुक्तेन) मया वन्द्यते॥ ३७७१ ॥

अनुवाद—उसी का १०२ वाँ श्लोक—ब्रह्मा आदि ने उद्धवादि तक सब की ही प्रार्थना श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रों में कई वाक्यों में स्पष्ट रूप से बार-बार प्रतिपादित की है एवं जो श्रीकृष्णलीला के अनुकूल, कृष्णप्रिय और सर्वानन्दमय है उसी किञ्चित् तृण-गुल्म-कीट-पतंग आदि सभी व्रजवासियों की मैं आग्रहपूर्वक वन्दना करता हूँ॥ ३७७१ ॥

केहो राधाकृष्ण नामोच्चारि नेत्रनीरे।
कृष्णकेलिस्थान सिञ्चिवारे वाञ्छा करे॥ ३७७२॥

अनुवाद—कोई राधाकृष्ण का नाम उच्चारण कर भावविह्वल होकर अश्रुजल से श्रीकृष्ण के केलिस्थान को सिञ्चित करने की कामना करते हैं॥ ३७७२॥

तथाहि तत्रैव १०३ तमश्लोक :—

भ्रमन् कच्छे कच्छे क्षितिधरपतेर्वक्रिमगतै-
र्लपन् राधे कृष्णेत्यनवरतमुन्मत्तवदहम्।
पतन् क्वापि क्वाप्युच्छलित-नयनद्वन्द्वसलिलैः
कदा केलिस्थानं सकलमपि सिञ्चामि विकलः॥ ३७७३॥

अन्वय—अहम् उन्मत्तवत् राधे कृष्ण (हे राधे! हे कृष्ण!) इति अनवरतं (अविरलं) लपन् (विलपन्), क्षितिधरपतेः (नगराजस्य गोवर्द्धनस्य) कच्छे कच्छे (निकटे) वक्रिमगतैः (वक्रगतिभिः) भ्रमन्, क्वापि क्वापि (कुत्रचित्स्थाने) पतन् (प्रेमविवशतया स्खलन्) विकलः (विह्वलः सन्) कदा सकलम् अपि केलिस्थानं (लीलास्थानं) उच्छलितनयनद्वन्द्वसलिलैः सिञ्चामि॥ ३७७३॥

अनुवाद—मैं निरन्तर हे राधे! हे कृष्ण! इस प्रकार उन्मत्त की भाँति प्रलापपूर्वक गोवर्धन के निकट परिभ्रमण करते-करते एवं किसी-किसी स्थान पर प्रेम-विवश होकर स्खलित होता हुआ कब मैं व्याकुल चित्त से उच्छलित दोनों नेत्रों की सलिलधारा श्रीराधाकृष्ण के समस्त क्रीड़ास्थल को सिञ्चित करूँगा॥ ३७७३॥

ओहे श्रीनिवास वृन्दावनेर माधुरी।
मने अभिलाष सदा राखि नेत्रे भरि॥ ३७७४॥
तोमा दोंहा लैया महा आनन्दे भ्रमिनु।
पुन ना हइबे हेन मने विचारिनु॥ ३७७५॥
जन्मे जन्मे तुमि दुइ प्रभुर किङ्कर।
एते कहि' पण्डितेर अधैर्य्य अन्तर॥ ३७७६॥
नरोत्तम श्रीनिवास आचार्य्य ठाकुर।
नेत्रजले भासे दोंहे धैर्य्य गैल दूर॥ ३७७७॥
पण्डितेर पदतले पड़े लोटाइया।
पण्डित नयन जले-सिञ्चे कोले लैया॥ ३७७८॥
राधाकृष्ण चैतन्येर चरित्र कीर्त्तने।
हइलेन मत्त देह-स्मृति नाइ मने॥ ३७७९॥
वृन्दावन भूमे प्रणमिया बार-बार।
करे ये प्रार्थना ता कहिते नाइ पार॥ ३७८०॥

एइरूप निर्ज्जने बसिया तिनजन।
करिलेन कतक्षण धैर्य्यावलम्बन॥ ३७८१॥
चलिलेन श्रीगोविन्ददेवेर दर्शने।
याँर रूप माधुर्य्यादि वर्णे विज्ञगणे॥ ३७८२॥

भावार्थ—हे श्रीनिास ! मन में ऐसी अभिलाषा है कि इस वृन्दावन में माधुर्य के बीच विचरण करता रहूँ। जन्म-जन्मान्तर तक प्रभु (राधाकृष्ण) का चाकर रहूँ। इतना कहकर पण्डित अधीर हो उठे और नयनों से आँसू बह निकले। वे राधाकृष्ण के चरित्र-कीर्त्तन में दत्त हो गये कि उन्हें अपने देह की स्मृति न रही। वृन्दावन भूमि को प्रणाम कर उन्होंने जो प्रार्थना की वह अवर्णनीय है। तीनों ने निर्जन में कितना धीर धरा और फिर श्रीगोविन्ददेव के दर्शन के लिए चले, जिसके माधुर्य का वर्णन विज्ञगण करते हैं॥ ३७७४—८२॥

तथाहि श्रीचैतन्यचरितामृते—

वृन्दावने कल्पवृक्ष सुवर्ण-सदन।
महायोगपीठ ताहा रत्न-सिंहासन॥ ३७८३॥
ताते बसियाछे साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन।
श्रीगोविन्द नाम साक्षात् मन्मथ-मथन॥ ३७८४॥
याँर ध्यान लोके सदा करे पद्मासने।
अष्टादशाक्षर मन्त्रे करे उपासने॥ ३७८५॥
साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन इथे नाहि आन।
येइ अज्ञजन करे प्रतिमा हेन ज्ञान॥ ३७७६॥
सेइ अपराधे तार नाहिक निस्तार।
घोर नरके पड़ये कि बलिब आर॥ ३७८७॥

अनुवाद—चैतन्यचरितामृत में है—वृन्दावन में कलावृक्ष एवं सुवर्ण सदन है, वहाँ महा-योगपीठ पर रत्नसिंहासन है। उस पर साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन बैठे हैं। श्री-गोविन्द नाम साक्षात् मन्मथ-मथन हैं जिनका ध्यान लोग पद्मासन पर बैठ कर करते हैं और अठारह अक्षरों के मंत्र से जाप करते हैं। जो कोई अज्ञजन ऐसा सोचते हैं कि यहाँ साक्षात् वृजेन्द्रनन्दन नहीं बल्कि अन्य है अथवा ऐसा मानते हैं कि यह प्रतिमा है, उनके इस अपराध का निस्तार नहीं है। वे घोर नरक में पड़ते हैं और क्या कहूँ॥ ३७८३—८७॥

तथाहि ब्रह्मवैवर्त्ते—

प्राप्यापि दुर्ल्लभतरं मानुष्यं विबुधेप्सितम्।
यैराश्रितो न गोविन्दस्तैरात्मावञ्चितश्चिरम्॥ ३७८८॥

द्रष्टुं न योग्या वक्तुं वा त्रिषु लोकेषु तेऽधमाः।
श्रीगोविन्दपदद्वन्द्वे विमुखा ये भवन्ति हि ॥ ३७८६ ॥

अन्वय—विबुधेप्सितं (देववाञ्छितं) दुर्ल्लभतरं मानुष्यं (मानव-जन्म) प्राप्य अपि यैः (मनुजैः) गोविन्दः न आश्रितः तैः (जनैः) आत्मा चिरं वञ्चितः (पातितः)। ये हि श्रीगोविन्दपदद्वन्द्वे विमुखा भवन्ति, त्रिषु लोकेषु अधमाः (पतिताः) ते द्रष्टुं वक्तुं वा न योग्याः (अदृश्याः अवाच्या च इत्यर्थः) ॥ ३७८८-८६ ॥

अनुवाद—ब्रह्मवैवर्त्त में है—देववाञ्छित अतिदुर्लभ मनुष्य जन्म प्राप्त करके भी जिन सभी व्यक्तियों ने गोविन्दचरणारविन्द का आश्रय नहीं लिया उन्होंने चिरकाल के लिए अपने को—आत्मा को वञ्चित यानी पतित किया है। जो श्रीगोविन्द पद-युगल से विमुख हैं, वे त्रिभुवन में अधम हैं और वे दर्शन तथा वार्तालाप के अयोग्य हैं ॥ ३७८८–८६ ॥

तथाच—

दोलायमानं गोविन्दं मञ्चस्थं मधुसूदनम्।
रथे च वामनं दृष्ट्वा पुनर्ज्जन्म न विद्यते ॥ ३७६० ॥

अन्वय—दोलायमानं (हिन्दोललीलं) गोविन्दं, मञ्चस्थं (दोल-मञ्चस्थितं) मधुसूदनं, रथे (रथस्थितं) च वामनं दृष्टवा (दर्शनकारिणः) पुनर्ज्जन्म न विद्यते ॥

अनुवाद—हिन्दोल स्थित गोविन्द, दोलमञ्चस्थ मधुसूदन एवं रथ पर आरूढ़ वामनदेव का दर्शन करने से मानव का पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ३७६० ॥

श्रीगोविन्ददर्शन करिया तिनजन।
हैल महानन्द जुड़ाइल नेत्रमन ॥ ३७६१ ॥
श्रीकृष्ण पण्डित तिने देखिया उल्लासे।
श्रीमाला प्रसाद दिया मङ्गल जिज्ञासे ॥ ३७६२ ॥
राघव पण्डित क्रमे सब निवेदिया।
सर्व्वत्र दर्शन कैला उल्लसित हैया ॥ ३७६३ ॥
श्रीजीव गोस्वामीर बासा गेलेन त्वराय।
श्रीजीवेर महानन्द देखिया सबाय ॥ ३७६४ ॥
श्रीराघव पण्डित गोस्वामी श्रीजीवेर।
कहिल सकल शुनि उल्लास अन्तरे। ३७६५ ॥
दुइ एक दिवस रहिया वृन्दावने।
राघव पण्डित शीघ्र गेला गोवर्द्धने ॥ ३७६६ ।
ओहे श्रोता, मथुरामण्डल परिक्रमा।
संक्षेप कहिल इथे अद्भुत महिमा ॥ ३७६७ ॥

ए माहात्म्य यत्ने पड़े ये-सबे शुनय।
श्रेष्ठगतिप्राप्त से उद्धारे पक्षद्वय ॥ ३७९८ ॥

भावार्थ—श्रीगोविन्द दर्शन के पश्चात् पण्डितों के मथुरामण्डल की भ्रमण कथा की अद्‌भुत महिमा का संक्षेप में वर्णन है। इसे पढ़कर या सुनकर मनुष्य के दोनों लोक सुधर जाते हैं ॥ ३७९१–९८ ॥

तथाहि आदिवाराहे—

ये पठन्ति महाभागे श्रृण्वन्ति च समाहिताः।
मथुरायाश्च माहात्म्यं ते यान्ति परमां गतिं।
कुलानि ते तारयन्ति द्वे शते पक्षयोर्द्वयोः ॥ ३७९९ ॥

अन्वय—हे महाभाग! (पुण्यव्रते!) ये (जनाः) समहिताः (मनोयोगिनः सन्तः) मथुरायाः च माहात्म्यं शृण्वन्ति पठन्ति च ते परमां (श्रेष्ठां) गतिं यान्ति (लभन्ते)। (अपि च) ते द्वयोः पक्षयोः (मातृपितृवंशयोः) द्वे शते कुलानि (कुल-जातानि) तारयन्ति (उद्धरन्ति)॥ ३७९९ ॥

अनुवाद—आदि वराह में है—हे महाभाग! जो सब व्यक्ति पूर्ण मनोयोग के साथ मथुरा का माहात्म्य सुनते हैं या पाठ करते हैं वे परमगति प्राप्त करते हैं, तथा माता एवं पिता दोनों वंश के दो सौ कुल का उद्धार करते हैं ॥ ३७९९ ॥

श्रीव्रजमण्डल भ्रमणेते सुख यत।
सेइ से जानये ये व्रजेर अनुगत ॥ ३८०० ॥
व्रजे लीलास्थली नाम करह कीर्त्तन।
अनायासे हबे सब वाञ्छित पूरण ॥ ३८०१ ॥
लीला आस्वादह भक्तगणेर सहिते।
मिलिबे निर्म्मल भक्ति भक्तेर कृपाते ॥ ३८०२ ॥
भक्तस्थाने सावधान हबे सर्व्वमते।
येन कोन अकौशल नहे ताँर चिते ॥ ३८०३ ॥
अकौशल हइले सब हय अन्तराय।
प्रसङ्ग पाइया किछु कहिये एथाय ॥ ३८०४ ॥
एकदिन श्रीरूप-गोस्वामी वृन्दावने।
भावये मानसे महा उल्लसित मने ॥ ३८०५ ॥
राधिकार वेश विरचय सखीगण।
पृष्ठदेशे रहि कृष्ण करे निरीक्षण ॥ ३८०६ ॥
कृष्ण ये देखेन ताहा राधिका ना जाने।
जानाइते सखीर कौतुक बाढ़े मने ॥ ३८०७ ॥

विचित्र बान्धने केश करिया बन्धन।
राधिकार आगे सखी धरिला दर्पण ॥ ३८०८ ॥
श्रीराधिका निज मुख शोभा निरखिते।
कृष्ण मुखचन्द्र देखे सेइ दर्पणेते ॥ ३८०९ ॥
व्यस्त हइलेन राइ लज्जा अतिशय।
लइया वसन शीघ्र सर्व्वाङ्ग झापय ॥ ३८१० ॥
सखागण हासे महा कौतुक हइल
श्रीरूपगोस्वामी सेइ सङ्गेइ हासिल ॥ ३८११ ॥
हेन काले आइला वैष्णव एकजन।
श्रीरूपे देखिते अति उत्कण्ठित मन ॥ ३८१२ ॥
श्रीरूप हासेन देखि' किछु ना कहिला।
विमर्ष हइया सनातन आगे गेला ॥ ३८१३ ॥
वैष्णव कहये गेनु श्रीरूप देखिते।
आमारे देखिया तेहों लागिला हासिते ॥ ३८१४ ॥
मनोदुःखी हैया ताँरे किछुना कहिनु।
ना बुझि कारण किछु जिज्ञासिते आइनु ॥ ३८१५ ॥
ये निमित्त हासे ता कहिला सनातन।
शुनि वैष्णवेर हैल खेदयुक्त मन ॥ ३८१६ ॥
वैष्णव कहेन ए समय केन गेनु।
ताँर मन ना बुझिया अपराध कैनु ॥ ३८१७ ॥
ऐछे से वैष्णव अति व्याकुल हइला।
सनातन गोस्वामी ताँहार स्थिर कैला ॥ ३८१८ ॥
एथा रूप मग्न छिला लीला दरशने।
से आनन्द अन्तर्द्धान हैल सेइक्षणे ॥ ३८१९ ॥
श्रीरूप व्याकुल हैया चतुर्द्दिके चाय।
मने स्थिर कैल केह आइला एथाय ॥ ३८२० ॥
अपराध हैल मोर ताँर असम्माने।
ऐछे विचारिया चले गोस्वामीर स्थाने ॥ ३८२१ ॥
से वैष्णव श्रीरूपेर गमन देखिया।
भूमे पड़ि प्रणमये कथो दूरे गिया ॥ ३८२२ ॥
अतिदीनप्राय श्रीरूपेर प्रति कय।
अपराध कैनु मुञि क्षम महाशय ॥ ३८२३ ॥
एइ कत क्षण हैल तथा गियाछिनु।

ना बुझि तोमार क्रिया मने किछु कैनु ॥ ३८२४ ॥
गोस्वामीर पाशे आसि' कैनु निवेदन ।
तेहों अनुग्रह करि' घुचाइला भ्रम ॥ ३८२५ ॥
तुमि यदि अनुग्रह करह आमारे ।
तबे मॅन स्थिर हय कोहिनु तमारे ॥ ३८२६ ॥
शुनिया श्रीरूप अति कातर अन्तरे ।
भूमे पड़ि प्रणामि कहये योड़करे ॥ ३८२७ ॥
अपराध कैनु कत कहिते ना पारि ।
अपराध क्षम मोर अनुग्रह करि' ॥ ३८२८ ॥
भक्ति रसावेशे दोंहे दैन्य बहु कैल ।
अपराध क्षमाईया दोंहे स्थिर हैल ॥ ३८२९ ॥
दोंहे आइला सनातन गोस्वामीर पाशे ।
कथोक्षण मग्न हैला कृष्ण-कथा-रसे ॥ ३८३० ॥
श्रीरूपेर ए प्रसङ्ग सकले शुनिल ।
शुनिया सबार अति विस्मय होइल ॥ ३८३१ ॥
ओहे भाइ वैष्णवेते सावधान हबे ।
प्राणपण करि' अपराध क्षमाइबे ॥ ३८३२ ॥
वैष्णवेर दोषदृष्टे हबे सावधान ।
निरन्तर करिबे वैष्णवेर गुणगान ॥ ३८३३ ॥
पूर्व्व पूर्व्व भागवतगण एइ कय ।
वैष्णवेर क्रिया-मुद्रा विज्ञे ना बूझय ॥ ३८३४ ॥
श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु प्रियभक्त-द्वारे ।
अन्येरे दिलेन शिक्षा एइतो प्रकारे ॥ ३८३५ ॥
भक्तपादपद्म धरि' मस्तक उपर ।
भक्तिरस-सायरे डूबह निरन्तर ॥ ३८३६ ॥
श्रीनिवास-आचार्य्यचरण चिन्ता करि' ।
भक्तिरत्नाकर कहे दास नरहरि ॥ ३८३७ ॥

भावार्थ—श्रीव्रजमण्डल में भ्रमण से परम सुख मिलता है और इच्छा की पूर्ति होती है । इस भ्रमण कथा में राधिका की शोभा और अर्चना से प्रति सुख का वर्णन है ॥ ३८००–३७ ॥

इति श्रीभक्तिरत्नाकरे व्रजपरिक्रमादिवर्णनं
नाम पञ्चमतरङ्ग ॥ ५ ॥

अशुद्धि-संशोधन

पृष्ठ	श्लोक	अशुद्धि	शुद्धि
१		हार्ङ्ग	हारंग
५	१६	गुज्जरी	गुञ्जरी
६	१६	चैवापि सिन्धुजा	च सिन्धुडा तथा
६	२०	मह्लारस्य	मल्लारस्य
६	२१	वेलापारी	वेलोयारी
६	२२	प्रथमञ्जरी	प्रथममञ्जरी
६	२५	पुंरागः	पुंरागाः
१०	४७	प्रथम श्रवणाच्छन्दः	प्रथमश्रवणाच्छब्दः
१२	६०	संकीर्णकास्त्रिधेति	संकीर्णका च त्रिधेति
१३	६७	सुरचरणोद्यैः	सुरचरणोयैः
२०	९८	मृदर्मालविका	मृदुर्मालसिका
२९	१४०	इसी	रसी
३२	१५५	मध्यमवजिता	मध्यमर्वजिता
३२	१५६	दमितोरुमध्ये	दयितोरुमध्ये
३२	१५८	र्तिस्तु	मूर्तिस्तु
३७	१८०	वृत्तार्धेऽप्यकं	वृत्तार्धेऽप्येकं
३८	१८५	सत्यापि	सत्यपि
४६	२१७	भैरवोतशकाभ्याम्	भैरवौतंशकाभ्याम्
५३	१२	करिहे	करिह
५४	१७	जानाइवो	जानाइव
५४	१७	कोहिवो	कहिव
५४	१८	नोहे, देखछो	नहे, देखछ
५७	३६	होय जार	हय यार
५७	३८	कोहि, जाय	कहि, याय
५८	४५	जाहाते	याहाते
६१	६३	जे	ये
६१	६५	जाते	याते
६१	६७	कोहय	कहय

पृष्ठ	श्लोक	अशुद्धि	शुद्धि
६१	६९	कोहये	कहये
६१	७०	कोहे, होय	कहे, हय
६२	७२	चाहि	चारि
६३	७७	ध्रुवकस्ततः	ध्रुवकोमतः
६६	८६	कोरिया, कोरिल	करिया, करिल
६६	८४	जे	ये
६६	८५	कोहि, कोहि, जे	कहि, कहि, ये
६७	८९	काँपि	झाँपि
६९	९३	नोहे	नहे
६९	९९	दलिताञ्जनिभ	दलिताञ्जननिभ
७१	१०१	कोरह	करह
७२	१०६	तातेनैकेन	तालेनैकेन
७२	१०९	जे	ये
७२	१११	कोहये	कहये
७२	११२	होन	हन
७२	११४	अदि, कोहिल	आदि, कहिल
७४	११९	कोहिलो	कहिल
७४	१२३	कैलो, निरुपिलो	कैल, निरूपिल
७५	१२६	होइते	हइते
७५	१२७	गोपसुताधृतिमञ्ज	गोपसुताधृतिभञ्ज
७६	१३२	हवे	हरे
७७	१३३	निरूपिलो	निरूपिल
७७	१३८	ग्रास	प्रास
७८	१४०	नोहे	नहे
८०	१४६	कोहे, कोहे, कोहे	कहे, कहे, कहे
८१	१५२	वधुवदनाम्बुज	वधूवदनाम्बुज
८२	१५२	उमता-लअ	उमता-अल
८२	१५४	पादैद्विविधा	पादैर्द्विविधा
८३	१५६	जे, जे	ये, ये
८५	१५९	कुलेते	कूलेते
८७	१६४	नाहि	नारि
९३	१७९	एछे	ऐछे

पृष्ठ	श्लोक	अशुद्धि	शुद्धि
९३	१७९	ए	ऐ
९५	१९०	विश्वरेति, स्थानकै	विस्वरेति,स्थानकै
९८	२०७	जाते	याते
१००	२१६	मदभक्ता	मद्भक्ता
१०४	९	अनुद्रतो, द्रतश्चैव	अनद्रुतो, द्रुतश्चैवं
१०९	३४	शब्दस्य	हस्तस्य
११२	५०	विक्रान्ते	विश्रान्ते
११२	५१	त्वेकादिवर्णसम्भवः	त्वेकादिवर्णसम्भवाः
११५	७२	वेर्णो	वर्णो
११७	८५	सर्वपंक्तिष्वं	सर्वपंक्तिष्वयं
११८	८७	विलिख्य यत्	विलिख्य रूपं यत्
१२९	१५६	जे	ये
१३५	२३७० (अन्वय)	यत्र (तीथे)	यत्र (तीर्थे)
१३६	२३७६	भूयस्त्वकुचकुन्त	भूयस्त्वकुचकुम्भ
१३९	२३८९	जाइते	याइते
१४१	२४०९	कुचपुटैः	कुचपटः
१४१	२४०३ (अ.)	श्रीतैः	प्रीतैः
१४१	२४०३ (अ.)	(रासो नृत्यविशेषस्तमेवक्रीड़ां)	रासो नृत्यविशेष-स्तामे
१४१	२४०४ (अ.)	संपृवृत्तः	संप्रवृत्तः
१४१	२४०४ (अ.)	गोप्याः	गोप्योः
१४३	२४१३	गोकुलसदवतार	गोकुललसदवतार
१४३	२४२३	तत्त्वगणना	तन्वगणना
१४४	२४२५	सिञ्जितजा-सुताला	सिञ्जित जातसुताला
१४४	२४१५ (अ.)	प्राणिता	प्राविता
१४४	२४१६ (अ.)	कटिभंगाः	कटिभंगी
१४५	२४२४ (अ.)	सत्याजं	सव्याजं
१४५	२४२५ (अ.)	(रद्वितीयपद्मप्रतियोगिनं)	अद्वितीयपद्मप्रति-योगिनं
१४८	२४४३	कृष्ण	कृष्णे
१४९	२४४८	जे	ये
१४९	२४४९	अँछे	यँछे

पृष्ठ	श्लोक	अशुद्धि	शुद्धि
१४६	२४५०	अंजनपरिसरे	अंगनपरिसरे
१४६	२४५२	जाहार	याहार
१४६	२४६१	जे	ये
१५०	२४६७	कुञ्जर	कुञ्जेर
१५०	२४७१	गुञ्जतरे	गुञ्जरे
१५०	२४७४	जे	ये
१५१	२४८६	गिमग्न	निमग्न
१५५	२४६८	जाहार	याहार
१५७	२५०८	वायुते ओ	वायुते उ
१५८	२५१३ (अ.)	(उपरिभागेन)	उपरिभागे
१५८	२५१४	उ, योगउ	ओ योगओ
१६०	२५२६ (अ.)	हरिणाः, फणिनः	हरिणाः, पक्षिणः, फणिनः
१६०	२५२७ (अ.)	परमानन्दविर्द्धनं	परमानन्दविवर्द्धनं अभिमतफलं,
		सकलजनचित्तहरणं	सकलजनचित्तहरणं
१६१	२५३४	जाहार	याहार
१६२	२५३६	नादपरे	नादपदे
१६३	२५४८	तत–सर्वत्र	तत श्रुति सर्वत्र
१६५	२५५५ (अ.)	धैवत श्रुतिमते	धैवते, श्रुतीमते
१६५	२५६१	मधुकरा	मधुकरी
१६६	२५६७ (अ.)	स्वयं	स्वरं
१६७	२५७०	रम्य जाने	रम्य गाने
१६७	२५७४	जे	ये
१६६	२५८२	स्वरेण	स्वरेर
१७१	२५६२ (अ.)	इव	इह
१७२	२५६३ (अ.)	षडजादय	षडजादयः
१७३	२६०१	जे	ये
१७३	२६०४	विषादी	विवादी
१७४	२६०७ (अ.)	रागादिनिरुपम्	रागादिनिरूपणम्
१७५	२६१४	जे	ये
१७६	२६२१	ग्रामस्त्रयः	ग्रामास्त्रयः

पृष्ठ	श्लोक	अशुद्धि	शुद्धि
१७७	२६३०	जा	या
१७७	२६३१	जा	या
१७७	२६३३	जे, ग्रामत्रय मूर्च्छना — नाना भवति,	ये, ग्रामत्रये मूर्च्छना प्रकारो नाना भवति,
१७९	२६४३	जे	ये
१८१	२६५८	सन्धाने	बन्धने
१८२	२६५९	जाते	याते
१८२	२६६२	स्यायानुतार्थं	स्याय्यनुगतार्थं
१८३	२६६९	मिल	मिले
१८४	२६७४	जे	ये
१८५	२६७८ (अ.)	मूर्च्छनायः	मूर्च्छनायाः
१८६	२६९४	जाते, जाय	याते, याय
१८९	२६९५	चार, जेन	चारु, येन
१८९	२७००	जे, गृहस्वर	ये ग्रहस्वर
१९०	२७०५	जीवभता	जीवभूता
१९१	२७११	जाते	याते
१९३	२७२० (अ.)	अवमिश्राः	अविमिश्राः
१९३	२७२४	कार्म्मारवी	कार्म्मावरी
१९४	२७२२ (अ.)	थथा धैवती	तथा धैवती
१९८	२७५३	वेलवाली	वेलावली
२००	२७६५	आनि	आदि
२०१	२७७५	जे	ये
२०२	२७८०	रूपलाघण्यकीर्तनम्	रूपलावण्यकीर्तनम्
२०४	२७८९ (अ.)	औड़वनां	औडवानां
२०४	२७९३	कर्णाटकेश्य	कर्णाटकेभ्य
२०६	२८०७	त्रय	त्रये
२०७	२८१०	एक सकल	ए सकल
२०७	२८१५	रात्रालाप	रागालाप
२१०	२८३५	आमेर	आनेर
२११	२८३९	क्षुद्रामति	क्षुद्रामिति
२११	२८४२	आलोपो	आलापो
२१६	२८७२	पचार	प्रचार

पृष्ठ	श्लोक	अशुद्धि	शुद्धि
२१७	२८८१	तेनेति...वाद्याक्षरोतकरा	पंक्ति के बाद एक और पंक्ति है।
		''आदियत्यादिकास्तालास्ताल: स कथयिष्यते ।''	
२१७	२८८१ (अ.)	कथियिष्यते	कथयिष्यते
२१८	२८८४ (अ.)	णब्द:	शब्द:
२२१	२९०६	अजरारुण, कुन्दवदन	अधरारुण, कुन्दरदन
२२९	२९५९	मत्ततालो	यत्ततालो
२४६	३०४६	स्रतोवहा	स्रोतोवहा
२५१	३०८६	शिक्षाकारोऽऽनुमुकारश्च	शिक्षाकारोऽऽनुकारश्च
२५६	३१२०	प्रमेद	प्रभेद
२५९	३१३८	सर्वदोषहीदनाय	सर्वदोषहीनादय
२७२	३२१८	अङ्गापाङ्ग	अङ्गोगाङ्ग
२७४	३२२७	गृतहीवान	गृहीतवान
२७६	३२३७	पञ्ज	पञ्च
२७६	३२३८	त्यक्तलक्षणौ	व्यक्तलक्षणौ
२७६	३२४१	लौलितौ	लोलितौ
२७८	३२४९	असंयुता: नृसंयुताश्च त्तहस्ता इति त्रिधा	असंयुता: संयुताश्च नृत्तहस्ता इति त्रिधा
२७९	३२५३ (अ.)	अन्नहावेन	अंगहावेन
२८२	३२७३	आमुख्ये	आभिमुख्ये
२८३	३२७५	स्वर: पल्लल:···	सर: पल्लल:···
२८४	३२७७ (अ.)	ग्राहं···गुहां	ग्राहं, गृहं, गुहां
२८७	३२९४ (अ.)	आन्त्यात्	आनन्त्यात्
२९२	३३४३	घटाय	छटाय
२९२	३३४४	जाहाते	याहाते
२९४	३३५२	जे	ये
२९५	३३८४	जान	यान
३०१	३४३८	जा' या	या' या
३०२	३४५०	जावे	यावे
३०३	३४६०	जा' या	या' या
३०४	३४६३	मासे	भासे
३०५	३४७३	विवच्यते	विविच्यते

पृष्ठ	श्लोक	अशुद्धि	शुद्धि
३०६	३४८४	परक	परम
३०९	३४९३	जैछे, जाहाते	यैछे, याहाते
३१३	३५२४	नायिकास्वपानेकासु	नायिकास्वप्यनेकासु
३१८	३५२६	श्रीराधाविलास	श्रीरासविलास
३१६	३५३८	साहिते	सहिते
३२०	३५६५	क्रध	क्रोध
३२१	३५६७	कर्षोत्पले	कर्णोत्पले
३२१	३५६८ (अ)	निष्ठुरं (पुरुषं···)	निष्ठुरं (परुषं···)
३२२	३५७४ (अ.)	अभिसरिका	अभिसारिका
३२५	३५८८	प्रेयानन्योपभोभवान्	प्रेयानत्योपभोगवान
३२५	३५८८	तूष्णीभावादिभाक्	तूष्णीम्भावादिभाक्
३२५	३५९१ (अ.)	ता, भविति	सा, भवति
३२६	३५९४ (अ.)	पाप्तं. उवनतं	प्राप्तं, अवनतं
३२७	३५९७	जाइते	याइते
३२८	३६०६ (अ.)	कुसुमविचयादिकृत्	कुसुमवचयादिकृत्
३३	३६१५	जाय	याय
३३१	३६२५	मदनमहे	मदनमदे
३३३	३६४० (अ.)	विशे (···परिजननियन्त्रण निपुणः)	वेशे, वागविन्यासेन परिजननियन्त्रणनिपुणः ।
३३६	३६५६	कुञ्ज	कुञ्जे

सम्पादक के विषय में—

जन्म से ही मणिपुर के नृत्य संगीत के परिवार में पले, नृत्य संगीत के गुरुओं, कलाकारों के परिचय में आये; उनको देखा, सुना। कई गुरुओं के पास से सीखा, संग्रह किया। आपने बचपन में कई नृत्य संगीत के समारम्भ में भाग लिया। विद्या अर्चन प्रथम से ही उनका व्यसन, मुखस्थ परम्परा का अभ्यास, शास्त्रों का अभ्यास–दोनों को सरखाकर मणिपुरी परम्परा में शास्त्रीयता दिखाई, यह उनका बड़ा योगदान रहा है।

बम्बई, कलकत्ता में कई सालों तक कार्य करते रहे हैं; किन्तु मणिपुर से उतना ही घनिष्ट सम्बन्ध रखा। उनकी devoted शिष्यायें झवेरी बहनों के सहयोग से यह सर्व ३० साल के कार्य को केन्द्रित करने मणिपुरी नर्तनालय नामक तीन संस्थायें बम्बई, कलकत्ता, मणिपुर में १९६२ में स्थापित कीं जिसमें शिक्षण, संशाधन, सर्जनात्मक कार्य, नृत्य प्रयोग, नृत्य नाटिकायें, नर्तन प्रवास, पुस्तक प्रकाशन का कार्य चलता है। उन्होंने मणिपुर में तथा बाहर भी शिष्यायें तैयार कीं जो निष्णात कलाकार, शिक्षक बने हैं। उन्होंने नियमबद्ध, वैज्ञानिक ढंग से शिक्षणक्रम बनाया—आप निष्णात नृत्यकार, सर्जनकार, विद्वान शिक्षक हैं।